ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अमृत प्रवचन

(भाग-4)

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
'बहिनश्री के वचनामृत' पर प्रवचन
(प्रवचन क्रमांक 92 से 120, वचनामृत 236 से 323)

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

न्यौछावर राशि : 20.00 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

भारत की भव्य वसुन्धरा अनादि से सन्तरत्नों की पवित्र भूमि रही है। यहाँ तीर्थंकर परमात्मा, वीतरागी सन्त एवं ज्ञानी-धर्मात्मा होते रहे हैं। इस देश का सौराष्ट्र प्रान्त भी अध्यात्मप्रधान जैन धर्म के गगन मण्डल में चमकीले नक्षत्र श्रीमद् राजचन्द्र, अध्यात्मयुगस्रष्टा आत्मज्ञसन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी और प्रशममूर्ति स्वानुभवविभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन जैसे असाधारण स्वानुभूतिप्रकाशक साधक धर्मात्माओं की भेंट प्रदान कर पुण्य भूमि बना है।

परम देवादिदेव चरम तीर्थंकर पूज्य श्री महावीरस्वामी की दिव्यध्वनि द्वारा प्रवाहित और गुरु-परम्परा से प्राप्त परम पावन अध्यात्मप्रवाह को भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परमागम श्रीसमयसार आदि प्राभृत भाजनों में सूत्रबद्ध करके चिरंजीवी किया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महाविदेहक्षेत्र में विराजमान शाश्वत् भगवन्त श्री सीमन्धरस्वामी के दर्शन एवं दिव्यध्वनि श्रवण का महान सौभाग्य भी प्राप्त किया था, जो इस पंचम काल की एक अविस्मरणीय घटना है। आचार्यश्री द्वारा प्रवाहित वीतरागी तत्त्वज्ञान के पुनीत अमृत का पान करके अन्तर के पुरुषार्थ द्वारा स्वानुभूति समृद्ध आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करके, जिन्होंने सौराष्ट्र, गुजरातसहित सम्पूर्ण देश तथा विदेशों में भी शुद्धात्मतत्त्व प्रमुख अध्यात्मविद्या का पवित्र आन्दोलन प्रसारित करके वर्तमान शताब्दी के भौतिक युग में दुःखी जीवों का उद्धार किया है – शाश्वत् शान्ति का मार्ग उपलब्ध कराया है – ऐसे जिनशासन प्रभावक, करुणामूर्ति, परमोपकारी, परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की शुद्धात्म-सुधारसमय मंगल पवित्रता, पुरुषार्थ से चमत्कृत ध्येयनिष्ट सहज वैराग्य, उत्तम बाल ब्रह्मचर्यसहित पवित्र जीवन, स्वानुभूतिमूलक वीतरागमार्ग-दर्शक सदुपदेश तथा अन्य अनेकानेक उपकारों का वर्णन कितना भी संक्षिप्तरूप से किया जाये तो भी अशक्य है।

आपश्री के विविध उपकारों में से एक महान उपकार यह है कि आपने पूज्य बहिनश्री की पहिचान जगत् को प्रदान की है। पूज्य बहिनश्री के परिणमन में से निकले हुए शब्द अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत'; इन वचनामृतों में अनुभव का सार, समयसार का सार, समस्त शास्त्रों का सार आ गया है। सादी भाषा में परम सत्य प्रकाशित हुआ है। जैन-जैनेतर सबको समझ में आ सकने योग्य अध्यात्ममार्ग का खजाना वचनामृत में है। जगत् का भाग्य है कि यह अलौकिक पुस्तक प्रसिद्ध हुई।

विशिष्ट ज्ञानविभूषित स्वानुभूतिपरिणत बहिनश्री चम्पाबेन की पवित्र मुद्रा ही मानो साधकदशा

का मूर्तरूप हो तथा सम्यक् मोक्षमार्ग का मूक उपदेश प्रदान कर रही हो! शास्त्रोपम गम्भीर, तथापि सादी सरल भाषा में उनके वचनामृत विविध कोटि के सर्व जीवों को अति उपकारक होते हैं। वे शुद्धात्मरूप द्रव्यसामान्य की मुख्यतापूर्वक, अनेकान्त सुसंगत द्रव्य-पर्यायस्वरूप निज आत्मतत्त्व को हस्तकमलवत् दर्शाते हैं और साधक जीवों की अटपटी अन्तर परिणति की अविरुद्धरूप से स्पष्ट समझ प्रदान करते हैं।

कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्री भी सभा में पूज्य बहिनश्री की स्वानुभवविभूषित अन्तर परिणति; अनेक भवसम्बन्धी धर्म विषयक असाधारण जातिस्मरणज्ञान और वचनामृत की विशिष्टता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। पूज्य गुरुदेवश्री की वह प्रसन्न मुद्रा हजारों श्रोताओं के स्मृति-पटल में स्पष्टरूप से आज भी तैरती है।

पूज्य बहिनश्री गुणगम्भीर, देव-गुरु के परम भक्त, अन्तरंग में अत्यन्त महान और पवित्र तथा बाह्य में अत्यन्त निर्लेप थीं। उनकी निर्विकल्प आनन्दमय अद्‌भुतदशा परखकर पूज्य गुरुदेवश्री ने उन्हें 'भगवती', 'जगदम्बा' जैसे असाधारण विशेषण प्रदान किये थे।

जैनधर्म की गीता अर्थात् 'बहिनश्री के वचनामृत' और मुमुक्षु जगत के लिये अमृत की बेल! पूज्य बहिनश्री लघुवय से ही उग्र पुरुषार्थी थी। इस भव में ही आत्मप्राप्ति कर लेने योग्य है – ऐसी तीव्र धगश, खटक बचपन से ही थी। सतत् पुरुषार्थ, गुरु की महिमा, मुमुक्षु की भूमिका, भेदज्ञान, ज्ञानी पुरुष की अन्तर्बाह्यदशा, आत्मा प्राप्त करने की विधि, मुनिदशा का वर्णन, आदि वचनामृत के बोल में दिखता है।

इस वचनामृत में 432 बोल हैं। उन पर पूज्य गुरुदेवश्री के 181 प्रवचन हुए हैं। उन प्रवचनों को अक्षरशः छह भाग में प्रकाशित किये जायेंगे। उनमें से यह चौथा भाग है। पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. टेप प्रवचन सुनते समय शब्दशः वाचन पद्धति मुमुक्षुओं को अत्यधिक अनुकूल और सुगम हुई है; इस कारण यह शब्दशः प्रवचन-ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए, हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

बहिनश्री के वचनामृत में समाविष्ट अनेक आध्यात्मिक विषयों पर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अद्‌भुत छनावट की है-तलस्पर्शी स्पष्टीकरण किया है, उसे पढ़कर आश्चर्य होता है कि आहा...हा...! ऐसे गम्भीर भाव भरे हैं! यह वचनामृत अमृत है और पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन भी अमृत हैं; इसलिए इस प्रवचन ग्रन्थ का नाम 'अमृत प्रवचन' रखा गया है। एक ओर दिव्य-देशना का प्रपात बहानेवाला तीर्थंकर का द्रव्य और दूसरी ओर दिव्य-देशना को ग्रहण करनेवाला गणधर का द्रव्य! कैसा भव्य सुयोग! इस दिव्य-देशना का मूल्यांकन किस प्रकार हो सकता है!! परम पूज्य गुरुदेवश्री ने यह अमृतसागर प्रवचनों की भेंट प्रदान करके समस्त मुमुक्षुओं को निहाल कर दिया है।

'बहिनश्री के वचनामृत' ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का बारम्बार अमृतपान कर लेने योग्य है। एक-एक बोल में अर्थ गम्भीरता, तत्त्वविषय की गहरायी, तलस्पर्शी अनुभव-पूर्ण मार्गदर्शन, जगत के जीवों के प्रति करुणापूर्ण पवित्रता की भावना-इत्यादि अनेकानेक गुणों का दर्शन कराते हुए ये प्रवचन, मुमुक्षु जीव को आत्महित में निश्चित ही निमित्तभूत होंगे।

इन प्रवचनों को शब्दश: लिखकर गुजराती भाषा में तैयार करने हेतु श्री निलेशभाई जैन, भावनगर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, साथ ही सी.डी. प्रवचन से मिलान पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) द्वारा किया गया है। इस हिन्दी प्रकाशन में व्यक्तिगत नाम एवं सम्बोधन आदि भी यथावत् रखे गये हैं। जहाँ आवाज की अस्पष्टता से वाक्य समझ में नहीं आया, वहाँ .... करके स्थान छोड़ दिया गया है। ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए श्री दिनेश जैन, देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। इसके अलावा सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में 'बहिनश्री के वचनामृत' के अमृत प्रवचनों का स्वाध्याय करके सभी आत्मार्थी परम शान्ति को प्राप्त हों, ऐसी भावना है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध–विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं – यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
९२	१२-०९-१९७८	२३६-२३७	१
९३	१३-०९-१९७८	२३७-२४१	१७
९४	१४-०९-१९७८	२४२-२४५	३१
९५	१५-०९-१९७८	२४५-२४९	४६
९६	२१-०९-१९७८	२४९-२५४	६१
९७	२२-०९-१९७८	२५५-२५८	७५
९८	२३-०९-१९७८	२५९-२६०	८८
९९	२४-०९-१९७८	२६१-२६३	१०२
१००	२५-०९-१९७८	२६४-२६६	११४
१०१	२६-०९-१९७८	२६७-२७०	१२८
१०२	२७-०९-१९७८	२७१-२७३	१४२
१०३	२८-०९-१९७८	२७३-२७६	१५५
१०४	२९-०९-१९७८	२७७-२७८	१६९
१०५	३०-०९-१९७८	२७९-२८०	१८५
१०६	०१-१०-१९७८	२८१-२८३	१९९
१०७	०२-१०-१९७८	२८४-२८७	२११
१०८	०३-१०-१९७८	२८८-२९०	२२४

प्रवचन क्रमांक	दिनाङ्क	वचनामृत	पृष्ठ नम्बर
१०९	०४-१०-१९७८	२९१-२९४	२३७
११०	०५-१०-१९७८	२९५-२९६	२५१
१११	०६-१०-१९७८	२९७-२९९	२६४
११२	०७-१०-१९७८	३००-३०३	२७८
११३	०८-१०-१९७८	३०४-३०६	२९३
११४	०९-१०-१९७८	३०६-३०९	३०६
११५	१०-१०-१९७८	३१०-३११	३२२
११६	११-१०-१९७८	३१२-३१४	३३७
११७	१२-१०-१९७८	३१४-३१५	३५४
११८	१३-१०-१९७८	३१६-३७८	३६९
११९	१४-१०-१९७८	३१९-३२१	३८४
१२०	१५-१०-१९७८	३२२-३२३	३९९

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का अपार उपकार

(पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के भक्तिभीने उद्‌गार)

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचम्भा थे। बाहरी अभ्यास तो जीव को अनादि से है परन्तु चैतन्य का अभ्यास तो इस काल में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत सालों तक करवाया है। उनकी वाणी रसात्मक-कसदार थी। उनके अन्तर में श्रुत की धारा और उनकी वाणी में भी श्रुत की गंगा बहती थी। उनकी महा आश्चर्यकारी मुखमुद्रा-शान्तरस बरसाती, उनके नयन उपशमरस भरपूर। अहो! गुरुदेवश्री तो भरत (क्षेत्र) के सौभाग्य थे, भरतक्षेत्र भाग्यशाली कि पूज्य गुरुदेव विदेह से सीधे यहाँ पधारे। सौराष्ट्र भाग्यशाली, जैनसमाज महाभाग्यशाली। पूज्य गुरुदेवश्री ने सच्चा जिनशासन स्वयं ने प्रगट किया। प्रसिद्धरूप से समझाया। और ऐसा काल तो कभी ही आता है। अहो! इस सोनगढ़ में तो 45-45 साल तक मूसलधार बारिश की माफ़िक मिथ्यात्व के जमे हुए चिकने सेवार जैसे पापभाव को उखेड़ने के लिये तेज हवा की माफ़िक पूज्य गुरुदेवश्री ने सम्यक्‌श्रुत की प्रभावना की थी। उनकी कृपा हमलोगों पर सदैव रहती थी। हम तो उनके दास हैं, अरे! दास तो क्या? दासानुदास ही हैं। 3.

★ ★ ★

अहो! पूज्य गुरुदेवश्री ने तो समग्र भरत(क्षेत्र) को जागृत कर दिया है। उनका तो इस क्षेत्र के सर्व जीवों पर अमाप उपकार है। अनन्त-अनन्त उपकार है, पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अनादि मंगलरूप तीर्थंकर का द्रव्य था। इतना ही नहीं उन्हें वाणी का अद्‌भुत-अनुपम और अपूर्व योग था। पूज्य गुरुदेवश्री अनुपम द्रव्य थे। अपूर्वता के दातार-उनकी वाणी सुननेवाले पात्र जीवों को अन्तर से अपूर्वता भासित हुए बिना नहीं रहती। उपादान सबका अपना-अपना लेकिन उनका निमित्तत्त्व प्रबल से प्रबल था। उन्हें सुननेवाले को अपूर्वता भासित हुए बिना रहे ही नहीं। उनकी वाणी में ऐसा अतिशय था कि उन्हें सुननेवाला कोई भी जीव कभी भी नीरस होकर उनका वक्तव्य सुनते हुए छोड़ दे ऐसा नहीं बनता। ऐसा परम कल्याणकारी मूसलधार उपदेश था। 4.

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अमृत प्रवचन

(अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री के वचनामृत पर धारावाहिक प्रवचन)

भाग-४

भाद्र शुक्ल-१०, मंगलवार, दिनाङ्क १२-०९-१९७८
वचनामृत-२३६ से २३७ प्रवचन-९२

मलिनता टिकती नहीं है और मलिनता रुचती नहीं है; इसलिए मलिनता वस्तु का स्वभाव हो ही नहीं सकता ॥२३६॥

२३६, है न?

मलिनता टिकती नहीं... बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! आत्मा में जो विकृत पर्याय, शुभाशुभभाव होते हैं, वह मलिन है, वे टिकते नहीं, हमेशा नहीं रहते। आहा..हा..! शरीर-वाणी-मन की तो क्या बात करना, वे तो परवस्तु हैं, परन्तु अन्दर में भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, उसकी वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था में परलक्ष्यी, विकृतभाव, शुभ-अशुभभाव हों, वह मलिन है। आहा..हा..! और वह मलिनता हमेशा नहीं टिकती। है?

मलिनता टिकती नहीं... एक बात। आहा..हा..! अन्दर भगवान आत्मा तो नित्य, निर्मलानन्द ध्रुव टिक रहा है। अरे रे! ऐसी बातें अब। धर्म को कहाँ लोगों ने (मान लिया

है)। निर्मल, चैतन्यद्रव्यस्वरूप वस्तु जो है, वह तो निर्मल और हमेशा कायम ध्रुवरूप से टिक रहा है। आहा..हा..! और जो मलिनता है, वह टिकती नहीं; क्षण भर रहकर नाश हो जाती है। आहा..हा..!

और मलिनता रुचती नहीं... यह किसकी बात है? जिसे अन्दर में ज्ञानानन्दस्वभाव की ओर की झन्खना हुई है। मैं चैतन्यभगवान सच्चिदानन्द निर्मलानन्द हूँ, ऐसी अव्यक्तरूप से भी जिसकी जिज्ञासा हुई है, उसे मलिनता रुचती नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। पुस्तकें पढ़-पढ़कर पुस्तक के पत्र तो बहुत आते हैं। लोग ऐसे प्रसन्न होते हैं... ऐसे प्रसन्न होते हैं.. यह पुस्तक ऐसी!

मुमुक्षु : दूसरी आवृत्ति में.....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी आवृत्ति परन्तु कहाँ से दूसरी आवृत्ति? यह वस्तु है। अब दूसरी बार कोई... वह की वही दूसरी आवृत्ति हो परन्तु कहीं... ये तो वचन निकले वे निकले। इसमें सब पूरा आ गया है। आहा..हा..!

तीन चीज़ है। एक परद्रव्य—शरीर, कर्म, लक्ष्मी आदि परद्रव्य। वह तो अपनी पर्याय में भी नहीं। पर्याय अर्थात् अवस्था-हालत; और हालत में पुण्य तथा पाप के मलिन भाव होते हैं, परन्तु टिकते नहीं। एक समय रहते हैं। और जिसे ज्ञानानन्दस्वभाव की ओर की जिज्ञासा हुई है... आहा..हा..! उसे मलिनभाव रुचते नहीं। आहा..हा..! ऐसी बात अन्यत्र कहाँ है? कठिन बात है।

मुमुक्षु : पुण्य तो अधर्मी की अपेक्षा धर्मी को अधिक होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वृत्ति का प्रश्न नहीं। उसकी रुचि नहीं। समझ में आया? शुद्ध उपयोग होता है, उसमें पुण्य का अनुभाग बढ़ता है, परन्तु रुचि नहीं। आहा..हा..! कठिन बातें, भाई! परम सत्य चीज़ कोई ऐसी है। आहा..हा..! आज एक जगह से पत्र आया है। अरे! हम आत्मधर्म पढ़कर, चैतन्य के नूर का पूर पढ़कर तो हमें अन्दर कुछ हो गया। अन्दर चैतन्य के नूर के तेज का पूर। पूर समझे? जैसे पानी का प्रवाह बहता है, वैसे यह ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. चैतन्य के तेज के नूर का पूर... आहा..हा..! वह तो निर्मल और टिकती चीज़ है। समझ में आया? गज़ब मार्ग बापू! सूक्ष्म बात बहुत। अभी तो बाहर का ऐसा हो गया है। अरे..! भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा.. ! अब लोगों को रुचता है, सुहाता है। भाई ! मार्ग तो यह है। भले महँगा पड़े, परन्तु बापू ! इसे करने से ही तेरा छुटकारा है, भाई ! आहा..हा.. ! और यह चीज़ है न ? ध्रुव.. ध्रुव.. भगवान, यह टिकती चीज़ है, निर्मल है। पुण्य और पाप के दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव टिकते नहीं और रुचते नहीं। आहा..हा.. ! किसे ? जिसे अन्दर में जाना है उसे। समझ में आया ? आहा..हा.. ! ऐसी बातें अब।

मूल चीज़ ही यह है। क्यों ? कि मोक्ष के पूर्णानन्द की प्राप्ति का कारण चारित्र; और चारित्र का पहला कारण सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं होता और सम्यग्दर्शन का कारण, वह त्रिकाली नित्य निर्मलानन्द प्रभु, वह सम्यग्दर्शन का कारण है। आहा..हा.. !

पर्याय में मलिनता है, परन्तु टिकती चीज़ नहीं, प्रभु ! आहा..हा.. ! ज्ञातादृष्टा... योगसार में तो ऐसा लिया है, भाई ! आत्मा को उपयोग लक्षणवाला क्यों कहा ? आत्मा अनन्त गुणवाला है, ऐसा क्यों नहीं कहा ? जड़, अनात्म गुणवाला है, ऐसा क्यों नहीं कहा ? तो (समयसार गाथा २४ में) ऐसा कहा कि '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं**' सर्वज्ञ भगवान, परमेश्वर, त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा, प्रभु ! '**उवओगलक्खणो**' उपयोग—जानना-देखना, वह लक्षण है। ये गुण तो अनन्त हैं, तो अनन्त गुण को एक-एक गुण से पकड़ने में काल चला जाता है। समझ में आया ? जो उपयोग है, जानने-देखने का व्यापार उपयोग, वह चैतन्य का लक्षण है। आहा..हा.. ! '**उवओगलक्खणो णिच्चं**' ऐसा शब्द है न ? आहा..हा.. !

जो जानन-देखन, उपयोगस्वभावस्वरूप नित्य है, परन्तु उसका निर्णय करनेवाली पर्याय, वह अनित्य है। आहा..हा.. ! यह वास्तविक लक्षण है। जानन-देखना जो पर्याय में दिखता है। उससे आत्मा लक्ष्य करने योग्य है। आहा..हा.. ! जानन-देखन उपयोग स्व को जानता है, लक्ष्य अर्थात् द्रव्य को जानता है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? तो वह लक्षण, जिसका लक्ष्य करना है, वह चीज़ नित्य है। आहा..हा.. ! नित्य पर दृष्टि करने से सत्यदर्शन, सम्यग्दर्शन, धर्म की पहली सीढ़ी उत्पन्न होती है। आहा..हा.. !

कहते हैं कि पर्याय में जो मलिनता दिखती है.. जिसे आत्मा की शोध करते-करते..

आहा..हा.. ! यह क्या चीज़ है ? ऐसी शोध करनेवाले को शुभ और अशुभभाव टिकते नहीं – ऐसा दिखता है और रुचते नहीं, ऐसा दिखता है। समझ में आया ? पैसे-वैसे की यहाँ बात नहीं है। पैसा तो धूल कहीं बाहर रह गयी।

मुमुक्षु : मुनिराज कहीं पैसे की बात करें ? वह तो व्यापारी हो वह करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा भी था कब ? पैसे का तो चैतन्य में अभाव है। यहाँ तो भाव है, उसकी बात करते हैं। पैसा, शरीर, कर्म वह तो स्वद्रव्य में; जैसे एक अंगुली में दूसरी अंगुली का अभाव है; वैसे भगवान आत्मा अपने रूप से अस्ति है, स्व से मौजूद है और परपदार्थ से अभावस्वरूप है। आहा..हा.. ! उसकी बात यहाँ की ही नहीं। मात्र इसकी पर्याय में मलिनता का अस्तित्व उत्पन्न होता है... आहा..हा.. ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, परन्तु बहुत मुद्दे की रकम है। आहा..हा.. !

भगवान आत्मा चैतन्य के नूर का पूर। चैतन्य के तेज का पिण्ड, प्रभु ! पूर.. आहा..हा.. ! वह तो निर्मल और टिकती चीज़ है। पुण्य और पाप की शुभ-अशुभ की जो वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वह तो मलिन है, टिकती नहीं, रुचिकर नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? ऐसी बातें ! चौरासी के अवतार करके, भाई ! आहा..हा.. ! बड़ा सेठिया अरबोंपति, वह मरकर ढ़ोर होता है, भाई ! आहा..हा.. ! समझ में आया ? आहा..हा.. ! क्योंकि माँस आदि न हो और धर्म / सम्यग्दर्शन की तो खबर भी नहीं। अरे रे ! उसमें आत्मा की बात वीतराग कहते हैं, वह सुनने का समय भी चौबीस घण्टे में चार घण्टे, पाँच घण्टे निकाले नहीं... आहा..हा.. ! उसकी क्या गति होगी ? भाई ! बाईस घण्टे, इक्कीस घण्टे ये पाप। यह कमाया और यह कमाया और अमुक। आहा..हा.. !

यह कहते हैं कि प्रभु ! सुन न एक बार। तेरे अस्तित्व में त्रिकाली अस्तित्व, वह त्रिकाली चीज़ है और तेरी वर्तमान दशा में शुभ और अशुभराग उत्पन्न होता है, वह मलिन है, टिकती चीज़ नहीं। एक क्षण रहकर दूसरे क्षण में नाश हो जाता है और उसकी रुचि नहीं। रुचती नहीं। दु:ख-दु:ख (लगता है) । यह तो जिसे अन्तर में जाना है, उसकी बात है। आहा..हा.. !

वह **मलिनता रुचती नहीं है; इसलिए मलिनता वस्तु का स्वभाव हो ही नहीं सकता।** आहा..हा.. ! तीन टुकड़े में (बात की है)। मलिनता टिकती नहीं, मलिनता

रुचती नहीं, इस कारण मलिनता वस्तु का स्वभाव नहीं। लॉजिक से, न्याय से इसे पकड़े। आहा..हा..! वीतरागमार्ग (ऐसा है)। **वस्तु का स्वभाव हो ही नहीं सकता।**

शुभ-अशुभभाव, चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, काम, क्रोध हो या चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव हो, वह भाव कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। एक समय टिकती चीज़ है, तो वह टिकनेवाली चीज़ नहीं है। आहा..हा..! और वह रुचती नहीं, क्योंकि जिसे अन्दर जाना है, उसे वह रुचती नहीं। आहा..हा..! और इसलिए वे पुण्य और पाप के मलिन भाव, वस्तु का स्वभाव नहीं हैं। तीन सिद्धान्त हुए। आहा..हा..! समझ में आया?

लोगों को पढ़कर इतना प्रमोद आता है। कितनों के ऐसे पत्र आते हैं। आहा..हा..! दूसरी आवृत्ति, अब बहिन बोले तो प्रकाशित करना, ऐसा लिखा है। आहा..हा..! लोग तो बेचारे... यह वस्तु ऐसी आ गयी है। आहा..हा..! बेचारे ने लिखा है। सादी भाषा, सरल भाषा और एकदम तत्त्व (आ गया है)। समझ में आया? क्या कहा?

भगवान ज्ञायक चैतन्य है, वह तो त्रिकाली ध्रुव है। यह अब कहेंगे। और पर्याय में मलिनभाव, शुभ-अशुभ लगनी-वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे टिकती नहीं, मलिन चीज़ है और उसमें रहना रुचता नहीं। आहा..हा..! इस कारण से वे रुचती नहीं। इस कारण वे पुण्य-पाप के मलिनभाव वस्तु का स्वभाव नहीं हो सकता। आहा..हा..! आहा..हा..! कठिन काम। अन्दर इसे कुछ पड़ी नहीं कि अरे! मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा? २३६।

हे आत्मा! यदि तुझे विभाव से छूटकर मुक्तदशा प्राप्त करनी हो तो चैतन्य के अभेद स्वरूप को ग्रहण कर। द्रव्यदृष्टि सर्व प्रकार की पर्याय को दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्य स्वरूप को ग्रहण करती है; द्रव्यदृष्टि के विषय में गुणभेद भी नहीं होते। ऐसी शुद्ध दृष्टि प्रगट कर।

ऐसी दृष्टि के साथ वर्तता हुआ ज्ञान वस्तु में विद्यमान गुणों तथा पर्यायों को, अभेद तथा भेद को, विविध प्रकार से जानता है। लक्षण, प्रयोजन इत्यादि अपेक्षा से गुणों में भिन्नता है और वस्तु-अपेक्षा से अभेद है ऐसा ज्ञान जानता है। 'इस आत्मा की यह पर्याय प्रगट हुई, यह सम्यग्दर्शन हुआ, यह मुनिदशा हुई, यह केवलज्ञान हुआ'—इस प्रकार सब महिमावन्त पर्यायों को तथा अन्य सर्व पर्यायों को ज्ञान जानता है। ऐसा होने पर भी शुद्ध दृष्टि (सामान्य के सिवा) किसी प्रकार में नहीं रुकती।

साधक जीव को भूमिकानुसार देव-गुरु की महिमा के, श्रुतचिन्तवन के, अणुव्रत-महाव्रत के इत्यादि विकल्प होते हैं, परन्तु वे ज्ञायकपरिणति को भाररूप हैं क्योंकि स्वभाव से विरुद्ध हैं। अपूर्ण दशा में वे विकल्प होते हैं; स्वरूप में एकाग्र होने पर, निर्विकल्प स्वरूप में निवास होने पर, वे सब छूट जाते हैं। पूर्ण वीतराग दशा होने पर सर्व प्रकार के राग का क्षय होता है।

—ऐसी साधकदशा प्रगट करनेयोग्य है॥२३७॥

२३७वाँ बोल। बड़ा है।

हे आत्मा!.. सम्बोधन किया है। **हे आत्मा! यदि तुझे विभाव से छूटकर...** पहले मलिनता की बात की। उस मलिनता के भाव से छूटकर **मुक्तदशा प्राप्त करनी हो...** तेरे आत्मा की शान्ति, आनन्द (प्राप्त करना हो और) दुःख की पर्याय से मुक्त होना हो... आहा..हा..! वह मलिनपर्याय दुःखरूप है। उससे मुक्ति चाहता है, आहा..हा..! **विभाव से छूटकर मुक्तदशा प्राप्त करनी हो...** आहा..हा..! यहाँ तो यह लिया है कि **विभाव से छूटकर मुक्तदशा प्राप्त...** अर्थात् विभाव का व्यय और परमानन्दरूपी मुक्ति का उत्पाद। आहा..हा..! ऐसा मार्ग प्रभु का है, भाई!

तो चैतन्य के अभेद स्वरूप को ग्रहण कर। आहा..हा..! वस्तु जो कायम की

चीज़ अन्दर एकरूप पड़ी है, उसमें पर्याय और गुण-गुणी का भेद भी नहीं। आहा..हा..! यह क्या (वस्तु है) ? ध्रुव, अनन्त गुण का एकरूप, प्रभु! एक स्वरूप... आहा..हा..! उसका जो अभेदस्वरूप है, उसे ग्रहण कर। उस पर दृष्टि लगा। आहा..हा..! राग को ग्रहण किया है, वह तो मलिन है, नहीं टिकनेवाली चीज़ है और अरुचिकर है। तो भगवान आत्मा टिकती चीज़ नित्य चैतन्य को पूर अन्दर है। आहा..हा..! चैतन्य के तेज से भरा हुआ पूर है, उसे ग्रहण कर। यह बात...! अर्थात् उस चैतन्य ज्ञायक निर्मलानन्द प्रभु की दृष्टि कर। आहा..हा..! उसे ध्येय बना। 'विषय कुरु' तेरी वर्तमान श्रद्धा का विषय उसे बना। आहा..हा..! ऐसी बातें अब। समझ में आया ?

चैतन्य के अभेद स्वरूप को ग्रहण कर। आदर कर। आहा..हा..! **द्रव्यदृष्टि...** यह द्रव्य अर्थात् वस्तु जो त्रिकाली भगवान है, उसकी दृष्टि **सर्व प्रकार की पर्याय को दूर रखकर...** आहा..हा..! **सर्व प्रकार की पर्याय को...** अवस्था को **दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्य स्वरूप को ग्रहण करती है;...** दृष्टि, वर्तमान पर्याय। दूसरी पर्याय को दूर करके। आहा..हा..! ये तो मन्त्र हैं, प्रभु! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहा..हा..! यह अनादि काल से दुःखी... दुःखी... दुःखी है। आहा..हा..!

(किसी को) फाँसी पर चढ़ावे और जीव न जाये, तब तक चार-चार, छह-छह घण्टे तक ऐसा का ऐसे (लटकाये रखते हैं)। वह कैसी पीड़ा होगी, भाई! समझ में आया ? आहा..हा..! हम राजकोट थे। कैदियों ने नाम सुना। नाम तो बहुत बाहर आया है। इसलिए कैदियों ने भी सुना कि महाराज यहाँ हैं, हमें दर्शन करना है। जेल-जेल में। अब उन्हें दर्शन किस प्रकार हों ? ऊपर से हुकम न आवे तब तक। अहमदाबाद से उनके जेल के बड़े प्रमुख का हुकम आया कि महाराज हैं, उनके मुझे दर्शन करना हैं। वे जेल में आवें। हमें भले बाहर न निकालो। आहा..हा..! हम गये थे। लोग बाहर आये। जेलर लोग दर्शन को चाहते हैं। हम गये। आहा..हा..! उन लोगों का ऐसा रिवाज होता है। बड़ी जेल होती है, इसलिए बड़े दो दरवाजे होते हैं। बीच में तीन-चार हाथ की दूरी होती है, एक दरवाजा यहाँ, एक दरवाजा यहाँ। इसलिए यह दरवाजा खुले, तब यह दरवाजा बन्द रखे और वह दरवाजा अन्दर जाने के लिये खुले, तब यह दरवाजा बन्द कर दे। नहीं तो कोई कैदी (भाग जाये)। ऐसे खोलकर गये। आहा..हा..! उनका बड़ा जेलर था, वह बेचारा बोलता था। अरे! बेचारे ने आवेश में सब पाप किये और यह जेल है। ऐसा बेचारा कहता था।

उससे कहा, भाई ! इसमें लिखा हुआ है, हों ! अज्ञान से दु:ख उत्पन्न होता है। जेल में लिखा है। मुझे तो दूसरा कहना है। बाहर निकलने के बाद उनका बड़ा जेलर था, उसने ऐसा कहा कि हम यहाँ फाँसी देते हैं। वह बताया। ऊपर गये। खूनी को यहाँ लाते हैं और फिर उसे टोपी पहनाते हैं और फिर डोरी बाँधकर पैर बाँधते हैं, पीछे हाथ बाँधते हैं, इसमें ले जाते हैं। इस जगह खड़ा रखते हैं। फिर डोरी बाँधकर ऊपर लटकावे। नीचे से लकड़ी ले लेवे – खींच लें। पैर बँधे हुए, हाथ बँधे हुए, इसलिए पूरा काँप उठे। ये दो-चार घण्टे कम्पित हो। आहा..हा.. ! फिर देह छूट जाये। आहा..हा.. ! ऐसा तो अनन्त बार हुआ है, हों ! अरे ! प्रभु ! तू भूल गया, प्रभु ! आहा..हा.. ! इस समय उसे चितार तो सही।

एक तो खूनी कैद में था। उसे फाँसी देनी थी। बीस-पच्चीस वर्ष की उम्र का था। उसने एक लड़की को काट डाला था, मार डाला था। अन्दर पड़ा था। मैं वहाँ से निकला, बेचारा पैर लगा (चरण छूए) परन्तु फाँसी निश्चित हो गयी थी। जवान व्यक्ति था। उसने फिर कहा कि देखो, इस प्रकार से इसे फाँसी देनी है। आहा..हा.. ! फाँसी समझे ? आहा..हा.. ! एक खूनी मनुष्य तो ऐसा आया कि रात्रि में भजन किया। ऐसे मानो कि यह सब... दो-तीन घण्टे थोड़ी देर सो गया। सबेरे फाँसी देनी है। आहा..हा.. ! परन्तु वह हिम्मत रखता था, किन्तु जहाँ अन्दर गया और बाँधा, कंपकपी... कंपकपी... कंपकपी... कंपकपी... कंपकपी... आहा..हा.. ! फिर जिस दरवाजे में से डाला हो, वहाँ नहीं निकालना। अन्दर दूसरा दरवाजा होता है, वहाँ से मुर्दे को निकाले। आहा..हा.. !

इसी प्रकार अनादि से राग की एकता की फाँसी इसे लगी है। यह दु:खी होकर जीता है, हों ! आहा..हा.. ! इसे खबर नहीं। यह दया, दान का रागादि हो, यह राग मेरा स्वभाव है (–ऐसा मान लिया है)। पहले तो यह कहा कि मलिनता है, वह टिकती नहीं, रुचती नहीं; इसलिए वस्तु का स्वभाव नहीं। आहा..हा.. ! उसमें जिसे प्रेम है... आहा..हा.. ! भगवान अखण्डानन्द प्रभु को उसने फाँसी दी है। आहा..हा.. ! उस फाँसी से छूटना हो तो,

विभाव से छूटकर मुक्तदशा प्राप्त करनी हो तो.. आहा..हा.. ! **चैतन्य के अभेद स्वरूप को ग्रहण कर। द्रव्यदृष्टि सर्व प्रकार की पर्याय को दूर रखकर...** सर्व प्रकार की (अर्थात्) वर्तमान पर्याय तो (स्वरूप को) ग्रहण करती है, उस पर्याय को दूर रखकर, ऐसा नहीं। समझ में आया ? क्या कहा ? यह तुम्हारे उस स्टील की बहियाँ नहीं हैं। ये तो दूसरी प्रकार की बहियाँ हैं। आहा..हा.. !

भगवान अनन्त आनन्द की मूर्ति द्रव्य / वस्तु, उसकी दृष्टि करने से **सर्व प्रकार की पर्याय...** वर्तमान के अतिरिक्त (सभी पर्यायों को) **दूर रखकर...** वर्तमान पर्याय तो वहाँ उसे ग्रहण करती है। आहा..हा..! ऐसी बातें कहाँ (सुनने को मिले) ? समझ में आया ? पहले तो द्रव्यदृष्टि कहा न ? तो दृष्टि, वह पर्याय है। द्रव्य की दृष्टि वह पर्याय है। आहा..हा..! भाई! यह तो अध्यात्म की अनमोल चीज है। आहा..हा..! द्रव्यदृष्टि ज्ञायक चिदानन्द नित्यानन्द प्रभु, जो एकरूप अभेद है, जो पर्याय में भी भेदरूप होकर नहीं आता... आहा..हा..! वह दृष्टि **सर्व प्रकार की पर्याय को...** व्यंजनपर्याय कहो या दूसरे अनन्त गुण की पर्याय कहो, सबको **दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्यस्वरूप को ग्रहण करती है;....** यह दृष्टि। दृष्टि है पर्याय। आहा..हा..!

एक निरपेक्ष सामान्यस्वरूप को ग्रहण करती है;.... एकरूप ज्ञातादृष्टा, सामान्य अर्थात् सादृश्यस्वरूप, जिसमें भेद नहीं, जिसमें परिणमना नहीं, जिसमें कोई पर्याय नहीं। पर्याय उसे ग्रहण करे। द्रव्यदृष्टि उसे ग्रहण करे। द्रव्यदृष्टि है तो पर्याय, आहा..हा..! वह पर्याय, द्रव्य को ग्रहण करे परन्तु दूसरी सभी पर्यायों को दूर करके। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। अब इसमें कहाँ। इस दुनिया की होंश और हर्ष में यह मर गया है। आहा..हा..!

जिसका चैतन्य का नूर और तेज का पूर, प्रभु! उसका अनादर करके पर में उत्साह और हर्ष करे, वह तो जीव का अनादर करता है। आहा..हा..! वह जीव की अपनी हिंसा करता है। मैं तो ऐसा ज्ञाता, अनन्त गुण का पिण्ड ध्रुव सामान्य, वह नहीं; मात्र पुण्य और पाप के प्रेम में यह मैं, वह चैतन्य सामान्य स्वरूप का इसने अनादर किया। इसने सामान्य नहीं, ऐसा माना। वह नहीं माना, यह हिंसा है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। आहा..हा..!

(संवत्) १९८४ के वर्ष में एक बार हम राणपुर थे। फिर एक हरिजन ढेढ़ पलंग भरता (बुनता) था। साधारण गरीब मनुष्य था। ऐसे उपाश्रय के सामने वोरा की शेरी थी। फिर उसे खाने का समय आया तो बैठा, वहाँ काली-कुबड़ी ऐसी उसकी स्त्री आयी, और एक छाछ का एक दोना लायी और बाजरे की रोटी। लड़का, लड़की और स्त्री और सब बैठे, परन्तु मानो चक्रवर्ती का राज हो, ऐसे भोजन करने बैठे। आहा..हा..! सब ऐसा कहे अपना परिवार, अपने ये। अरे रे! क्या करता है ? कहा। यह। यह संवत् १९८४ के वर्ष की बात है। उपाश्रय के सामने। अरे रे! क्या करता है यह ? ऐसे यह स्त्री, पुत्र, परिवार और उसमें नौकर, मुनीम, पाँच-पचास लाख आमदनी इसे कराता हो, ऐसे सब एकसाथ बैठें

और दीवाली के दिन हों, धड़ाका और फाड़ाका। आहा..हा..! इस हर्ष के जोश में बैठा, प्रभु! तूने तेरे चैतन्य का खून कर दिया। नाथ! आहा..हा..! आनन्द का सागर है, उसका तूने नकार किया और इसमें मुझे सुख है, उसका तूने हकार किया। आहा..हा..! धर्मी की दृष्टि.. आहा..हा..! पर्याय का नकार करके... आहा..हा..! यह तो बोलने की अपेक्षा से है और त्रिकाली ज्ञायक का हकार करता है। वह जीवते जीव को जीवता उसने रखा। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

सर्व प्रकार की पर्याय को दूर रखकर एक निरपेक्ष सामान्यस्वरूप को ग्रहण करती है;... दृष्टि, वर्तमान पर्याय। भूत, भविष्य की पर्याय और दूसरी पर्याय को दूर करके, अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. प्रवाह जो वस्तु पड़ी है, उसे ही ग्रहण करती है। **द्रव्यदृष्टि के विषय में...** उस वस्तु की दृष्टि जो है, उस दृष्टि के विषय में, उस दृष्टि के ध्येय में **गुणभेद भी नहीं होते**। पहले पर्याय को दूर करके, ऐसा कहा। अब उसमें गुणभेद भी नहीं (-ऐसा कहते हैं)। ऐसी बातें हैं, भाई! अहो! जगत का भाग्य कि ऐसी चीज़ बाहर आ गयी। आहा..हा..! थोड़े शब्द में... समझ में आया?

द्रव्यदृष्टि के विषय में... त्रिकाली ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द प्रभु की दृष्टि में गुणभेद भी नहीं कि यह आत्मा द्रव्य है और इसमें अनन्त गुण हैं, ऐसा भेद भी नहीं। आहा..हा..! **ऐसी शुद्ध दृष्टि प्रगट कर**। मुक्ति प्राप्त करनी हो, संसार के दु:ख की पीड़ा का नाश करना हो तो यह कर, प्रभु! इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! **ऐसी शुद्ध दृष्टि प्रगट कर**। आहा..हा..! पहले करने योग्य हो तो यह है। बाकी सब बातें हैं। आहा..हा..!

वस्तु है न? तो कायम रहनेवाली चीज़ है या नहीं? अनुत्पन्न / उत्पन्न हुई नहीं, नाश हुई नहीं, वह तो ऐसी चीज़ है। इसकी पर्याय पलटती है, उसमें यहाँ जो राग-द्वेष के भाव कहे, वे तो नहीं टिकनेवाली चीज़ है। अब? जब टिकती चीज़ पर तेरी दृष्टि करनी हो, विभाव से मुक्त होकर पूर्ण आनन्द प्राप्त करना हो तो प्रथम दृष्टि द्रव्य पर दे। जिसमें अनन्त-अनन्त गुण के रत्न के भण्डार भरे हैं। आहा..हा..! ऐसा गुणभेद भी जिसकी दृष्टि में नहीं। आहा..हा..! ऐसा कहाँ? सर्वज्ञ परमात्मा... आहा..हा..!

बारोठ होता है न बारोठ? बारोठ नहीं बारोठ? इसके बाप की बातें करे। तेरे बाप

आठ पैढ़ी से यहाँ थे, पाटन में ऐसे थे, वाव करायी थी, पचास हजार खर्च किये थे। अमुक-अमुक। यह सुने वहाँ। वयावचा, यह बारोठ कहते हैं न, क्या कहते हैं? भाट। बड़ा गृहस्थ होता है। लाखोंपति, बड़े भाट होते हैं। राणपुर में देखा था न। एक भावसार के यहाँ आता था। लाखोंपति। देखो तो बड़ा नागर जैसा। वह भावसार साथ में पढ़ता था। खत्री-खत्री। वह खत्री नहीं वहाँ? है न पोपट खत्री। अपने यहाँ आता है, वहाँ भी आता है। उसका घर उपाश्रय के साथ है, वहाँ वह एक बार आया था परन्तु उस नागर जैसा और रूपवान और शरीर बड़ा। परन्तु सब उसके वे बारोट-भाट सही न, सुनने बैठे।

यहाँ तेरे सर्वज्ञ बारोठ है, तेरे इतिहास की बात करते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! तेरा इतिहास तो यह है कि मलिनता के दुःख में तूने अनन्त काल व्यतीत किया, प्रभु! आहा..हा..! अब तो निर्मलानन्द प्रभु! आहा..हा..! जो वस्तु का स्वभाव है। पुण्य-पाप के भाव तो वस्तु का स्वभाव नहीं, क्योंकि मलिन, अरुचिकर और नाशवान है। आहा..हा..! अविनाशी भगवान अन्दर है, उसकी दृष्टि कर। पर्याय और गुण के भेद की दृष्टि छोड़ दे। आहा..हा..! विभाव से तो छोड़ दे परन्तु पर्याय और गुणभेद की दृष्टि छोड़ दे। अरे! ऐसी बातें हैं ये। आहा..हा..!

ऐसी दृष्टि के साथ... अब ज्ञान लिया। क्या कहा यह? कि ऐसी द्रव्यस्वरूप की दृष्टि हुई, उसके साथ में **वर्तता हुआ ज्ञान...** उसके **साथ वर्तता हुआ ज्ञान वस्तु में विद्यमान गुणों...** उस वस्तु में रहे हुए विद्यमान गुणों को भी ज्ञान जानता है। दृष्टि के विषय में गुणभेद नहीं है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! सम्यग्दर्शन-दृष्टि जो है, वह तो त्रिकाल सामान्य को ही स्वीकार करती है। तब अब अन्दर गुणभेद है, पर्याय है। तो कहते हैं, उस दृष्टि के साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान... आहा..हा..! वस्तु में विद्यमान गुण, अनन्त-अनन्त गुण, पर्याय - उसकी अवस्थायें, **अभेद तथा भेद को,...** अभेद को भी ज्ञान जानता है और गुणभेद तथा पर्याय को भी ज्ञान जानता है। समझ में आया? आहा..हा..!

दृष्टि अभेद द्रव्य पर है। उसमें कोई गुणभेद भी नहीं और पर्यायभेद भी नहीं परन्तु वह दृष्टि सम्यक् हुई, उसके साथ सम्यग्ज्ञान की दशा हुई, वह गुणभेद को भी जानती है, पर्याय को भी जानती है... आहा..हा..! अभेद और भेद दोनों को जानती है। **विविध प्रकार से जानता है।** आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें। अब इसमें कहाँ कहीं... मार्ग यह है, भाई!

वस्तु जो एकरूप सामान्य, अभेद है, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है परन्तु सम्यग्दर्शन का विषय तो अकेला अभेद ही है। बस। परन्तु सम्यग्दर्शन के साथ जो सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह ज्ञान तो आत्मा में अनन्त गुण हैं, उन्हें भी जानता है; पर्याय को भी जानता है; अभेद को भी जानता है; भेद को भी जानता है। आहा..हा..! समझ में आया ? ऐसी बातें अब सुनने को नहीं मिलती, बेचारे क्या करें ? आहा..हा..! **लक्षण...** जाने। आहा..हा..! चैतन्य, उपयोग लक्षण है; जड़, अनुपयोग लक्षण है। आहा..हा..! ऐसा ज्ञान जानता है। ज्ञान लक्षण को जानता है। दृष्टि लक्षण को नहीं देखती। दृष्टि तो द्रव्य / ध्रुव पर है। आहा..हा..! दृष्टि-श्रद्धा-सम्यग्दर्शन-है, वह तो अभेद ध्रुव पर अन्दर पड़ी है। ध्रुव को ग्रहण करके वहाँ एकाकार है। आहा..हा..! उसके साथ ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अनन्त गुण के भेद को भी जाने, पर्याय को जाने, अभेद को भी जाने, भेद को भी जाने। आहा..हा..! **विविध प्रकार से जानता है।** वह तो ज्ञान का स्वभाव है। अब ऐसा उपदेश! इसमें घर से कोई सुनने न आया हो और पूछे कि क्या कहा ? कौन जाने क्या कहते थे कुछ। इसका-उसका। सामान्य पर दृष्टि करना, फिर सामान्य के साथ ज्ञान हो, गुणभेद को दृष्टि देखती नहीं, परन्तु ज्ञान सबको जानता है। युगलजी! महिलायें कदाचित् सुनने न आयी हों। क्या सुना ? कौन जाने ? कुछ कहते थे। अन्दर। ऐसा है और ऐसा है। अरे! भाई! सुन, भाई! आहा..हा..!

अरे रे! दुनिया के उत्साह में तेरी जिन्दगी पाप में गयी, नाथ! अरे! आहा..हा..! 'होंशिड़ा मत होंश न कीजे'। एक सज्झाय आती है। हमने तब सज्झाय पढ़ी थी न। (संवत्) १९६६-६७ के साल की बात है। तुम्हारे जन्म के पहले की बात है। दुकान पर स्वाध्याय (करते थे)। चार सज्झायमाला। श्वेताम्बर की, हों! एक-एक स्वाध्यायमाला में २००-२५० सज्झाय। एक-एक सज्झाय में १०-१५ श्लोक। दुकान पर ऐसी चार मँगायी थी। पढ़ते थे, उसमें यह आया। 'होंशिड़ा मत होंश न कीजे'। ए होंशिड़ा! पर में होंश (उत्साह) मत कर, नाथ! तेरा खून हो जाता है। आहा..हा..! पुत्र का जन्म हुआ और मेरा उत्तराधिकार रहेगा। पैसा मिला और मैं इज्जतदार गिना जाऊँगा। अरे! किसका तुझे उत्साह आता है ? प्रभु! ऐई! शान्तिभाई! क्या है यह ? यह तो सब तुम्हारे शून्य रखे जाते हैं। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, ज्ञान है, वह लक्षण को भी जानता है। दृष्टि तो लक्षण को नहीं देखती। दृष्टि तो अभेद पर है। आहा..हा..! दृष्टि के साथ जो सम्यग्ज्ञान हुआ, वह लक्षण को जानता

है। 'उपयोग लक्षण जीव' अनन्त गुण से जीव को पहिचानना, वह नहीं। क्योंकि अनन्त –अनन्त गुण हैं, उनमें सामान्य अनन्त गुण, विशेष अनन्त गुण हैं। आहा..हा..! तो उनकी पहिचान करने में 'उपयोग लक्षण जीवो' बस। आहा..हा..! यह जानन–देखन जो उपयोग लक्षण है, वह आत्मा है। ऐसा सम्यग्ज्ञान, लक्षण को भी जानता है। आहा..हा..! अभेद को भी जानता है, लक्ष्य को भी जानता है। अरे.. अरे..! ऐसी बातें हैं।

प्रयोजन इत्यादि अपेक्षा से गुणों में भिन्नता है... लक्षण और प्रयोजन आदि से गुण में भिन्नता है। ज्ञान का लक्षण उपयोग, श्रद्धा की प्रतीति इत्यादि प्रत्येक गुण के लक्षण भिन्न हैं। समझ में आया? प्रयोजन भिन्न है। ज्ञान का जानना, श्रद्धा में प्रतीति करना, स्थिरता (चारित्र) में रमणता करना इत्यादि। **इत्यादि अपेक्षा से गुणों में भिन्नता है...** भगवान आत्मा एकरूप द्रव्यदृष्टि से होने पर भी उसमें अनन्त गुण हैं। आहा..हा..! तो अनन्त गुणों में लक्षण और प्रयोजन आदि से भिन्नता है। प्रत्येक गुण के लक्षण और प्रयोजन की भिन्नता है। आहा..हा..! ऐसी बातें कहाँ है! इसमें निवृत्ति कहाँ?

इसलिए यहाँ तो कहा न? जिसे विभाव से छूटना हो और अपनी मुक्ति–आनन्द की प्राप्ति करनी हो, दुःख से छूटना हो और सुख की प्राप्ति करनी हो तो उसे पहले अभेद की दृष्टि करना। आहा..हा..! सभी भेद को लक्ष्य में से छोड़कर। आहा..हा..! परन्तु साथ में जो ज्ञान हुआ, उसका लक्षण अलग चीज़ है। ज्ञान तो स्व अभेद को भी जाने, भेद को भी जाने, प्रयोजन आदि गुण के भेद जाने। वस्तु अपेक्षा से अभेद है। **ऐसा ज्ञान जानता है।** गुणभेद की अपेक्षा से गुण भिन्न है, ऐसा जानता है। वस्तु अपेक्षा से अभेद है। आहाहा! ऐसी बातें।

इस आत्मा की यह पर्याय प्रगट हुई,... यह ज्ञान जानता है। सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन का विषय तो द्रव्य सामान्य अभेद ध्रुव है, परन्तु साथ में जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान जानता है कि **इस आत्मा की यह पर्याय प्रगट हुई,...** सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई, यह ज्ञान जानता है। आहा..हा..! अरे रे! दुनिया को कहाँ से हटना पड़ेगा? भाई! भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ है, वहाँ जाना पड़ेगा, भाई! अन्तर में अन्तरात्मा, अन्तर में अन्तरात्मा (विराजमान है)। बाह्य में राग और पर्याय को छोड़कर... आहा..हा..! अभेद अन्तर आत्मा को पकड़ना... आहा..हा..! यह तो दृष्टि का विषय अकेला अभेद ही है। तथापि दृष्टि के साथ जो ज्ञान सम्यक् हुआ, वह ज्ञान यह पर्याय प्रगट हुई, उसे भी जानता है। सम्यक् प्रगट हुआ, शान्ति प्रगट हुई, ऐसा ज्ञान

जानता है। समझ में आया ? क्योंकि ज्ञान का तो स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है। आहा..हा.. ! दृष्टि का वह स्वभाव नहीं। आहा..हा.. ! दृष्टि का अभेद स्वभाव और ज्ञान के भेद-अभेद स्वभाव सबको जानना, यह तो एक गुण की यह (पर्याय) और दूसरे गुण की पर्याय यह। आहा..हा.. !

परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो यह वस्तु देखी, उसका वर्णन वाणी द्वारा आया। जाना, उससे तो अनन्तवें भाग आया। आहा..हा.. ! वाणी द्वारा कितना आवे। अन्दर अरूपी भगवान है। उसमें यह आया, कि प्रभु ! तू द्रव्यदृष्टि कर। यदि तुझे मुक्ति और दुःख से छूटना हो तो (द्रव्यदृष्टि कर)। इस दृष्टि के विषय में तो अकेला अभेद ही है परन्तु जो सम्यग्दर्शन हुआ, पर्याय उत्पन्न हुई, अनन्त गुण हैं, ऐसा साथ में ज्ञान जानता है। आहा..हा.. ! ऐसा कहीं जयपुर-फयपुर में नहीं सुनने मिले ऐसा नहीं है। हैरान... हैरान के सब मार्ग हैं। जवाहरात के, हीरा के, माणिक और अमुक... अरे ! प्रभु ! यह तेरा हीरा-माणिक अन्दर। चैतन्यरूपी हीरा, जिसके अनन्त गुण के पासा पड़े हैं, प्रभु ! यह दृष्टि तो अनन्त गुण के पासा को भी नहीं देखती। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह हीरा होता है न हीरा ? उसमें पासा होते हैं न ? पहेल-पहेल।

एक बार अस्सी हजार का हीरा देखा था। राजकोट लाये थे। अस्सी हजार का हीरा। इतनी डिब्बी थी। मखमल का वह.. अस्सी हजार का हीरा। अन्दर पासा में जरा निर्मलता कम थी, वरना तो उसकी कीमत बड़ी। बेचरभाई लाये थे एक बार बताने को लाये थे। आहा..हा.. !

यह हीरा भगवान ! अनन्त गुण के पासा से शरीर से भिन्न विराजता है। उसकी डिब्बी होती है। मखमल की डिब्बी होती है। (गुजराती में) डाबली कहते हैं। उसमें गड्डा होता है, उसमें हीरा रखा होता है। ऊपर डिब्बी सरीखी दबती है। इसी प्रकार यह भगवान आत्मा शरीर और कर्म के रजकण, उसके खड्डे में भगवान भिन्न विराजता है। आहा..हा.. ! उसकी मौजूदगी त्रिकाल एकरूप है। पहले उसकी दृष्टि कर। उसके बिना तेरे जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा, भाई ! व्रत-तप करोड़ों-अरबों रुपये का दान की लाख क्रिया कर न तू, उससे कहीं भव का अन्त नहीं है। यह राग है, वह तो संसार है। शुभराग, वह संसार है। आहा..हा.. ! गजब बात है।

ज्ञान **इस आत्मा की यह पर्याय प्रगट हुई, यह सम्यग्दर्शन हुआ,...** ऐसा जानता है। है ? ज्ञान जाने। सम्यग्दर्शन (न जाने)। यह सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसा ज्ञान जानता है। **यह मुनिदशा हुई,...** अन्तर में आनन्द की धारा बही। आहा..हा.. ! ज्ञाता.. ज्ञाता.. ज्ञाता का

अनुभव करते-करते.. आहा..हा..! भगवान हो गया। मुनिदशा हो गयी। आहा..हा..! अन्तर में ज्ञाता दृष्टा के ध्रुव प्रवाह में रमते-रमते.. आहा..हा..! मुनिदशा हुई, ऐसा ज्ञान जानता है। सम्यग्दर्शन का विषय... मुनिदशा और समकित की पर्याय (नहीं है)। सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं। अरे! ऐसी बातें। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन का विषय अभेद चिदानन्द प्रभु! आहा..हा..! जो शरीर से, लक्ष्मी से तो भिन्न, राग से भिन्न, पर्याय से भिन्न, गुण-भेद से भिन्न है। आहा..हा..! यहाँ तक जाना इसे। वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। आहा..हा..! ऐसी दृष्टि होने पर जो दृष्टि उत्पन्न हुई, उसे सम्यग्दर्शन नहीं जानता, परन्तु साथ में ज्ञान हुआ, वह जानता है। अरे.. अरे! ऐसी बात है। समझ में आया?

यह मुनिदशा हुई, यह केवलज्ञान हुआ.... यह ज्ञान जानता है। **इस प्रकार सब महिमावन्त...** ऐसी सब महिमावन्त पर्यायें। सम्यग्दर्शन, मुनिदशा, केवलज्ञान। **इस प्रकार सब महिमावन्त पर्यायों को तथा अन्य सर्व पर्यायों को ज्ञान जानता है।** आहा..हा..! अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें एक समय में है, उन सबको ज्ञान जानता है। ऐसी बात है। **ऐसा होने पर भी शुद्ध दृष्टि (सामान्य के सिवा) किसी प्रकार में नहीं रुकती।** ऐसी पर्याय में दृष्टि नहीं रुकती। ज्ञान में सब ज्ञात होता है, तथापि दृष्टि तो सामान्य पर ही पड़ी है। बस! आहा..हा..! यह सामान्य क्या और विशेष क्या? कहीं इसकी बहियों में नहीं आया होगा। वाड़ा में कहीं नहीं मिलता। सामान्य अर्थात् एकरूप रहनेवाली चीज़ अन्दर त्रिकाल, उसे यहाँ सामान्य और दृष्टि का विषय कहते हैं। भाषा तो सादी है। आहा..हा..! अरे रे! इसने कभी दरकार नहीं की। इसकी स्वयं की दया नहीं आयी। यह लोग नहीं कहते? छह काय की दया पालो। परन्तु छह काय में तू एक है या नहीं। आहा..हा..! पहले तू तेरी दया पाल तो सही।

मुमुक्षु : दूसरे की तो पल जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे की तो कहाँ बात। राग न हो, इसलिए फिर पर की दया सहज पल जाती है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आ गया है न? सबेरे अपने आया था। 'जीव रखम' जीव रक्षा कर सकता नहीं। परन्तु सहज राग का अभाव और स्वभावसन्मुख की दशा (हो), वहाँ पर की दया सहज पल जाती है। उसे पालना नहीं पड़ता। आहा..हा..! ऐसी बातें। क्या करे?

ऐसा होने पर भी शुद्ध दृष्टि (सामान्य के सिवा) किसी प्रकार में नहीं रुकती। आहा..हा.. ! दृष्टि में तो त्रिकाली ज्ञायकभाव जो पड़ा है, वह कायम रहता है। फिर साथ में ज्ञान हुआ, वह सबको जानता है। समझ में आया ? **साधक जीव को भूमिकानुसार....** चौथी, पाँचवीं, छठवीं (गुणस्थान की) भूमिकानुसार **देव-गुरु की महिमा के,....** विकल्प आते हैं। देव-गुरु की महिमा का विकल्प आता है। वे भाई गये लगते हैं ? तारणपंथी थे वे। नहीं। उन्होंने जरा प्रश्न किया था। वह आया था न ? भाई ! सम्यग्दृष्टि को ही विकल्प का व्यवहार पूजा, प्रतिमा की भक्ति का होता है।

सम्यग्दर्शन हुआ। युगलजी ! हमारे सम्प्रदाय में एक प्रश्न हुआ था। एक स्थानकवासी के सेठ थे। वे कहते थे कि भाई ! मिथ्यादृष्टि है, तब तक प्रतिमा की पूजा है, परन्तु सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् भगवान की प्रतिमा की पूजा नहीं; तो मैंने उनसे कहा, उनसे नहीं परन्तु दूसरों को कहा। वे तो अभिमानी थे। देखो भाई ! सम्यग्दर्शन हुआ, त्रिकाली ज्ञायक के भान के साथ ज्ञान हुआ। यह आया न ज्ञान, भावश्रुत। भावश्रुत ज्ञान हुआ, उसके दो भेद। एक निश्चय और व्यवहार। श्रुतज्ञान के दो नय—निश्चय और व्यवहार; अत: जिसे व्यवहारनय है... सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसे निश्चय और व्यवहारनय है और उस व्यवहारनयवाले को प्रतिमाजी के सामने ज्ञेय का नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव भेद, यह निक्षेप है, वह ज्ञान का विषय है, वह व्यवहारनय का विषय है; अत: उसे ही प्रतिमा यथार्थ है। युगलजी ! है व्यवहार परन्तु उसे राग आता है तो ऐसा ही आता है।

एकदम आत्मा का ध्यान करके निर्विकल्प होकर अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करे, उसे तो कोई व्यवहार नहीं है। वह व्यवहार है, परन्तु अन्दर आत्मा का ध्यान और सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ। अभी केवलज्ञान हुआ नहीं। लाखों वर्ष रहनेवाले हैं तो उन्हें तीन लोक के नाथ की प्रतिमा, 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' का शुभभाव आये बिना रहेगा नहीं। व्यवहार है और व्यवहार का विषय वह है।

विशेष कहेंगे.......... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र शुक्ल-१२, बुधवार, दिनाङ्क १३-०९-१९७८
वचनामृत-२३७ से २४१ प्रवचन-९३

२३७ वाँ बोल है।

साधक आत्मा को... क्या कहते हैं? अपना शुद्ध स्वरूप, पवित्र की दृष्टि और साधकपना प्रगट हुआ है। आहा..हा..! राग से भिन्न स्वभावभाव वस्तु की द्रव्यदृष्टि हुई। द्रव्यदृष्टि के दो अर्थ हैं। एक द्रव्य जिसे निश्चयनय के विषय को द्रव्य कहते हैं और एक द्रव्य ध्रुव और पर्याय दो को द्रव्य कहते हैं। क्या कहा? समझ में आया? द्रव्य के दो अर्थ हैं। एक द्रव्य, जो यह द्रव्यदृष्टि है, वह द्रव्य तो ध्रुव एक अंश है। आहा..हा..! और जो त्रिकाली द्रव्य तथा वर्तमान पर्याय दोनों को द्रव्य कहते हैं, वह प्रमाण का द्रव्य है। आहा..हा..! ऐसी बात है। तत्त्वार्थसार में बहुत वर्ष पहले विस्तार से व्याख्यान हो गया है। (संवत्) १९९८ से पहले।

द्रव्यदृष्टि अर्थात् वर्तमान पर्याय है, वह दृष्टि, परन्तु उसका विषय जो त्रिकाली ज्ञायक द्रव्य है, वह द्रव्य। वह निश्चयनय का, एक अंश वह द्रव्य है। पर्याय अंश रह गया। पर्याय अंश और द्रव्य अंश दो मिलकर ज्ञान करे तो उसे प्रमाणज्ञान कहते हैं। इस कारण से प्रमाणज्ञान है, वह वन्दनीय, पूज्य नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? क्योंकि उसमें पर्याय का निषेध नहीं आता। और एक समय में भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनन्त गुण के पिण्डरूप एक द्रव्य ध्रुव, वह निश्चयनय का विषय है। उसकी दृष्टि (होवे), उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसी बात है। समझ में आया? और वह निश्चयदृष्टि पूज्य है। आहा..हा..! साथ में पर्याय का ज्ञान करना, वह प्रमाण हुआ। एक द्रव्य और एक पर्याय – दो हुए। दो हुए तो वह प्रमाणज्ञान वास्तव में तो वह व्यवहारनय का विषय हो गया। अरे! सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग... आहा..हा..! ऐसा अवसर मिला। इसे देखकर तो अन्दर इतना लगता है कि आहा..हा..! बनिये के घर में आये, जवान लड़के, छोटा तो रूपवान है। गूँगा

और बहरा, तथापि होशियार है, हों ! कहते हैं । अरे रे ! यह स्थिति ! यह वस्तु प्राप्त करना, आहा..हा.. ! बहुत दुर्लभ, भाई ! दुनिया में कहीं सुखबुद्धि नहीं, भाई ! आहा..हा.. ! इस पर्याय में लक्ष्य करने से राग होता है, वह दुःख है और पाँच इन्द्रियों के विषयों में... विषय का कहते से याद आ गये । यह पैसा-बैसा का सब ढेर । दो-ढाई करोड़ रुपये, पोटले के पोटले ऊपर भरे हैं । आहा..हा.. !

मुमुक्षु : किसी को पैसे हो ही नहीं सकते - ऐसा आप कहते हो ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे इसके थे ही कब ? मानता है । आहा..हा.. ! ऐसी चीज़ प्रभु अन्दर है । जिसमें दया, दान, व्रतादि राग का भाव आवे, वह भी अपनी चीज़ नहीं । आहा.. ! अपनी हो तो नाश हो नहीं और नाश होता है तो अपनी नहीं । आहा..हा.. ! इन शरीर, वाणी, लक्ष्मी का क्या करना ? ये तो सब नाशवान परपदार्थ हैं । आहा..हा.. !

यहाँ तो कहते हैं कि 'बिजली की चमक में मोती पिरो लो ।' भाई ! बिजली की चमक आयी हो और मोती पिरो लो, नहीं तो (चमक तो) चली जायेगी । यह अवसर... आहा..हा.. ! अन्तर भगवान पूर्णानन्द का स्वरूप जो राग से भिन्न है, उसकी दृष्टि करने से जो आनन्द आवे... आहा..हा.. ! वह आनन्द कहीं इन्द्र के इन्द्रासन में नहीं, वह राजा और सेठ के महल के मकान में मानता है कि हम सुखी हैं । वह सुखी नहीं, दुःखी है । आहा..हा.. !

वह साधक जीव... आहा..हा.. ! वह साधक जीव । अपने चिदानन्दस्वरूप की प्रतीति (हुई है) । ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाकर जो प्रतीति अन्दर हुई, वह सम्यग्दर्शन है, उसे साधक जीव कहते हैं । आहा..हा.. ! समझ में आया ? **साधक जीव को भूमिकानुसार...** चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान में **देव-गुरु की महिमा के,...** विकल्प आता है । आहा..हा.. ! **देव-गुरु की महिमा के, श्रुतचिन्तवन के,...** आहा..हा.. ! श्रुत को चिन्तवन करे, यह भी एक विकल्प / राग है । आहा..हा.. ! समझ में आया ? **अणुव्रत-महाव्रत के इत्यादि विकल्प होते हैं,...** साधक जीव को । **परन्तु वे ज्ञायकपरिणति को भाररूप हैं...** आहा..हा.. ! जाननस्वभाव की भानदशा हुई, तो उस जाननस्वभाव में देव-गुरु-शास्त्र की महिमा के विकल्प आते हैं, परन्तु ज्ञायकपरिणति में वे बोझरूप हैं । आहा..हा.. ! समझ में आया ? वह अन्दर भार है । पैसा-बैसा के बोझे के, दुकान का, धन्धे का ठिकाना न हो, उसके बोझ का पार न हो । आहा..हा.. !

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय ज्ञान के नूर के तेज के पूर... आहा..हा..! उसके सन्मुख होकर निमित्त, राग और पर्याय से विमुख होकर.. अस्ति-नास्ति (ली है)। आहा..हा..! जो अन्दर सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, वह साधक जीव है। आहा..हा..! समझ में आया? उसे यह विकल्प आता है परन्तु उस ज्ञायकपरिणति को.. आहा..हा..! जाननशक्ति की जो व्यक्तता साधक को हुई... आहा..हा..! शुद्धपरिणति (हुई), उसमें यह विकल्प बोझ लगता है। आहा..हा..! यह तो (अभी तो) कहते हैं कि ऐसे भाव आवें, वह साधक है। उससे आत्मा की निश्चय दशा प्रगट होती है। प्रभु! बहुत अन्तर है, भाई! समझ में आया? आहा..हा..!

यह आत्मा चैतन्यस्वरूप शुद्ध पवित्र प्रभु! राग से भिन्न होकर भेदज्ञान में स्वभाव का-अभेद का ज्ञान हुआ। आहा..हा..! तब से वह साधक जीव कहने में आया है। समझ में आया? **साधक जीव को...** आहा..हा..! **भूमिकानुसार...** देव-गुरु-शास्त्र आदि की महिमा और श्रुतचिन्तवन ऐसा इसमें डाला। श्रुत की महिमा न कहकर इसमें श्रुतचिन्तवन डाला है। आहा..हा..! देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ सन्त-मुनि महा और भगवान के कहे हुए सिद्धान्त शास्त्र, उस ओर का विकल्प, चिन्तवन आता है, वह ज्ञायकपरिणति में बोझ है। आहा..हा..! भार है। पवित्र परिणति में अपवित्रता का विकल्प बोझरूप है। आहा..हा..!

निर्जरा अधिकार में तो कहते हैं कि आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना विकल्प आदि-देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा व्रत आदि करो तो करो। क्लेश करो, वह क्लेश है। आहा..हा..! निर्जरा अधिकार में (आता है)। अब उस क्लेश को कारण बनाकर आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है। अरे! प्रभु! बहुत कठिन, भाई! तत्त्व को बहुत विरुद्ध कर दिया है। सन्तों का ऐसा स्पष्ट कथन! वे दिगम्बर सन्त... आहा..हा..! आकाश के स्तम्भ हैं वे। वे तो सर्वज्ञ के-केवलज्ञानी के मार्गानुसारी हैं, प्रभु! आहा..हा..! वे ऐसा कहते हैं, वे सन्त कहते हैं, वह समकिती कहते हैं। आहा..हा..!

भाई! तू धीर होकर सम्यग्ज्ञान की तीक्ष्ण बुद्धि से भगवान को पकड़। ध्रुव ज्ञायक भाव तो पड़ा है न, प्रभु! आहा..हा..! तूने तेरी पर्याय में, उपयोग में राग को पकड़ लिया है। आहा..हा..! वह तो मिथ्यात्वभाव है। उसे छोड़कर अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु.. आहा..हा..! उसे जरा सूक्ष्म बुद्धि करके पकड़ ले। आहा..हा..! ऐसा कहाँ वहाँ तुम्हारे है? पन्द्रह लाख का मकान (मन्दिर) बनाया, इसलिए

धर्म हो गया, ऐसा है ? आहा..हा.. ! पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाया है। बारह लाख के पन्द्रह लाख हो गये हैं। तब बारह लाख कहते थे। परन्तु अभी बहुत शृंगार किया है। नीचे -ऊपर देखकर लोग तो ऐसे (विशिष्टता पाते हैं)। वैद्य आया था वैद्य। नहीं ? कलकत्ता का अपना गांगोली, (वैद्य)। बालब्रह्मचारी है ४९ वर्ष की उम्र, राजकुमार जैसा शरीर और वेदान्ती। यहाँ चार-पाँच बार आ गया। मन्दिर को देखकर एक हजार रुपये दिये परन्तु वह सब क्रिया शुभभाव है, वह धर्म नहीं। आहा..हा.. !

तब (कोई कहे) कि धर्मी को भी ऐसा विकल्प तो आता है। जब तक वीतरागता प्रगट न हो, तब तक साधक जीव को भी यह विकल्प आता है परन्तु यह विकल्प बोझ लगता है। आहा..हा.. ! जैसे पोची चीज़ हो और ऊपर लोहे का मणका रखे। क्या कहते हैं ? रुई पोची हो और लोहे का मणका रखे तो रुई दब जाती है, बहुत बोझ लगता है। आहा..हा.. !

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने साधकस्वभाव से प्रगट किया, तो उसमें रागादि भूमिकानुसार आते तो हैं, परन्तु उस हल्की चीज़ का बोझा लगता है, दबाव लगता है। आहा..हा.. ! ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहा..हा.. ! दिगम्बर सम्प्रदाय में पड़े हैं, उन्हें भी कब खबर थी ! ऐसा मार्ग है, प्रभु ! आहा..हा.. ! वह (विकल्प) बोझरूप लगता है। आहा..हा.. ! है ?

क्योंकि स्वभाव से विरुद्ध हैं। ज्ञानस्वभाव, दर्शनस्वभाव, आनन्दस्वभाव की जो परिणति / पर्याय हुई, उससे तो यह राग विरुद्धस्वभाव है। आहा..हा.. ! **अपूर्ण दशा में वे विकल्प होते हैं;...** जब तक आत्मा में वीतरागता, केवलज्ञान न हो, तब तक ऐसे राग की विकल्प की वृत्ति उठती है। आहा..हा.. ! **स्वरूप में एकाग्र होने पर,...** वही साधक आत्मा जहाँ अन्दर जाता है... आहा..हा.. ! उस विकल्प का नाश होता है। **निर्विकल्प स्वरूप में निवास होने पर,...** आहा..हा.. ! भगवान अनन्त आनन्द का महल, उसमें जहाँ अन्दर निर्विकल्परूप से बसता है.. आहा..हा.. ! **वे सब छूट जाते हैं।** साधक जीव को भी जब निर्विकल्प उपयोग होता है, (तब विकल्प नाश को प्राप्त होते हैं)। आहा..हा.. !

यह तो वे कहते हैं कि श्रावक को शुद्धोपयोग नहीं होता - शास्त्र में ऐसा पाठ है। वह शुद्धोपयोग क्या ? मुनि को जो शुद्धोपयोग होता है, वह नहीं होता। आहा..हा.. ! यहाँ तो जो शुद्धोपयोग.. आहा..हा.. ! शुद्धोपयोग में ही सम्यग्दर्शन होता है और पश्चात् भी जब विकल्प को छोड़कर अन्तर में स्थिर होता है, तब अन्दर शुद्धोपयोग होता है। भले चौथे

गुणस्थान में हो और पाँचवें में हो। आहा..हा..! अरे! मार्ग बापू! जन्म-मरणरहित होने की चीज़ कोई अलौकिक है। समझ में आया? दुर्लभ.. दुर्लभ वस्तु हो गयी है, परन्तु अशक्य नहीं है। अपनी चीज़ है, उसे प्राप्त करना, (वह तो हो सकता है)। परमाणु और राग को अपना करना हो तो नहीं हो सकता। आहा..हा..!

चैतन्य के तेज का पूर बहता है, ध्रुव। आहा..हा..! उसे पकड़ने से सम्यग्दर्शन अनुभव होने पर, जब तक वीतरागता न हो, तब तक अणुव्रत, महाव्रत, भक्ति के ऐसे विकल्प आते हैं। समझ में आया? परन्तु जब उपयोग निर्विकल्प में जाता है, अन्दर जम जाता है... आहा..हा..! तब विकल्प छूट जाते हैं। **पूर्ण वीतराग दशा होने पर...** और अन्दर में... आहा..हा..! जलहल ज्योति चैतन्य भगवान में जब अन्तर में रमते-रमते पूर्ण वीतरागता हुई... आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द में रमते-रमते वीतरागता हुई,... वह राग की क्रिया से वीतरागता नहीं होती। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है।

वीतराग दशा होने पर सर्व प्रकार के राग का क्षय होता है। क्षय हो जाता है। इस सम्यग्दर्शन में, साधकपने में जब विकल्प आया, तब बोझरूप लगा, परन्तु जब अन्तर में जाता है, तब वह विकल्प छूट जाता है, क्षय नहीं होता। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को ऐसा लगे। कहाँ गये मोहनलालजी? पीछे हैं। समझ में आया? मोहनलालजी कहते हैं न कि भाई! यह स्पष्टीकरण अभी सुनने में आता है। वहाँ कलकत्ता में अपने मुमुक्षुओं में प्रमुख है। आहा..हा..! मार्ग तो यह है, भाई! ज्ञानचन्दजी वहाँ गये हैं। कलकत्ता वांचन करने गये हैं। उनका पत्र आया है। यहाँ ऐसा कि बहुत अच्छा चलता है। विरोध कुछ है नहीं। अरे! प्रभु! विरोध कहाँ? आहा..हा..! पहले सुनने में प्रेम तो होना चाहिए। आहा..हा..! मार्ग यह है। लिखा है, भाई के प्रति पत्र है मोहनलालजी के प्रति। यहाँ ऐसा कि अच्छा चलता है। विरोध कुछ नहीं है। आहा..हा..!

—ऐसी साधकदशा प्रगट करनेयोग्य है। आहा..हा..! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप को जागृत करके आनन्द की दशा प्रगट करनेयोग्य है और पश्चात् जो विकल्प आता है, उसे छोड़कर निर्विकल्पदशा होती है। पश्चात् वीतरागता होने पर विकल्प का क्षय हो जाता है। आहा..हा..! उसमें यह व्रत पालना, ऐसा करने से कल्याण हो, यह बात तो कहीं आयी नहीं इसमें? आहा..हा..!

समाधिशतक में तो ऐसा आता है कि अव्रत को छोड़कर, धूप के ताप को छोड़कर

वृक्ष की छाया में जा। वृक्ष होता है न? धूप में चलता है, तो वृक्ष के नीचे जा, छाया आयेगी। अव्रत में रहेगा तो ताप लगेगा। परन्तु यह तो किस अपेक्षा से कहा है? अन्तर में जहाँ आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि हुई है, अन्दर में थोड़ी विशेष स्थिरता हुई, तब उसे व्रत का विकल्प आता है, तब वह छाया में है, ऐसा कहा जाता है। आहा..हा..! अकेला व्रत का विकल्प आया और स्थिरता चौथे गुणस्थान की अपेक्षा आगे बढ़ी नहीं। यह नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि अव्रत की अपेक्षा तो (अच्छा है न) परन्तु वह व्रत का जो विकल्प है, वह अन्दर में चौथे गुणस्थान की अपेक्षा विशेष आश्रय लिया और विशेष शान्ति है तो उस विकल्प को उपचार से छाया कहने में आता है। वास्तव में तो शान्ति प्रगट हुई, वह छाया है। आहा..हा..! समझ में आया? यह २३७ वाँ बोल हुआ।

यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने द्रव्य को तीक्ष्ण बुद्धि से पहिचान ले। यदि द्रव्य तेरे हाथ में आ गया तो तुझे मुक्ति की पर्याय सहज ही प्राप्त हो जायेगी॥२३८॥

२३८वाँ बोल।

यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो... यह शर्त, यह शर्त। **यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो...** शर्त कहते हैं न? **तो अपने द्रव्य को तीक्ष्ण बुद्धि से पहिचान ले।** आहा..हा..! **यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो...** आहा..हा..! आठ वर्ष की बालिका भी जब सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है... आहा..हा..! कन्या और तिर्यंच। आहा..हा..! हजार-हजार योजन के मच्छ अन्तर में जाते हैं। आहा..हा..! **परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने द्रव्य को तीक्ष्ण बुद्धि से पहिचान ले।** ज्ञान की पर्याय में उसे पकड़ ले। ऐसा सूक्ष्म ज्ञान कर ले। आहा..हा..! समझ में आया?

यदि द्रव्य तेरे हाथ में आ गया... यह द्रव्य कौन सा? त्रिकाली ध्रुव। नय का विषय अंश, आहा..हा..! यह ध्रुव। ऐसे तो तीन अंश की अपेक्षा से ध्रुव को भी अंश कहा है। प्रवचनसार में पर्याय के भेद में (ऐसा लिया है)। परन्तु यहाँ तो द्रव्य जो त्रिकाली वस्तु है, हो भले दो अंश का तीसरा अंश, उत्पाद-व्यय-ध्रुव, इस अपेक्षा से, परन्तु वह ध्रुव है,

उसे यहाँ द्रव्य कहते हैं। कायम रहनेवाली चीज़। जिसकी पर्याय में मलिनता हो, निर्मलता कम हो या पूर्ण निर्मल हो; वस्तु तो ऐसी की ऐसी त्रिकाल निर्मलानन्द पड़ी है। उसे-ध्रुव को यहाँ द्रव्य कहते हैं। आहा..हा..!

द्रव्य को सूक्ष्म उपयोग करके... आहा..हा..! अन्तरसन्मुख होकर पहिचान ले। **यदि द्रव्य तेरे हाथ में आ गया...** आहा..हा..! उस पर्याय में द्रव्य आ गया... आ गया, इसका अर्थ (यह कि) उसका भान हुआ। पर्याय में द्रव्य आता नहीं परन्तु पर्याय में द्रव्य की जितनी सामर्थ्य है, वह ज्ञान की पर्याय में उतनी सामर्थ्य आयी और प्रतीति हो गयी। ओहो..! यह भगवान पूर्णानन्द प्रभु है! आहा..हा..! ऐसे तेरा आत्मा तेरे हाथ में-पर्याय में आ गया। आहा..हा..! **द्रव्य तेरे हाथ में आ गया तो तुझे मुक्ति की पर्याय सहज ही प्राप्त हो जायगी।** आहा..हा..! मुक्तस्वरूप का अनुभव करने से... आहा..हा..! **मुक्ति की पर्याय सहज ही प्राप्त हो जायगी।** आहा..हा..! समझ में आया? २३८ (बोल पूरा हुआ)।

शुभ का व्यवहार भी असार है, उसमें रुकने जैसा नहीं है। कोई मनुष्य नगर का ध्येय बनाकर चलने लगे तो बीच-बीच में ग्राम, खेत, वृक्षादि सब आते हैं, परन्तु वह सब छोड़ता जाता है; उसी प्रकार साधक को यह शुभादि का व्यवहार बीच में आता है परन्तु साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है। इसलिए वह व्यवहार को छोड़ता हुआ पूर्ण शुद्धात्मस्वरूप में ही पहुँच जाता है॥२३९॥

२३९, **शुभ का व्यवहार भी असार है,...** देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि शुभभाव, वह भी असार है। आहा..हा..! **उसमें रुकने जैसा नहीं है।** उस शुभभाव में रुकनेयोग्य नहीं है, वहाँ अटकनेयोग्य नहीं है। आहा..हा..! **कोई मनुष्य नगर का ध्येय बनाकर...** दृष्टान्त देते हैं। **कोई मनुष्य नगर का ध्येय बनाकर...** भाई! यहाँ राजकोट जाना है। **चलने लगे तो बीच-बीच में ग्राम, खेत, वृक्षादि सब आते हैं, परन्तु वह सब छोड़ता जाता है;...** आहा..हा..! जिस गाँव में जाना है, उसका ध्येय बनाकर चला। बीच में गाँव, नगर, इत्यादि सब आते हैं, परन्तु उन्हें छोड़ देता है या वहाँ रुकता है? आहा..हा..! इसी प्रकार **साधक को यह शुभादि का व्यवहार...** आहा..हा..! शुभादि का व्यवहार अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र, वह परद्रव्य, उसकी सन्मुखता की भक्ति का भाव, वह सब शुभराग है। आहा..हा..! ऐसी बात। **यह शुभादि का व्यवहार बीच में आता है परन्तु साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है।**

आहा..हा.. ! पहुँचना तो शुद्धात्मा की पूर्ण दशा में पहुँचना है। आहा..हा.. ! भाषा तो सरल और सादी है। कल गोधरा से एक पत्र आया है। आहा..हा.. ! बहिनश्री के वचन ऐसे सरल और... क्या कहा ? सरल और सादा, ऐसा कुछ (लिखा है)। सादी और सरल भाषा में... आहा..हा.. ! एक व्यक्ति का तो ऐसा पत्र आया है कि आत्मधर्म का पढ़कर आत्मा चैतन्य के नूर का पूर... आहा..हा.. ! वह पढ़कर ऐसा आनन्द हुआ कि क्या कहें ! समझ में आया ? वह आत्मधर्म।

यहाँ कहते हैं आहा..हा.. ! **साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है।** वर्तमान शुद्धता प्रगट हुई, वह कहीं साध्य नहीं है। इसलिए पूर्ण शुद्धात्मा कहा। साधकदशा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ, वहाँ शुद्धता तो प्रगट हुई। शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ, शुद्ध परिणति हुई, परन्तु वह पूर्ण साध्य नहीं है। आहा..हा.. ! **उसी प्रकार साधक को यह शुभादि का व्यवहार बीच में आता है परन्तु साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा ही है।** 'ही है'। साधकपना प्रगट हुआ, वह साध्य नहीं है। साध्य तो पूर्ण शुद्धात्मा है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं। आहा..हा.. !

यहाँ तो दो-पाँच करोड़ रुपये मिलें, लोग आदर से बुलावें तो इसे हूँक (जोश) चढ़ जाती है, अन्दर से हूँक चढ़ जाती है। मुझे दूसरे करोड़पति कहते हैं। आहा..हा.. ! क्या है परन्तु प्रभु तुझे ? यह तुझे किसका सन्निपात लगा। आहा..हा.. ! मेरा प्रसार और विस्तार देखकर, मेरे पास पूँजी भले पचास-चालीस लाख की हो परन्तु लोग करोड़पति कहते हैं। अन्दर प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहा..हा.. !

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु ! जिसे साधकपना प्रगट हुआ, उसमें कोई रागादि आते हैं तो भी वहाँ रुकता नहीं, वहाँ हर्ष नहीं, वहाँ उत्साह नहीं; आहा..हा.. ! खेद है। आहा..हा.. ! **इसलिए वह व्यवहार को छोड़ता हुआ पूर्ण शुद्धात्मस्वरूप में ही पहुँच जाता है।** आहा..हा.. ! यह तो लोग कहते हैं न व्यवहार... व्यवहार... परन्तु व्यवहार किसे होता है ? जिसे निश्चयदृष्टि सम्यक् हुई, अनुभव हुआ, उसे जो राग आता है, उसे व्यवहार कहते हैं और वह व्यवहार भी दुःखरूप है। आहा..हा.. ! आता है। पूर्ण वीतरागता न हो, (तब तक आता है), परन्तु है तो छोड़नेयोग्य और हेय है। आहा..हा.. !

भगवान ऐसा कहते हैं कि '**परदव्वादो दुग्गई**' मोक्षपाहुड़ की सोलहवीं गाथा। हम तुझसे परद्रव्य हैं, प्रभु ! वीतराग ऐसा कहे। वीतराग और वीतराग की वाणी, वह ऐसा

कहती है कि हम तुझसे परद्रव्य हैं। हमारे प्रति तेरा लक्ष्य जायेगा तो तेरी दुर्गति होगी। अर र! दुर्गति अर्थात् चैतन्य की गति नहीं होगी। भले राग से कोई स्वर्ग मिले परन्तु वह दुर्गति है। मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा में है। आहा..हा..! अरे रे! ऐसा मार्ग वीतराग का। वीतराग ऐसा कहे, उनकी वाणी ऐसा कहे, शास्त्र ऐसा कहे। शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। शास्त्र के पन्ने, वे परद्रव्य हैं। आहा..हा..! वहाँ तेरा लक्ष्य जायेगा तो वह तेरे चैतन्य की गति नहीं है। वह तो दुर्गति, राग वह दुर्गति है। आहा..हा..! वीतराग की पुकार है। यह २३९ (बोल पूरा हुआ)।

अरे जीव! अनन्त-अनन्त काल बीत गया, तूने पर का तो कभी कुछ किया ही नहीं; अन्तर में शुभाशुभ विकल्प करके जन्म-मरण किये हैं। अब अनन्त गुणों का पिण्ड ऐसा जो निज शुद्धात्मा, उसे बराबर समझकर, उसी में तीक्ष्ण दृष्टि करके, प्रयाण कर; उसी का श्रद्धान, उसकी अनुभूति, उसी में विश्राम कर॥२४०॥

अरे जीव! आहा..हा..! अरे ओ जीव! **अनन्त-अनन्त काल बीत गया,...** प्रभु! **तूने पर का तो कभी कुछ किया ही नहीं;...** आहा..हा..! स्त्री, कुटुम्ब, देश, शरीर, वाणी, मन का तो कभी तूने कुछ किया ही नहीं क्योंकि कर सकता ही नहीं। आहा..हा..! **अनन्त-अनन्त काल बीत गया, तूने पर का तो...** पर अर्थात् तेरे द्रव्य के अतिरिक्त अनन्त जो परद्रव्य हैं, परमाणु से लेकर स्कन्ध आदि और दूसरे आत्मा एक निगोद से लेकर परमात्मा, उनका कभी कुछ किया ही नहीं। आहा..हा..! मन्दिर भी तूने कभी स्थापित किया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अनन्त काल व्यतीत हुआ। शास्त्र की रचना तूने कभी की ही नहीं क्योंकि आत्मा, परद्रव्य की क्रिया कैसे कर सकता है? आहा..हा..!

अपने द्रव्य में विपरीत या अविपरीत करे। परद्रव्य में कुछ नहीं कर सकता। शास्त्र रचना... आहा..हा..! और शास्त्र की दीपक से पूजा करना, वह क्रिया तो तूने कभी की ही नहीं। वह तेरी क्रिया ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? स्वाहा (बोले), वह तो वाणी है। वह वाणी की क्रिया तो तूने कभी की ही नहीं। अनन्त काल में कभी नहीं की। आहा..हा..! **तूने पर का तो कभी...** किसी समय **कुछ...** अर्थात् कुछ भी **किया ही नहीं;...**

आहा..हा.. ! एक बार इन्दौर में पण्डित एकत्रित होकर भाषा करते थे (कि) परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर नहीं। यह सोनगढ़ के सामने (विरोध) करने को (ऐसा कहते थे)। अरे प्रभु ! क्या करता है तू यह ?

एक रजकण, एक तिनके के दो टुकड़े करना, वह आत्मा नहीं कर सकता। यह अंगुली हिलाना, वह आत्मा नहीं कर सकता। भाषा-होंठ हिले, वह आत्मा नहीं कर सकता। आहा..हा.. ! अज्ञानी को भी अनन्त काल व्यतीत हुआ, परन्तु तेरे द्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य का तो कभी कुछ किया ही नहीं, किया ही नहीं। आहा..हा.. ! यह लड़के-बड़के को दवा कराना और यह सब किया नहीं ? आहा..हा.. !

अन्तर में शुभाशुभ विकल्प करके... आहा..हा.. ! तूने किया क्या ? प्रभु ! शुभ और अशुभराग करके भव व्यतीत किया। आहा..हा.. ! ठीक है यह ? जवाहरात का धन्धा कभी कर नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। अज्ञानभाव से भी नहीं कर सकता। वह तो पर की क्रिया है। यह पैसा लेने-देने की क्रिया, वह तो जड़ की है, तो लेने-देने की क्रिया आत्मा ने कभी नहीं की। अनन्त काल व्यतीत हुआ परन्तु वह क्रिया तो कभी की ही नहीं। नहीं की, इसलिए करने योग्य है, ऐसा नहीं, हों ! कभी नहीं की तो फिर करनेयोग्य है या नहीं ? यहाँ तो दूसरी बात है। ऐसी बात नहीं है। आहा..हा.. ! तेरा भगवान आत्मा, तेरे में उल्टी-सुल्टी दशा करे और यहाँ तो अनादि काल से तूने विपरीत शुभाशुभभाव किया है। पर की दया पालना, व्रत करना, भगवान की स्थापना करना, मन्दिर बनाना, यह आत्मा ने कभी नहीं किया। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : समाचार-पत्र में आता है कि ये लोग बहुत मन्दिर स्थापित करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह सब बातें हैं। यह तो यहाँ एक गरासिया कहता था, नहीं ? पहले था। बेचारा गुजर गया। यहाँ तुम आये, उसके बाद यह सब तुम्हारे कारण हुआ। (हमने) कहा, भाई ! यह सब कहो, यह सब हुआ है उसके कारण, आत्मा से कुछ नहीं। यहाँ तो भैंसा-पाड़ा बैठते थे। अभी करोड़ों रुपये डलकर बड़े बंगले, २६-२६ लाख के (बन गये हैं)। कौन करे ? प्रभु ! तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : जंगल में मंगल हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जंगल में मंगल कहते हैं। यह तो बाह्य परद्रव्य का कौन करे ?

भाई ! जिस समय जड़ की, स्कन्ध की जो अवस्था होनेवाली होती है, वह होती है। वह आत्मा कर नहीं सकता। आहा..हा.. ! भगवान की प्रतिमा उठाकर यहाँ स्थापना करो, शास्त्र बराबर बनाकर इसकी स्थापना करो। यह कभी कर नहीं सकता। आहा..हा.. ! तब किया क्या ? अन्तर में शुभाशुभ विकल्प करके... आहा..हा.. ! शुभ और अशुभ, प्रशस्त और अप्रशस्त राग करके जन्म-मरण किया है। पर का किया, इसलिए जन्म-मरण करता है, ऐसा नहीं है। पर का तो कुछ कर नहीं सकता। आहा..हा.. !

शुभ और अशुभभाव अन्तर में तेरी वस्तु की पर्याय में... आहा..हा.. ! **करके जन्म-मरण किये हैं।** ओहो..हो.. ! ये निगोद के भव, नरक के भव, ये शुभाशुभभाव से स्वर्ग के भव किये। ये शुभाशुभभाव तूने किये, इनसे जन्म-मरण हुए। आहा..हा.. ! **अब अनन्त गुणों का पिण्ड...** भगवान ! बात ऐसी है कि अनादि से एक समय की पर्याय जो है, उसमें पूरा व्यापार है। साधु हुआ, दिगम्बर हुआ तो भी पर्यायदृष्टि में उसका लक्ष्य है, परन्तु अन्दर में पर्याय के पीछे पूरा तत्त्व, वस्तु पड़ी है... आहा..हा.. ! पूर्णानन्द का नाथ, प्रभु ! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, एक समय की पर्याय के समीप में पड़ा है, उस पर नजर नहीं की। समझ में आया ?

जो वर्तमान पर्याय में-अवस्था में शुभाशुभभाव किये तो पर्याय पर दृष्टि रही। आहा..हा.. ! परन्तु वह पर्याय-एक समय की अवस्था जिसकी है, वह जो द्रव्य है, (उसमें) सब माल है। पर्याय है, वह तो व्यवहार आत्मा है, अभूतार्थ आत्मा है। त्रिकाली भगवान ऐसा वस्तु... वस्तु... वस्तु... चैतन्य का बड़ा महल... आहा..हा.. ! अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड सागर प्रभु, उसका तूने लक्ष्य नहीं किया, प्रभु ! आहा..हा.. ! उसे तूने ध्यान में ध्येय नहीं बनाया। आहा..हा.. !

अनन्त गुणों का पिण्ड ऐसा जो निज शुद्धात्मा... देखो ! निज शुद्धात्मा। भगवान का आत्मा नहीं। भगवान का आत्मा भगवान के पास रहा। **निज शुद्धात्मा, उसे बराबर समझकर,...** आहा..हा.. ! पहले आत्मा जैसा है, वैसा पहिचान कर, **उसी में तीक्ष्ण दृष्टि करके,...** आहा..हा.. ! सूक्ष्म उपयोग सन्मुख करके **प्रयाण कर;...** रास्ता ले। प्रयाण-गति कर, गति। प्रयाण करते हैं न ? कि यह प्रयाण किया। चलते हैं। आहा..हा.. ! ऐसी बात है। आहा..हा.. ! सम्प्रदाय के व्यवहार के निमित्त के आग्रहियों को तो ऐसी बात लगती है

कि यह क्या कहते हैं? पागल जैसी बातें (करते हैं) भाई! यह तो ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..!

अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्ड, अनन्त-अनन्त गुणों का गोदाम भगवान... अनन्त-अनन्त शक्ति का संग्रहालय, संग्रह का आलय अर्थात् स्थान। अनन्त-अनन्त स्वभाव का सागर, प्रभु! आहा..हा..! **उसे बराबर समझकर, उसी में तीक्ष्ण दृष्टि करके, प्रयाण कर;...** रास्ता ले। आहा..हा..! अगास, श्रीमद् के आश्रम में गये थे न। घण्टे भर सबने व्याख्यान सुना। फिर एक मारवाड़ी आया। यह बात (बराबर है) परन्तु इसका साधन? ऐसा कि यह भक्ति करना, वांचन करना, यह सब साधन। (हमने) कहा - यह साधन (नहीं)। क्योंकि यह तो तुमने अन्दर निश्चय की बात की परन्तु इसका साधन, क्योंकि उसमें वह आता है 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोय' परन्तु वह साधन ही नहीं है। आहा..हा..! राग से भिन्न करके स्वरूप की दृष्टि करना, वह साधन है। प्रज्ञाछैनी करना, वह साधन है। आहा..हा..! ज्ञान की दशा को राग से भिन्न करने से जो भेदज्ञान होता है, वह साधकपना है। रागादि क्रिया है, वह साधकपना है ही नहीं। आहा..हा..!

उसी का श्रद्धान,.... कर। पूर्णानन्द का नाथ, अनन्त गुणों का-अनन्त सम्पदाओं का धनी... आहा..हा..! जिसकी सम्पदा की संख्या का पार नहीं। वे अनन्त गुण कहे न? उसका प्रयाण कर। **उसी का श्रद्धान,...** कर। आहा..हा..! **उसकी अनुभूति,...** उसका अनुभव। चैतन्य अनन्त गुण के पिण्ड को अनुसरण करके आनन्द की अनुभूति करना। आहा..हा..! **उसी में विश्राम कर।** सुखधाम अनन्त... 'सुखधाम अनन्त सुसन्त चही....' आहा..हा..! श्रीमद् का अन्तिम वाक्य है। 'दिन रात रहे तद् ध्यान मही' आहा..! विश्राम-स्थान भगवान आत्मा... अरे रे! शुभाशुभ विकल्प से पार, एक समय की पर्याय से भी पार भगवान पूर्ण है, वहाँ विश्राम ले। तुझे परिभ्रमण की थकान उतार जायेगी। आहा..हा..!

उसी में विश्राम कर। आहा..हा..! २४० (बोल पूरा हुआ।)

ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति! जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द। जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास, वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द ॥२४१ ॥

२४१ वाँ बोल।

ओहो! यह तो भगवान आत्मा! सर्वांग सहजानन्द की मूर्ति! चारों ओर असंख्य प्रदेशी भगवान सहजानन्दस्वभाव के आनन्द की मूर्ति। वे स्वामी नारायण के सहजानन्दस्वामी, वह यहाँ नहीं, हों! एक बार ऐसा हुआ था। सहजानन्दी शुद्धस्वरूपी (आया तो) कहे, सहजानन्दी (कहा) तो वह तो स्वामी नारायण के सहजानन्द? यह बात यहाँ नहीं है। वे तो कल्पित सहजानन्द थे। यह तो आत्मा सहजानन्द की मूर्ति आत्मा। उमराला में यह प्रश्न हुआ था। वे महिलायें बैठी थीं। सेठ की बहू ऊपर सुनती थी कि यह सहजात्म? वह तो स्वामी नारायण में सहजानन्द होते हैं। अपने सहजानन्द! उसकी भी खबर नहीं होती। आहा..हा..!

सहजानन्द की मूर्ति प्रभु, स्वाभाविक आनन्द की मूर्ति अर्थात् स्वरूप। आहा..हा..! जिनप्रतिमा, वीतरागमूर्ति प्रभु! आहा..हा..! अनाकुल आनन्द का स्वरूप मूर्ति। मूर्ति अर्थात् स्वरूप, हों! **जहाँ से देखो....** आहा..हा..! उसे कोई भी मध्य में देखो, कोई भी प्रदेश की पर्याय में देखो... आहा..हा..! **वहाँ आनन्द,...** शक्कर की डली में सर्वांग मिठास है; वैसे भगवान आत्मा में सर्वांग आनन्द है। आहा..हा..! ऐसी बात है। समझ में आया?

जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द। आहा..हा..! तीन बार लिया है। द्रव्य में आनन्द, गुण में आनन्द, पर्याय में आनन्द। समझ में आया? तीन बार आनन्द-आनन्द लिया न? वस्तु है, वह आनन्द है और उसका गुण भी आनन्द है और पर्याय भी आनन्द है। आहा..हा..! ऐसा कठिन लगे, इसलिए फिर लोगों ने मार्ग दूसरा कर डाला। यह भगवान की भक्ति करो और व्रत पालो, अणुव्रत करो, ब्रह्मचर्य पालो... आहा..हा..! यह तो सब राग की क्रिया है, प्रभु! जड़ की क्रिया तो तू कर सकता नहीं, यह तो पहले कहा। शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह तो जड़ की क्रिया है। तेरे भाव में शुभभाव हो कि मैं ब्रह्मचर्य पालूँ, तो वह पुण्य है। समझ में आया? वह कहीं आत्मा नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : करना या नहीं करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना क्या ? यह करना। बीच में विकल्प आता है – ऐसा कहा न ! परन्तु वह दु:खरूप है, छोड़ने योग्य है। उससे कुछ लाभ है, ऐसा नहीं। आहा..हा.. ! अलौकिक मार्ग है, प्रभु ! अलौकिक अर्थात् ? जो लौकिक मानते हैं, उससे भिन्न चीज़ है। लोकोत्तर चीज़ है। आहा..हा.. ! अभी तो ऐसा उपदेश मिलना कठिन हो गया है। आहा..हा.. !

आहा..हा.. ! **जहाँ से देखो वहाँ आनन्द, आनन्द और आनन्द**। आहा..हा.. ! **जैसे मिश्री में सर्वांग मिठास...** मिश्री में सर्वांग मिठास है। ऊपर, नीचे, मध्य में सर्वत्र मिठास ही भरी है। आहा..हा.. ! मिश्री में सर्वत्र मिठास भरी है, वैसे भगवान आत्मा में मात्र आनन्द ही भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द ही पूर्ण भरा हुआ है। आहा..हा.. ! अरे ! ऐसी बात है। पहले ज्ञान में निर्णय तो करे कि मार्ग तो यह है। समझ में आया ? फिर अन्दर प्रयोग करे। परन्तु अभी निर्णय का ठिकाना नहीं, उसे अन्तर प्रयोग होकर सत्य का आश्रय किस प्रकार होगा ? आहा..हा.. ! समझ में आया ?

मिश्री में सर्वांग मिठास, वैसे ही आत्मा में सर्वांग आनन्द। आहा..हा.. ! मिश्री में ऊपर देखो, मध्य में देखो, तल में देखो तो भी मात्र मिठास ही है। भगवान द्रव्य में देखो तो आनन्द, पर्याय में देखो तो आनन्द, गुण में देखो तो आनन्द। आहा..हा.. ! इसके क्षेत्र में देखो तो भी आनन्द। असंख्य प्रदेशी। यह २४१ (बोल पूरा हुआ)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

सच्ची समझ ही विश्राम है

अरे रे ! मुझे कहाँ तक यह जन्म-मरण करने हैं। इस भव-भ्रमण का कहीं अन्त है या नहीं ? इस प्रकार जब तक चौरासी के अवतार का भय नहीं होता, तब तक आत्मा की प्रीति नहीं होती। 'भय बिना प्रीति नहीं' अर्थात् भव-भ्रमण का भय हुए बिना, आत्मा की प्रीति नहीं होती। सच्ची समझ ही विश्राम है। अनन्त काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए कहीं विश्राम प्राप्त नहीं हुआ है। अब सच्ची समझ करना ही आत्मा का विश्राम है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-१

भाद्र शुक्ल-१३, गुरुवार, दिनाङ्क १४-०९-१९७८
वचनामृत-२४२ से २४५ प्रवचन-९४

चैतन्यदेव की ओट ले, उसकी शरण में जा; तेरे सब कर्म टूटकर नष्ट हो जायँगे। चक्रवर्ती मार्ग से निकले तो अपराधी लोग काँप उठते हैं, फिर यह तो तीन लोक का बादशाह—चैतन्यचक्रवर्ती! उसके समक्ष जड़कर्म खड़े ही कैसे रह सकते हैं?२४२॥

२४२ वाँ बोल है। **चैतन्यदेव की ओट ले,...** चैतन्य ज्ञायकस्वरूप की ओट ले। गुजराती भाषा ओथ है। हिन्दी में ओट। आहा..हा..! **उसकी शरण में जा; तेरे सब कर्म टूटकर नष्ट हो जायँगे।** आहा..हा..! **चक्रवर्ती मार्ग से निकले तो अपराधी लोग काँप उठते हैं,...** चक्रवर्ती छह खण्ड साधने निकले तो अपराधी जीव काँप उठते हैं। **फिर यह तो तीन लोक का बादशाह—चैतन्यचक्रवर्ती!** आहा..हा..! पूर्णानन्द का नाथ चैतन्य चक्रवर्ती, उसकी दृष्टि और अनुभव हुआ, वह चैतन्यचक्रवर्ती जहाँ निकले... आहा..हा..! **उसके समक्ष जड़कर्म खड़े ही कैसे रह सकते हैं?** ऐसी बात है। जड़कर्म तो निमित्त से कथन है। बाकी अशुद्धता वहाँ कैसे रह सकती है? आहा..हा..!

चैतन्य चक्रवर्ती का अन्तर में जहाँ शरण लिया, तो उस चैतन्य चक्रवर्ती की वीतराग परिणति हुई, वहाँ अशुद्धता (अशुद्धपना) काँपती है, चली जाती है। आहा..हा..! कर्म नाश को प्राप्त होते हैं, यह तो निमित्त से कथन है। कर्म तो जड़ हैं। जड़ को जाना या रहना, वह तो उसकी पर्याय के आधार से है। समझ में आया?

ज्ञायक आत्मा नित्य एवं अभेद है; दृष्टि के विषयभूत ऐसे उसके स्वरूप में अनित्य शुद्धाशुद्ध पर्यायें या गुणभेद कुछ हैं ही नहीं। प्रयोजन की सिद्धि के लिये यही परमार्थ-आत्मा है। उसी के आश्रय से धर्म प्रगट होता है ॥२४३॥

२४३ वाँ बोल। **ज्ञायक आत्मा नित्य एवं अभेद है;...** भगवान आत्मा नित्य है और अभेद है। वस्तुरूप से, हों! पर्यायरूप से वह दूसरी बात है। यह कहेंगे। आत्मा ज्ञायक भगवान... आहा..हा..! **नित्य एवं अभेद है;...** आहा..हा..! **दृष्टि के विषयभूत ऐसे उसके स्वरूप में...** दृष्टि के विषयभूत ऐसे उसके स्वरूप में **अनित्य शुद्धाशुद्ध पर्यायें या गुणभेद कुछ हैं ही नहीं।** आहा..हा..! समझ में आया? दृष्टि जो है, उसका विषय जो ध्रुव त्रिकाल, उसमें तो शुद्धाशुद्ध और अनित्य (पर्यायें) तथा गुणभेद हैं ही नहीं। आहा..हा..! उसमें अशुद्धता आती है, व्यवहार... समझ में आया? जब तक ऐसी दृष्टि हुई, तथापि जब तक वीतरागता न प्रगटे, तब तक देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग आता है। समझ में आया? परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। आहा..हा..! समझ में आया?

आज एक ननामा पत्र में प्रश्न आया है। दीपचन्दजी का कहा था न? कि दस हजार तीर्थंकर की अपेक्षा एक प्रतिमा का माहात्म्य विशेष है। उसमें कोई प्रतिमा का विरोध करनेवाला है। नाम लिखा नहीं। इस जड़ की इतनी महिमा? अरे! सुन तो सही, प्रभु! आहा..हा..! यह तो प्रतिमा कायम रहनेवाली है, यह व्यवहार की बात है। तीर्थंकर भी 'पर' है, वह व्यवहार है। चैतन्यमूर्ति भले भगवान हो, तो भी व्यवहार है। उसे मानना, पूजना, वह शुभराग है। आहा..हा..! समझ में आया? वहाँ प्रतिमा जो 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' - ऐसा लिया है। कुन्दकुन्दाचार्य, बनारसीदास, ऐसी वस्तुस्थिति है परन्तु बात यह कि जिसके पक्ष में बैठे हों, वह पक्ष छोड़ना कठिन पड़ता है। समझ में आया? यह तो पहले कहा था न?

हम सम्प्रदाय में थे, तब कहा था। वह कहे - मिथ्यादृष्टि हो, तब तक जिनप्रतिमा की पूजा और भक्ति होती है; सम्यग्दृष्टि होने के बाद नहीं। (संवत्) १९८३ के साल में ऐसा प्रश्न चला था। इक्यावन वर्ष पहले। ५० और १। मैं तो किसी पक्ष में नहीं।

आनन्दघनजी कहते हैं, 'जिसका पक्ष लेकर बोलूँ, वह मन में सुख माने, जिसका पक्ष छोड़कर बोलूँ, वह मन में चित्त ताणे।' आहा..हा..! अर र! सुन तो सही, प्रभु! आहा..हा..! जब सम्यग्दर्शन होता है... बनारसीदास में कहा न? भाई! अन्दर आगम अक्षर पड़ा है और समकिती है। आहा..हा..! उसे जिनप्रतिमा जिनसरीखी लगती है। व्यवहार है न? निश्चय कहाँ है? जिन तो यहाँ है।

मुमुक्षु : भगवान स्वयं व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भगवान की प्रतिमा की पूजा, वह सब व्यवहार है परन्तु ऐसा व्यवहार आये बिना नहीं रहता। कोई ऐसा कहे कि जिनप्रतिमा की पूजा का भाव मिथ्या है (तो) बात मिथ्या है, व्यवहार है। परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण आता नहीं तो वह व्यवहार को ही समझता नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। भाई!

जो सम्यग्दर्शन होता है, आत्मा का निर्विकल्प अनुभव, तब उसे भावश्रुतज्ञान प्रगट होता है। भावश्रुतज्ञान प्रगट हुआ, उसके निश्चय और व्यवहार दो नय हैं। आहा..हा..! यह जो व्यवहारनय है, वह व्यवहार आता है, धर्म नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। धर्म नहीं तो आता किसलिए है? आये बिना रहता नहीं। आहा..हा..! कुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसार में कहते हैं कि 'अरहन्तादि पूजा' यह उपदेश दे सन्तो। यह शुभभाववाले के लक्षण हैं। आत्मज्ञानी अनुभवी मुनि हैं, सच्चे सन्त हैं, तीन कषाय का अभाव होकर छठवें-सातवें गुणस्थान में झूल रहे हैं, वे मुनि भी अरिहन्त प्रतिमा की पूजा का उपदेश देते हैं, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है, आहा..हा..! परन्तु वह भाव शुभ है और वह पूजा का भाव आवे ही नहीं, तब तो शुद्ध में एकाकार रहे। ऐसी स्थिति तो है नहीं। ऐसी बातें बहुत कठिन, भाई!

जो जिस पक्ष में पोषण में हों, (उसे वह छूटता नहीं)। स्थानकवासी मूर्ति को नहीं मानते, उन्हें यह तीर्थंकर की अपेक्षा प्रतिमा का माहात्म्य (अधिक है, ऐसा कहे), परन्तु वह तो व्यवहार की बात है। जिनवाणी को पूजनीय कही। जिनवाणी तो जड़ है। समझ में आया? परन्तु उसका बहुमान आता है, ऐसा शुभभाव हुए बिना रहता नहीं... युगलजी! और उस वाणी की अपेक्षा भी प्रतिमा में तो जिनमुद्रा देखने से केवली याद आते हैं, ऐसा बनारसीदास में है। जिनमुद्रा देखकर केवली कैसे होते हैं, ऐसा याद आता है। है तो विकल्प। आहा..हा..! समझ में आया? भाई! दीपचन्दजी बहुत सूक्ष्म सम्यग्ज्ञानी हैं।

उनकी शक्ति का वर्णन जितना किया है, उतना तो अभी तक किसी ने किया नहीं। इतना स्पष्टीकरण... इतना स्पष्टीकरण... ! सम्यग्दृष्टि हैं। आहा..हा.. ! सम्यग्ज्ञानी हैं, अत: उन्होंने लिखा है तो कोई अपेक्षा से हो, वह तो व्यवहार की बात है। समझ में आया ? परन्तु उसका विरोध करना, वह सत्य नहीं है। समझ में आया ?

बनारसीदास ने तो वहाँ तक कहा, 'जिनप्रतिमा जिनसारखी, अल्प भवस्थिति जाकी सोई प्रमाणे जिनप्रतिमा जिनसारखी।' है तो शुभभाव, वह कहीं शुद्धभाव नहीं है, धर्म नहीं। आहा..हा.. ! परन्तु ऐसा शुभभाव समकिती को भी आये बिना नहीं रहता। सबेरे भाई ने कहा था न ? ज्ञानधारा और रागधारा। वह प्रज्ञा में नहीं परन्तु यावत कर्म विरति में ११० श्लोक है न ? ११०वाँ श्लोक, भाई ! जब तक राग की पूर्ण विरति-त्याग नहीं, तब तक राग और ज्ञानधारा (दोनों) बहुत चलती है। क्या कहा ?

मुमुक्षु : पुण्य-पाप के अधिकार में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य-पाप का अधिकार, ११०वाँ कलश। सबेरे जरा प्रज्ञा पर ख्याल आया, परन्तु फिर कहा यह तो कर्मविरति। ऐसी बात है, भगवान ! सूक्ष्म बात, बापू ! अभी तो बहुत गड़बड़ उठी है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसी कड़क भाषा में पत्र आया है। मानों उसे इतना खराब लगा है। तुम जड़ को इतना माहात्म्य देते हो। अरे... ! प्रभु ! सुन तो सही।

मुमुक्षु : जड़ का इतना माहात्म्य माने तो चैतन्य का कितना मानते होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो चैतन्य भगवान (की प्रतिमा) है, वह परद्रव्य है। वाणी, वह भी परद्रव्य है, प्रतिमा और मन्दिर वह परद्रव्य है और परद्रव्य के आश्रय से होता है, वह राग होता है। राग आये बिना नहीं रहता। आहा..हा.. ! यह तो भावपाहुड़ की ८३वीं गाथा में कहा न ? '**पूयादिसु वयसहियं**' यह जैनधर्म नहीं। पूजा, व्रत, वैयावृत्य वह जैनधर्म नहीं—ऐसा लिखा है परन्तु उसका अर्थ यह कि वह राग है। राग आये बिना नहीं रहता। अपना अनुभव दृष्टि हुई, तथापि राग है। प्रवचनसार में, भाई ! मुनि को भी कहा है न, कि शुभरागी ऐसा उपदेश करे, ऐसा पाठ है। क्या कहा ? सन्त, मुनि हैं आत्मध्यानी आनन्द के कन्द में झूलनेवाले, परन्तु जब शुभराग होता है तो शुभरागी प्राणी जिनपूजा,

जिनप्रतिमा, वैयावृत्य करना, पर की विनय करना, ऐसा उपदेश देते हैं परन्तु है तो व्यवहार राग। समझ में आया?

अरे! भावपाहुड़ में आया है। ऐसा कि सम्यग्दृष्टि है, अनुभवी है, राग को अपना मानते नहीं, तथापि उसमें षोडशकारण भावना तीर्थंकर (पद दायक) भाना, ऐसा आया है। भावपाहुड़ में बहुत आया है। पच्चीस भाव के और अमुक बात आयी है न, वह अशुभभाव का निषेध करके शुभभाव होता है, उसकी बात है परन्तु वह शुभभाव धर्म है, ऐसा नहीं। आहा..हा..! अरे! ऐसी बातें। और वह शुभभाव आये बिना रहता नहीं। वह कर्मधारा है। जब तक आत्मा पूर्ण वीतराग न हो... आहा..हा..! तब तक स्वरूप के आश्रय से निर्मल धारा प्रगट हुई, परन्तु राग से पूर्ण निवृत्ति नहीं, तो राग आये बिना रहता नहीं। अत: रागधारा राग का काम करे; ज्ञानधारा, ज्ञानधारा का काम करे। रागधारा बन्ध का कारण करे और आत्मज्ञानधारा, वह अबन्ध का कारण करे। अब इसमें क्या करे? खींचतान करे, भाई! नहीं चलता। यह तो वीतरागमार्ग, भाई! आहा..हा..!

एक जगह आनन्दघनजी कहते हैं 'जेनो पक्ष लईने बोलुं ते मनमां सुख माणे, अने जेनो पक्ष मूकीने बोलुं ते मनमां चित्त ताणे' अरे..! आहा..हा..! 'मारे मुने निरपख कोई न मूकी।' प्रतिमा की पूजा करने की बात करे तो प्रतिमा को नहीं पूजनेवाले को विरुद्ध लगता है। आहा..हा..! और मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा आया है, कि भाई! ऐसा उपदेश कौन -सा है कि सब प्रसन्न रहे? सबको अच्छा लगे ऐसा तो उपदेश नहीं है। उपदेश तो निश्चय और व्यवहार दोनों का आता है। आहा..हा..! समझ में आया?

पूजा, व्रत, वैयावृत्य वह कोई धर्म नहीं है; वह शुभभाव है परन्तु समकिती को जब तक राग से पूर्ण निवृत्ति नहीं, तब तक राग आये बिना नहीं रहता। आहा..हा..! यह नकार-निषेध करे तो उसे व्यवहार का ज्ञान ही यथार्थ नहीं, तो उसे निश्चय का यथार्थ ज्ञान नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? देखो! आया न?

उसके स्वरूप में अनित्य शुद्धाशुद्ध पर्यायें या गुणभेद कुछ... दृष्टि का विषय नहीं। आहा..हा..! परन्तु दृष्टि के साथ... अपने आ गया है, जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान सर्व को जानता है। राग को जाने, भेद को जाने, अभेद को जाने, निमित्त को जाने... आहा..हा..! गुणभेद को जाने, पर्यायभेद को जाने और व्यवहार कैसा आता है, उसे भी ज्ञान तो

भलीभाँति जानता है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग! मार्ग खींचतान करके लोगों ने... यह किसी को खटका है, ऐसा एकान्तत: पत्र आया है। भाई! उन्होंने कहा है, ऐसा मैंने तो कहा और वह तो व्यवहार है। भगवान की पूजा वह व्यवहार है। साक्षात् तीन लोक के नाथ की पूजा, वह व्यवहार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : और यह प्रतिमा, वह भी व्यवहार है। परद्रव्य है न? समझ में आया? यहाँ किसी का पक्ष नहीं। यहाँ तो सत्य है, उसका पक्ष है। आहा..हा..! समझ में आया? कि सबको ठीक लगे ऐसा कहना, जिससे सब प्रसन्न रहेंगे। आहा..हा..! ऐसी बात भगवान के मार्ग में नहीं है, भाई! आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि शुद्धाशुद्ध पर्याय है परन्तु वह दृष्टि का विषय नहीं। दृष्टि का विषय तो गुणभेद को भी स्वीकार नहीं करता, परन्तु दृष्टि के साथ जो ज्ञान सम्यक् हुआ, वह ज्ञान अभेद को भी जानता है, पर्याय को भी जानता है और राग-व्यवहार आता है, प्रतिमा की पूजा, व्रत, अणुव्रत, महाव्रत इत्यादि (आते हैं), उन्हें ज्ञान जानता है कि है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बात है। एक निश्चय की जहाँ बात चले, वहाँ वह व्यवहार उड़ा दे कि व्यवहार है ही नहीं। व्यवहार आता है परन्तु वह धर्म नहीं है। उस राग की क्रिया का भाव... मुनियों को भी शुभराग आता है तो ऐसा उपदेश करते हैं। जिनपूजा... प्रवचनसार में ऐसा पाठ है। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। समझ में आया? उसमें है कहीं। प्रवचनसार में कहीं है। कितने में होगा? आहा..हा..! आया लो, २४८, २४८ है।

शुभोपयोगियों को ही ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं... मुनि सच्चे भावलिंगी हैं, अनुभवी हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, चारित्र की रमणता है, ऐसे जीव को **शुभोपयोगियों को ही ऐसी प्रवृत्तियाँ होती हैं...** उन्हें शुभराग आता है तो उनकी यह प्रवृत्ति है। कौन सी? **दर्शनज्ञान का (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का) उपदेश, शिष्यों का ग्रहण...** आहा..हा..! व्यवहार आया न! निश्चय तो शिष्य का है।

तथा उनका पोषण, और जिनेन्द्र की पूजा का उपदेश वास्तव में सरागियों की चर्चा है। आहा..हा..! है आस्रव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सराग है न? राग है तो। है आस्रव। अनास्रव तो आत्मा के अवलम्बन से जितनी वीतरागीदशा प्रगट हुई, वह अनास्रव है, परन्तु उसे व्यवहार, शुभराग आये बिना नहीं रहता। आहा..हा..! ऐसी बात। स्याद्वाद मार्ग। **जिनेन्द्र की पूजा का उपदेश...** आहा..हा..! देखा। **जिनेन्द्र पूजा के उपदेश की प्रवृत्ति शुभोपयोगियों के ही होती है, शुद्धोपयोगियों के नहीं।** अन्तर में स्थिर होकर शुद्ध में है, उनकी यह प्रवृत्ति नहीं। आहा..हा..! बहुत सब जगह आता है। कठिन काम। आहा..हा..! लोग कहाँ-कहाँ अपने स्वच्छन्द से रुकते हैं और मिथ्यात्व का क्या सेवन करते हैं, इसकी खबर नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

इसमें तो ऐसा कहा। उसमें बताया था जिनपूजा का। बनारसीदास, समकिती भाव, बनारसीदास, निश्चय समकिती हैं, वे कहते हैं। देखो! गुणस्थान भेद है न? देखो! जिन-प्रतिबिम्ब का माहात्य। (चतुर्दश गुणस्थान अधिकार, श्लोक २) समकिती ज्ञानी, धर्मात्मा, अनुभवी... आहा..हा..! '**जाके मुख दरससौं भगत के नैननिकौं,...**' भगवान की प्रतिमा का मुख देखकर '**भगत के नैननिकौं,...**' भगत की आँख को।

थिरताकी बानि बढ़ै चंचलता विनसी।
मुद्रा देखि केवली की मुद्रा याद आवै जहां,
जाके आगै इंद्र की विभूति दीसै तिनसी॥
जाकौ जस जपत प्रकास जगै हिरदे मैं,
सोइ सुद्धमति होइ हुती जु मलिनसी।
कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सोहै जिनकी छबि सुविद्यमान जिनसी॥

जिनप्रतिमा साक्षात भगवान जैसी है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार है न व्यवहार! आहा..हा..! लोगों को भारी कठिन पड़ता है। निश्चय की जहाँ बात करने जाये, वहाँ यह व्यवहार निकाल डालते हैं और व्यवहारवाला व्यवहार से कल्याण होता है, ऐसा मान लेता है। समझ में आया? यहाँ तो सत्य क्या है, एक बात है, भाई!

(संवत्) १९८३ में कहा था न? समकिती को भावश्रुतज्ञान होता है और उसे व्यवहारनय आता है। अत: व्यवहारनय का विषय जिनप्रतिमा उसे पूज्य है। मिथ्यादृष्टि को नय है नहीं तो उसका निक्षेप भी उसे नहीं। हम तो उसमें (सम्प्रदाय में) थे। हम किसी

को नहीं मानते हैं, हम तो सत्य को मानते हैं। इसमें आ गये, इसलिए तुम्हारी बात सत्य है, ऐसा हम नहीं मानते। समझ में आया ? ऐई! हमें तो अन्दर में बैठे, वह बात मानते हैं। कोई पक्ष की, वाड़ा की बात हम नहीं मानते। आहा..हा..!

यह यहाँ कहा कि दृष्टि का विषय तो ध्रुव है, उसमें तो शुद्धपर्याय और अशुद्धपर्याय या गुणभेद भी दृष्टि का विषय नहीं, परन्तु दृष्टि का विषय हुआ, उसके साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान, पूजा-भक्ति का भाव आता है, उसे जानता है। युगलजी! ऐसी बातें। आहा..हा..! तथापि वह बन्ध का कारण है। पूजा, व्रत, वैयावृत्य बहुत नाम लिये हैं। अष्टपाहुड़ है ? भावपाहुड़। कितनी ? ८३। ८३-८३ आया लो। '**पूयादिसु वयसहियं पुराणं हि जिणेहि सासणे भणियं।**' जैनशासन में **पूजा आदिक में और व्रतसहित होना है, वह तो 'पुण्य' है, इसमें पूजा (और आदि शब्द से) भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य आदिक समझना।** यह सब पुण्य है। साधु की वैयावृत्य करना। सच्चे सन्त की, हों! परन्तु वह शुभभाव है, आस्रव है। आता है। है ? **यह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिये होता है...** भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य। यह देव-शास्त्र-गुरु तो परद्रव्य है। देव-गुरु-शास्त्र तीनों परद्रव्य हैं। **इसके लिये होता है और उपवास आदिक व्रत हैं, वह शुभक्रिया है, इनमें आत्मा का रागसहित शुभपरिणाम है, उससे पुण्यकर्म होता है... इसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है।** इसका फल मोक्ष और बन्धरहित, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। एक पूजा को उड़ाता है, एक पूजा में मोक्ष मनवाता है। भगवान की पूजा करते-करते मोक्ष होगा। धूल में भी नहीं होगा। आहा..हा..! ऐ..ई..!

मुमुक्षु : आता है परम्परा.....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस परम्परा का अर्थ ? अपने अनुभव में राग का निषेध है, तो राग आता है, फिर राग का अभाव करके स्थिरता होगी तो परम्परा कहा है। उस शुभभाव से परम्परा मुक्ति होगी, ऐसा नहीं है। अभी शुभभाव में आया, तो अशुभभाव का अभाव हुआ। फिर शुद्ध उपयोग में जायेगा तो शुभ का अभाव होगा, ऐसा कहा है। आहा..हा..! अरे रे! निश्चय की जहाँ बात लेने जाये, वहाँ व्यवहार उड़ावे और व्यवहार की बात आवे, वहाँ व्यवहार से धर्म होता है, ऐसा माने। ऐसा मार्ग है। भाई नहीं आये खेमचन्दभाई ? ठीक नहीं। आहा..हा..!

शुद्ध-अशुद्ध पर्याय है, तथापि वह शुद्ध-अशुद्धपर्याय सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन तो अभेद त्रिकाली ज्ञायकभाव... क्योंकि दृष्टि दर्शन है, जिसमें जानने की शक्ति नहीं। सम्यग्दर्शन में जानने की शक्ति नहीं। आहा..हा..! ज्ञान में जानने की शक्ति है। ज्ञान जानता है कि यह सम्यग्दर्शन है, यह सम्यग्दर्शन का विषय है, यह ज्ञान जानता है। आहा..हा..! ऐसी बातें, भाई! यह तो मध्यस्थ होना हो, उसे यह बात बैठे ऐसी है, भाई! आहा..हा..! जहाँ निश्चय स्थापन करे, वहाँ वह व्यवहार आता है। तो कहते हैं व्यवहार आता ही नहीं, यह मिथ्या है। व्यवहार स्थापना करे तो व्यवहार से कल्याण / मोक्ष होता है, ऐसा भी नहीं। आहा..हा..!

अनित्य.... पर्याय। **शुद्धाशुद्ध...** पर्याय। अरे! गुणभेद भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहा..हा..! **प्रयोजन की सिद्धि के लिये यही परमार्थ-आत्मा है।** आहा..हा..! अपनी मुक्तिरूपी मोक्ष की प्रयोजन की सिद्धि के लिये... समझ में आया? कहाँ गये भाई मोहनलालजी? आ गये? कहो, समझ में आया? वहाँ प्रमुख है न? कलकत्ता में प्रमुख है। आहा..हा..! **प्रयोजन की सिद्धि के लिये यही परमार्थ-आत्मा है।** आहा..हा..! प्रयोजन तो आत्मा के आनन्द की पूर्ण प्राप्ति, वह मुक्ति। दु:ख की दशा से पूर्ण मुक्त और आनन्द की दशा से पूर्ण की प्राप्ति, उस प्रयोजन की सिद्धि भगवान आत्मा के आश्रय से होती है। आहा..हा..! बीच में व्यवहार आता है, परन्तु मुक्ति का प्रयोजन उससे सिद्ध नहीं होता। आहा..हा..! तो उसे करे किसलिए? परन्तु आये बिना रहता नहीं। सुन तो सही! जब तक वीतरागता नहीं, वहाँ सरागपना (दशा में रहता है)। सच्चे सन्त, भावलिंगी सन्त जो छठवें-सातवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त में झूलते हैं। अन्तर्मुहूर्त में छठे और अन्तर्मुहूर्त में सातवाँ (आता है)। आहा..हा..! ऐसे मुनियों को भी जहाँ प्रमाद छठे गुणस्थान में आता है, तो उन्हें भी शुभयोग की प्रवृत्ति आती है। आहा..हा..! समझ में आया? यह व्रत की बात करे, अणुव्रत की कहे, पूजा का कहे, पर की-सन्तों की सेवा, वैयावृत्य करना, कहे परन्तु वह शुभयोग की प्रवृत्ति है। आहा..हा..! वह सास्रवी जीव का शुभभाव है। इतना शुभराग है, वह सा-आस्रव है। आहा..हा..! और अन्तर निर्विकल्प में स्थिर हुआ, वह निरास्रवी है।

छठवें गुणस्थान में सर्वथा आस्रव है, ऐसा नहीं है। तीन कषाय का अभाव हुआ, उतना तो निरास्रव है, परन्तु शुभयोग का भाव आता है, उपदेश का (भाव) आता है। आहा..हा..! समाधिशतक में तो ऐसा कहा, मुनियों को उपदेश का विकल्प आता है, वह

उन्माद का उन्माद। यह चारित्र आया है; दर्शन का उन्माद नहीं। जो तत्त्वार्थसूत्र में पहले (अधिकार में) अन्त में उन्माद आया है, वह दर्शनमोह का है। यह (समाधिशतक में कथित) चारित्रमोह का (उन्माद है)। यह राग आया वह तो। आहा..हा..! आये बिना रहता नहीं, तथापि उन्माद है। आहा..हा..! कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते हैं कि मैं समयसार कहूँगा। आहा..हा..! ऐसा विकल्प आया है। वाणी द्वारा आयेगा। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, वह व्यवहार होने पर भी धर्मी की दृष्टि अनन्त गुण का धाम, अनन्त शक्तियों के संग्रहस्वरूप ध्रुव पर दृष्टि है। आहा..हा..! जिसमें गुण का खजाना पड़ा है। आहा..हा..! **उसी के आश्रय से धर्म प्रगट होता है।** भगवान पूर्ण आनन्द प्रभु के आश्रय से धर्म प्रगट होता है। पर के आश्रय से धर्म प्रगट नहीं होता। पर का आश्रय आता है, परन्तु वह शुभभाव है। समझ में आया? ऐसी बात।

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर, अनन्त गुणों की राशि, अनन्त गुणों का विशाल पर्वत है! चारों ओर गुण ही भरे हैं। अवगुण एक भी नहीं है। ओहो! यह मैं? ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये जीव ने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया॥२४४॥

२४४ वाँ बोल।

ओहो! आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर,... है। विभूति। आहा..हा..! लो! यह विभूति। ऐई विभुनमलजी! भगवान आत्मा वास्तविक ऐसी चीज़ है कि अनादि से पर्याय पर लक्ष्य (रहा है)। चाहे तो साधु हुआ, त्यागी हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ, व्रत पालन किये, भक्ति की, पूजा की—सब किया परन्तु लक्ष्य पर्याय पर और राग पर रहा। आहा..हा..! पर्याय के समीप में प्रभु, महाप्रभु अनन्त-अनन्त विभूति से भरपूर भरा हुआ है। आहा..हा..! इसके ऊपर कभी नजर नहीं की। निधान के ऊपर नजर नहीं की। आहा..हा..!

आत्मा तो अनन्त विभूतियों से भरपूर, अनन्त गुणों की राशि,... आहा..हा..! **अनन्त गुणों का विशाल पर्वत है!** अनन्त गुणों का विशाल पर्वत है। आहा..हा..! ध्रुव.. ध्रुव। ध्रुव पर्वत। आहा..हा..! जो हिले-चले नहीं, परिणमे नहीं। आहा..हा..! ऐसे **अनन्त गुणों का विशाल पर्वत है! चारों ओर गुण ही भरे हैं।** उसमें अन्दर में कोई शुभभाव नहीं

है। आहा..हा..! **चारों ओर गुण ही भरे हैं**। आहा..हा..! **अवगुण एक भी नहीं है।** त्रिलोकनाथ चैतन्य तत्त्व वस्तु, ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. उत्पाद-व्यय की पर्याय के पास में-समीप में पड़ा है। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त गुण का भरपूर भगवान.. आहा..हा..! **चारों ओर गुण ही भरे हैं**। गुण ही भरे हैं। कोई शुभराग या अशुभराग उसमें है नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : श्रीमद् तो ऐसा कहते हैं कि अवगुण का पार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो शिष्य की विनयता बतलाने को (कहा है)। वह शुरुआत की जिज्ञासावाले को यह बताते हैं। 'मैं तो दोष अनन्त का भाजन हूँ करुणाल'। पर्याय में दोष है, वह बताते हैं।

यहाँ तो भगवान आत्मा... आहा..हा..! दोष का आयतन ही नहीं; वह तो अनन्त आनन्द का आयतन / स्थान है। आहा..हा..! यह आता है न? 'क्या प्रभु चरण निकट धरूँ, आत्मा से सब हीन, वह तो प्रभु ने ही दिया (वर्तुं चरणाधीन)'। फिर यह बात की है। पहले तो मैं अनन्त दोष का भाजन हूँ। पर्याय में दोष है। वह इसकी योग्यता से पर्याय में दोष का पात्र है। वस्तु पात्र नहीं। आहा..हा..! वह तो निर्मानरूप से अभिमान छुड़ाने को, भगवान की दृष्टि कराने को, भगवान की आत्मदृष्टि (कराने को कहा है)। उस दोष को न देखे तो दोषरहित आत्मा को कैसे जाने? मेरी पर्याय में दोष है, यह जानने में न आवे तो दोषरहित गुण को वह कैसे जाने? आहा..हा..! परन्तु वह तो पर्यायदृष्टि का कथन है। समझ में आया? आहा..हा..!

चारों ओर गुण ही भरे हैं। अवगुण एक भी नहीं है। आहा..हा..! श्रीमद् ने एक पत्र में ऐसा भी लिखा है कि भगवान पूर्ण स्वरूप है, परन्तु उसके अपलक्षण का पार नहीं। आहा..हा..! क्या कहा? ये लोग उसमें से यह निकालते हैं कि अहो! भगवान को भी अवगुण। यह नहीं, प्रभु! तेरी बात है। तेरे गुण का पार नहीं... आहा..हा..! तथापि तेरे अपलक्षण का पार नहीं। पर्याय में तेरे अपलक्षण हैं। आहा..हा..! तेरी चीज़ को मानता नहीं और पर्याय तथा राग को मानता है, वह तेरा अपलक्षण है। आहा..हा..! ऐसा उपदेश अब। भाई! मार्ग ऐसा है। आहा..हा..! अनादि काल से लुट रहा है। आहा..हा..!

श्रीमद् कहते हैं कि एक तो वस्तु की खबर नहीं और राग का रसिया है, सुनने जाये तो कुगुरु इसका एक घण्टा लूट लेते हैं। इससे कहते हैं कि तुझे राग से कल्याण होगा, व्रत

करने से कल्याण होगा। इस प्रकार इसे लूट लिया है। आहा..हा..! समझ में आया? अन्तर्दृष्टि करने की बात नहीं की और बाह्यदृष्टि की क्रियाकाण्ड से तुझे कल्याण होगा –(ऐसा कहकर तुझे लूट लिया)। आहा..हा..! गजब काम, भाई! आहा..हा..!

ओहो! यह मैं? यह मैं? ऐसे आत्मा के दर्शन के लिये.... आहा..हा..! अनन्त गुण से भरपूर, चारों ओर से देखो तो अवगुण एक नहीं। ऐसे भगवान के **दर्शन के लिये जीव ने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया।** सच्चा कौतूहल। दूसरी चीज़ देखे। एक व्यक्ति हाथी का रूप लेकर.... आता है न? वहाँ आया था न? घोड़े का रूप लेकर आवे। घोड़ा बने, (उसका) इसे आश्चर्य लगे, कौतूहल लगे। अभी वहाँ आया था। कुरावड़ में नहीं? एक व्यक्ति घोड़ा लेकर दो पैर से चले। घोड़े का पूरा रूप। कुरावड़ में न? मद्रास में, मद्रास में। वहाँ पंच कल्याणक था न! कुरावड़ में पंच कल्याणक था। आहा..हा..! ऐसा इसे कौतूहल लगे। एक स्त्री, पुरुष का वेश पहनकर आवे तो आश्चर्य लगे। परन्तु तेरा कौतूहल तूने कभी नहीं किया। आहा..हा..! है? **आत्मा के दर्शन के लिये जीव ने कभी सच्चा कौतूहल....** मिथ्या कौतूहल तो बहुत किये। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा कौतूहल तो बहुत होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस कौतूहल का अर्थ महिमा। आहा..! यह तो चीज़ क्या है! राग की आड़ में अन्दर क्या चीज़ पड़ी है! साक्षात् त्रिलोकनाथ परमात्मा बादशाह अन्दर है। आहा..हा..! ऐसा **जीव ने कभी सच्चा कौतूहल ही...** आहा..हा..! पर्याय में उसे देखने का कौतूहल कभी नहीं किया। आहा..हा..! पर्याय में उसकी विस्मयता कभी नहीं आयी। आहा..हा..! चैतन्य चिन्तामणि रत्न महाप्रभु, आहा..! कल्पवृक्ष। आहा..हा..! ऐसा चैतन्य चिन्तामणि कामकुम्भ। आहा..हा..! अमृत का कुम्भ पड़ा है, प्रभु! आहा..हा..! शुभभाव आता है, परन्तु वह जहर का घड़ा है। आहा..हा..! ऐसी बात! समझ में आया? शुभभाव है न? राग है न? वह ज़हर का घड़ा है। ज्ञानी को भी आता तो है परन्तु उसका अवलम्बन / आश्रय नहीं करते। आहा..हा..! अब ऐसी बातें! इसमें कहाँ निवृत्त दुनिया के (काम के कारण) बाहर से निवृत्त नहीं होते।

तेरी नजर को बदल दे, नाथ! यह तेरी नजर बाहर में भटकती है। आहा..हा..! इसका करूँ और इसका करूँ और लड़की का... लड़का का धन्धा बराबर चले, लड़के

को बराबर धन्धे में ओतप्रोत करूँ, राग करूँ, पुण्य करूँ, दया-दान करूँ—ऐसी दृष्टि तेरी बाहर में भटकती है। उस दृष्टि से अन्दर में देख, अन्दर प्रभु कौन है? आहा..हा..! अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द और अनन्त अनन्त गुण से भरपूर चारों ओर से भरा है। जैसे मिश्री चारों ओर से मिठास से भरी है; वैसे प्रभु, चारों ओर से अमृत के सागर से भरा है। आहा..हा..! उसका कौतूहल तो कर, प्रभु! आहा..हा..! दूसरी वस्तु को देखने में कौतूहल करता है।

भावनगर में रानी... क्या कहा? पर्दा। रानी थी, उसने पर्दा छोड़ दिया। पर्दा छोड़कर निकली तो लोग देखे कि आहा..! रानी साहिब निकली... रानी साहिब निकली... रानी साहिब निकली... क्योंकि २५-५० वर्ष तक बाहर निकले नहीं। वह कौन होंगी? उसका इसे विस्मय हो गया था। हमारे यहाँ 'वडिया' एक थे। वडिया में गये थे। सब लोग आये थे। रामजीभाई थे, दरबार थे सब, वडिया के दरबार थे। दरबार होशियार था, वहाँ दूसरे राजा के कुँवर उसके पास पढ़ने आते थे। वे भी सब व्याख्यान में आये थे। (संवत्) १९९५ के (वर्ष) की बात है। १९९५, तो उन्होंने कहा, महाराज! मेरी रानी को दर्शन करना है। भोजन लेने, आहार लेने (पधारो)। उस समय ब्राह्मण की रसोई बनती थी। ब्राह्मण रसोई बनावे न? वहाँ आहार लेवे और अन्त:पुर में रानी होगी, तो लोग मानो रानी कैसी होगी! हम अन्दर गये और वहाँ रानी तथा उसकी लड़की दर्शन करने आयी। कोठी जैसा शरीर लटकता-लटकता, नहीं कोई रूप, नहीं कोई रंग, नहीं कुछ भी परन्तु लोगों को ऐसा कि आहा..! रानी साहिब.. कैसे होंगे? बिल्ली को ऐसे-ऐसे जो लटकता है न? बकरी को लटके, ऐसा सब लटकता था। खाये-पीये रानी सही न! और कोई कामकाज नहीं। कोठी जैसा शरीर। बेचारी दर्शन करने आयी। लोगों को ऐसा लगे की रानी कैसी होंगी। अन्दर रानी साहब कैसी होंगी? उसका राजा ऐसा कि राजकुमार उसके पास पढ़ने आवे। उसके पास पढ़ने आते थे। वे गुजर गये। दोनों गुजर गये हैं। सब थे। भाई वहाँ राजकोट के दीवान थे। इसलिए इस कारण लोग बहुत आते थे। और नाम प्रसिद्ध, इसलिए राजा आवे तो सब आवे। बैठे, न बैठे एक ओर। कानजीस्वामी आये हैं, कानजीस्वामी आये हैं। आहा..हा..! जहाँ रानी को देखा तो ओये.. मारूँ... यह तो कुछ (नहीं)। बनिया की लड़की कुछ ठीक हो वह दिखे। यह तो कुछ नहीं है।

इसी प्रकार यह विस्मय तो कर अन्दर है क्या? कुछ नहीं, ऐसा नहीं। आहा..हा..! वर्तमान पर्याय को अन्दर झुका। आहा..हा..! १४४वीं गाथा में आता है न? १४४वीं गाथा।

भाई ! मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की बुद्धियों को पहले मर्यादा में ला। फिर आत्मसन्मुख कर दे। आहा..हा.. ! क्या बात ! १४४ (गाथा), कर्ता-कर्म अधिकार है। मतिज्ञान जो परसन्मुख का झुकाव है, इन्द्रिय और मन से ज्ञान करता है, उस मतिज्ञान को मर्यादा में ले ले। मन और इन्द्रियों की ओर का झुकाव छोड़ दे। आहा..हा.. ! और उस मतिज्ञान को आत्मसन्मुख कर दे। जो आत्मा से विमुख था और मन तथा इन्द्रियों से जानने का काम करता था... आहा..हा.. ! उस मतिज्ञान को मर्यादा में लाकर... आहा..हा.. ! यह चीज़ है, ऐसा मति में मर्यादा ले। फिर अन्दर जा—सन्मुख हो; और श्रुतज्ञान को... आहा..हा.. ! विकल्पात्मक जो श्रुतज्ञान है, वह आकुलता का कारण है। आहा..हा.. ! उस श्रुतज्ञान को उस ओर से हटाकर मर्यादा में ले। आहा..हा.. ! और फिर आत्मसन्मुख हो जा। आहा..हा.. ! समयसार की १४४वीं गाथा है। आहा..हा.. ! यह कल कहा था। शाम को नहीं बताया था ? आहा..हा.. !

तेरी मति और श्रुत की पर्याय, जो परसन्मुख के लक्ष्यवाली है, उस पर्याय को परलक्ष्य से छोड़कर मर्यादा में ला, फिर इस ओर जा। ऐसी बात है। उस ज्ञान की पर्याय को, जहाँ प्रभु परमात्मस्वरूप विराजता है, उसके सन्मुख कर। आहा..हा.. ! तेरा मुख उस सत् के सन्मुख ले जा। आहा..हा.. ! ऐसी बात है। तुझे सम्यग्दर्शन होगा और सम्यग्ज्ञान होगा। आहा..हा.. ! बस ! दो ही बात की है। चारित्र की बात वहाँ नहीं। १४४वीं गाथा। आहा..हा.. ! उस समय तुझे आत्मा दिखता है तो श्रद्धा में आता है। आहा..हा.. ! मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की पर्याय को बाहर के लक्ष्य से छुड़ाकर, अन्तर में ले जा। आहा..हा.. ! तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा, सम्यग्ज्ञान होगा और भव का अन्त आयेगा। आहा..हा.. ! भव से डरे, भव से डरे। कौन कोई कहता था। भव का डर। भव का डर होना चाहिए। आज सबेरे आये थे न ?

हे भगवान ! तेरी चीज़ ऐसी की ऐसी ताजा पड़ी है। आहा..हा.. ! पुण्य और पाप के विकल्प से भिन्न पड़ी है, प्रभु ! एक बार प्रसन्न हो जा। आहा..हा.. ! यह चीज़ ! इसे कभी मैंने नजर में लिया नहीं, नजर से निहारा नहीं, मेरी नजर पर में रुक गयी। आहा..हा.. ! भगवान समीप में विराजता है। आहा..हा.. ! प्रभु तो पर्याय के समीप में विराजता है। आहा..हा.. ! वहाँ नजर को, मति को, श्रुत को ले जा न, भाई ! आहा..हा.. ! उसे ज्ञेय बना दे। तेरी पर्याय में त्रिकाली भगवान को ज्ञेय बना, और त्रिकाली को ध्यान का विषय बना। आहा..हा.. ! तो तुझे कौतूहल होगा। अन्दर आनन्द है, ऐसा तुझे भान होगा। आहा..हा.. ! शान्तिभाई ! तुम्हारा एक छोटा आया है न ? कहाँ गया ? गया ? जवानी में तो पहले कमाने का होता है न। मर जाये। आहा..हा.. !

'मैं मुक्त ही हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो परिपूर्ण द्रव्य को पकड़कर बैठा हूँ।'—इस प्रकार जहाँ अन्तर में निर्णय करता है, वहाँ अनन्त विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है॥२४५॥

२४५वाँ बोल। **मैं मुक्त ही हूँ।** राग के सम्बन्ध में बन्धपना मुझमें है ही नहीं। आहा..हा..! सम्बन्ध / बन्ध। राग के सम्बन्धरूपी बन्ध मुझमें नहीं। मैं तो... आहा..हा..! **मैं मुक्त ही हूँ।** राग से भिन्न मेरी चीज़ मुक्त है। भगवान मुक्तस्वरूप है। आहा..हा..! अबन्धस्वरूपी कहा न? १४-१५वीं गाथा में (कहा है)। **जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं** जो कोई अबद्धस्पष्ट आत्मा को देखे... अबद्ध कहो या मुक्त कहो। आहा..हा..! **मैं मुक्त ही हूँ।** आहा..हा..! राग का सम्बन्धरूपी बन्ध मुझमें है ही नहीं। आहा..! मैं तो परमानन्दस्वभाव के सम्बन्धवाला मैं हूँ। मैं तो मुक्त हूँ। आहा..हा..! अरे रे! ऐसी बात कहाँ? मूल बात। शिक्षण शिविर लगानेवाले हैं न। भाई! एक आया है। वह है न आर्यिका? शिक्षण शिविर में उपादान-निमित्त की बात करनी है। यहाँ के विरोध की। उपादान-निमित्त की चर्चा करेंगे कि निमित्त से होता है। पाँच बोल है, छह बोल है। आहा..हा..! निश्चय-व्यवहार, उसका वहाँ शिक्षण शिविर में सिखलायेंगे और पंचम काल के अन्त तक भावलिंगी मुनि हैं, उसकी शिक्षा देंगे। अरे! भगवान! आहा..हा..!

मोक्षमार्गप्रकाशक में तो कहा है कि गम्य क्षेत्र में तो हमें कोई दिखायी नहीं देते। अगम्य क्षेत्र में कोई होवे तो हो। मोक्षमार्गप्रकाशक में २०० वर्ष पहले (लिखा है)। भाई दीपचन्दजी ने (भी) कहा था।

मुमुक्षु : उसमें तो सबकी बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबकी। आगम अनुसार में मुझे किसी की श्रद्धा दिखायी नहीं देती। आहा..हा..! और जब मुख से कथन करता हूँ तो सुनते नहीं। इसलिए लिख जाता हूँ। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं, **मैं मुक्त ही हूँ।** आहा..हा..! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल-१४, शुक्रवार, दिनाङ्क १५-०९-१९७८
वचनामृत-२४५ से २४९ प्रवचन-९५

वचनामृत २४५वाँ बोल।

मैं मुक्त ही हूँ। आहा..हा..! (समयसार की) १४-१५वीं गाथा में कहा है न कि प्रभु! तू अबद्ध है। आहा..हा..! राग के साथ तुझे सम्बन्ध है ही नहीं। कर्म के साथ तो है ही नहीं। आहा..हा..! तेरी चीज़ राग के सम्बन्धरहित अबद्ध चीज़ है। अबद्ध कहो या मुक्त कहो। आहा..हा..! **मैं मुक्त ही हूँ**। अरे! यह बात! दृष्टि में जब द्रव्य लक्ष्य में लिया तो द्रव्य मुक्त ही है। आहा..हा..! देखो, इस पुस्तक के एक साथ ४०० ग्राहक आये हैं। एक साथ ४०० मँगाये हैं। महाराष्ट्र। अपने बीस लाख पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं परन्तु यह... ऐई! शान्तिभाई! आहा..हा..! भाई! मध्यस्थता से जरा पढ़े और विचार करे तो उसे मूल चीज़ क्या है, यह हाथ लगे। आहा..हा..! भगवान आत्मा... यह बात तो अभी चलती नहीं। अभी तो क्रिया करो, यह करो, यह करो। कर-करके मर गया।

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव ने कहा। यह अपने आता है न, भाई! **मुक्त एव** सर्वविशुद्ध अधिकार। **मुक्त एव** (१९८) (समयसार) कलश में आता है। आहा..हा..! भगवान आत्मा राग का कर्ता और राग का भोक्ता नहीं - ऐसी वह चीज़ है। आहा..हा..! समझ में आया? दया, दान, व्रत का राग है, वह राग है। उसे कर्ता मानना, उस चीज़ की विरुद्ध दृष्टि है। आहा..हा..! ऐसी बात! भगवान आत्मा चैतन्यकन्द प्रभु! परमेश्वर-जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अरे! तूने कभी सुना नहीं, भाई! भगवान अन्दर वस्तु राग से, कर्म से, शरीर से भिन्न अपना स्वभाव अन्दर मुक्तस्वरूप है। आहा..हा..! ऐसी दृष्टि से जब द्रव्य को पकड़ लिया... आहा..हा..! अरे! द्रव्य किसे कहें? कहो, भभूतमलजी! ये करोड़पति में इस धूल में कहाँ फँस गया। दो करोड़-ढाई करोड़ और धूल करोड़। अर र!

मुमुक्षु : आपने उसमें से छुड़ाया न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अब छोड़ने का भाव है। अभी तो वहाँ लगे हैं। आहा..हा..! अरे! पैसा तो कहाँ रहा, प्रभु! वह कहीं तेरी चीज़ नहीं। वह तो जड़ है न! आठ कर्म जो अन्दर पड़े हैं, वह अजीव जड़ है। वह तेरी चीज़ में कहाँ है? जीव में अजीव कैसे हो? प्रभु! आहा..हा..! यह तो ठीक, परन्तु शुभ-अशुभराग का भाव जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का, वह राग जीव-स्वरूप में कहाँ है? आहा..हा..! भगवान तो राग से मुक्त है प्रभु अन्दर। अरे! कैसे बैठे? स्त्री, पुत्र और कुटुम्ब तो धूल कहीं रह गयी, वह तो मिट्टी है। आहा..हा..! भाई! तुझे खबर नहीं। तू अन्दर चीज़ क्या है?

त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी है, उस वाणी का यह सार है। आहा..हा..! **मैं मुक्त ही हूँ**। आहा..हा..! वर्तमान राग और अवस्था की दृष्टि छोड़कर... यहाँ द्रव्यदृष्टि का प्रश्न है। आहा..हा..! वस्तु जो भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का कन्द प्रभु अन्दर... आहा..हा..! वह तो मुक्तस्वरूप है, प्रभु! तुझे खबर नहीं; और मुक्त न हो तो मुक्ति की पर्याय कहाँ से आयेगी? मुक्त / सिद्धपद की पर्याय कहाँ से आयेगी? आहा..हा..! कहो, यह वचनामृत पढ़ा है या नहीं? थोड़ा पढ़ा है एक बार? कहाँ गये दूसरे तुम्हारे? वहाँ बैठे हैं। बापू तो चार बार पढ़ गये हैं, खबर नहीं? चार बार पढ़ा है। आहा..हा..! परन्तु पैसे में घुस जाते हैं, मार डाले। उसमें फिर पाँच-दस-पच्चीस लाख की आमदनी हो। हर्ष में मर गया, आत्मा को मार डाला। उस जड़ की चीज़ को 'मेरा' मानकर... आहा..हा..! प्रभु चैतन्यमूर्ति मुक्त स्वरूप का नकार किया। वह यह नहीं। मैं तो यह हूँ। आहा..हा..!

सबेरे आया था। राग अनात्मा है और प्रभु आत्मा तो भिन्न है, वह तो भिन्न ही रहा है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! एक बार प्रसन्न हो। आहा..हा..! सबेरे आया था। नहीं? यह तो मिट्टी, धूल, जड़ है। वह तो आत्मा में है ही नहीं और आत्मा उसमें नहीं। यह तो मिट्टी धूल है। आहा..हा..! अन्तर में जो पुण्य और पाप के विकल्प, रागादि वृत्ति आती है; भगवान की भक्ति, दया, व्रत, अरे! हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना ऐसे परिणाम, वे सब पुण्य-पाप के भाव, प्रभु! इस आत्मतत्त्व में नहीं है। यह आत्मतत्त्व उनसे भिन्न है। आहा..हा..! समकिती धर्मी जीव, प्रथम श्रेणी का धर्मी, पहली सीढ़ी का धर्मी, पंचम (गुणस्थान) और मुनि की दशा तो और है। वह तो अभी है नहीं। आहा..हा..! परन्तु यहाँ तो वर्तमान भगवान मुक्तस्वरूप मैं तो हूँ। आहा..हा..! जो चीज़ वस्तु है; द्रव्य अर्थात्

पदार्थ प्रभु आत्मतत्त्व है, वह तो राग से निर्लेप भिन्न चीज़ है। आहा..हा..! ऐसी बात कैसे बैठे? पूरी जिन्दगी पाप का पोषण (किया)। धन्धा २२ घण्टे, २३ घण्टे, दुकान, स्त्री, पुत्र... मार डाला जीव को। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं, एक बार सुन तो सही, प्रभु! तेरे चौरासी के जन्म-मरण के चक्र करते-करते, प्रभु! तुझे विश्राम नहीं मिला, थकान नहीं लगी। धर्मी जीव को ऐसा पहले अनुभव करना, जिसे धर्म करना हो उसे। आहा..हा..! **मैं मुक्त ही हूँ।** आहा..हा..! अबद्ध कहो या मुक्त कहो। १४-१५ गाथा में आता है न? अबद्ध। भगवान ऐसा कहते हैं कि आत्मा अबद्ध है। उसका जो अनुभव करे, वह जैनशासन है। आहा..हा..! यहाँ तो कहाँ का कहाँ मनवाकर बेचारा जिन्दगी निकाल डालता है। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं, एक बार प्रभु! तेरा मुक्तस्वरूप अन्दर है। आहा..हा..! वह द्रव्य-वस्तु जो है, उस पर दृष्टि लगा दे, तो तुझे मुक्तस्वरूप है, ऐसी प्रतीति होगी। आहा..हा..!

मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाला, धर्म के पहले सोपानवाला, हों! आहा..हा..! उसे धर्मी कहते हैं। मैं तो मुक्तस्वरूप हूँ। **मुझे कुछ नहीं चाहिए।** आहा..हा..! लक्ष्मी, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब तो नहीं चाहिए परन्तु मुझे राग भी नहीं चाहिए। आहा..हा..! क्योंकि मेरी चीज़ में नहीं, वह चीज़ मुझे नहीं चाहिए। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें लोगों को (कठिन लगती हैं)। यह भगवान का मार्ग ऐसा होगा? हमने तो अभी तक यह कन्दमूल नहीं खाना, चौविहार करना (रात्रि में चतुर्विध आहार का त्याग करना)। सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना, ऐसा सुना है। अब सुना, वह सब अज्ञान है। आहा..हा..! राग को करूँ और इसे करूँ, उसमें मरूँ, आत्मा को मार डाला है। आहा..हा..! भगवान मुक्तस्वरूप को राग के कर्तारूप से मानना... आहा..हा..! वह तो जैन नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..!

जैनशासन कहा न? **मैं मुक्त ही हूँ,** अबद्ध हूँ—ऐसा दृष्टि में, अनुभव में, शुद्धोपयोग में आना, वह जैनशासन है, वह जैनधर्म है। आहा..हा..! **मुझे कुछ नहीं चाहिए।** आहा..हा..! यह दया, दान का विकल्प आता है, वह भी मुझे नहीं चाहिए। मेरी चीज़ नहीं। आहा..हा..! मैं तो राग के सम्बन्ध से, बन्ध से रहित, सम्बन्ध से, बन्ध से रहित हूँ। आहा..हा..! ऐसी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में मैं मुक्तस्वरूप हूँ। **मुझे कुछ नहीं चाहिए।** आहा..हा..! **मैं तो परिपूर्ण द्रव्य को पकड़कर बैठा हूँ।** आहा..हा..! वृक्ष के मूल जैसे पकड़कर बैठे, वैसे

भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, जिसका स्वभाव अबद्ध और मुक्त है, ऐसे धर्मी जीव जानते हैं कि यह तो मैं उसे पकड़कर बैठा हूँ। प्रसन्नभाई! यह बात ऐसी है। आहा..हा..! यह किस प्रकार का उपदेश? बापू! यह वीतराग मार्ग है। जिनेश्वर तीन लोक के नाथ, यह जिन (देव) का मार्ग है, भाई! यह मार्ग तूने सुना नहीं। आहा..हा..! बाहर के उत्साह ही उत्साह में तूने आत्मा को मार डाला है। आहा..हा..! तेरा उत्साह तुझे नहीं आया। तेरी अन्दर में वस्तु है, उसकी प्रीति नहीं हुई। आहा..हा..! बाहर के प्रेम में तेरी चीज़ लुट गयी, प्रभु! आहा..हा..! समझ में आया?

मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं तो परिपूर्ण द्रव्य को... परन्तु यह कैसे बैठे? आहा..हा..! वस्तु भगवान आत्मा जो है, वह तो एक समय की पर्याय से भिन्न परिपूर्ण है। आहा..हा..! अब कभी सुना न हो, उसे बैठे (किस प्रकार)? अनन्त काल से मजदूरी कर-करके मर गया। आहा..हा..! कहो, फूलचन्दजी! यह अनादि से मजदूरी करता है, हों! यह स्त्री, पुत्र और अर र! बड़ा मजदूर है। बड़ा मजदूर। मजदूर तो अभी आठ से .... सबेरे आठ से बारह-चार घण्टे काम करे और दो से छह घण्टे। यह तो बड़ा मजदूर। ऐई! सबेरे से भले दो-पाँच करोड़ रुपये इकट्ठे हों, परन्तु बड़ा मजदूर। आहा..हा..! यह तो सिरपच्ची किया करता है। यह करूँ.. यह करूँ.. यह करूँ... परन्तु क्या है? आहा..हा..! प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? धर्मी ऐसी दृष्टि द्रव्य पर पकड़कर बैठे... आहा..हा..!

इस प्रकार जहाँ अन्तर में निर्णय करता है,... क्या? सम्यग्दर्शन में मैं तो त्रिकाली द्रव्य शुद्ध हूँ, परिपूर्ण हूँ—ऐसा पकड़कर मैं बैठा हूँ। ऐसे सम्यग्दृष्टि को... आहा..हा..! अन्तर में निर्णय करता है। अन्तर में निर्णय करता है। राग से भिन्न होकर परिपूर्ण परमात्म वीतरागमूर्ति ही प्रभु आत्मा अन्दर है। आहा..हा..! उसे पकड़कर... आहा..हा..! निर्णय करता है। **इस प्रकार जहाँ अन्तर में निर्णय करता है, वहाँ अनन्त विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है।** आहा..हा..! सम्यग्दर्शन में अनन्त जितने गुण हैं, उनका एक अंश विभूति पर्याय में (प्रगट हो जाती है)। अभी पर्याय क्या, द्रव्य क्या? शब्द भी सुने न हों। ऐसे के ऐसे पाप के बड़े मजदूर। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, तेरी पर्याय में... आहा..हा..! जब यह द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण प्रभु हूँ, ऐसी पकड़ हुई तो पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा में, अनन्त विभूतिपना प्रभु आत्मा में पड़ा है, उस अनन्त विभूति का एक अंश पर्याय में व्यक्त तेरे अनुभव में आयेगा। आहा..हा..! यह तुम्हारी सब धूल की विभूति है।

मुमुक्षु : फर्नीचर.....

पूज्य गुरुदेवश्री : फर्नीचर धूल है। मैंने एकबार कहा था। मुम्बई गये थे। अपने एक मणिभाई हैं। उनके पास पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। वहाँ आहार करने गये थे। मणिभाई हैं। किसी समय व्याख्यान में आते हैं। बहुत पैसे- पाँच-छह करोड़ हैं। 'एडन' में बड़ी दुकान है। पैसा बहुत कमाया है। आहार करने गये वहाँ कमरे बहुत और सर्वत्र चरण कराये। चरण कराये, वहाँ सर्वत्र मखमल बिछाया हुआ। पाँच लाख रुपये का तो मात्र फर्नीचर होगा। मुझे तो उस समय यह विचार आया कि अरे रे! इसमें से इसे निकलना भारी-कठिन पड़ेगा। यह तुम्हारा फर्नीचर होता है न? आहा..हा..! भाई! तेरा फर्नीचर तो अन्दर पड़ा है। अनन्त ज्ञानदर्शन आनन्द का धनी तू अन्दर पड़ा है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..!

अंशतः प्रगट हो जाती है। श्रीमद् ने ऐसा कहा। कि 'सर्व गुणांश वह समकित'। वह यह बात है। सम्यग्दर्शन में धर्म की पहली सीढ़ी, उसमें पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति और अनुभव हुआ। मैं मुक्तस्वरूप हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिए, ऐसा अनुभव में निर्णय होने पर वह अनन्त जितनी शक्ति-गुण हैं, उन सबका एक अंश वर्तमान पर्याय में व्यक्त / प्रगट हो जाता है। यह किस प्रकार की भाषा! विस्मयता जैसी भाषा है। बापू! वीतरागमार्ग, वह जिनेश्वर का मार्ग कोई अलग है भाई! अभी तो सम्प्रदाय में वह बात है नहीं। यह तो देखा है न पूरा सम्प्रदाय। आहा..हा..! सब मिथ्यात्व की बातें, यह करो.. यह करो.. यह करो.. आहा..हा..! अरे प्रभु! सुन तो सही। करे कौन?

रागरहित जहाँ ज्ञानस्वरूप प्रभु... आहा..हा..! जैसे आँख में रजकण भी खटकता है... आहा..हा..! वैसे भगवान ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा अनुभव हुआ, उसे राग भी खटकता है। आहा..हा..! कहते हैं कि अन्तरस्वरूप भगवान पूर्ण स्वरूप का अनुभव का निर्णय हुआ, तो जितने गुण हैं, शक्ति है, (वह व्यक्त हो जाते हैं), परन्तु वह गुण क्या? द्रव्य क्या? पर्याय क्या?

मुमुक्षु : ऐसी कुछ हमें खबर नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सब बड़े मजदूर। अब निवृत्त होना चाहते हैं। ऐई! उसने आठ लाख खर्च किये न, मानो हमने बहुत किया। तब ही उसे कहा था। बैंगलोर में इसने मन्दिर बनाने में आठ लाख रुपये दिये। आठ लाख इसने और चार लाख वह मुम्बई का है न,

जुगराजजी, महावीर मार्केट है न ? मुम्बई में करोड़पति। वह स्थानकवासी है, यह श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी है। इनने आठ लाख दिये और उसने चार लाख दिये। बैंगलोर बारह लाख का बड़ा मन्दिर बनाया है।

मुमुक्षु : बहुत सरस बना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उस समय कहा था, कि यह सब बना, तेरा भाव था, वह कोई धर्म नहीं।

मुमुक्षु : धर्म न हो तो कुछ नहीं, प्रसिद्धि तो है न कि मन्दिर हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसिद्धि में क्या है ? आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने तो वहाँ आठ लाख खर्च किये और सोलह दिन में चालीस लाख बढ़ गये क्योंकि इसके पास दो करोड़ की स्टील पड़ी थी। दो करोड़ की स्टील और मैं वहाँ रहा, इसलिए उतने दिन धन्धा बन्द था। भाव बढ़ गया। आठ लाख खर्च किये और चालीस लाख बढ़ गये। उसका मित्र कहता था। अपने कहाँ (पूछने गये थे)। सुना हो। ऐई! धूल में भी, प्रभु! तू कहाँ गया ? इस विष्टा के ढेर में तू बैठने गया, प्रभु! अमृत का सागर भगवान अन्दर, जहाँ विश्राम स्थान, निजधाम है, वहाँ तेरी नजर नहीं। आहा..हा..!

यह आत्मा वस्तु पूर्ण, अबन्ध और मुक्त है, ऐसा जब सम्यग्दर्शन में पकड़ हुई तो जितने गुण की संख्या है, उन सब गुणों का अंश पर्याय में व्यक्त वेदन में आता है। यह सर्वगुणांश, वह समकित। आहा..हा..! यहाँ तो समकित देव-गुरु-शास्त्र को मानो, वह समकित, जाओ। अब व्रत ले लो। धूल में भी नहीं, मर जायेगा। समझ में आया ? रंगुलालजी! अरे! प्रभु वीतराग तीन लोक के नाथ पुकार करते हैं। आहा..हा..! इन्द्र और नरेन्द्रों के समक्ष प्रभु विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, वहाँ प्रभु विराजते हैं। उस इन्द्र की सभा में ऐसा कहते थे। आहा..हा..! समझ में आया ?

अनन्त विभूति अंशतः प्रगट हो जाती है। आहा..हा..! यह २४५ (बोल पूरा हुआ)।

आयुधशाला में चक्ररत्न प्रगट हुआ हो, फिर चक्रवर्ती आराम से बैठा नहीं रहता, छह खण्ड को साधने जाता है; उसी प्रकार यह चैतन्यचक्रवर्ती जागृत हुआ, सम्यग्दर्शनरूपी चक्ररत्न प्राप्त हुआ, अब तो अप्रमत्त भाव से केवलज्ञान ही लोगा ॥२४६ ॥

२४६वाँ बोल।

आयुधशाला में चक्ररत्न प्रगट हुआ हो,... चक्रवर्ती होता है न, चक्रवर्ती। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ ये चक्रवर्ती थे, तीर्थंकर थे, कामदेव पुरुष थे। उन्हें जब आयुधशाला में चक्ररत्न प्रगट होता है। **फिर चक्रवर्ती आराम से बैठा नहीं रहता,...** आहा..हा..! क्या कहते हैं? चक्रवर्ती जब आयुधशाला में चक्र देखे। एक हजार देव तो सेवा करते हैं। आहा..हा..! ऋषभदेव भगवान मोक्ष पधारे, (केवलज्ञान प्राप्त हुआ)। यह भरत चक्रवर्ती को ज्ञात हुआ और एक यह ज्ञात हुआ कि चक्ररत्न प्रगट हुआ है। समझ में आया? आहा..हा..! पहले भगवान का स्मरण करो, याद करो। यहाँ ऐसा कहते हैं कि जहाँ चक्ररत्न पका, वह चक्रवर्ती अब छह खण्ड साधे बिना रहता नहीं है। है?

फिर चक्रवर्ती आराम से बैठा नहीं रहता,.... आहा..हा..! **छह खण्ड को साधने जाता है;...** छह खण्ड को साधने जाता है। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ भगवान आत्मज्ञानी हैं, राग से भिन्न अनुभव है। आहा..हा..! तथापि इतना राग आता है। आहा..हा..! चक्रवर्ती का चक्र देखा, वहाँ एकदम चलो छह खण्ड साधने। **उसी प्रकार यह...** यह तो दृष्टान्त हुआ।

यह चैतन्यचक्रवर्ती.... भगवान चैतन्यचक्रवर्ती। अरे! भगवान कहने पर चिल्लाने लगते हैं। अरे! हम भगवान? अरे प्रभु! परन्तु सुन तो सही। तेरी चीज़ भगवानस्वरूप ही अन्दर है, तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? पर्याय की दृष्टि से तेरी चीज़ को तूने ओझल कर डाला है। (आच्छादित कर दिया है)। आहा..हा..! तेरी चीज़ एक समय की पर्याय जो विचार आदि, रागादि चलते हैं, उनके समीप में प्रभु पूरा आत्मतत्त्व विराजता है। आहा..हा..! वह भगवानस्वरूप है। अरे रे! कैसे बैठे? दो बीड़ी सिगरेट की ढंग से पीवे तब पखाने में दस्त उतरे भाईसाहब को। ऐसे तो इसके अपलक्षण। इसे ऐसा कहना।

उसे ऐसा कहे कि तू भगवान। हाय.. हाय..! किस गज से माप करे? गज नहीं मिलता। आहा..हा..! भाई! तुझे खबर नहीं, प्रभु!

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की यह आज्ञा (है) कि जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ... आहा..हा..! है? **चैतन्यचक्रवर्ती जागृत हुआ, सम्यग्दर्शनरूपी चक्ररत्न प्राप्त हुआ,...** आहा..हा..! अभी चौथा गुणस्थान, श्रावक को पाँचवाँ। यह श्रावक वाड़ा के, वे कहीं श्रावक नहीं हैं। वे सब तो सावज हैं। यह तो अन्तर...

मुमुक्षु : वाड़ा में तो बकरे होते हैं.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वाड़ा में सब बकरे ही हैं। भेड़ है। यहाँ तो यह बात है, बापू! यहाँ मक्खन-बक्खन नहीं। आहा..हा..! भेड़ जैसे एक को देखकर एक का अनुकरण करे, फिर गड्ढे में गिरे तो उसका अनुकरण करके वहाँ सब गिरे। इसी प्रकार अज्ञानी जो राग की क्रिया करते हों, उसका अनुकरण करते-करते (कल्याण मानते हैं)। वे भेड़ जैसे हैं। आहा..हा..!

जैसे चक्रवर्ती को चक्र उत्पन्न हो और आराम से नहीं बैठे, वैसे **सम्यग्दर्शनरूपी चक्ररत्न प्राप्त हुआ,...** आहा..हा..! भगवान पूर्ण आनन्द और पूर्ण मुक्तस्वरूप—ऐसा निर्णय, दृष्टि अनुभव में हुई... आहा..हा..! **अब तो अप्रमत्त भाव से केवलज्ञान ही...** लेगा। वह तो अन्तर में लीन होकर अप्रमत्तभाव में आकर केवलज्ञान लेगा। आहा..हा..! जैसे यह छह खण्ड साधता है, वैसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वह केवलज्ञान प्रगट कर लेगा। अरे! ऐसी बातें अब। परन्तु इसमें करने का क्या? ऐई!

करना यह है, प्रभु! अन्दर वस्तु जो है परमात्मा त्रिलोकनाथ ने अन्दर देखी है, जो आत्मतत्त्व लहलहता अनन्त गुण का पिण्ड, प्रभु, आहा..हा..! उसे जिसने सम्यग्दर्शन द्वारा पकड़ा... आहा..हा..! जिसे धर्म की शुरुआत प्रगट हुई, वह सम्यग्दर्शनरूपी चक्ररत्न पका, अब वह चक्ररत्न फिर छह खण्ड साधे बिना नहीं रहेगा। इसी प्रकार चक्रवर्ती चक्र आत्मा को पका, वह अप्रमत्तदशा और केवलज्ञान लिए बिना नहीं रहेगा। आहा..हा..! यह तो सब बातों में अन्तर है। **केवलज्ञान ही लेगा**। आहा..हा..! यह २४६ (बोल पूरा हुआ।)

कितना ही तो शास्त्र की भाषा का अभ्यास होना चाहिए। यह तो कॉलेज है। तीर्थंकर तीन लोक के नाथ की कॉलेज है। भाई! यह तो इसका तात्पर्य पूरे सार की कॉलेज

है। इसलिए कुछ शास्त्र भाषा (आनी चाहिए)। द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? विकार क्या? नव तत्त्व सुनकर जिसे विचार भी नहीं आता, उसे यह अबद्ध है, मुक्त है, वह क्या है? किस देश की भाषा है? यह तो कहीं जैनधर्म होगा? हम तो जैनधर्म में यह समझते हैं कि सामायिक करना, प्रोषध करना, प्रतिक्रमण करना, कन्दमूल नहीं खाना, ब्रह्मचर्य छह परबी पालना, रात्रि को चौविहार (चतुर्विध आहार त्याग करना)। आहा..हा..! बापू! यह सब क्रियायें राग की हैं। तुझे खबर नहीं। यह तो संसार की वृद्धि का कारण है। आहा..हा..!

अन्दर में भगवान पूर्णानन्द प्रभु का अनुभव में निर्णय होने से पूर्ण पद की प्राप्ति किये बिना नहीं रहता। दूज उगी, वह पूर्णिमा होगी ही होगी। आहा..हा..! दूज, दूज। इसी प्रकार भगवान आत्मा की सम्यग्दर्शनरूपी दूज उगी... आहा..हा..! जागृत हुआ, भगवान! दया, दान, रागादि के विकल्प हैं, उनमें अज्ञानी अनादि से एकत्वबुद्धि से सो रहा है। उस एकत्व को तोड़कर स्वभाव की एकता जहाँ की तो अनन्त गुण की पर्याय व्यक्त प्रगट हो गयी। आहा..हा..! किस प्रकार की अवस्था? बापू! वीतरागमार्ग, जिनेश्वर का मार्ग अभी तो लोगों ने लोप कर दिया है। ऐसा मान बैठे हैं कि हम जैन हैं। धूल में भी जैन नहीं। जैन किसे कहना? इसकी खबर ही नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : अब बहुत बाहर आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..!

आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है। अनन्त काल में न हुआ हो ऐसा, चैतन्यतत्त्व में जाकर जो दिव्य दर्शन हुआ, वही अलौकिक दर्शन है। सिद्धदशा तक की सर्व लब्धियाँ शुद्धात्मानुभूति में जाकर मिलती हैं॥२४७॥

२४७वाँ बोल। **आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है।** आहा..हा..! भगवान के दर्शन, साधु के दर्शन, वह तो सब शुभभाव पुण्य है; धर्म नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? **आत्मसाक्षात्कार ही अपूर्व दर्शन है।** भगवान शुद्ध चैतन्यघन, पर्याय में साक्षात् प्रगट होता है। आहा..हा..! आत्मा का साक्षात् होना, पर्याय में उसके दर्शन होना... आहा..हा..! वर्तमान पर्याय में / अवस्था में आत्मा के दर्शन होना.. आहा..हा..! चैतन्य चक्रवर्ती भगवान बादशाह, सम्यग्ज्ञान में उसके दर्शन होना, वह अपूर्व है। वह कभी की

नहीं, ऐसी अपूर्व चीज़ है। आहा..हा..! बाकी तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा तो अनन्त बार की। उसमें कोई धर्म नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

आत्मसाक्षात्कार.... – राग से भिन्न आत्मा का अनुभव (होना) कि यह आत्मा पूर्ण आनन्द है, ऐसा भान (हुआ), वह अपूर्व दर्शन है। वह तो अपूर्व दर्शन है। पूर्व में कभी नहीं किया। अनन्त... अनन्त.. अनन्त काल (हुआ), मुनि दिगम्बर सन्त भी अनन्त बार हुआ परन्तु आत्मा के दर्शन नहीं किये। समझ में आया? गजब बात, भाई! **अनन्त काल में न हुआ हो ऐसा,...** अनन्त काल में नहीं हुआ हो ऐसा, **चैतन्यतत्त्व में जाकर...** भगवान ज्ञायकस्वरूप में जाकर **जो दिव्य दर्शन...** हुए। आत्मा के दिव्य दर्शन हुए... आहा..हा..! **वही अलौकिक दर्शन है**। आहा..हा..!

वैसे तो भगवान के दर्शन भी अनन्त बार किये। साक्षात् तीन लोक के नाथ तीर्थंकर, समवसरण में भगवान विराजते हैं, वहाँ महाविदेह में अनन्त बार जन्मा है। मनुष्य क्षेत्र के पैंतालीस लाख योजन में एक कण भी खाली नहीं, जहाँ अनन्त बार जन्मा और मरा नहीं। अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल... महाविदेहक्षेत्र में भी अनन्त बार जन्मा और मरा है। जहाँ तीर्थंकर की उपस्थिति सदा होती है। आहा..हा..! उस भगवान के समवसरण में भी वहाँ से अनन्त बार गया है, परन्तु वह तो कोई शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं। आहा..! आत्मदर्शन नहीं किया, पर के दर्शन किये। आहा..हा..! सरस्वती भगवान की वाणी, लो न! उसके दर्शन किये, उसमें क्या आया, वह तो शुभभाव है। आहा..हा..! वह कोई आत्मदर्शन नहीं। आहा..हा..!

चैतन्यतत्त्व में जाकर जो दिव्य दर्शन... हुए। आहा..हा..! **वही अलौकिक दर्शन है**। लौकिक से (भिन्न) लोकोत्तर आत्मदर्शन है। आहा..हा..! **सिद्धदशा तक की सर्व लब्धियाँ...** आहा..हा..! क्या कहते हैं? बाद में मुनिपना, केवलज्ञान, सिद्धदशा। णमो सिद्धाणं-परमात्मा की सिद्ध की दशा (प्रगटे), वह **सर्व लब्धियाँ शुद्धात्मानुभूति में जाकर मिलती हैं**। आहा..हा..! वह शुद्ध भगवान आत्मा का अनुभव हुआ, उसमें सब पर्याय प्राप्त होती है। आहा..हा..! समझ में आया? देव, गुरु और शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, यह सब राग है। आहा..हा..! राग से सिद्धपद की प्राप्ति नहीं होती। आहा..हा..! ऐसा करना कठिन। शुद्धात्मानुभव, पवित्र मुक्तस्वरूप भगवान की अनुभूति (हुई)... आहा..हा..! उसमें सिद्धपद आदि की पर्यायें अन्दर समाहित हो जाती हैं। शुद्धात्मा का अनुभव करते-करते

सिद्धपद हो जाता है। वह सिद्धपद, शुद्धात्मा का अनुभव है। किसी राग की क्रिया करते-करते होगा (ऐसा नहीं) । आहा..हा.. ! ऐसी कठिन बात ! समझ में आया ?

आत्मदर्शन से सिद्धदशा तक की दशा की लब्धि-प्राप्ति **शुद्धात्मानुभूति में...** आहा..हा.. ! **जाकर मिलती हैं।** आहा..हा.. !

विश्व का अद्‌भुत तत्त्व तू ही है। उसके अन्दर जाने पर तेरे अनन्त गुणों का बगीचा खिल उठेगा। वहीं ज्ञान मिलेगा, वहीं आनन्द मिलेगा; वहीं विहार कर। अनन्त काल का विश्राम वहीं है ॥२४८॥

२४८वाँ बोल। **विश्व का अद्‌भुत तत्त्व तू ही है।** इस विश्व में अद्‌भुत तत्त्व जो है, वह तू आत्मा स्वयं ही है। आहा..हा.. ! दया, दान, भक्ति, व्रत, तत्त्व वह तो पुण्य / विकारी तत्त्व है। अन्दर अपनी चीज़ है, वह अद्‌भुत चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! है ?

विश्व का.... जगत का **अद्‌भुत तत्त्व...** आहा..हा.. ! एक समय की पर्यायरहित त्रिकाली तत्त्व अद्‌भुत तत्त्व है। आहा..हा.. ! सादी भाषा, सरल भाषा। तब वह वहाँ ... उस देश में तो हम गये भी नहीं। महाराष्ट्र कहलाता है न वह ? वहाँ गये नहीं, यहाँ गये थे।

मुमुक्षु : जालना।

पूज्य गुरुदेवश्री : जालना गये नहीं, परन्तु यहाँ गये थे - जलगाँव... जलगाँव.. जलगाँव... भाई का। वहाँ गये हैं परन्तु उस ओर आया कहते हैं। वहाँ से सौ मील है। ऐसा भाई कहते थे। अब यह पुस्तक वहाँ पहुँची है और दिगम्बर साधु, उन्होंने.... आहा..हा.. ! चार सौ पुस्तकें मँगायी हैं। आज पत्र आया है। बहिनश्री के वचनामृत चार सौ भेजो। लो, ऐसी यह पुस्तक है। दिगम्बर साधु द्रव्यलिंगी, हों ! वह तो स्वयं हमारा पढ़कर कहते हैं कि हम साधु नहीं, हम साधु नहीं। आहा..हा.. ! आप जो कहते हो, वह चीज़ हमारे पास नहीं है। नग्न-मुनि वह, हों ! वस्त्रवाले तो कोई मुनि ही नहीं। वे तो सब मिथ्यादृष्टि हैं। आहा..हा.. ! वहाँ तुम्हारे वे हैं न ? कैसे ? तीन... वाला। आहा..हा.. ! श्वेताम्बर है। यह तो मार्ग अलग, भाई ! आहा..हा.. ! सनातन वीतराग दर्शन, वह यह दिगम्बर दर्शन है। बाकी तो सब वाड़ा बाँधकर धर्म से भ्रष्ट होकर नया वाड़ा बाँधा है। आहा..हा.. ! कठिन लगे, भाई ! आहा..हा.. ! सत्य कभी सुना नहीं।

यहाँ कहते हैं **विश्व का अद्‌भुत तत्त्व तू ही है**। भगवान, वे नहीं। तू ही अद्‌भुत तत्त्व है। आहा..हा..! भगवान आत्मा अद्‌भुत तत्त्व। आहा..हा..! चैतन्य अमृत का सागर भगवान अन्दर। अरे! कैसे बैठे? आहा..हा..! गज ही जहाँ उल्टा है, वहाँ इसे माप कैसे बैठे? बहुत बार दृष्टान्त देते हैं। रविवार था, उसका पिता पचास वार साटन (रेशमी वस्त्र) लेकर आया। आलपाक (साटन) होती है न कपड़ा, वह साटन पचास वार लेकर आया। रविवार का दिन था। लड़के को विद्यालय से अवकाश था। उसका पिता कहता है, भाई! देखो, अपने लड़के के लिये पचास वार लाये हैं। कोट बनाना है।

मुमुक्षु : पचास हाथ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पचास हाथ। वार नहीं। उसका आठ वर्ष का लड़का मापते-मापते (बोला) बापू! यह पचास हाथ नहीं, यह तो सौ हाथ है। भाई! तेरे हाथ काम नहीं आते। यह माप करने में तेरे हाथ काम नहीं आते। आहा..हा..! इसी प्रकार अज्ञानी आत्मा का माप करने जाता है, अज्ञान से, वह माप काम नहीं आता। आहा..हा..! वह तेरे गज ही खोटे हैं। ऐई! दया, दान और व्रत करते-करते भगवान मिलेगा, यह तेरा गज ही खोटा है। आहा..हा..! आहा..हा..!

विश्व का अद्‌भुत तत्त्व तू ही है। आहा..हा..! **उसके अन्दर जाने पर...** अन्तर आनन्द का नाथ बड़ा महल अन्दर पड़ा है। आहा..हा..! **अन्दर जाने पर तेरे अनन्त गुणों का बगीचा खिल उठेगा**। आहा..हा..! अनन्त गुण भगवान में-प्रभु में-आत्मा में पड़े हैं। उसमें अन्दर जा तो खिल जायेंगे। आहा..हा..! जितने गुण हैं, वे पर्याय में खिल जायेंगे। आहा..हा..! जैसे कमल खिले, वैसे तेरे (गुण) खिल जायेंगे। आहा..हा..! कमल तो लाख पंखुड़ियों का होता है। गुलाब-गुलाब हजार पंखुड़ियों का, लाख पंखुड़ियों का गुलाब होता है। गुलाब का फूल नहीं? यह भगवान आत्मा तो अनन्त पंखुड़ियों का गुलाब है। आहा..हा..! उस चीज़ के समीप में जाने पर... आहा..हा..! **गुणों का बगीचा खिल उठेगा**। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त गुण पर्याय में विकसित हो जाते हैं। आहा..हा..! इसका नाम समकित है।अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी, हों!

वहीं ज्ञान मिलेगा,... शास्त्र में ज्ञान खोजने जायेगा परन्तु वहाँ ज्ञान नहीं है। आहा..हा..! पन्ने फिराने और पन्नों को पैर लगे (ढोंक दे), वहाँ ज्ञान कहाँ है? ज्ञान तो यहाँ अन्दर है। कहो, पण्डितजी! पन्ने और शास्त्र तो जड़ हैं, पन्ने-शास्त्र तो जड़ हैं। वहाँ खोजने

जायेगा तो वहाँ से कहाँ ज्ञान मिलेगा ? जहाँ अन्दर ज्ञानस्वरूप भगवान है... आहा..हा.. ! **वहीं ज्ञान मिलेगा, वहीं आनन्द मिलेगा;...** वहाँ ही आनन्द मिलेगा। आहा..हा.. ! स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, पैसा, धूल में आनन्द माने और मजा है, वह व्यभिचारी मूढ़ है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? आनन्द तो अन्तर में है। आहा..हा.. !

मृग की नाभि में कस्तूरी, उस मृग को कस्तूरी की कीमत नहीं... इसी प्रकार भगवान आत्मा में आनन्द है, मृग जैसे अज्ञानियों को उस आनन्द की खबर नहीं। बाहर में पैसे में, स्त्री में, पुत्र में... यह रूपवान स्त्री मिली, पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ हुए, पच्चीस हजार, लाख के बंगले बनाये। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : पच्चीस हजार में बंगला नहीं बनता।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधारण मनुष्य बनावे तो बने। परन्तु अभी तो... चालीस लाख का बंगला है न, गोवा में ! अपने हैं न शान्तिलाल खुशाल ? पानासणा के। हम जहाँ उतरे थे, वह सत्तर लाख का था मुम्बई में। आमोदवाले हैं न ? हमारे पालेज के पास आमोद है न ? गुजरात में, वहाँ के रमणीकभाई हैं। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं, वहाँ उनके मकान में उतरे थे। समुद्र के किनारे सत्रह लाख का तो एक मकान है। सत्रह लाख का।

मुमुक्षु : देखकर मन होता है न कि ऐसा होवे तो ठीक।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। वहाँ मकान मिट्टी का। आहा..हा.. ! उसमें देह छूटने का काल आया और हाय.. हाय.. इसमें से जाना है। वह पलंग में सो रहा हो और ऊपर हवा.... क्या कहलाता है ? पंखा रखे। आहा..हा.. ! वह मूढ़ है। आहा..हा.. ! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता। मुझे चैन नहीं है ? कहाँ जाना ? क्या करना ? ऐसा सब अन्दर हो, वहाँ अन्दर पीड़ा का पार नहीं होता और देह छूटने का... आहा..हा.. ! डबल निमोनिया हो। ऐसे देखने जाओ तो अन्दर में चिल्लाने लगे। आहा..हा.. ! अब उसमें से निकलकर जाना, बापू ! आहा..हा.. !

यहाँ कहते हैं, वह तो अनन्त गुण का बगीचा प्रभु अन्दर है। अरे ! कैसे बैठे ? उसमें एकाग्र होकर अन्दर में जाये तो बगीचा खिल जाता है। **वहीं ज्ञान मिलेगा, वहीं आनन्द मिलेगा; वहीं विहार कर।** विहार अर्थात् वहाँ गति कर। आहा..हा.. ! वहाँ अन्दर में विचर, वहाँ जा। आहा.. ! अरे ! यह क्या होगा ? अन्दर में अन्तर आत्मा विराजमान है। आहा..हा.. !

वहीं विहार कर। ४१३ गाथा आती है न? ४१३ (समयसार)। अन्दर आनन्द का नाथ पूर्णानन्द अतीन्द्रिय गुण का सागर तेरा भगवान विराजता है, वहाँ अन्दर में जा न! बाहर में भटकता है, मूढ़ है। आहा..हा..! जहाँ ज्ञान और आनन्द है, वहाँ जा न! बाहर में कहाँ ज्ञान और आनन्द है? आहा..हा..!

विहार कर। अनन्त काल का विश्राम वहीं है। आहा..हा..! चौरासी लाख के अवतार करते-करते उसका थकान उतारना हो तो विश्राम स्थान वह है। आहा..हा..! यह क्या कहते हैं? बहुत चला हो और फिर थकान लगी हो तो फिर घर में आकर पलंग में पड़े। हा..शा..। इसी प्रकार चौरासी के अवतार कर-करके, प्रभु! तू थक नहीं गया? वह थकान उतारने का स्थान तो प्रभु अन्दर गुणस्वरूप प्रभु है, वहाँ विश्राम ले तो थकान उतरेगी। आहा..हा..! है?

अनन्त काल का विश्राम... अनन्त-अनन्त काल हुआ। आहा..हा..! भवभ्रमण। यह भव.. यह भव.. इसके पहले भव.. यह भव.. यह भव.. यह भव.. अनन्त-अनन्त भव से दु:खी प्राणी, भटकता भ्रमता, चैतन्य मुसाफिर अनन्त काल में परिभ्रमण करता है। उसका स्थान उतारने का स्थान तो तू है। आहा..हा..! **विश्राम वहीं है।** आहा..हा..! वहाँ दृष्टि करके स्थिर होना, भगवान! वह तेरा विश्रामस्थल है। आहा..हा..!

तू अन्तर में गहरे-गहरे उतर जा, तुझे निज परमात्मा के दर्शन होंगे। वहाँ से बाहर आना तुझे सुहायेगा ही नहीं॥२४९॥

२४९वाँ बोल। **तू अन्तर में गहरे-गहरे उतर जा,...** गहरा अर्थात् गम्भीर। गहरे-गहरे जा। आहा..हा..! जहाँ भगवान तत्त्व विराजता है, वहाँ अन्दर में गहरे-गहरे जा। आहा..हा..! और यह क्या? **तू अन्तर में गहरे-गहरे उतर जा,...** गम्भीर होकर अन्दर जा। आहा..हा..! आनन्द का सागर प्रभु तेरा नाथ विराजता है न! आहा..हा..! वहाँ गहरे-गहरे जा। राग को छोड़, पर्याय को छोड़ और अन्दर जा। आहा..हा..! अरे! ऐसा धर्म कैसा? ऐसा जैनधर्म होगा? ऐई! बापू! जैनधर्म ही यह है। बाकी सब जैनधर्म नहीं, अन्यमति के अज्ञानधर्म है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

तुझे निज परमात्मा के दर्शन होंगे। आहा..हा..! भोंयरे में गहरा जा तो वहाँ प्रतिमा

विराजमान है। उसी प्रकार भगवान आत्मा वर्तमान पर्याय को अन्तर में गहरे-गहरे ले जाने से, तुझे परमात्मस्वरूप भगवान के दर्शन होंगे। अरे रे! यह कैसा दर्शन ? यहाँ तो सबेरे भगवान की प्रतिमा के दर्शन करे, हो गया जाओ। मुनि को आहार दे, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति की, जाओ। वहाँ कहाँ आत्मा था ? प्रभु! जहाँ है, वहाँ तू जाता नहीं। जहाँ हैं, वहाँ तो तेरी नजर काम करती नहीं। गहरे गये बिना परमात्मा के दर्शन नहीं होते। आहा..हा..!

परमात्मा के दर्शन होंगे। अन्दर में। अरे! यह क्या चीज़ होगी ? यह क्या कहते हैं ? भाई! अन्दर प्रभु विराजता है। उसमें प्रभुत्व नाम का एक गुण है। आत्मा में एक ईश्वर नाम का गुण है। कोई ईश्वर कर्ता-वर्ता है, ऐसा है नहीं, परन्तु तुझमें एक ईश्वर नाम का गुण है। जैसे ज्ञान, आनन्द (गुण है), वैसे ईश्वर नाम का गुण है, तो प्रत्येक गुण में ईश्वरता आयी। आहा..हा..! ज्ञान ईश्वर, दर्शन ईश्वर, शान्ति, वीतरागता ईश्वर। कर्ता, कर्म आदि ईश्वर। इस ईश्वरता के तुझे दर्शन होंगे। तू तेरा ईश्वर है। आहा..हा..! ऐसी बात!

वहाँ से बाहर आना तुझे सुहायेगा ही नहीं। आहा..हा..! क्या कहते हैं ? अन्दर में जा तो तुझे बाहर में आना नहीं रुचेगा, दु:ख लगेगा। आहा..हा..! अन्तर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के गुण का गोदाम, शक्ति का संग्रहालय, अनन्त गुण का संग्रह का आलय / स्थान, प्रभु। आहा..हा..! अरे! कैसे जँचे ? एक बीड़ी ठीक से पीवे वहाँ मानो तलब चढ़े और मानो... आहा..हा..! सिर ठीक आया। चाय-वाय ढ़ेर सेर उकाला पीकर आवे, तो व्याख्यान में ठीक पड़े। नहीं तो कहे आज चाय पीकर नहीं आया तो मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। अरे रे! ऐसी तो मूर्खायी के लक्षण! डेढ़ पाव सेर चाय पीकर आवे, तब सुनने में मस्तिष्क ठिकाने रहे तो चाय का तो बड़ा हौज करके अन्दर डाले, तब तो तुझे क्या होता होगा ? आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, यह **वहाँ से बाहर आना तुझे सुहायगा ही नहीं।** आहा..हा..! तेरे आनन्द के नाथ के दर्शन होने पर, आनन्द का वेदन होने पर, तुझे बाहर निकलना नहीं रुचेगा। विकल्प आयेगा, परन्तु वह तुझे दु:खरूप लगेगा। आहा..हा..! दया, दान के, व्रत के विकल्प आयेंगे परन्तु तुझे दु:खरूप लगेंगे। आहा..हा..! वहाँ (अन्दर) जाकर तुझे आनन्द होगा। बाहर आना तुझे रुचेगा नहीं। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-५, गुरुवार, दिनाङ्क २१-०९-१९७८
वचनामृत-२४९ से २५४ प्रवचन-९६

वचनामृत, २४९ बोल, फिर से लेते हैं। **तू अन्तर में गहरे-गहरे उतर जा,...** अर्थात्? भेदज्ञान के निर्मल अभ्यास द्वारा पर से पृथक् पड़कर अन्तर में उतर जा। आहा..हा..! अन्तर वस्तु है, वह कोई बाह्य लक्ष्य से प्राप्त हो, ऐसी नहीं है और वह भी ध्यान में प्राप्त हो सके, ऐसी है। आहा..हा..! ऐसी बात है। बाह्य से कोई धार ले और बात कर ले, ऐसे प्राप्त नहीं होती, कहते हैं। आहा..हा..! अन्दर में गहरे-गहरे ध्रुव में एकाग्र हो, उस ध्यानकाल में **तुझे निज परमात्मा के दर्शन होंगे**। आहा..हा..! मक्खन है। अन्तरस्वरूप भगवान चैतन्य भगवान... कल ३१ गाथा में बहुत अधिक आयेगा। यहाँ संक्षिप्त भाषा में ऐसा कहा है कि जहाँ अतिसूक्ष्म तत्त्व चैतन्य पड़ा है... आहा..हा..! ज्ञायकभाव जहाँ ध्रुवरूप से पड़ा है, वहाँ अन्तर में जा। आहा..हा..! ऐसा कठिन लगे लोगों को।

तुझे निज परमात्मा के दर्शन होंगे। पर परमात्मा नहीं। आहा..हा..! निज परमस्वरूप भगवान परमात्मस्वरूपी है। आहा..हा..! उसके तुझे अन्तर में दर्शन होंगे। आहा..हा..! अब ऐसी बात कठिन पड़े। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की यह विधि है। **वहाँ से बाहर आना तुझे सुहायेगा ही नहीं**। अन्दर आनन्द का सागर, प्रभु! अन्तर के अनुभव में आने पर... आहा..हा..! वहाँ से बाहर आना सुहायेगा नहीं, रुचेगा नहीं। आहा..हा..! ऐसी चीज़ परमानन्द का धाम पड़ी है। आहा..हा..! उतना तो यह शुरुआत करके... क्योंकि (बाद में) मुनि का आता है न?

मुनियों को अन्तर में पग-पग पर—पुरुषार्थ की पर्याय-पर्याय में—पवित्रता झरती है॥२५०॥

और मुनियों को तो, अब लेना वापस। आहा..हा.. ! जो सच्चे मुनि हैं। आहा..हा.. ! **अन्तर में पग-पग पर....** पर्याय-पर्याय में। पग-पग पर अर्थात्? पर्याय-पर्याय में। आहा..हा.. ! मुनि को तो अन्तर आत्मा के चारित्रसहित की ध्यान की दशा प्रगट हुई है। आहा..हा.. ! उन्हें तो **पुरुषार्थ की पर्याय-पर्याय में—पवित्रता झरती है।** आहा..हा.. ! उन्हें तो वर्तमान पर्याय में (पवित्रता झरती है) । कल यह विषय आयेगा। शरीरपरिणाम को प्राप्त जो इन्द्रियाँ। पर्याय को प्राप्त, यह इन्द्रियाँ। इस शरीर के परिणाम को प्राप्त है न ? उन्हें, अन्तर में जाने पर अति सूक्ष्म चैतन्य के अवलम्बन के बल से जो आनन्द की दशा प्रगट होती है, उसे उग्ररूप से स्वभाव का आश्रय लेकर जिसने मुनिपना प्रगट किया है। आहा..हा.. ! अनाकुल आनन्द के धाम प्रभु पर अनुभव होकर, जिसका उग्र आश्रय लेकर चारित्रदशा प्रगट हुई है.. आहा..हा.. ! उसे तो पर्याय-पर्याय में आनन्द की दशा झरती है। आहा..हा.. ! ऐसी दशा है। है ?

पर्याय-पर्याय में—पवित्रता झरती है। आहा..हा.. ! शुद्धि है, उससे भी शुद्धि बढ़ती जाती है। आहा..हा.. ! गहरे उतरते हों, यह सम्यग्दर्शन हुआ और फिर अन्दर उग्र आश्रय लेकर जो चारित्र हुआ, उसे निर्मलता समय-समय में शुद्धता बढ़ती है। बापू! ऐसा मार्ग है। आहा..हा.. ! यह मुनिपना उसे कहते हैं और सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि अन्दर ध्रुव के तल में जाकर... आहा..हा.. ! तल में से पाताल का पानी लावे।

हमारे वहाँ छोटी उम्र में 'कालूभार' बड़ी नदी है न ? वहाँ बड़ा कुँआ है। तो सब जवान जाते हैं। हम तो छोटे लड़के थे, इसलिए हम तो देखते। हम कुछ पड़ते नहीं। पानी में जाकर थाह ले आवे, फिर सिर बाहर न कर सके। उल्टा पानी होता है न ? नीचे जाकर ऐसा कहे कि मैं ठेठ नीचे जा आया हूँ, देखो! कंकरी हाथ में (बतावे) ।

मुमुक्षु : हमें गहरे उतारो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! पाताल कुँआ अतीन्द्रिय आनन्द का धाम प्रभु पड़ा है। आहा..हा.. ! उस पाताल में जाकर निर्मल पर्याय को बाहर ला। यह तो वहाँ देखा हुआ है, हों! परन्तु यह तो ७५ वर्ष पहले की बातें हैं। हम तो छोटी उम्र के लड़के थे, इसलिए देखते। कुँए में गिरे कौन ? और कुँए में चारों ओर नाग बैठे हों। वे अन्दर पड़े, इसलिए नाग काटे नहीं। दूर रह जाये। फिर बाहर निकल जाये। आहा..हा.. ! इसी प्रकार अन्तर आनन्द का बहुत गहरा-गहरा कुँआ है। अन्तर में गहरे जा। तुझे बाहर

आना नहीं रुचेगा और मुनि को तो अन्तर में समय-समय में आनन्द की धारा बहती है। आहा..हा..! उसे मुनिपना कहते हैं। अरे! क्या हो? भाई! यह २५० (बोल पूरा) हुआ। पवित्रता झरती है, हों! राग और महाव्रत का विकल्प, वह तो पर रह गया। आहा..हा..!

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े॥२५१॥

अब २५१। महासिद्धान्त। डेढ़ लाइन में भी...

द्रव्य उसे कहते हैं... आहा..हा..! द्रव्य अर्थात् आत्म भगवान पूर्णानन्दस्वरूप **द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये...** जिसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कार्य के लिये, आहा..हा..! **द्रव्य उसे कहते हैं...** आहा..हा..! वस्तु भगवान आत्मा **द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये...** जिसकी निर्मल दशा प्रगटाने के लिये। आहा..हा..! है? **दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े।** आहा..हा..! कि राग की मन्दता हो या शरीर की संहननता मजबूत हो, ऐसी वहाँ जरूरत नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! वज्र का बिम्ब भगवान अन्दर पड़ा है न? आहा..हा..! **जिसके कार्य के लिये...** बहुत सूक्ष्म बात, बापू!

यह तो जन्म-मरण रहित की बातें हैं, बापू! बाकी अनन्त-अनन्त काल में ऐसे के ऐसे कर-करके मर गया। पूरे दिन पाप और पाप के पोटले। धर्म तो है नहीं, पुण्य भी नहीं। पूरे दिन कमाना, स्त्री-पुत्र सम्हालना... मात्र पाप के पोटले। आहा..हा..! अब इसे पुण्य भी नहीं, वहाँ धर्म तो कहाँ है? आहा..हा..! परन्तु कोई हमेशा दो-चार घण्टे सत्समागम रखे, श्रवण-मनन करे तो उसे शुभभाव का पुण्य भी हो। धर्म नहीं। आहा..हा..! धर्म के लिये, द्रव्य के धर्म के लिये, द्रव्य के कार्य के लिये यह राग की मन्दता हो तो कार्य हो अथवा शरीर की अनुकूलता हो तो (हो), ऐसी किसी परद्रव्य के साधन की राह नहीं देखनी पड़ती। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

द्रव्य की द्रव्यदृष्टि हुई, तो वह द्रव्य उसे कहते हैं कि उसके कार्य के लिये परसाधन की राह नहीं देखनी पड़ती। आहा..हा..! कि इतनी खाने-पीने की सुविधा हो, निवृत्ति हो, अमुक हो तो आत्मा का कार्य हो। यह साधन-वाधन हो। लड़के (हों और), निवृत्ति मिले तो अन्दर आत्मा का कार्य हो, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अरे

रे! चौरासी के अवतार में डूब कर अनादि से मर गया है। वह दु:खी है। सेठिया अरबोंपति और राजा, वे भिखारी दु:खी हैं। सब भिखारी हैं। पाव माँगे, यह पैसा, स्त्री मिले, लड़का मिले... बड़ा भिखारी है, बड़ा माँगनेवाला है। आहा..हा..! अन्तर आनन्द की लक्ष्मी का भण्डार, ऐसे चैतन्य भगवान की लक्ष्मी की जिसे कीमत नहीं। आहा..हा..! जहाँ है वहाँ माँगता नहीं। शान्तिभाई! कहाँ गये तुम्हारे मधुभाई? वे पैसे के लिये वहाँ हांगकांग भटकते हैं। आहा..हा..!

यह प्रभु कहते हैं। प्रभु! तू कौन है? कि मैं परमात्मस्वरूप हूँ और मेरे परमात्मस्वरूप के कार्य की पर्याय के कार्य के लिये अन्य द्रव्य की अथवा भाई! देव-गुरु-शास्त्र मिले तो मेरा यह कार्य हो, (ऐसा नहीं है)। आहा..हा..! ऐसी चीज़ है। **द्रव्य उसे कहते हैं...** वस्तु.. वस्तु.. वस्तु उसे कहते हैं कि जिसकी पर्याय के निर्मल कार्य के लिये अन्य तत्त्व और अन्य द्रव्य की-साधन की आवश्यकता न पड़े। ऐसा यह प्रभुत्वशक्ति से भरा हुआ भगवान है। जिसकी अखण्डता और स्वतन्त्रता के लिये दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

पहले श्रद्धा में इसका निर्णय तो करे कि मार्ग तो यह है। लाख तेरी क्रिया कर और क्लेश कर और करोड़ों का दान करे, लाखों मन्दिर बनावे, इसलिए आत्मा में कुछ कार्य हो, वह है नहीं।

मुमुक्षु : अच्छे संयोग तो मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे भी नहीं होता, यहाँ तो यह कहते हैं। मिले भले ही। अनन्त बार समवसरण मिला। आहा..हा..! तीन लोक का नाथ महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वहाँ भी अनन्त बार जन्म हुए हैं। समवसरण में भी अनन्त बार गया है परन्तु अन्तर के कार्य के लिये बाहर के निमित्त के साधन की आवश्यकता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अन्तर वस्तु है, उसका स्वीकार करने पर उस कार्य के लिये किसी कारण की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, ऐसा कहते हैं। वह स्वयं ही कारणरूप भगवान है। उसमें से कार्य आता है। आहा..हा..! ऐसा काम कठिन पड़े। प्रभु! मार्ग यह है। आहा..हा..!

देखो न, कल की बात सुनी है। आहा..हा..! बाबूभाई के काकाजी नहीं? आहा..हा..! इतना जरा दाग पड़ा। कौन सी अंगुली? टचली (छोटी) अंगुली। ऐसे काला दाग। वहाँ

तो आधे घण्टे में सड़ गया। मूल बात तो यह है कि खून का घूमना वहाँ रुक गया। एकदम रुक गया। अटका एक साथ ये अटक गया। वह सड़ गया। तुरन्त आधे घण्टे में, दो घण्टे हुए, वहाँ यहाँ तक सड़ गया। आहा..हा..! दवाखाना जाकर डॉक्टर से ऐसा कहा, देखो यह देह। आहा..हा..! काट डालना पड़ा। करोंत होगी न? आहा..हा..! लो! यह देह। अब उससे सुख मानना, (यह विपरीतता है)। आहा..हा..!

प्रभु! तू उससे भिन्न है। वह जहरीला तत्त्व भले ही उसमें भरा, परन्तु तेरा अमृत का सागर तो उसके किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं लेता। आहा..हा..! कि शरीर निरोगता हो, तो ही आत्मा सम्यग्दर्शन का कार्य कर सके, ऐसा है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? यह बात तो तब हुई थी। (संवत्) १९९० के वर्ष में भाई थे न? 'काँप' वाले नहीं? वे कीरचन्दभाई। पहले गाँधी की लाईन का सब था। फिर तो व्यक्ति बदल गया। फिर बाहर जंगल जाते समय साथ में थे। १९९० के वर्ष की बात है। वे कहे, महाराज! तुम धर्म की बात करते हो, परन्तु पेट में रोटियाँ न हो और चूहे दौड़ते हों (तीव्र क्षुधा लगी हो) किस प्रकार धर्म करे? कुछ रोटियाँ, दाल-भात मिले अन्दर तो (काम हो)। अरे भाई! रोटियाँ दाल-भात मिले और फिर जब तक पचे नहीं, तब तक उसे (धर्म) किस प्रकार करना? और पचने के बाद जंगल (दस्त) न उतरे, तब तक क्या करना? व्यक्ति बहुत अच्छा था। कीरचन्दभाई था। दशाश्रीमाली था। अपने पोपटभाई थे न, उसके सब परिचित। बॉर्डिंग में था न? फिर तो एकदम बदल गया। बापू! ऐसा नहीं है। आत्मा के कार्य के लिये आहार पेट में पड़े, (पेट) भरा हुआ हो तो ही आत्मा का कल्याण / सम्यग्दर्शन कर सके, ऐसा है नहीं। आहा..हा..!

सातवें नरक का नारकी, जिसे ३३-३३ सागर (तक) आहार का कण नहीं, पानी की बूँद नहीं। आहा..हा..! वह जीव भी अन्दर में जाता है। आहा..हा..! जन्मे तब से सोलह रोग। भाई! उसने कब देखा है। ऐसी स्थिति में भी पूर्व में सुना था, वह याद आ गया और अन्दर में उतरा। आहा..हा..! वह साधन अनुकूल नहीं, इसलिए आत्मा का कार्य न हो, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! अरे! पहले, दूसरे, तीसरे नरक का परमाधामी उसे बाँधे, बाँधे और पोटला करे लोहे के गरम-गरम धगधगाते, सिर पर घन मारे परन्तु उस समय में अन्दर में उतरे तो समकित प्राप्त कर सकता है। आहा..हा..! यह जरा गरम-गरम लोहे के सरिये के साथ में बाँधा हो। वहाँ तो परमाधामी बनावे। बाँधे, विरोधी को मारे। एक तो

पीड़ा का पार नहीं होता, उसमें वह परमाधानी (मारे)। आहा..हा..! शास्त्र में ऐसा आता है न? वेदना के कारण भी समकित प्राप्त करता है। वह तो लक्ष्य... वेदना का लक्ष्य छोड़ा, इसलिए वेदना से प्राप्त करता है, ऐसा कहने में आता है। वेदना... आहा..हा..! यह स्थिति? जो दुःख सहे न जायें, सुने न जायें, वह दुःख वेदन में आये। आहा..हा..! उस काल में भी अन्दर में जा सकता है, हों! आहा..हा..! उसके कार्य के लिये यह अनुकूलता साधन हो तो जा सके, ऐसा है नहीं। आहा..हा..! यह बात जगत को बहुत कठिन (लगती है)। स्वतन्त्र वस्तु है वहाँ... आहा..हा..! यह **द्रव्य उसे कहते हैं...** आहा..हा..! श्रीपालजी! ऐसी बातें हैं। यह वचनामृत तो तुम्हारे आ गया होगा, पढ़ा है या नहीं? ठीक। आहा..हा..! आत्मपदार्थ -द्रव्य उसे कहते हैं... आहा..हा..! परमात्मस्वरूप आत्मा उसे कहा जाता है कि जिसे अपनी पर्याय के निर्मल धर्म के कार्य के लिये, अन्तर का आश्रय लेने पर, पर के साधन की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। आहा..हा..! पैसा-बैसा कुछ ठीक हो, स्त्री, पुत्र ठीक हो तो अपने कुछ कर सकते हैं, यह बात मिथ्या है - ऐसा कहते हैं। पाँच इन्द्रियाँ ठीक हों, निरोगता हो... शास्त्र में ऐसा आता है। भगवान! जब तक शरीर में जरा न आवे, इन्द्रियाँ हीन न पड़ें... आहा..हा..! व्याधियाँ बाहर दिखायी न दें... आहा..हा..! पाहुड़ में आता है न? श्वेताम्बर में भी आता है। 'जरा जाव न पीलई, वाई जाव वढई, जा इन्द्रिया न हनति।' इन्द्रिया शिथिल न पड़ें। धर्म समावे, उससे पहले धर्म का आचरण करना। यह पामर प्राणी को समझाने के लिये यह बात है। परन्तु ऐसे साधन... आहा..हा..! आवे, इसलिए उस स्थान में न हो सके, (ऐसा नहीं है)। आहा..हा..! आँखों में वह परमाधामी... क्या कहलाता है वह छिड़के? तेजाब। तेजाब बनाकर आँखों में छिड़के। यह साधन ऐसा है, इसलिए अन्दर समकित दर्शन न हो सके, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

अनन्त-अनन्त स्वतन्त्र शक्तियों का सागर है न, प्रभु! तेरे कार्य के लिये पर के कार्य की सहायक की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! दूसरे प्रकार से कहें तो वस्तु में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कार्य के लिये व्यवहाररत्नत्रय का राग हो तो यह हो, ऐसा है नहीं। आहा..हा..! अरे रे! ऐसा काल कब (आवे)? आहा..हा..! यह तो हाथ काटा, पैर काट डालना पड़े, काट डालना पड़े। आहा..हा..! भले वह साधन गया परन्तु आत्मा के कार्य के लिये उस साधन की कोई आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! यह हाथ काट डाले, यह काट डाले। काट डालते हैं। कलकत्ता में मनुष्य को लेकर भिखारी बनावे।

फिर रेकड़ी में लेकर पैसा माँगे। यहाँ से काट डाले। आहा..हा..! रेकड़ी में खींचे और लोगों को दया आवे। भीख माँगे। मैंने नजर से देखा है न?

मुम्बई में एक लड़की थी, उसकी माँ साथ में थी। उससे जरा अलग पड़ गयी, उस लड़की को एक महिला ले गयी। ले जाकर उसकी आँखें फोड़ डाली और फोड़कर भिखारिन बनायी। उसमें उसकी माँ वर्ष-दो वर्ष में निकली और उस लड़की को देखा। अरे! यह तो मेरी लड़की, यहाँ! आहा..हा..! उसे ऐसे जहाँ मिलाती है, वहाँ तो उसके साथ जो महिला थी, वह भाग गयी। आहा..हा..! ऐसे प्रतिकूल साधन हों तो भी आत्मा का कार्य न हो, ऐसा नहीं है - ऐसा कहना है। आहा..हा..! भले आँखें फोड़ दी, भले कान तोड़ डाले हों, शीशा / शीशम डाला हो... आहा..हा..! प्रभु! अन्दर चैतन्य है, उसे तो कोई इन्द्रिय स्पर्श नहीं करती न! आहा..हा..! अरे! परन्तु इस बात का विश्वास कैसे आवे? आहा..हा..! भगवान अन्दर निर्लेप चीज़ पड़ी है न, प्रभु! उसके धर्मकार्य के लिये दूसरे द्रव्य के किसी भी साधन की, राह की आवश्यकता नहीं है। बड़ा सिद्धान्त है। २५१ (बोला पूरा) हुआ।

भेदज्ञान के लक्ष्य से विकल्पात्मक भूमिका में आगम का चिन्तवन मुख्य रखना। विशेष शास्त्रज्ञान मार्ग की चतुर्दिशा सूझने का कारण बनता है; वह सत्-मार्ग को सुगम बनाता है॥२५२॥

भेदज्ञान के लक्ष्य से विकल्पात्मक भूमिका में... आहा..हा..! जब निर्विकल्प न हो और राग से भिन्न पड़कर भेदज्ञान के लक्ष्य से **भूमिका में आगम का चिन्तवन मुख्य रखना।** आहा..हा..! भेदज्ञान के लक्ष्य से, सन्मुखता के लक्ष्य से भूमिका में आगम का चिन्तवन मुख्य रखना। आहा..हा..! तीन लोक के नाथ, जिनवाणी, उसका चिन्तवन रखना। है शुभभाव। समझ में आया? परमात्मा क्या कहते हैं? आगम क्या कहता है? अरे! मेरी बात यह प्रभु क्या कहते हैं? ऐसी विकल्प की भूमिका में परमागम का (चिन्तवन मुख्य रखना)।

आज एक समाचार पत्र आया है। अपने भव्यसागर है न? तुलसी का अणुव्रत का उद्घाटन करते हैं। उसमें उसके हाथ से उद्घाटन कराते हैं। कहो, तेरापंथी तुलसी, अब वह तो मिथ्यादृष्टि है। पत्र आया है। उसके आगे करानेवाला है। दूसरा कोई बड़ा कार्यकर्ता

आनेवाला है और उसका साधु तेरापंथी का है। एक पत्र आया है। अपने प्रति आया है। बीच में इस ओर दूसरा क्या लेखन था? वह तो उसमें पीछे का लेखन।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह। अपने वजुभाई हैं यहाँ या गये? परन्तु वे अनन्तभाई ले गये होंगे, यहाँ दस पुस्तकें दी थी न अपने? बहिनश्री के वचनामृत, उन्होंने मँगाये थे तो देने गये होंगे या लिये। फिर ऐसा कि यह देनेवाला आया, उसने पैसा देकर दिया है या उन्होंने दिया है? ऐसा भव्यसागर का पत्र है। ऐसा कि तुमने दिया, वह तुमने खर्च करके दिया है या उन्होंने मुफ्त भेजा है? यह मुझे खबर नहीं, परन्तु अब यह ४०० जायेंगी, इसलिए खबर पड़ जायेगी। ४०० मुफ्त देते हैं तो दस तो मुफ्त दी ही होंगी, परन्तु मुझे तो दूसरा कहना था कि उसके हाथ से तुलसी मिथ्यादृष्टि ग्रन्थ, उसके अणुव्रत का उद्‌घाटन उसके हाथ से करावे, मार्ग बहुत कठिन, बापू! आहा..हा..! स्थानकवासी धर्म ही गृहीत मिथ्यात्व है और उसमें तेरापंथी। वहाँ अणुव्रत कैसा? मिथ्यादृष्टि को व्रत कैसा?

मुमुक्षु : ....अणुव्रत।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सबको दे। सबको अच्छा स्थापित करे। अणुव्रत से वश करे। किसका अणुव्रत? जहाँ देव-गुरु-शास्त्र सच्चे नहीं। आहा..हा..! उसकी खबर नहीं। क्या हो? बाहर की चमक में लोग, मनुष्य अधिक इकट्ठे होते हैं। हा.. हो.. हा.. हो..!

मुमुक्षु : आपने कहा न, आज सपना आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : सपना आया, ऐसा नहीं कहा। पत्र आया है। पत्र आया है भव्यसागर का पत्र आया है। ऐसा कि मुझे यहाँ ग्यारह पुस्तकें देने आये, अनुभाई गये होंगे। यह उन्होंने पैसा खर्च करके भेजा या लोगों ने वहाँ से दिया? इसमें स्पष्टीकरण नहीं किया, इसलिए स्पष्टीकरण चाहते हैं, परन्तु यह तो अपने चार सौ पुस्तकें जायेंगी। मुझे तो दूसरा कहना है। इस भव्यसागर के हाथ से यह उद्‌घाटन करेंगे। उसके पास जाना नहीं चाहिए। आहा..हा..! काम ऐसा बहुत कठिन है, परन्तु बाहर में हो.. हा..हो..। कितने लोग इकट्ठे हुए? उसमें इसने उद्‌घाटन किया। अरे! भाई! उद्‌घाटन तो अन्दर तेरा कर न। आहा..हा..! राग की एकता का ताला लगाया है, प्रभु! तूने। वह ताला तोड़ और खोल अब। आहा..हा..! वह खोलने में दूसरे की आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! विकल्पात्मक भूमिका में आया

हो, तब भेदज्ञान के लक्ष्य से आगम को मुख्य रखना। आगम, वह यह आगम, हों! आहा..हा..! श्वेताम्बर के आगम, वे आगम ही नहीं हैं। कठिन काम।

मुमुक्षु : दूसरी कठिन बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन (तो है), क्या हो? भाई!

दिगम्बर सन्तों ने कही हुई बात – आगम, वह आगम परमागम है। उस परमागम को विकल्पात्मक भूमिका में भेदज्ञान के लक्ष्य से तू मुख्य रखना। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! अरे! इस दुनिया को दुःख हो। हमारे धर्म को मिथ्या ठहराते हैं। अरे प्रभु! वस्तु का स्वरूप है, भाई! उसमें तुझे लाभ नहीं होगा। उसका योगफल बहुत खराब आयेगा। अरे भाई! उसे क्या कहना? आहा..हा..! यह तो तीन लोक के नाथ, वीतराग की दिव्यध्वनि में आये हुए आगम की रचना, उसे आगम कहा जाता है। समझ में आया? आहा..हा..! यह तो (सम्प्रदाय के) ३२-४५ (सूत्र) तो सब कल्पित रचे हैं। आहा..हा..! यह आगम की बात, हों! दिगम्बर सन्तों ने कहे हुए समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, ये सब परमागम हैं। वह परमागम है न यह? आहा..हा..! जगत को बहुत कठिन पड़ता है। आहा..हा..!

निर्विकल्प में पड़ा हो, तब तो कोई (विकल्प) है नहीं, कहते हैं। परन्तु विकल्प आया, उस काल में भी तू भेदज्ञान के लक्ष्य से, स्व का लक्ष्य रखकर परमागम का चिन्तवन रखना। आहा..हा..!

मुमुक्षु : भेदज्ञान के लक्ष्य से, यह जरा कठिन बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बिना अकेला-अकेला परलक्ष्य, वह तो अनन्त बार किया। आहा..हा..! ग्यारह अंग अनन्त बार धारण किये। एक-एक अंग के अठारह हजार पद और एक पद के इक्यावन करोड़ श्लोक। उससे क्या हुआ? आहा..हा..! राग से और शरीर से भिन्न भगवान का लक्ष्य करके विकल्पात्मक भूमिका में, उस दशा में परमागम का **चिन्तवन मुख्य रखना।** मुख्य चिन्तवन यह रखना। है तो शुभभाव, परन्तु लक्ष्य है चैतन्य पर। आहा..हा..! कठिन काम।

विशेष शास्त्रज्ञान मार्ग की चतुर्दिशा सूझने का कारण बनता है;... विशेष शास्त्रज्ञान, मार्ग की निर्मलता सूझने का कारण बनता है। आहा..हा..! परलक्ष्यी उस प्रकार की विशेषता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है, सामान्य से विशेष बलवान। परन्तु वह

कौन सा विशेष ? शास्त्र का ज्ञान। विशेष बलवान अर्थात् शास्त्रज्ञान बलवान। यह तो पर की शुद्धि के लिये बलवान कहा। अपनी शुद्धि के लिये परशास्त्रज्ञान कहीं बलवान है ही नहीं। आहा..हा..! कठिन काम, भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है, वह इस प्रकार से है। ऐसा कि आत्मा के लक्ष्य से विशेष परशास्त्र का ज्ञान, भगवान वाणी का होता है तो उसमें तुझे सत्य की निर्मलता सूझेगी। इतनी बात। **विशेष शास्त्रज्ञान मार्ग की चतुर्दिशा...** चारों ओर के पहलुओं का ज्ञान तुझे ख्याल में आयेगा। **वह सत्-मार्ग को सुगम बनाता है।** सत्मार्ग को ख्याल में भलीभाँति सुगम करता है, ऐसा कहते हैं। निमित्त से (कथन) है न ? समझ में आया ?

अब २५३, आहा..हा..! देखो अब २५३।

आत्मा को तीन काल की प्रतीति करने के लिये ऐसे विकल्प नहीं करना पड़ते कि 'मैं भूतकाल में शुद्ध था, वर्तमान में शुद्ध हूँ, भविष्य में शुद्ध रहूँगा;' परन्तु वर्तमान एक समय की प्रतीति में तीनों काल की प्रतीति समा जाती है—आ जाती है ॥२५३॥

आत्मा को तीन काल की प्रतीति करने के लिये... भगवान आत्मा त्रिकाली की प्रतीति करने के लिये, **ऐसे विकल्प नहीं करना पड़ते कि 'मैं भूतकाल में शुद्ध था, वर्तमान में शुद्ध हूँ, भविष्य में शुद्ध रहूँगा;'...** आहा..हा..! क्या कहते हैं ? कि एक समय में वस्तु जो ध्रुव है, वर्तमान एक समय में उत्पाद-व्यय और ध्रुव है न ? या भूत और भविष्य जाये तो ध्रुव है, ऐसा है ? क्या कहा यह ? भूतकाल में था और भविष्य में रहेगा, ऐसे भेद वहाँ कहाँ है ? वह तो ध्रुव एक समय में वर्तमान है। उसे मैं शुद्ध था और शुद्ध रहूँगा और शुद्ध है, ऐसे भेद की कोई आवश्यकता उसे नहीं है। आहा..हा..! त्रिकाली तत्त्व को तीनों काल रचकर प्रतीति करना, ऐसा नहीं है, कहते हैं। त्रिकाली तत्त्व वर्तमान में ही पूर्ण है। आहा..हा..! क्योंकि 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'। एक समय में तीन है। एक समय में तीनों है। उत्पाद-व्यय एक समय की स्थिति है और ध्रुव तीन काल का रहनेवाला, इसलिए तीनों काल रहता है, इसलिए ध्रुव है; इसलिए तीन काल की दृष्टि करनी पड़े, ऐसा नहीं है। अरे रे! ऐसी बातें!

आत्मा को तीन काल की प्रतीति करने के लिये... 'मैं भूतकाल में शुद्ध था,...' अथवा भूतकाल में था, वर्तमान में हूँ, भविष्य में रहूँगा। **ऐसे विकल्प नहीं करना पड़ते...** ये तीन हैं, वे तो विकल्प हैं। **परन्तु वर्तमान एक समय की प्रतीति में...** आहा..हा..! एक समय की प्रतीति में। **तीनों काल की प्रतीति समा जाती है...** यह ध्रुव है, इसकी प्रतीति होने पर, तीनों काल इसमें इकट्ठे आ जाते हैं, उन्हें भिन्न करना नहीं पड़ता। आहा..हा..! थोड़ी सूक्ष्म बात है। मैं त्रिकाल रहनेवाला हूँ, था और रहूँगा—ऐसे इसे भेद करने की आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! वर्तमान में ही ध्रुव चैतन्य भगवान पूर्ण पड़ा है। उसकी एक समय में प्रतीति करने से, ध्रुव की प्रतीति आ जाती है। उसे तीन काल खोजे तो ध्रुव की प्रतीति आवे, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! ऐसा काम! अरे! यह तो भटकते प्राणी को शरण-आश्रय कैसे लेना, उसकी बात है, बापू! आहा..हा..! दुनिया मानो, न मानो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है।

आत्मा को... एक को वर्तमान में **तीन काल की प्रतीति करने के लिये...** तीन काल का उसे आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं है। वह था, है और रहेगा, ऐसी आवश्यकता वहाँ उसे नहीं है। आहा..हा..! वह तो वर्तमान में ही एक समय की प्रतीति में पूरे ध्रुव की प्रतीति आ जाती है। वर्तमान ही ध्रुव है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है। सूत्र बहुत ऊँचा है। आहा..हा..! **परन्तु वर्तमान एक समय की प्रतीति में...** आहा..हा..! एक समय की ज्ञान की प्रतीति में ध्रुव की प्रतीति आ जाती है। आहा..हा..! तीनों काल की प्रतीति आ गयी। तीनों काल रहनेवाला ध्रुव, एक समय की पर्याय में प्रतीति में वह ध्रुव आ गया। आहा..हा..! क्या कहते हैं, समझ में आया? अरे रे! कभी इस बात की इसने दरकार नहीं की। यह दुनिया में उत्साह और हर्ष में मर गया। बाहर में कुछ... आहा..हा..! अरे रे!

यहाँ कहते हैं कि जीवती ज्योति, प्रभु! वह त्रिकाली था, है और रहेगा—ऐसी भी वहाँ आवश्यकता नहीं है। वह वर्तमान में ही ध्रुव है। शशीभाई! आहा..हा..! वह था, है और रहेगा—ऐसे तीन काल के भेद करने की वहाँ आवश्यकता नहीं है। वे सब विकल्प हैं। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप! जगत को कठिन काम। वर्तमान उत्पाद-व्यय की जो पर्याय है, उसमें वर्तमान जो ध्रुव है... आहा..हा..! उसमें **तीनों काल की प्रतीति समा जाती है...** अर्थात् तीन काल में रहनेवाला जो है, वह एक समय में प्रतीति में आ जाता है। आहा..हा..! शशीभाई! एक समय की पर्याय अर्थात् क्या? भले वह वस्तु इसमें न आवे, परन्तु पूरी चीज़ ध्रुव, एक समय में ज्ञान में सामर्थ्य आ जाती है। आहा..हा..! क्या करे यह?

ऐसा कहा न ? **एक समय की प्रतीति में तीनों काल की प्रतीति समा जाती है..** एक समय में ध्रुव की प्रतीति करते हैं (उसमें) सब अन्दर आ गया। भले तीन काल का रहनेवाला है भले, परन्तु वह वर्तमान ध्रुव है, उसकी प्रतीति करने से, सब प्रतीति में आ गया। आहा..हा..! ऐसा कठिन पड़े। सुनने को मिले नहीं। बेचारा क्या करे ? मजदूरी कर-करके ऐसे का ऐसा मर गया। एक तो संसार की मजदूरी, और उसमें किसी समय यह दया, दान और सुनने का राग (किया), वह मजदूरी। आहा..हा..!

भाई ! यह अन्दर भगवान पूर्णानन्द, नित्यानन्द ध्रुव, आनन्द का धाम ध्रुव एक समय में है। एक समय में उसकी प्रतीति करने से त्रिकाल रहनेवाले की प्रतीति उसमें आ गयी। आहा..हा..! भाई ! आये हैं न ? ...भाई आये हैं न ? आहा..हा..! वर्तमान पर्याय-अवस्था में, वर्तमान पर्याय का और राग का भरोसा है, वह तो पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! वर्तमान पर्याय में.. आहा..हा..! त्रिकाली वस्तु एक समय में ध्रुव है। आहा..हा..! इस पर्याय में उसकी प्रतीति आ जाती है। उसके सन्मुख होने से—सत् है, उसके सन्मुख होने से... आहा..हा..! त्रिकाल सत् साहेबा, प्रभु ! उसकी वर्तमान पर्याय वर्तमान सन्मुख होने पर, त्रिकाल रहनेवाला (तत्त्व) एक समय में उसे प्रतीति में आ जाता है। आहा..हा..! ऐसा काम है। भाषा तो सादी गुजराती है, परन्तु अब... आहा..हा..!

मुमुक्षु : भाव में भासन होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव-भासन, कठिन बात, बापू ! आहा..हा..!

वर्तमान एक समय की प्रतीति में... वर्तमान पर्याय में **तीनों काल की प्रतीति...** एक समय की काल की प्रतीति में **तीनों काल की प्रतीति समा जाती है**। आहा..हा..! ध्रुव सन्मुख की जहाँ दृष्टि हुई और दृष्टि ने ध्रुव को स्वीकार किया, एक समय की पर्याय की प्रतीति में, त्रिकाली की प्रतीति अन्दर आ गयी। त्रिकाल रहेगा, ऐसा कुछ नहीं। ध्रुव है, वह त्रिकाल रहनेवाला है, ऐसा उसमें आ गया। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

यह पुस्तक तो अभी आगे दूर जायेगी, धीरे-धीरे लोग पढ़ेंगे, वैसे इसकी कीमत होती जायेगी कि यह क्या चीज़ है ? आहा..हा..! समझ में आया ? एक व्यक्ति तो ऐसा लिखता है, 'बहिनश्री के वचनामृत' की जगह दिव्यध्वनि की वचन हैं, ऐसा लिखो। एक व्यक्ति का पत्र आया है। आहा..हा..! दिव्यध्वनि ही है। क्या कहा यह ?

वस्तु है, वह त्रिकाल थी, है और रहेगी—ऐसे भेदरूप से प्रतीति में उसकी आवश्यकता

नहीं है। आहा..हा..! **वर्तमान एक समय की प्रतीति में...** कायम एक समय में रहनेवाली चीज़, उसकी प्रतीति आ जाती है। आहा..हा..! क्योंकि वर्तमान, वह ध्रुवरूप से पड़ा है। आहा..हा..! उसे किसी काल की, तीन काल की ऐसी अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! इस बात में बहुत फेरफार पड़ गया न, इसलिए लोगों को यह तो (नया लगता है)। भगवान के समवसरण में तो यह बात लाखों सुनते हैं, लाखों-करोड़ों सुनते हैं। आहा..हा..! महाविदेहक्षेत्र में तिर्यंच सुनते हैं, सिंह और बाघ (सुनते हैं)। आहा..हा..!

समा जाती है। तीनों काल की प्रतीति समा जाती है। अर्थात् तीन काल का ध्रुव है, वह आ जाता है। आहा..हा..! उसे ऐसे तीन काल लम्बाने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात! वर्तमान समय में ही, उत्पाद-व्यय का समय है, उसी काल में ध्रुव तो पड़ा है। आहा..हा..! उसकी एक समय की पर्याय की प्रतीति में त्रिकाली रहनेवाला वर्तमान में एक समय में उसकी प्रतीति आ जाती है। आहा..हा..! ऐसा काम है।

मुमुक्षु : पर्याय का सामर्थ्य बहुत जोरदार!

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की सामर्थता बहुत जोरदार, परन्तु पर्याय में वर्तमान ध्रुव है, उसका भेद डालना नहीं, ऐसा कहना है। त्रिकाल रहनेवाला है, परन्तु त्रिकाल रहनेवाला, इसलिए ऐसा नहीं। ध्रुव है। आहा..हा..! ऐसा वीतरागमार्ग! विचारे (तो) बैठ जाये (जम जाये) ऐसा है, भाई! तेरा स्वभाव ही ऐसा है न, प्रभु! आहा..हा..! वर्तमान में ध्रुवरूप से रहा हुआ, उसकी वर्तमान पर्याय में ध्रुवरूप से रहे, इसकी प्रतीति आ गयी। समझ में आया? आहा..हा..!

> **जिस प्रकार जीव को अपने में होनेवाले सुख-दुःख का वेदन होता है, वह किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता; उसी प्रकार अपने को स्वानुभूति होती है, वह किसी से पूछना नहीं पड़ता॥२५४॥**

२५४वाँ बोल। **जिस प्रकार जीव को अपने में होनेवाले सुख-दुःख का वेदन होता है, वह किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता,...** दुःख का वेदन होता है तो किसी को पूछने जाना पड़े कि मुझे दुःख का वेदन होता है? संसारी कल्पना का सुख और कल्पना

का दु:ख, वह स्वयं को होता है, वह किसी को पूछने जाना पड़ता है ? आहा..हा.. ! **उसी प्रकार अपने को स्वानुभूति होती है...** आहा..हा.. ! स्व-अनुभूति। जैसा भगवान त्रिकाली है, उसकी वर्तमान पर्याय में उसका अनुभव। आहा..हा.. ! **अपने को स्वानुभूति होती है, वह किसी से पूछना नहीं पड़ता**। आहा..हा.. ! वे कहते हैं कि इस सम्यग्दर्शन की खबर नहीं पड़ती। परन्तु इस स्वानुभूति की खबर पड़ने से शामिल समकित आ गया या नहीं ? आहा..हा.. ! क्या हो ? मार्ग को नोंच डाला है। आहा.. ! अनुभूति उसका मुख्य लक्षण लिया है। नहीं तो सम्यक्त्व का लक्षण तो प्रतीति है, परन्तु स्वानुभूति के साथ होता है, होता ही है। आहा..हा.. ! इसलिए वह **स्वानुभूति होती है, वह किसी से पूछना नहीं पड़ता**। आहा..हा.. ! वह अपने अनुभव में आता है। जान सकता है। जान नहीं सकता, ऐसा है नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

जिसे चौरासी के अवतार का डर नहीं है,...

देखो, यह जीव एक सर्प देखने पर कितना अधिक भयभीत होता है क्योंकि इसे शरीर के प्रति ममत्व और प्रीति है। अरे ! प्राणी को एक शरीर पर सर्प के डंसने का इतना भय है तो अनन्त जन्म-मरण का भय क्यों नहीं है ? आत्मा की समझ बिना अनन्त अवतार के दु:ख खड़े हैं, इस बात का तुझे भय क्यों नहीं है ? अरे ! यह भव पूरा हुआ, वहीं दूसरा भव तैयार है; इस प्रकार एक के बाद दूसरा भव, तू अनन्त काल से कर रहा है। आत्मा स्वयं सच्ची समझ न करे तो जन्म-मरण का अभाव नहीं होता।

अरे रे ! जिसे चौरासी के अवतार का डर नहीं है, वह जीव आत्मा को समझने की प्रीति नहीं करता। अरे ! मुझे अब चौरासी के अवतार का परिभ्रमण किस प्रकार मिटे ? - ऐसा अन्दर में भव-भ्रमण का भय लगे तो आत्मा की दरकार करके सच्ची समझ का प्रयत्न करे।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-२

भाद्र कृष्णा-६, शुक्रवार, दिनाङ्क २२-०९-१९७८
वचनामृत-२५५ से २५८ प्रवचन-९७

अन्तर का अपरिचित मार्ग; अन्तर में क्या घटमाल चलती है, उसका आगम एवं गुरु की वाणी से ही निर्णय किया जा सकता है। भगवान की स्याद्वाद-वाणी ही तत्त्व का प्रकाशन कर सकती है। जिनेन्द्रवाणी और गुरुवाणी का अवलम्बन साथ रखना; तभी तू साधना के डग भर सकेगा ॥२५५॥

वचनामृत, २५५वाँ बोल। **अन्तर का अपरिचित मार्ग;....** भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है; उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान और रमणता, उससे यह अनादि से अपरिचित है। आहा..हा..! **अन्तर का अपरिचित मार्ग; अन्तर में क्या घटमाल चलती है....** आहा..हा..! धर्मी को भी अन्दर राग आता है। घटमाल। आहा..हा..! यह वीतराग की वाणी से निर्णय करना चाहिए। अपनी स्वच्छन्दता से निर्णय नहीं करना। आहा..हा..!**अन्तर में क्या घटमाल चलती है...** आहा..हा..! **उसका आगम....** परमागम। सर्वज्ञ ने कहा हुआ, दिव्यध्वनि का परमागम **एवं गुरु की वाणी से ही निर्णय किया जा सकता है।**

भगवान की स्याद्वाद-वाणी ही तत्त्व का प्रकाशन कर सकती है। क्या कहते हैं? आहा..हा..! एक ओर भगवान ऐसा कहे कि ज्ञानी के भोग निर्जरा का हेतु है। भोग निर्जरा का हेतु है? भोग तो राग है, दुःख है; परन्तु दृष्टि का जोर बताना है। उस दृष्टि का जोर शुद्ध द्रव्य पर है, इस कारण भोग का भाव आया, परन्तु उसका बन्ध अल्प होगा। उसकी गिनती नहीं करके दृष्टि की प्रधानता से भोग को निर्जरा कहा। भोग, निर्जरा हो तो भोग छोड़कर मुनिपना लेना, यह रहता नहीं। समझ में आया? यह स्याद्वाद भगवान की वाणी स्याद्वाद है। किस अपेक्षा से कहते हैं? एक ओर ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि को बन्धन है

ही नहीं; दूसरी ओर ऐसा कहे कि जब तक यथाख्यातचारित्र पूर्ण न हो, तब तक ज्ञान और आनन्द की परिणति अल्प है, इस कारण विकारभाव है, दु:ख है, बन्धन होता है। आहा..हा.. !

एक ओर कहे कि सम्यग्दृष्टि को बन्ध नहीं होता। किस अपेक्षा से ? मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के अभाव की अपेक्षा से। परन्तु वहाँ बन्ध ही नहीं, ऐसा माने वह तो अज्ञानी है। बन्ध तो दसवें गुणस्थान तक है। आहा..हा.. ! और बारहवें गुणस्थान में सुख की प्राप्ति, पूर्णानन्द की प्राप्ति तो बारहवें (गुणस्थान) में होती है। नीचे की दशा में आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है, परन्तु उसके साथ पूर्ण आनन्द नहीं; साथ में राग की आकुलता का दु:ख भी है। सुमेरुमलजी ! यह तो मेरु हिलाने का है। वह हिलता नहीं। आहा..हा.. !

सच्चिदानन्द प्रभु हूँ, ऐसी दृष्टि हुई, तथापि स्याद्वादवाणी ऐसा कहती है कि इसे बन्धन नहीं। एक ओर कहे कि जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक मुनि को भी राग, बन्धन और दु:ख है। आहा..हा.. ! यह बड़ा विवाद है न ? पूरा विवाद। दृष्टि का अन्तर है।

अमृतचन्द्राचार्य (समयसार) तीसरे श्लोक में कहते हैं। आहा..हा.. ! मैं तो शुद्ध चैतन्य वस्तु हूँ, परन्तु मेरी पर्याय में अभी '**कल्माषितायाः**' कलुषितता है। शुभभाव है, वह कलुषित है। पंच महाव्रत का भाव है... आहा..हा.. ! वह कलुषित है, दु:ख है, मैं इतना दु:खी हूँ। आहा..हा.. ! तीसरे कलश में है। समझ में आया ?

वीतराग की स्याद्वाद वाणी, किस अपेक्षा से कहा है, वह समझे नहीं और एकान्त खींचे तो दृष्टि विपरीत हो जाती है। समझ में आया ? यह कहते हैं। **भगवान की स्याद्वाद-वाणी ही तत्त्व का प्रकाशन कर सकती है।** आहा..हा.. ! एक ओर ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु (कहे), उसी निर्जरा अधिकार में लेते हैं कि धर्मी को आनन्द का अनुभव है, तथापि सुख-दु:ख का वेदन, उसे आता है। भाई ! निर्जरा (अधिकार की) दूसरी गाथा। साता-असाता का वेदन आता है। वेदन आकर फिर खिर जाता है। परन्तु वेदन है। १९४ (गाथा)। आहा..हा.. ! दूसरी गाथा। आहा..हा.. ! एक ओर ऐसा कहे कि ज्ञानी को दु:ख है ही नहीं, बन्धन है ही नहीं। किस अपेक्षा से ? उसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की अपेक्षा से बन्धन नहीं और दु:ख नहीं, परन्तु जितनी कषाय (बाकी है), अभी देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव आता है... आहा..हा.. ! वाँचन का विकल्प आता है, कहने का विकल्प आता है। आहा..हा.. ! समाधिशतक में तो ऐसा कहते हैं कि उपदेश देने का

विकल्प आता है, वह राग का उन्माद है। आहा.हा..! चारित्र का दोष है, दु:ख है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग वीतराग का। समझ में आया? आहा..हा..!

पर्याय में निमित्त के वश होकर राग (होता है)। पूर्ण आनन्द की दशा नहीं, वहाँ दु:खदशा उत्पन्न होती है। राग कहो या दु:ख कहो। आहा..हा..! 'राग आग दाह दहै सदा।' 'राग आग दाह दहै सदा तातै समामृत सेईये।' आहा..हा..! यह शुभ और अशुभराग आग / दाह है। छहढाला में आता है। 'राग आग दाह दहै सदा।' उसे छोड़कर समामृत सेईये। वीतरागभाव की सेवा कर। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

वीतराग की वाणी स्याद्वाद है। वह वाणी तत्त्वप्रकाशन कर सकती है। **जिनेन्द्रवाणी और गुरुवाणी का अवलम्बन साथ रखना;...** स्वच्छन्दता से नहीं चलना। आहा..हा..! जिनेन्द्र वाणी, तीन लोक के नाथ परमात्मा की वाणी दिव्यध्वनि, ॐकार ध्वनि। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसका ज्ञान करना ये तो बराबर है, उसका अवलम्बन करना, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अवलम्बन है न? वहाँ निमित्त का लक्ष्य है न? वह क्या कहते हैं, ऐसा लक्ष्य है न? वह अवलम्बन है। समझ में आया? आहा..हा..! शास्त्र मार्ग दिखाकर अलग रहते हैं, परन्तु मार्ग दिखाते हैं कि अन्दर में जा। आहा..हा..! रात्रि में थोड़ा कहा था न? अरे रे! अज्ञानी प्राणी, विषय के भोग के काल में पकवान, पेड़ा और बर्फी खाकर भोग करता है। रात्रि को (यह चर्चा आयी थी)। आहा..हा..! है न, सब बात सुनी है। की नहीं परन्तु सब बात सुनी है। भोग करने का भाव हो, तब पेड़ा आठ सेर, पौन सेर बर्फी लाकर दोनों व्यक्ति खाते हैं। अरे! प्रभु! क्या करता है तू यह?

इसी प्रकार अन्तर का भोग लेना हो तो ज्ञान और वैराग्य की सामग्री लेकर अन्दर में जा। आहा..हा..! ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति, निर्जरा में आता है न भाई!? आहा..हा..! सम्यग्ज्ञान। राग से भिन्न हुआ। राग है, राग है, इतना दोष है, आसक्ति है। आहा..हा..! निश्चय से स्वामी नहीं, परन्तु एक अपेक्षा से अधिष्ठाता स्वामी भी है। आहा..हा..! ऐसी बात!

प्रवचनसार में कहा है कि जितना शुभादि राग है, उसका अधिष्ठाता आत्मा है। उसकी पर्याय में उसकी कमजोरी के कारण स्वयं से होता है न? प्रवचनसार, नय अधिकार, ४७ गाथा (नय)। वहाँ जितना विकल्प है, निर्विकल्प धर्म जो है, उसका अधिष्ठाता आत्मा है, ऐसा लिया है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें राग, विकल्प होता है, उसका स्वामी आत्मा है। आहा..हा..! वह कहीं कर्म से हुआ है ? अपनी कमजोरी के कारण हुआ है। आहा..हा..! समझ में आया ? अब यह देखो!

एक ओर ऐसा कहे कि स्वस्वामी सम्बन्ध नाम का आत्मा में एक गुण है, तो अपना द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और पर्याय जो शुद्ध हुई, उतना स्व और उसका आत्मा स्वामी। आहा..हा..! दूसरी ओर ऐसा कहे कि जितना राग मुनि को भी उत्पन्न होता है... आहा..हा..! पंच महाव्रत का विकल्प भी राग है, जगपंथ है। कठोर बातें हैं, भाई! पंच महाव्रत का विकल्प है, वह आकुलता, राग और जगपंथ है, संसारपंथ है, वह संसार है। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..! वह बन्ध का कारण और दु:ख है। आहा..हा..! मुनि को शुभ आता है, वह जहर है, भट्टी है, दु:ख है। आहा..हा..! उसका स्वामी आत्मा है। भाई! एक ओर स्वस्वामी सम्बन्ध में शुद्ध द्रव्य, गुण, पर्याय स्व और उसका स्वामी (कहे)। एक ओर यह कहा। किस अपेक्षा से ? भाई! ऐसे एकान्त नहीं होता। आहा..हा..! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ प्रभु की यह (स्याद्वाद कथन पद्धति है)।

कहते हैं कि **जिनेन्द्रवाणी और गुरुवाणी का अवलम्बन साथ रखना;...** लक्ष्य रखना कि वाणी क्या कहती है और गुरु क्या कहते हैं ? अपनी स्वच्छन्दता से नहीं मानना। आहा..हा..! **तभी तू साधना के डग भर सकेगा।** तब तू साधना के डग (भर सकेगा)। अन्तरस्वरूप में जाना। डग भर सकेगा – तेरी पर्याय निर्मल होगी। आहा..हा..! बहुत ही संक्षिप्त भाषा में, सादी भाषा में...

साधकदशा की साधना ऐसी कर कि जिससे तेरा साध्य पूरा हो। साधकदशा भी अपना मूल स्वभाव तो है नहीं। वह भी प्रयत्नरूप अपूर्ण दशा है, इसलिए वह अपूर्ण दशा भी रखने योग्य तो है ही नहीं॥२५६॥

२५६, **साधकदशा की साधना ऐसी कर...** आहा..हा..! प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है न! सच्चिदानन्द प्रभु (है न)! पर्याय में भले रागादि हों परन्तु वस्तु ऐसी नहीं। आहा..हा..! ऐसी **साधकदशा की साधना..** आहा..हा..! पूर्ण आनन्दस्वरूप की एकाग्रता,

वह **साधना ऐसी कर कि जिससे तेरा साध्य पूरा हो।** जिससे तेरा साध्य मोक्ष है, वह पूर्ण हो। आहा..हा..! स्वरूप जो ज्ञायक चैतन्यस्वरूप प्रभु, उसका साधकपना ऐसा साध... यद्यपि आगे कहेंगे... साधकपना भी अपना मूलस्वरूप नहीं है।

साधकदशा भी अपना मूल स्वभाव तो है नहीं। आहा..हा..! क्या कहते हैं? कि आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु, उसकी दृष्टि और अनुभव और साधकपना प्रगट किया, वह साधकपना तब तक कर कि उस साधकपने से साध्य पूर्ण हो। तब कहते हैं कि साधकपने से साध्य पूरा हो, तथापि साधकपना अपना मूल स्वभाव नहीं है। परमात्मप्रकाश में कहा है 'निर्विकल्प समाधि जो मोक्ष का मार्ग है, वह भी अपना स्वरूप नहीं है।' वह तो पर्याय है। आहा..हा..! अन्दर पूर्णानन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द सत्, शाश्वत ज्ञान और आनन्द का (भण्डार है)। अनन्त-अनन्त गुण के रत्न के कमरे उसमें भरे हैं, कमरे। आहा..हा..!

मुमुक्षु : थोड़े से तो दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे? भाई! तू तुझमें जा, तुझे मिलेंगे। आहा..हा..! ज्ञान और वैराग्य दो लेकर, प्रभु! तू अन्दर जा। आहा..हा..! भाई! ऐसी बहुत कठिन बातें! लोग धर्म कुछ का कुछ मानकर बैठे हैं। परन्तु धर्म कोई अपूर्व चीज़ है, भाई! अनन्त-अनन्त काल में, अनन्त भव में कभी एक सेकेण्ड नहीं किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो....'

मुमुक्षु : सादि मिथ्यादृष्टि हो, उसने तो किया होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सादि मिथ्यादृष्टि तो कोईक जीव होते हैं परन्तु वास्तव में पूरा साधन नहीं किया, इसलिए पड़ा न अपने भाव से। आहा..हा..! यहाँ तो साधकपना ऐसा प्रगट कर, ऐसा कहते हैं, देखो! कि जिससे तेरा साध्य पूर्ण हो।

मुमुक्षु : यह तो अप्रतिहत की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी पढ़ने-फढ़ने की बात यहाँ नहीं। आहा..हा..!

पूर्ण आनन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द प्रभु (आत्मा है)। राग है परन्तु उसे अन्तर-भिन्न करके साधकपना प्रगट कर, प्रभु! आहा..हा..! और ऐसा साधकपना प्रगट कर कि साधक से तेरा साध्य पूर्ण हो जाये। समझ में आया? आहा..हा..!

साधकदशा की.... पर्याय है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीतरागी पर्याय है। वह

कहीं द्रव्य-गुण वस्तु / द्रव्य नहीं है। आहा..हा.. ! ऐसी कठिन बातें, बापू! अरे! भाई! इसने अनन्त काल में अपूर्व कुछ है, वह किया ही नहीं। पूर्व में किया, वह किया करता है, वह तो अनादि की अज्ञान की दशा है। आहा..हा.. ! अपूर्व जो अन्दर आनन्द का नाथ, प्रभु... आहा..हा.. ! उसे वर्तमान ज्ञान की पर्याय से पकड़ना। आहा..हा.. ! और वह साधकपना प्रगट होने पर, ऐसा साधकपना कर कि तेरा साध्य वहाँ पूर्ण हो जाये। आहा..हा.. ! कहो, शान्तिभाई! ऐसा वहाँ तुम्हारे जवाहरात-फवाहरात में धूल में कहीं नहीं है। ऐई! मधु! हांगकांग में लाखों पैसा (रुपये) कमावे और फिर... अब जानेवाला है। आहा..हा.. ! यह लाख और पाँच लाख दे, इसलिए धर्म हो जाता है, ऐसा नहीं है और पाँच लाख मैंने दिये, मेरी चीज़ थी और मैंने दिये, यही मिथ्यात्वभाव है। इसकी लक्ष्मी कहाँ है ? वह तो जड़ की है, अजीव है। जीव ऐसा माने कि अजीव मेरी चीज़ थी, वह मैंने दी... आहा..हा.. ! तो अजीव को अपना माना। बहुत कठिन काम, बापू! आहा..हा.. ! समझ में आया ? मार्ग तो अपूर्व है प्रभु! आहा..हा.. ! दुनिया से निराला मार्ग है, भाई!

ऐसी साधकदशा प्रगट कर... आहा..हा.. ! **कि जिससे तेरा साध्य पूरा हो**। देखा ? तुझे केवलज्ञान प्राप्त हो, ऐसा साधकपना प्रगट कर। आहा..हा.. ! **साधकदशा भी अपना मूल स्वभाव तो है नहीं**। पर्याय है न ? त्रिकाली भगवान द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव... आहा..हा.. ! अनन्त-अनन्त असंख्य प्रदेश में अनन्त-अनन्त गुण के कमरे भरे हैं। यह साधकदशा तो अल्प पर्याय है। ऐसी सब बात है। भगवान पूर्णानन्द की चैतन्य चमत्कारी वस्तु अन्दर है। आहा..हा.. ! उसे इस प्रकार साध कि तेरी साध्यदशा पूरी हो जाये।

साधकदशा भी अपना मूल स्वभाव तो है नहीं। वह भी प्रयत्नरूप अपूर्ण दशा है,... आहा..हा.. ! परमात्मप्रकाश में कहा है कि निर्विकल्प आनन्द की दशा जो मोक्ष का मार्ग, वह भी आत्मा का स्वरूप नहीं। एक समय की पर्याय है। आहा..हा.. ! ऐसी बात है। राग तो बात अलग। अन्दर राग आवे, वह तो कोई मोक्षमार्ग नहीं। आहा..हा.. ! यह तो सबेरे ११० गाथा (कलश) में कहा था न ? कि आत्मा की साधकदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ, और जब तक पूर्ण नहीं, तब तक कर्मधारा, रागधारा अन्दर आती है, परन्तु रागधारा से निरपेक्षरूप जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुआ, वह ज्ञानपर्याय वह मोक्ष का कारण है। साथ में राग आया, वह बन्ध का कारण है। आहा..हा.. ! सम्यग्दृष्टि को भी जितने विकल्प उठे, वह रागधारा है। आहा..हा.. ! यह तो इसमें आ गया है। सबेरे कहा था।

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में रमता है। वह तो अपनी दशा है परन्तु उसमें जितना सुनने का, कहने का, भक्ति का, वाँचन का विकल्प उठता है... आहा..हा..! शुभराग, हों! अशुभ की तो बात ही कहाँ कहना! वह शुभराग भी हमारा देश नहीं। आहा..हा..! शुभराग में आना, अरे! हमें रुचता नहीं, परन्तु आना पड़ा। परदेश में चले गये। सवेरे बताया था न! इसमें है न? (वचनामृत) ४०१, देखो!

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है। आहा..हा..! **ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर जाने को तरसता है।** पूर्ण हो जाऊँ, ऐसी भावना अन्दर है। '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।**' अरे रे! मुनि को पंच महाव्रत के विकल्प आते हैं। चौथे गुणस्थान में भी देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का, विनय का राग आता है, परन्तु वह हमारा देश नहीं। आहा..हा..! यह ४०१ है? '**इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे?**' आहा..हा..! यह राग आता है या नहीं? तब परदेश कहा न? आहा..हा..! '**हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।**' देखो! राग आया है परन्तु अच्छा नहीं लगता। दुःख लगता है। समझ में आया? चाहे तो भगवान के दर्शन, वीतराग की वाणी के दर्शन, उनकी भक्ति, वह सब शुभभाव है, और शुभभाव है, वह आकुलता और दुःख है। अरे! मैं आनन्द में से निकलकर यह कहाँ आया? '**यहाँ हमारा कोई नहीं है।**' आहा..हा..! स्त्री, पुत्र, परिवार तो कहीं रह गये। यहाँ तो शुभराग आया, वह हमारा कोई नहीं है। वह तो आकुलता आयी। आहा..हा..! निराकुल प्रभु आनन्दस्वरूप, उस स्वदेश में से हम हट गये। मालचन्दजी! ऐसी बातें हैं। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि धर्मी ऐसा मानता है। ज्ञानी / आत्मज्ञानी ऐसा मानता है कि जो शुभविकल्प में आये, वह हमें नहीं रुचता। परन्तु दुःखरूप है, तथापि आया है। वह हमारा देश नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

एक ओर ऐसा कहे कि व्यवहार की क्रिया का राग है, उसका अधिष्ठाता आत्मा है। प्रवचनसार। एक ओर ऐसा कहे कि जो राग आया, वह हमारा देश नहीं, हमारा स्वरूप नहीं। आहा..! एक ओर ऐसा कहे कि राग आया, उसका स्वामी आत्मा है। सम्यग्दृष्टि को भी। राग उसमें होता है न? एक ओर कहे धर्मी राग का स्वामी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? दोनों अपेक्षा जाननी चाहिए न? द्रव्य की दृष्टि के जोर में मैं राग का स्वामी नहीं, परन्तु राग आया, मेरी पर्याय में मुझसे आया है तो उसका स्वामी मैं हूँ। आहा..हा..! प्रवचनसार ४७ नय।

एक ओर कहे... आहा..हा.. ! कि ज्ञानी को राग आता है तो उसका कर्ता आत्मा नहीं। उसका मैं कर्ता नहीं। किस अपेक्षा से ? राग करनेयोग्य है, ऐसी मेरी चीज़ नहीं, परन्तु मेरी पर्याय में राग मुझसे होता है तो इस अपेक्षा से मैं परिणमता हूँ तो कर्ता मैं हूँ, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! अरे ! ऐसी बात ! एक ओर कहे कि अकर्ता, दूसरी ओर कहे कर्ता नहीं; इसलिए अकर्ता मैं हूँ। जितना राग आया, वह परिणमन करे, वह कर्ता; अत: परिणमन मेरा है। वह कोई जड़ का परिणमन नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? बहुत गम्भीर चीज़ है। भाई ! आहा..हा.. !

'जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। आहा..हा.. ! **अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें त्वरा से अपने मूल वतन में....'** मूल वतन। आहा..हा.. ! आनन्द का धाम भगवान मूल वतन है। (वहाँ) **'जाकर आराम से बसना है जहाँ सब हमारे हैं।'** जहाँ सब हमारे हैं। सब हमारे हैं। ज्ञान, आनन्द, अनन्त गुण... आहा..हा.. ! ऐसी बातें, भाई ! सादी भाषा में बहुत (भर दिया है)। इसमें कोई व्याकरण और संस्कृत की आवश्यकता नहीं पड़ती। आहा..हा.. !

वह भी प्रयत्नरूप अपूर्ण दशा है,... चलता अधिकार। २५६। क्या कहते हैं ? मैं राग से भिन्न शुद्ध पूर्ण हूँ, ऐसा भान, ऐसी साधकदशा (प्रगट हुई) वह भी प्रयत्नरूप वर्तमान दशा है। साधक-प्रयत्नरूप अपूर्ण दशा है। साध्य है, वह तो पूर्ण दशा है, तथापि पूर्ण दशा वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। वह तो एक पर्याय है। केवलज्ञान और परमात्मदशा प्रगट हो, वह भी एक समय की पर्याय है। आहा..हा.. ! उस पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं है। ऐसी कठिन बातें। उस पर्याय का कर्ता पर्याय है। योगीन्द्रदेव में आता है न ? ३२० गाथा के अर्थ में आता है। 'जीवो न करे बंधन।' जीव मोक्ष को नहीं करता, मोक्ष के मार्ग को नहीं करता। आहा..हा.. ! कठिन काम, भाई ! किस अपेक्षा से (कहा है वह समझना चाहिए)। 'जीवो न करे मोक्खं' ऐसा पाठ है। जीव मोक्ष की पर्याय को नहीं करता। द्रव्य क्या करे ? पर्याय, पर्याय को करे। आहा..हा.. ! इस मोक्ष के मार्ग को भी द्रव्य नहीं करता, ऐसा पाठ है। मोक्ष के मार्ग को भी द्रव्य नहीं रखता। आहा..हा.. ! वह तो ध्रुव ज्ञायकस्वरूप सच्चिदानन्द पूर्ण है। उसमें करना, पर्याय कुछ है नहीं। पर का करना तो नहीं, राग का करना है नहीं, परन्तु शुद्ध मोक्षमार्ग की पर्याय को भी करना नहीं। बहुत कठिन पड़े। मूलचन्दजी ! अन्दर मस्तिष्क चाहिए।

इसलिए वह अपूर्ण दशा भी रखने योग्य तो है ही नहीं। आहा..हा..! राग तो रखनेयोग्य है ही नहीं, परद्रव्य तो रखने योग्य नहीं परन्तु आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, प्रभु! उसका साधकपना, मोक्ष का मार्ग जो प्रगट हुआ, वह भी रखने योग्य नहीं है, क्योंकि अपूर्ण पर्याय है। **अपूर्ण दशा भी रखने योग्य तो है ही नहीं।** आहा..हा..! माल-माल आया है। मालचन्दजी! यह माल आया है। यह माल, हों! आहा..हा..! २५६ (बोल पूरा) हुआ।

शुद्ध द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करके तथा अशुद्धता को ख्याल में रखकर तू पुरुषार्थ करना, तो मोक्ष प्राप्त होगा॥२५७॥

२५७। **शुद्ध द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करके...** शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि करके... आहा..हा..! **तथा अशुद्धता को ख्याल में रखकर...** पर्याय में अशुद्धता है; है ही नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? पर्याय में अशुद्धता है, शुभ-अशुभभाव, वह मलिनता है, ऐसा ख्याल करके। समझ में आया? समयसार की १४वीं गाथा की टीका में भावार्थ में लिखा है। ऐसा कि आत्मा अबद्धस्पष्ट और यह अत्यन्त ऐसा है, ऐसा कहा, तो पर्याय में अशुद्धता है या नहीं? उस अशुद्धता का लक्ष्य करके अबद्ध की दृष्टि करना। समयसार की १४वीं गाथा के भावार्थ में है। आहा..हा..! यहाँ यह कहते हैं।

भगवान आत्मा शुद्ध है, पर्याय में अशुद्धता है, ऐसा ज्ञान तो करना चाहिए। यह भूल जाये और अशुद्धता है ही नहीं (ऐसा माने), तब तो शुद्धता साधकर अशुद्धता का नाश करना, यह तो रहता नहीं। मुझमें अशुद्धता है ही नहीं, तो फिर शुद्धता करके, उसका नाश करना तो रहता नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में, छठवें गुणस्थान में साधकदशा प्रगट हुई होने पर भी, पर्याय में अशुद्धता है। वह अशुद्धता है, ये ख्याल में रखना। है ही नहीं, मुझमें अशुद्धता है ही नहीं, तो फिर शुद्धता का आश्रय करके अशुद्धता टालना, वह तो तुझे रहा नहीं। समझ में आया? ऐसा कठिन काम, भाई। वह तो दया पालो और मालचन्दजी! 'तस् मिच्छामि दुक्कडम्...' प्रतिक्रमण में आता है न? तस्सूतरी करणेन... सीधा-सट्ट था भटकने का। आहा..हा..! ऐसा मार्ग। अरे रे! चौरासी के अवतार से, भाई! जिसे थकान लगी है, डर लगा है। अकेले दुःख का डर नहीं। नरक के और चार गति के दुःख, स्वर्ग में भी दुःख ही है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्दस्वरूप भगवान के अतिरिक्त बाहर में चाहे तो स्वर्ग हो या चाहे तो अरबोंपति सेठ हो, वह दु:ख में ही है। आहा..हा..! दु:खी है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि **शुद्ध द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करके....** त्रिकाली द्रव्य शुद्धस्वभाव है, ऐसी दृष्टि करके **तथा अशुद्धता को ख्याल में रखकर....** मुझमें अशुद्धता है। अशुद्धता कहो या दु:ख है (ऐसा कहो, एकार्थ है)। आहा..हा..! साधक सम्यग्दृष्टि को भी यह विचार होता है। आहा..हा..! ऐसा काम है। भगवान अन्दर चैतन्यप्रभु अनन्त गुण के पासा से भरा हुआ पासा है। जैसे हीरा को पासा होते हैं न? वैसे आत्मा अनन्त गुण (के पासा से भरा हुआ है)। ऐसी दृष्टि करके पर्याय में अशुद्धता है; आनन्द की दृष्टि करने के पश्चात् भी, पर्याय में दु:ख है, वह ख्याल में रखना। आहा..हा..! समझ में आया? दु:ख न हो तो पूर्ण आनन्द प्राप्त होना चाहिए। अशुद्धता न हो तो पूर्ण शुद्धता प्राप्त होना चाहिए। समझ में आया? ज्ञान में शुद्धस्वभाव की दृष्टि हुई होने पर भी अशुद्धता है, राग है, मलिनता है। आहा..हा..!

आचार्य ने नहीं कहा? अमृतचन्द्राचार्य। '**कल्माषितायाः**' मुनि हैं। जिन्हें तो तीन कषाय का अभाव है। जो छठवें-सातवें गुणस्थान में ऐसे झूलते हैं। वे कहते हैं कि मुझमें '**कल्माषितायाः**' उन्हें कहीं अशुभभाव तो नहीं है, वे तो मुनि हैं। आहा..हा..! परन्तु जो शुभभाव आया है, वह कल्माषित-कलुषित भाव है। आहा..हा..! वह दु:खरूपभाव है। आहा..हा..! मुझे टीका करने के काल में उस अशुद्धता का नाश हो जाओ, ऐसा अन्दर है, तीसरे कलश में है। पाठ तो ऐसा है कि मैं यह टीका करते-करते अशुद्धता का नाश हो जाओ। मुझमें अभी अशुद्धता है। मैं केवली वीतराग हुआ नहीं, परन्तु यह अशुद्धता... मैं टीका करते-करते अशुद्धता का नाश हो जाओ। इसका अर्थ कि टीका करने का तो विकल्प है, परन्तु टीका के काल में मेरी दृष्टि का जोर अन्दर है, वहाँ जोर बढ़ जाओ, अशुद्धता नाश पाओ। सुमेरुमलजी! आहा..हा..! अरे!

शुद्ध द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करके तथा अशुद्धता को ख्याल में रखकर तू पुरुषार्थ करना,.... ख्याल में रखकर तू पुरुषार्थ करना। आहा..हा..! अशुद्धता मुझमें है ही नहीं, दु:ख है ही नहीं, तो स्वभावसन्मुख पुरुषार्थ करने का नहीं रहता। समझ में आया? आहा..हा..! यहाँ तो समय-समय की धारा का ज्ञान करते हैं। आहा..हा..! एक ओर कहे कि सम्यग्दृष्टि को अशुद्धता है ही नहीं। कौन सी अशुद्धता? वह तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी की अशुद्धता नहीं है। समझ में आया? और उसमें से कोई निकाले कि सम्यग्दृष्टि को कोई अशुद्धता है ही नहीं, दु:ख है ही नहीं। (वह सत्य नहीं है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न ? भावार्थ में लिखा है। ऐसा मान ले तो अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..!

अपनी पर्याय में मलिनता है। मुनि सच्चे सन्त भावलिंगी को भी शुभभाव की मलिनता आती है, उतना तो उन्हें दु:ख है। अत: मैं कहता हूँ कि मेरी टीका के काल में मेरा जोर द्रव्य पर विशेष जायेगा। आहा..! और मेरी पर्याय में मैंने अनन्त सिद्धों का स्थापन किया है तथा श्रोताओं को कहते हैं कि हे श्रोताओं! अभी तक जो अनन्त सिद्ध हुए, उन्हें तेरी अल्पज्ञ पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित कर। आहा..हा..! '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' पहला श्लोक (गाथा)। सर्व सिद्धों को '**वंदित्तु**।' '**वंदित्तु**' का अर्थ कि तेरी पर्याय में स्थापित कर। आहा..हा..! ऐसी बहुत कठिन बातें। अल्पज्ञदशा, मति-श्रुत की दशा में अनन्त सर्वज्ञ परमेश्वर, सिद्ध तेरी पर्याय में स्थापित कर। तेरा लक्ष्य द्रव्य पर जायेगा। समझ में आया ? आहा..हा..!

यहाँ परमेश्वर कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते हैं, मैं अपनी पर्याय में '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' एक सिद्ध नहीं अनन्त। अनन्त सिद्ध जो अभी तक हुए और बाद में भी जो होंगे, उस काल में भी... आहा..हा..! मेरी पर्याय में अनन्त सिद्धों का आदर करता हूँ अर्थात् मेरी पर्याय में पधराता हूँ। आहा..हा..! द्रव्य-गुण में नहीं। आहा..हा..! इसका अर्थ यह हुआ कि मेरा जोर द्रव्यस्वभाव पर है। समझ में आया ? आहा..हा..! ऐसा जोर होने पर भी अशुद्धता का ख्याल छूटना नहीं कि मुझमें कोई अशुद्धता है ही नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ; इसलिए अशुद्धता अर्थात् दु:ख है ही नहीं (ऐसा नहीं है)। अशुद्धता कहो या दु:ख कहो या राग कहो। आहा..हा..! समझना कठिन पड़े, प्रभु! मार्ग अलग, नाथ! आहा..हा..! अन्दर प्रभु निर्मलानन्द का नाथ विराजमान है, ऐसी दृष्टि होने पर भी पर्याय में मलिनता है, ऐसा ख्याल तो रखना। आहा..हा..! नहीं तो शुद्धस्वभाव की ओर ढलना, यह नहीं रहता। यदि अशुद्धता न हो तो शुद्ध सन्मुख ऐसे ढलना, यह नहीं रहता। समझ में आया ? आहा..हा..! 'हम परदेशी पंखी साधु...' आहा..हा..! 'आरे देश का नाहीं रे...' यह विकल्प वह हमारा देश नहीं, परन्तु आता है, इतना ख्याल में तो रखना। आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..!

शुद्ध द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करके तथा अशुद्धता को ख्याल में रखकर... आहा..हा..! मेरी पर्याय में दु:ख है ही नहीं, तब तो फिर स्वभाव-सन्मुख करने का प्रयत्न

ही मिथ्या पड़ेगा। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी पर्याय में अशुद्धता अर्थात् दु:ख है, यह बराबर ख्याल में रखना। आहा..हा..! ऐसा है तो शुद्धसन्मुख झुकने का प्रयत्न करना। परन्तु अशुद्धता न हो तो शुद्धता तो पूर्ण हो गयी, पश्चात् प्रयत्न करना रहता नहीं। न्याय समझते हो? आहा..!

तो मोक्ष प्राप्त होगा। आहा..हा..! शुद्ध द्रव्यस्वभाव की अन्तर में दृष्टि करके भी अशुद्धता को ज्ञान में बराबर रखना। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप की दृष्टि होने पर भी पर्याय में दु:ख है, ऐसा तुझे ख्याल में रखना। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी को दु:ख होता ही नहीं। (यह) दृष्टि अत्यन्त विपरीत है। उसे नहीं दु:ख की खबर, नहीं आनन्द की खबर। ऐसी बात है, बापू! यहाँ कोई पक्ष नहीं। समझ में आया? आहा..हा..! **अशुद्धता को ख्याल में रखकर...** शुद्ध स्वभाव की दृष्टि आनन्द की होने पर भी पर्याय में दु:ख है, ऐसा ख्याल में रखना। जो दु:ख है, ऐसा ख्याल न हो तो अतीन्द्रिय आनन्द सन्मुख ढलने का प्रयत्न ही निरर्थक जाता है। समझ में आया? दु:ख है, तो वहाँ से हटना है और स्वभावसन्मुख जाना है। आहा..हा..! ऐसी बातें, भाई! कठिन काम। अरे! इसने कभी किया नहीं। कल्पना से मान लिया कि मैंने कुछ किया है और दृष्टि है। वह तो सब कल्पना है। आहा..हा..! **मोक्ष प्राप्त होगा।** आहा..हा..!

तू विचार कर, तेरे लिये दुनिया में एक आत्मा के सिवा और कौन आश्चर्यकारी वस्तु है?—कोई नहीं। जगत में तूने सब प्रकार के प्रयास किये, सब देखा, सब किया, परन्तु एक ज्ञानस्वरूप, सुखस्वरूप, अनन्त गुणमय ऐसे आत्मा को कभी पहिचाना नहीं, उसे पहिचान। बस, वही एक करना बाकी रह जाता है॥२५८॥

२५८। **तू विचार कर, तेरे लिये दुनिया में एक आत्मा के सिवा और कौन आश्चर्यकारी वस्तु है?** आहा..हा..! विचार तो कर, प्रभु! **तेरे लिये दुनिया में....** एक आत्मा के अतिरिक्त... आहा..हा..! **कौन आश्चर्यकारी वस्तु है?** अरबों की लक्ष्मी मिले, वह आश्चर्यकारी वस्तु है? वह तो धूल है। स्वर्ग मिला, वह कोई आश्चर्यकारी वस्तु है? दया, दान और व्रत के परिणाम आये, वे कोई आश्चर्यकारी वस्तु है। वह तो अनन्त बार किया है। आहा..हा..!

तेरे लिये.... आहा..हा.. ! **दुनिया में...** एक आत्मा के अतिरिक्त **कौन आश्चर्यकारी वस्तु है ?** प्रभु ! आहा..हा.. ! पर्याय भी आश्चर्यकारी नहीं, तथापि आता है न ? पीछे कलश में (आता है) अद्‌भुतात अद्‌भूतं। एक ओर सम्यग्दृष्टि, धर्मी देखता है तो एक ओर राग की कलुषता दिखायी देती है। एक ओर देखता है तो शान्ति दिखती है, कलश है, पीछे है (समयसार कलश २७४) समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी... समझ में आया ? है न यहाँ, देखो !

एक ओर देखने पर कषायों का क्लेश दिखायी देता है। समकिती ज्ञानी को। राग है न ? दुःख है। तो **एक ओर देखने पर कषायों का क्लेश दिखायी देता है।** आहा..हा.. ! **और एक ओर से देखने पर शान्ति...** कषायों के अभावरूप शान्तभाव। अन्तर का आश्रय लिया है, इतना शान्तभाव भी दिखता है। आहा..हा.. ! है ? दूसरी बात। **एक ओर से देखने पर भव की पीड़ा दिखायी देती है।** आहा..हा.. ! समकिती को, साधक जीव को... आहा..हा.. ! एक ओर देखने पर संसार के दुःख, पीड़ा दिखायी देती है। विकल्प उठते हैं, उतनी पीड़ा दिखायी देती है, दुःख दिखायी देता है। आहा..हा.. ! और **एक ओर देखने पर मुक्ति भी स्पर्श करती है।** राग से भिन्न होकर जितनी स्वभाव की एकता की, उतनी मुक्ति हो गयी। आहा..हा.. ! समझ में आया ? अब इतनी बात।

सम्यग्दृष्टि धर्मी ऐसा मानता है, जानता है कि मेरी पर्याय में देखता हूँ तो भव की पीड़ा दिखती है। अभी भव का अभाव हुआ नहीं। इस ओर से देखता है तो शान्ति भी दिखती है क्योंकि द्रव्यस्वभाव सन्मुख होकर जितनी वीतरागता हुई, उतनी शान्ति दिखती है। है ? विशेष बाद में। एक ओर देखने पर तीन लोक स्फुरायमान, तीन लोक ज्ञात होते हैं और **एक ओर देखने पर आत्मा की....** एकरूप दशा अन्दर है। तीन काल को जानना भी नहीं, मैं तो एकरूप त्रिकाली हूँ। **ऐसी आत्मा की अद्‌भुत से भी अद्‌भुत स्वभाव महिमा जयवन्त वर्तती है।** समझ में आया ? आहा..हा.. ! अन्तिम गाथा (कलश) में है। तेरे लिये कौन (आश्चर्यकारी) है ? आत्मा के अतिरिक्त वस्तु। **कोई नहीं।** विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र कृष्ण-७, शनिवार, दिनाङ्क २३-०९-१९७८
वचनामृत-२५९, २६० प्रवचन-९८

वचनामृत २५८ वाँ बोल है।

तू विचार कर,... आहा..हा.. ! प्रभु ! तू कौन है ? **तू विचार कर, तेरे लिये दुनिया में...** एक आत्मा के अतिरिक्त दूसरी **कौन आश्चर्यकारी वस्तु है ?** आहा..हा.. ! तेरे लिये भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, सच्चिदानन्दस्वभाव के अतिरिक्त कौन आश्चर्यकारी वस्तु तुझे है ? आहा..हा.. ! तुझे परलक्ष्मी मिले, शरीर मिले, अनुकूलता मिले, वहाँ तुझे आश्चर्य और विस्मयता हो जाती है। वह मूढ़ता है। आहा..हा.. ! भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु— सत् अर्थात् शाश्वत्; चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का गोदाम प्रभु आत्मा है। आहा..हा.. ! उसके भान बिना (दूसरा सब आश्चर्यकारी लगता है, वह मूढ़ता है) । आश्चर्यकारी वस्तु हो तो वह है। आहा..हा.. ! है ? माल, माल, अत्यन्त मक्खन है न ?

तेरे लिये दुनिया में एक आत्मा के सिवा.... प्रभु ! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आश्चर्यकारी चीज़; दूसरी **कौन आश्चर्यकारी वस्तु है ?** कोई आश्चर्यकारी वस्तु तेरे लिये नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? **जगत में तूने सब प्रकार के प्रयास किये,...** अनन्त-अनन्त काल में तूने अनेक प्रकार के शुभ और अशुभराग का प्रयास / प्रयत्न किया। आहा..हा.. ! पर का तो कुछ किया नहीं। किये तो पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभराग, यह अनेक प्रकार के अनन्त बार ये भाव तूने किये। आहा..हा.. ! है ?

जगत में तूने सब प्रकार के प्रयास... प्रयत्न, शुभ-अशुभभाव का प्रयत्न। आहा..हा.. ! भगवान तो शुभाशुभभाव से अन्दर भिन्न है। आहा..हा.. ! उसकी तो खबर नहीं। अपनी चैतन्यसत्ता-आनन्द और ज्ञायक का अस्तित्व / सत्ता ध्रुव... आहा..हा.. ! उस आश्चर्यकारी

वस्तु की तो तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! जरा सा दया, दान, व्रत, भक्ति, तप किये तो आश्चर्य हुआ। वह तो शुभराग है, प्रभु! आहा..हा..! वह कोई आत्मा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

कोई बाकी नहीं। **तूने सब प्रकार के प्रयास किये,...** प्रयास किया इसका अर्थ? शुभाशुभभाव का प्रयास अनन्त बार किया। यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... मान्यता है परन्तु पर का कुछ किया? (नहीं)। आहा..हा..! यह अंगुली हिलती है, वह जड़ की क्रिया जड़ से होती है। आत्मा से प्रेरित होकर ये होती है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! तू तेरे भाव में परपदार्थ का कर्ता तो हुआ नहीं, परन्तु मैं करूँ, ऐसे रागादि का प्रयत्न तो अनन्त बार किया। आहा..हा..! **सब देखा,...** सब देखा। शरीर, वाणी, मन, जहाँ-जहाँ जन्म हुआ, वह भव, भाव- यह सब देखा, परन्तु तूने तुझे नहीं देखा। देखनेवाले को नहीं देखा। समझ में आया? आहा..हा..! तूने बाहर की सब चीज़ देखी परन्तु अन्दर देखनेवाला कौन है, उसे तूने कभी देखा नहीं। कहो, सुमेरुमलजी! यह व्यापार और धन्धा और यह वकालात और यह डॉक्टर के, एम.ए. के पूंछड़े, यह अनन्त बार किये, कहते हैं। आहा..हा..!

सब देखा,... अपनी चीज़ जो आनन्द का नाथ प्रभु, ज्ञायकस्वभाव का भरपूर भण्डार, उसे नहीं देखा। यह देखा। यह... यह... यह... यह... सूक्ष्म बात है, भाई!

अनन्त-अनन्त काल में अपना स्वरूप चिदानन्द प्रभु को देखा नहीं, प्रतीति नहीं की, अनुभव नहीं किया। इसके अतिरिक्त दुनिया की सब चीजें बहुत बार देखी। आहा..हा..! लाखों-करोड़ों रुपये दान में भी खर्च किये। वह कोई चीज़ नहीं। वकील! वह तो राग है। पैसा जड़-अजीव है। अरबों रुपये मिले और अरबों रुपये खर्च किये, परन्तु वह तो राग की क्रिया है। वह तो अनन्त बार किया, वह कोई जन्म-मरण के अन्त की चीज़ नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : भगवान का मन्दिर बनावे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान का मन्दिर क्या? लाख-करोड़ बनावे न! यह तो सब पाप के... क्या कहलाते हैं? तुम्हारा दवाखाना, वह तो सब पाप का (धन्धा), परन्तु भगवान के मन्दिर बनावे, वह क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। ऐसा शुभभाव आता है। वह भाव तो अनन्त बार किया। समझ में आया? नरसिंह मेहता में आता है न? वकील! 'ज्यां

लगी आत्मतत्त्व चिह्नयो नहिं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' यह सब राग अनन्त बार किया। आहा..हा..!

सब देखा,... देखनेवाले को देखा नहीं। अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु, आहा..हा..! उसे कभी देखा नहीं। आहा..हा..! **सब किया,...** सबका अर्थ? पुण्य-पाप सब किया, ऐसा। पर का तो कुछ किया नहीं। परन्तु मैंने ऐसा किया, धन्धा किया, अमुक किया, ऐसी कल्पना का राग अनन्त बार किया। आहा..हा..! **परन्तु एक ज्ञानस्वरूप,...** प्रभु! आहा..हा..! आत्मा तो सच्चिदानन्द—सत्‌चिद अर्थात् ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है। आहा..हा..!

एक ज्ञानस्वरूप,... प्रभु! ज्ञान स्व-रूप है जिसका। आहा..हा..! जानक स्वभाव प्रज्ञाब्रह्म भगवान। आहा..हा..! कठिन काम। प्रज्ञाब्रह्म। ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् आनन्द, वह ज्ञानस्वरूप और आनन्द - सुखस्वरूप। आहा..हा..! जैसे शक्कर सफेदाई और मिठास से भरपूर है। वैसे प्रभु आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द... आहा..हा..! अरे रे! इससे भरपूर भरा है।

मुमुक्षु : इन्द्रिय-आनन्द कैसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय में धूल-धूल में (सुख) नहीं है। मूढ़ मानता है और वह भी इस स्त्री के शरीर को आत्मा भोग नहीं सकता। क्योंकि वह तो मिट्टी-धूल है और आत्मा तो अरूपी है परन्तु उस समय में यह ठीक है, ऐसा राग करके राग को भोगता है, स्त्री को नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? वह तो मिट्टी-जड़ है, पुद्‌गल माँस, हड्डियाँ, चमड़ी है। प्रभु तो अरूपी है - आत्मा तो अरूपी है - वह रूपी को कैसे भोगें? आहा..हा...! मात्र उस पर लक्ष्य जाने से, यह ठीक है, मुझे मजा पड़ता है, ऐसा राग करता है, उस राग को भोगता है। राग-जहर का भोक्ता है। अमृतसागर भगवान अपने को भूलकर... आहा..हा..! राग के जहर को अनुभव करता है। आहा..हा..!

एक ज्ञानस्वरूप, सुखस्वरूप, अनन्त गुणमय... अनन्त-अनन्त गुणमय प्रभु तो है। आहा..हा..! जिसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्त गुण पड़े हैं। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है, भाई! **अनन्त गुणमय...** गुणवाला नहीं। गुणमय अभेद। समझ में आया? आहा..हा..! यह जानन-देखन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता - ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तिरूप गुण, उन अनन्त गुणमय प्रभु आत्मा अन्दर है। आहा..हा..! **ऐसे**

आत्मा को कभी पहिचाना नहीं,... शास्त्र का ज्ञान भी अनन्त बार किया। आहा..हा..! समझ में आया?

यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाई दियो।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठजोग प्रयोग सुतार भयो।

आहा..हा..! '**सब शास्त्रन के नय धारि हिये**' शास्त्र पढ़े, वांचन किया।

सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत खण्डन मण्डन भेद लिये।
यह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न पर्यो॥

श्रीमद् राजचन्द्रजी हैं तो गुजराती, परन्तु हिन्दी में बनाया है। श्रीमद् राजचन्द्र। आहा..हा..!

सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत खण्डन मण्डन भेद लिये।
यह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न पर्यो॥
अब क्यों न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से

वह साधन नहीं है।

बिन सद्गुरु कोई न भेद लह्रे, मुख आगल है कह बात कहे।

प्रभु अन्दर विराजता है। आहा..हा..! अनन्त चैतन्य रत्नाकर परमात्मा। स्वयं परमात्मस्वरूप है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! उसे पहिचाना नहीं। आहा..हा..! बाकी दुनिया की बातें, जानकारी और चतुराई की। आहा..हा..! समझ में आया? **उसे पहिचान,** जिसे अभी तक कभी पहिचाना नहीं है। जानने की जो वर्तमान पर्याय/दशा है, वह पर को देखती है। उस पर्याय को अन्तर्मुख झुका। आहा..हा..! भगवान विराजता है वहाँ (झुका)। वर्तमान ज्ञान की दशा, अवस्था का परसन्मुख झुकाव है, उस पर्याय को अन्तर्मुख झुका। आहा..हा..! कहो, मालचन्दजी! यह माल-माल रह जाता है। आहा..हा..!

भगवान! भगवानरूप से ही बुलाते हैं। समयसार की ७२ गाथा। भगवान आत्मा... आहा..हा..! आचार्य (कहते हैं) प्रभु! तुझमें पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वे सब अशुचि, मैल है। आहा..हा..! वृत्ति उठती है, वह विकल्प, राग है। ऐसा कहकर प्रभु-आचार्य कहते हैं भगवान आत्मा... आहा..हा..! शुचि निर्मलानन्द प्रभु है।

वह दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव से प्रभु अन्दर भिन्न है। आहा..हा..! अरे! कभी दरकार नहीं की। अनन्त बार मनुष्यपना मिला, त्यागी अनन्त बार हुआ। बाहर में स्त्री, कुटुम्ब, दुकान छोड़कर (त्यागी हुआ), उसमें क्या हुआ? अन्तर चीज़ जो है... आहा..हा..! उस ओर का झुकाव नहीं तो आत्मा का ज्ञान हुआ नहीं। आहा..हा..!

उसे पहिचान। बस, वही एक करना बाकी रह जाता है। बाकी तो पुण्य और पाप अनन्त बार किये। आहा..हा..! करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करके मन्दिर अनन्त बार बनाये। वह कोई चीज़ नहीं है। आहा..हा..! शाश्वत् चीज़ अन्दर ध्रुव, अविनाशी, अनुत्पन्न और अविनाशी-नाश नहीं। आहा..हा..! **उसे पहिचान।** आहा..हा..! इसके बिना तेरा भव निरर्थक चला जायेगा। आहा..हा..! **बस, वही एक करना बाकी रह जाता है।** आहा..हा..! २५८ (बोल पूरा हुआ)।

किसी प्रकार की प्रवृत्ति में खड़ा रहना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। एक आत्मा में ही रहना, वह हितकारी, कल्याणकारी और सर्वस्व है ॥२५९॥

किसी प्रकार की प्रवृत्ति में खड़ा रहना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। क्या कहते हैं? अपने काम के अतिरिक्त, संसार के स्त्री, कुटुम्ब-परिवार के, देव-गुरु-शास्त्र के, उस किसी भी काम में खड़े रहना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : धर्मानुराग तो कहलाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है, वह तो कहलाता है, परन्तु राग में खड़े रहना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आहा..हा..! वह राग धर्मानुराग कहो, परन्तु वह धर्म का स्वभाव, उसका प्रेम... आहा..हा..! स्वभाव का प्रेम नहीं है। आहा..हा..! जिसे यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव का प्रेम है, उसे भगवान आत्मा के प्रति प्रेम नहीं है। प्रभु! कठिन बात, भाई! एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। आहा..हा..! जिसने इस शुभ-अशुभभाव की उपाधि को ठीक है, ऐसा माना, उसने भगवान आत्मा को हेय माना है। वह नहीं, यह। आहा..हा..! कहो, रतनलालजी! यह रत्न की बात चलती है। यह अन्तर आत्मा अनन्त गुणरत्न के कमरे हैं, ऐसे एक जगह है। अनन्त गुणरत्न के कमरे अन्दर भरे हैं। अरे! क्या कहते हैं? बापू! है? कितने पृष्ठ पर है?

३८२ बोल है। **आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है;....** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा में नयी-नयी पर्याय उत्पन्न होती है और पुरानी पर्याय का व्यय होता है, परन्तु (आत्मा) ध्रुवरूप से कायम रहता है। **वह नित्य रहकर पलटता है।** कायम रहकर पलटती दशा में पलटता है। ध्रुव कायम रहकर दशा में, अवस्था में पलटता है। **उसका नित्यस्थायी स्वरूप रीता नहीं,...** आहा..हा..! भगवान का नित्य स्थायी ध्रुवस्वरूप, वह रीता अर्थात् गुण से रहित नहीं है, खाली नहीं है। आहा..हा..! उसका नित्य स्थायी स्वरूप भगवान का,... यह भगवान आत्मा, हों! उसका नित्यस्वरूप, स्थायीस्वरूप, स्थिर स्वरूप, सुखधाम स्वरूप, वह गुण से खाली नहीं है। आहा..हा..! अब ऐसी बातें। क्रियाकाण्डियों को यह कठिन लगता है। बाहर की क्रिया करते-करते कल्याण होगा। धूल में भी नहीं होगा। सामायिक, प्रोषध और प्रतिक्रमण करे, आत्मा के भान बिना सामायिक कैसी? आहा..हा..!

भगवान आत्मा **उसका नित्यस्थायी स्वरूप...** यह क्या कहते हैं? कायम टिकनेवाली चीज़। आत्मा कायम टिकनेवाली चीज़, नित्य स्थायी, कायम स्थिर, कायम रहनेवाली। आहा..हा..! ऐसी चीज़ में खाली नहीं है, वह अपने गुण से खाली नहीं है। खाली नहीं कहते हैं न? आहा..हा..! वर्तमान, आत्मा की दशा जो पलटती है, विचार पलटते हैं, वह तो अवस्था-वर्तमान दशा है परन्तु उसका नित्य स्थायी स्वरूप, नित्य स्थायी स्वरूप, कायम रहनेवाला टिकता तत्त्व... आहा..हा..! वह तत्त्व अपने गुण से खाली नहीं है। अनन्त गुण से भरपूर प्रभु अन्दर है। अरे रे! यह क्या है? आहा..हा..!

प्रभु! तू कौन है? क्या है? ऐसा कहते हैं। पलटती दशा / अवस्था है, वह तो एक समय की है और त्रिकाली नित्य कायम वस्तु ध्रुव है, तो नित्य स्थायी जो ध्रुव वस्तु है, वह शक्ति के अनन्त गुण से खाली नहीं है। अनन्त गुण के रत्न से भरी हुई है। आहा..हा..! कैसे जँचे? आहा..हा..! **उसका नित्यस्थायी स्वरूप रीता नहीं, पूर्ण भरा हुआ है।** खाली नहीं, ऐसा नास्ति से कहा; अब अस्ति से (कहते हैं) पूर्ण भरा हुआ है। आहा..हा..! जैसे मिश्री में सफेदाई, मिठास पूर्ण भरी हुई है; वैसे भगवान आत्मा में नित्य स्थायी स्वरूप में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता ऐसी अनन्त शक्तियाँ अन्दर पड़ी हैं। आहा..हा..! ऐसा है।

पूर्ण भरा हुआ है। आया न? नित्य जो स्थायी चीज़ भगवान आत्मा ध्रुव अनउत्पन्न, अविनाशी कायम रहनेवाली चीज़; एक वर्तमान पलटती अवस्था; इसके अतिरिक्त जो

कायम रहनेवाली चीज़, वह अपने अनन्त गुणों से खाली नहीं है। अनन्त गुण से भरी है। आहा..हा.. ! क्या हो ? बात ही पूरी गुम हो गयी है। बाहर की क्रिया, पर की क्रिया। एक तो यह भी निवृत्त नहीं। बाईस घण्टे स्त्री, पुत्र और पाप के धन्धे, वहाँ उसमें रुक गया। घण्टे भर सुनने मिले, वहाँ इसे विपरीत मिलता है। यह करो.. यह करो.. यह करो.. राग करो, यह करो तुम्हारा कल्याण होगा। राग करना, वह तो मरना है। आहा..हा.. ! सोगानी में है। करना, वह मरना है, न्यालभाई (के द्रव्यदृष्टि प्रकाश में है)। आहा..हा.. !

उसमें अनन्त गुणरत्नों के कमरे भरे हैं। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश है। जैसे सांकल, चैन होती है न ? हजार कड़ी होती है, हजार कड़ी। छोटी-बड़े दाने (हों)। छोटा बालक को नामा बड़ा और थोड़ा बड़ा, वैसे आत्मा शरीर प्रमाण रहता है। मत्स्य का शरीर हजार योजन हो। हजार योजन में जाये तो इतना चौड़ा हो और इतनी चींटी में जाये तो संकुचित हो। ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। सूक्ष्म बात है, बापू ! यह असंख्य प्रदेश, प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुणरत्न के कमरे भरे हैं। अरे रे ! कैसे जँचे ? आहा..हा.. ! पामर को प्रभुता की प्रतीति कैसे हो ? समझ में आया ? आहा..हा.. ! आया न ?

अनन्त गुणरत्नों के कमरे... गुजराती में ओरड़ा (शब्द) है। अपने गुजराती में। **उस अद्‌भुत ऋद्धियुक्त नित्य स्वरूप पर दृष्टि दे...** आहा..हा.. ! **तो तुझे संतोष होगा...** तुझे अतीन्द्रिय आनन्द होगा। आहा..हा.. ! **मैं तो सदा कृतकृत्य हूँ।** आहा..हा.. ! **उसमें स्थिर होने से तू पर्याय में कृतकृत्य हो जायेगा।** आहा..हा.. ! जरा सूक्ष्म बात है। यह आवे, तब विशेष (स्पष्टीकरण होगा)। आहा..हा.. !

(चलते बोल में) यहाँ आये। **किसी प्रकार की प्रवृत्ति में खड़ा रहना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है।** क्या कहते हैं ? कोई मन्दिर बनाना, मकान बनाना, हॉस्पीटल बनाना और पैसे का चन्दा करना, वह तेरा काम नहीं है। आहा..हा.. ! भगवान तो ज्ञानस्वरूप ज्ञातादृष्टा है न ! प्रज्ञाब्रह्मा। वह किसी कार्य में खड़ा रहे, वह तो विकार है। आहा..हा.. ! यहाँ तो जरा चन्दा करे; दो, पाँच, दस लाख, पच्चीस लाख का चन्दा करे, वहाँ ऐसा हो जाता है। आहा..हा.. ! हमने क्या किया ! धूल में भी नहीं किया। पाप किया है। सुन न ! यह शुभराग, वह पाप है। 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवी जन पुण्य को पाप कहे।' (योगसार दोहा ७१)। स्वरूप-भगवान से पतित होता है, शुभभाव में आता है तो स्वरूप से पतित होता है। आहा..हा.. ! कठिन बात, बापू ! समझ में आया ? आहा..हा.. ! **किसी प्रकार की प्रवृत्ति में खड़ा रहना...** आहा..हा.. !

मुमुक्षु : प्रमुखपने से त्यागपत्र देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई प्रमुख है न! यह तुम्हारी पुत्री का आया था कि बापू को अब यह प्रमुखपना छुड़ा दो। खाते-खाते नींद आ जाती है। दो दिन पहले ऐसा आया था। जरा झोंका आया होगा। लड़की कहती थी। चन्दुभाई कहते थे। उन्हें कहाँ करना है, यह तो विकल्प उठे। आहा..हा..! परन्तु फिर भी यहाँ तो... आहा..हा..! जगत के किसी कार्य में आत्मा को खड़े रहना, वह वस्तु नहीं है। कहाँ गये पण्डितजी? बुखार आता है। ठीक। समझ में आया? आहा..हा..! शास्त्र बनाने में भी खड़े रहना... आहा..हा..! भाई! काम बहुत सूक्ष्म है। आहा..हा..! भगवान तो चैतन्यमूर्ति, प्रज्ञाब्रह्म, प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान और ब्रह्म अर्थात् आनन्द। आहा..हा..! पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द से ठसाठस भरा हुआ है। कैसे बैठे? कभी प्रतीति नहीं की। आहा..हा..!

किसी प्रकार की प्रवृत्ति में खड़ा रहना, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। भाई! यहाँ तुम्हारे नाम की पाठशाला बनाते हैं तो उस पाठशाला का तुम्हें ध्यान रखना। यह काम आत्मा का नहीं। ...भाई! यहाँ अलग बात है, दुर्लभ बात है। वहाँ तो भाई व्याख्यान में आते हैं न। गोंडल हमेशा आते हैं। आहा..हा..! प्रभु! तेरी बातें बहुत सूक्ष्म, भाई! आहा..हा..! किसी भी काम में, चाहे तो शुभ काम हो या अशुभ काम हो... आहा..हा..! उसमें खड़ा रहना, वह आत्मा का काम नहीं है।

मुमुक्षु : शुद्ध काम में तो खड़ा रहना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध तो अपनी पर्याय अन्दर में रही। अन्तर में आश्रय करके शुद्धता होती है, वह तो अन्तर में आया। यह तो बाहर में किसी काम में... आहा..हा..! भाई! मुझे ख्याल है कि मन्दिर ऐसे बने और ऐसे बने। मैं बराबर ध्यान रखूँ तो रहे। यह आत्मा का कार्य नहीं है, भाई! अरे रे! आहा..हा..! जीव दया मण्डली में मैं प्रमुख हूँ तो गौशाला में पाँच लाख चाहिए तो मैं चन्दा निकालता हूँ। इस काम में खड़े रहना, वह आत्मा का काम नहीं है। ऐसा काम है, प्रभु! आहा..हा..!

मुमुक्षु : गौशाला चले किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : गौशाला उसके कारण चलती है। क्या इससे चलती होगी? आहा..हा..! यह मकान बना है, यह परमाणु की पुद्गल की उस समय की अवस्था से बना है। इसे किसी ने बनाया है, रामजीभाई ने या वजुभाई ने (बनाया है), ऐसा नहीं है।

ऐसी बातें हैं। इस जंगल में देखो! यहाँ भैंस-पाड़ा बैठते थे। अब छब्बीस लाख का मकान (परमागम मन्दिर), तो तुम आये, तब हुआ न। ऐसा कहना नहीं। यह तो उसके काल में, होने के काल में यह हुआ है। आत्मा के कारण नहीं। आहा..हा..! ....भाई! ये बातें बहुत कठिन, बापू! जन्म-मरणरहित का प्रभु आत्मा का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहा..हा..!

किसी प्रकार की प्रवृत्ति में खड़ा रहना.... आहा..हा..! कि इतना तो तुम्हें लिखना पड़ेगा, पाठशाला तुम्हारे नाम की बनाते हैं तो पैसे उगाहने पड़ेंगे। यह काम आत्मा का नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसका कार्य है। यह आत्मा का कहाँ है? यह तो पर का कार्य है। आहा..हा..! मिथ्यात्व का अभिमान सेवन करे, मैंने यह काम किया, इसमें से पाँच, पच्चीस लाख इकट्ठे किये और फिर बड़ा हॉस्पीटल बनाया। यह मिथ्यात्व का महा पाप है। अनन्त पाप है। आहा..हा..! ऐसी बातें!

मुमुक्षु : आपकी व्याख्या दुनिया से अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की व्याख्या दुनिया से अलग है। आहा..हा..! अरे भाई! तुझे कहाँ होश होता है? जगत के कार्य जगत से होते हैं। उससे (स्वयं होते हैं)। उन्हें तू ऐसा कहे कि मैंने ध्यान रखा, इसलिए हुआ। मैं उसमें पड़ा, इसलिए हुआ; नहीं तो वह काम नहीं होता। ऐसा रहने दे, भाई!

मुमुक्षु : तुझसे काम हुआ ही कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कब हुआ? तीन काल में नहीं। आहा..हा..! मिथ्याभिमान है। मैंने ऐसा किया और ऐसा किया।

मुमुक्षु : वकील तो हमने बहुत....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये सब अभिमानी वकील। ३५ वर्ष पहले ये बड़े वकील थे। पाँच घण्टे में दो सौ रुपये लेते थे। एक बार पूछा था। यह तुम्हारा ज्ञान? कुज्ञान है, ये कहें। आहा..हा..! अशील को जिता देना, यह काम आत्मा का है? धूल भी नहीं। अज्ञानी मानता है। कठिन काम, बापू! '**करे कर्म सो हि करतारा, जो जाने सो जाननहारा।**' अज्ञानी, मैं यह काम करता हूँ, वह कर्ता मिथ्यादृष्टि होकर भटक रहा है। आहा..हा..! '**जो जाने सो**

जाननहारा।' मैं तो जाननहार हूँ कि यह होता है। मैं करता नहीं, मुझसे पर का कुछ हुआ ही नहीं। आहा..हा..! **एक आत्मा में ही रहना...** देखो! **वह हितकारी, कल्याणकारी....** आहा..हा..! ज्ञानस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति नाथ में रहना, वह एक कार्य है। यह सोनगढ़ का कितनों को ऐसा लगे (कि) निश्चय की बातें करते हैं, परन्तु निश्चय अर्थात् (सत्य)। सुन न! आहा..हा..! बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! ऐसा कि बाह्य त्याग करे, ऐसा करे, प्रतिमा ले ले, व्रत ले ले (ऐसा कुछ कहते नहीं)। सुन तो सही, प्रभु! विपरीत श्रद्धा के अनन्त प्रकार हैं, उसमें विपरीत श्रद्धा का त्याग, वह त्याग नहीं? आहा..हा..! भाई! त्याग और ग्रहण की खबर नहीं। सुमेरुमलजी! प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं। आहा..हा..! विपरीत मान्यता के असंख्य प्रकार हैं। उसमें विपरीत मान्यता है कि यह झूठ, ऐसी श्रद्धा छोड़े तो इतना त्याग नहीं हुआ? आहा..हा..!

मुमुक्षु : मिथ्यात्व का त्याग दिखता नहीं, बाह्य का त्याग दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात यह है। मिथ्या अभिप्राय, उसका जो अभाव होना, उसकी जगत को कीमत नहीं है। बाहर से स्त्री, पुत्र छोड़कर बाबा हो जाये, त्यागी हो जाये। धूल में भी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? मैं पर का कर सकता हूँ, पर को जिला सकता हूँ, पर को सुखी कर सकता हूँ। यह सब मिथ्यात्वभाव, पाखण्डभाव, अज्ञानभाव है। आहा..हा..! परिवार की रक्षा कर सकता हूँ। नहीं? अरे! मैं पत्नी का पति हूँ, मूढ़ है। पत्नी तो परद्रव्य, परवस्तु है। तू उसका पति कहाँ से हुआ? समझ में आया? नरपति, मनुष्य का पति राजा। नरपति कहाँ से हुआ? स्वामी है? मनुष्य का वह स्वामी राजा है? आहा..हा..! उद्योगपति मूर्ख। इसके पिता के पास कुछ नहीं था। इसने बढ़ाकर चालीस करोड़ किये, अरब किये। उद्योगपति धूल में भी नहीं। सुन तो सही! पर के कार्य का-उद्योग का पति, मूढ़ है।

मुमुक्षु : एक वर्ष में करोड़ रुपये कमाये और आप कहो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में अब। करोड़ क्या? पाँच करोड़, दस करोड़ ले। शान्तिलाल खुशाल... पोपटभाई नहीं न? पोपटभाई है? गये। उनके साले गोवा में (रहते हैं)। दो अरब चालीस करोड़। अपना दशाश्रीमाली पाणासणा का बनिया है। अभी डेढ़-दो वर्ष पहले गुजर गया। गोवा में चालीस लाख का एक बंगला है। दस-दस लाख के दो हैं। ढाई अरब रुपये। पाँच मिनिट में मर गया। मुम्बई आया था। उसकी बहू को हेमरेज

हुआ। डेढ़ वर्ष पहले की बात है। भान नहीं था। उसमें आया। उसमें दो-चार दिन (बाद) स्वयं रात्रि में उठा। मुझे दर्द होता है, डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आता है, वहाँ तो भाईसाहेब... जाओ अब चार गति में भटकने। आहा..हा..! दो अरब चालीस करोड़। ढाई अरब। धूल में क्या तेरा वहाँ? वह तो जड़ थे। जड़ तेरे हैं? जड़ तेरी चीज़ है? आहा..हा..! अन्दर में शुभ-अशुभ राग भी तेरी चीज़ नहीं। आहा..हा..! तेरी चीज़ तो अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान से भरपूर, वह चीज़ तेरी है। धूलजीभाई! बातें बहुत कठिन, बापू! सब दुनिया को जानते हैं न, यहाँ तो ८९-९० वाँ वर्ष है। पूरी दुनिया, अरे! कहाँ पड़ी है और कहाँ? धर्म के बहाने पाप को, मिथ्यात्व को सेवन करती है। आहा..हा..!

वह यहाँ कहते हैं। आहा..हा..! **एक आत्मा में ही रहना, वह हितकारी, कल्याणकारी...** आहा..हा..! इतना तो हमेशा तुम्हें दो घण्टे तो उपदेश देना ही पड़ेगा। यह (आत्मा का) काम नहीं, कहते हैं। आहा..हा..! विकल्प आया; वाणी, वाणी के कारण निकलती है, तू उसका कर्ता नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? **एक आत्मा में ही रहना...** एक के अतिरिक्त अनन्त दूसरे काम, उनमें आत्मा को खड़े रहना कि मैं दुकान पर बराबर व्यवस्थित बैठूँ तो व्यापार भलीभाँति चले, यह आत्मा का काम नहीं है। आहा..हा..! और लड़के-लड़कियाँ जवान हो गये हों, उन्हें ठिकाने लगाऊँ (शादी-विवाह करूँ), यह काम तेरा नहीं है। प्रभु! आहा..हा..! उनमें राग आता है, वह भी तेरा काम नहीं है, प्रभु! आहा..हा..! एक भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु में दृष्टि लगाकर वहाँ रहना। आहा..हा..! ऐसी बात लोगों को कठिन लगती है। व्यवहार के रसिया...

मुमुक्षु : कठिन है, ऐसा आप कहते हो और सरल.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कठिन ही है। कठिन तो किस अपेक्षा से? अभ्यास नहीं। इसलिए। बाकी अन्दर की चीज़ सरल है। स्व-वस्तु अन्दर है। आहा..हा..! है, उसे प्राप्त करना है। प्राप्त की प्राप्ति है। राग को अपना करना हो या पर को अपना करना हो तो वह कभी नहीं हो सकता। परन्तु यह चीज़ अन्दर आनन्द का कन्द प्रभु है। वह प्राप्त है, उसकी दशा में प्राप्ति करनी है। आहा..हा..! समझ में आया? यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है। यह तो अन्तर की चीज़ है। आहा..हा..!

एक आत्मा में ही रहना.... आहा..हा..! **वह हितकारी, कल्याणकारी और सर्वस्व**

है। आहा..हा..! सर्वस्व। स्वस्वरूप प्रभु, आनन्द और ज्ञानस्वरूप स्व में रहना, वह सर्वस्व है। आहा..हा..! ऐसा काम है। भाषा तो सादी है परन्तु भाव थोड़े... वस्तु स्थिति यह है। आहा..हा..! यह २५९ (बोल पूरा) हुआ।

शुद्धात्मा को जाने बिना भले ही क्रिया के ढेर लगा दे, परन्तु उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता; ज्ञान से ही आत्मा जाना जा सकता है॥२६०॥

२६०वाँ बोल। **शुद्धात्मा को जाने बिना...** भगवान शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द को **जाने बिना भले ही क्रिया के ढेर लगा दे,...** दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, अपवास लाख-करोड़ अरब करे न, उससे कुछ आत्मा नहीं मिलता। समझ में आया? अपवास करे, भगवान की यात्रा लगावे। शत्रुंजय की यात्रा, सम्मेदशिखर की यात्रा; लाख-करोड़ यात्रा कर न, वह तो शुभभाव है। ऐसा काम है। तब कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि ये स्थानकवासी में थे न, तो उसमें से निकले, वे संस्कार रह गये हैं कि जिससे मूर्ति को मानने में धर्म नहीं मानते। कहे, बेचारे। ऐसा कहे स्थानकवासी में-ढूँढ़िया में थे। वे मूर्ति को नहीं मानते; इसलिए यात्रा के पुण्य में धर्म नहीं, मन्दिर बनाने में धर्म नहीं, भगवान के दर्शन में धर्म नहीं (ऐसा ये कहते हैं)। परन्तु वह धर्म नहीं, वह शुभराग है, भाई! वह धर्म नहीं। चाहे तो साक्षात् तीन लोक के नाथ के दर्शन कर न, वह शुभभाव है; धर्म नहीं। आहा..हा..! क्योंकि परसन्मुख के लक्ष्यवाला भाव है। अपने चैतन्यमूर्ति के अन्तर में लक्ष्यवाला भाव, वह धर्म है। आहा..हा..! कठिन काम। समझ में आया?

शुद्धात्मा को जाने बिना भले ही क्रिया के ढेर लगा दे,... क्रिया का ढेर करे। छह-छह महीने के अपवास और छह महीने उपवास, छह महीने पारणा करे तो रूखा आहार, रूखी रोटी खाये, यह अनन्त बार कर न अब, मर जाये वहाँ। वह क्रिया करे परन्तु आत्मा के भान बिना वह सब निरर्थक है। आहा..हा..! अभी तो यह लगा दिया है। बस यह करे, यह क्रिया की, उपवास किये; स्थानकवासी में सामायिक, प्रोषध और प्रतिक्रमण किये; मन्दिरमार्गी में सिद्धचक्र की पूजा, कर्म दहन की पूजा और यह पूजा और उपधान (करे)। अरे! बापू! सब बातें... आहा..हा..! इस क्रिया के तू ढेर कर, परन्तु आत्मा के भान बिना तुझे किंचित् लाभ नहीं है। समझ में आया? है?

भले ही क्रिया के ढेर लगा दे, परन्तु उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता;... ऐसे लाख-करोड़ मन्दिर बनावे और अरबों रुपये खर्च करे, उससे आत्मा नहीं ज्ञात होता। आहा..हा..! व्यवहार क्रियाकाण्ड के तो शून्य लगाते हैं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? दिन-प्रतिदिन भगवान के दर्शन (करना), वह सब राग है।

मुमुक्षु : पूजा करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा करे, वह राग है। यह स्वाहा की क्रिया होती है, वह तो जड़ की है, परन्तु अन्दर शुभराग है, वह बन्ध का कारण है; धर्म नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आप उपदेश देते हो, यह तो धर्म का काम है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश, यह विकल्प है-राग है। यह वाणी तो जड़ से होती है, आत्मा से नहीं। विकल्प आता है, वह राग है, दुःख है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : धर्म में निमित्त तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, जरा भी नहीं। आहा..हा..! अन्तिम कलश में नहीं कहा? कि हम उपदेशक हैं और तुम उपदेश से समझते हो, यह मोह मत करो। मोह न कर, प्रभु! आहा..हा..! अन्त में कलश है। अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। इस शब्द की शक्ति से यह शब्द निकलते हैं, प्रभु! आत्मा में कहाँ शब्द है? वह तो परमाणु अन्दर है, उसमें से आवाज निकलती है। भाई! भगवान तो अरूपी ज्ञानघन आनन्दकन्द है। वहाँ वाणी निकले, वह वाणी अन्दर कहाँ है? आहा..हा..! वकील तो ऐसे कोर्ट में दलील देते हैं। लन्दन में यह केस ऐसे हुआ था, ऐसा निर्णय दिया था, इसलिए ऐसा होना चाहिए। यह सब वाणी जड़ है। आहा..हा..! यह वाणी आत्मा से हुई नहीं। आहा..हा..! उसमें राग हुआ, वह भी आत्मा की चीज़ नहीं, प्रभु! आहा..हा..!

परन्तु उससे आत्मा नहीं जाना जा सकता;... लाख-करोड़ अपवास करे, शत्रुंजय की ९९ वें यात्रा करे, लाख ९९वें करोड़ कर न अब! उससे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ९९ यात्रा रोज करे तो भी कुछ नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोज तो कहाँ से कर सकेगा। एक-एक दिन में दो-दो बार चले। एक बार हम यात्रा में गये थे। एक लड़की थी, वह एकदम ऊपर जाये और फिर नीचे उतरे और फिर दूसरी बार। मानो कि दो बार यात्रा हुई इसलिए... आहा..हा..! यात्रा तो यह

भगवान तीन लोक का नाथ आनन्दस्वरूप प्रभु है। इसका आश्रय लेकर स्थिर होना, वह यात्रा है। आता है, अशुभ से बचने को (शुभभाव आता है), परन्तु वह धर्म नहीं है। ऐसा काम है। **ज्ञान से ही आत्मा जाना जा सकता है।** है ? अन्दर ज्ञानस्वरूपी प्रभु, वह वर्तमान ज्ञान की पर्याय अन्दर में झुकाने से जाना जा सकता है। आहा..हा..! जहाँ चैतन्यघन भगवान स्थित है, वहाँ अपनी वर्तमान ज्ञान की पर्याय को ले जाना, अन्तर्मुख करना, तब जानने में आता है। अरे रे! चौरासी के अवतार कर-करके (भटका है)। अरबोंपति मरकर ढोर होता है, कुत्ता होता है, कौआ होता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : देव नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में। देव कहाँ था यहाँ? अकेले पाप किये हैं न! और कोई शुभभाव थोड़ा हो तो ऐरण की चोरी और सुई का दान। २२-२३ घण्टे के पाप और एकाध घण्टे का कोई शुभभाव (हुआ हो), वह तो ऐरण की चोरी और सुई का दान है। आहा..हा..! अरे रे! ऐसा बापू? ऐरण समझते हो? स्वर्णकार का। आहा..हा..! कठिन काम, भाई! वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर की आज्ञा यह है... आहा..हा..! कि लाख तेरा क्रियाकाण्ड कर, उससे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आहा..हा..! भगवान आत्मा अपने ज्ञान की पर्याय में अन्तर्मुख होकर जाना जा सकता है; इसके सिवाय किसी प्रकार ज्ञात नहीं होता। आहा..हा..! समझ में आया? २६० हुआ न?

विशेष कहा जायेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

'अब मुझे भव नहीं चाहिए'

देखो, यह जीव करोड़ों रुपये की आमदनीवाला सेठ तो अनन्त बार हुआ है और अनन्त बार ही घर-घर जाकर भीख माँगकर पेट भरनेवाला भिखारी भी हुआ है; आत्मा के भान बिना पुण्य करके बड़ा देव भी अनन्त बार हुआ है और पाप करके नारकी भी अनन्त बार हुआ है परन्तु अभी भी इसे भव-भ्रमण से थकान नहीं लगती है। आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! 'अब मुझे भव नहीं चाहिए' - इस प्रकार यदि तुझे भव-भ्रमण से थकान लगी हो तो आत्मा की प्रीति करके उसका स्वरूप समझ! इसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-२

भाद्र कृष्ण-८, रविवार, दिनाङ्क २४-०९-१९७८
वचनामृत-२६१ से २६३ प्रवचन-९९

दृष्टि पूर्ण आत्मा पर रखकर तू आगे बढ़ तो सिद्ध भगवान जैसी दशा हो जायेगी। यदि स्वभाव में अधूरापन मानेगा तो पूर्णता को कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा। इसलिये तू अधूरा नहीं, पूर्ण है—ऐसा मान॥२६१॥

वचनामृत। २६१ वाँ बोल। २६० बोल हो गया। विषय सूक्ष्म है। **दृष्टि पूर्ण आत्मा पर रखकर तू आगे बढ़...** आहा..हा..! वस्तु जो ध्रुव, एक समय की पर्याय के समीप जो ध्रुव वस्तु है। आहा..हा..! दृष्टि, पूर्ण आत्मा जो ध्रुव **पर रखकर तू आगे बढ़...** ऐसी बात है। प्रथम में प्रथम चैतन्यशक्ति, ऐसा चैतन्य त्रिकाली स्वभाव, उस पर दृष्टि रखकर... आहा..हा..! **आगे बढ़...** अर्थात् त्रिकाली शक्तिस्वरूप चैतन्य सामान्यस्वभाव पर दृष्टि करते हुए सम्यग्दर्शन पहले होता है और उसमें पहले थोड़ा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। समझ में आया? पश्चात् **आगे बढ़...** आहा..! स्वरूप की दृष्टि करके, त्रिकाली चैतन्यशक्ति को पकड़ लिया... आहा..हा..! क्या कहते हैं? और उसकी **दृष्टि पूर्ण आत्मा पर रखकर तू आगे बढ़...** आहा..हा..! वह पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... चैतन्यशक्ति स्वभाव है। दृष्टि तो पर्याय है। दृष्टि तो वर्तमान पर्याय है, परन्तु पर्याय को... आहा..हा..! पूर्ण ध्रुवस्वरूप पर रख। ऐसी बातें हैं, बापू! बहुत कठिन... आहा..हा..!

तेरा आत्मा का कल्याण करना हो, जन्म-मरण के दुःख का नाश करना हो तो भगवान अन्दर नित्यानन्द प्रभु के ऊपर दृष्टि रख। निमित्त से दृष्टि हटा ले। दया, दान के विकल्प जो राग है, उनसे भी दृष्टि हटा ले और वर्तमान पर्याय जो है, उससे पर्याय की दृष्टि हटा ले। आहा..हा..! अपना शुद्ध चैतन्यकन्द, वस्तु वह पूर्ण स्वरूप है, प्रभु! आहा..हा..! पर्याय में जो अपूर्णता दिखती है, वह कहीं इसकी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! पूर्ण-पूर्ण नित्यानन्द प्रभु पर दृष्टि रखकर आगे बढ़।

पहले दृष्टि अन्तर में गयी, पूर्ण का स्वीकार किया तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूपाचरण, अतीन्द्रिय आनन्द का थोड़ा स्वाद आया। जो अनादि से कर्मचेतना अर्थात् राग, उस राग का वेदन वह कर्म चेतना है, दुःख का वेदन है। आहा..हा..! उससे दृष्टि हटा ले। आहा..हा..! भगवान एक समय की पर्याय के समीप में पूर्णानन्द विद्यमान है न! आहा..हा..! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है। अभ्यास नहीं न, आहा..हा..! एक तो पूर्ण क्या और दृष्टि रखना, वह क्या? आठ-आठ वर्ष के बालक भी आत्मज्ञान पाते हैं तो इस प्रकार से पाते हैं। समझ में आया?

पश्चात् **तू आगे बढ़ तो सिद्ध भगवान जैसी दशा हो जायेगी।** आहा..हा..! क्या कहते हैं? पूर्ण.. पूर्ण परमात्मस्वरूप भगवान पर दृष्टि रखकर आगे बढ़ - विशेष आश्रय ले। आहा..हा..! तो तेरी दशा में प्रथम तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्द थोड़ा आयेगा। फिर उसका पूर्ण पर जोरदार आश्रय लेकर (आगे बढ़े तो)... आहा..हा..! तेरी पर्याय में सिद्धदशा प्रगट हो जायेगी। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..! **सिद्ध भगवान जैसी दशा हो जायेगी।** प्रथम तो पूर्ण शक्तिस्वरूप पर दृष्टि होने पर सम्यक्-सत् दर्शन हुआ, भगवान जैसा था, वैसा साक्षात्कार हुआ। आहा..हा..! फिर पूर्ण स्वरूप पर विशेष जोर देकर.. आहा..हा..! तेरी वर्तमान दशा में अपूर्ण जो शुद्धदशा है, वह निकल जायेगी और पूर्ण सिद्धदशा प्रगट हो जायेगी - ऐसी बातें हैं, बापू! समझ में आया?

यदि स्वभाव में अधूरापन मानेगा... क्या कहते हैं? वस्तु, वस्तु एक समय में पूर्ण.. पूर्ण... पूर्ण... प्रभु! पूर्ण इदम्-आता है? पूर्ण इदम् माननेवाली पर्याय है। उस वेदान्त को उस पर्याय की खबर नहीं परन्तु पूर्ण इदम् - ऐसा निर्णय किसने किया? (पर्याय ने।) आहा..हा..! पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. प्रभु! पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु पर दृष्टि रखकर आगे बढ़ते-बढ़ते सिद्धदशा हो जायेगी। बीच में कोई व्रत और तप करने से वह सिद्धदशा होगी, ऐसा नहीं है। बीच में आयेंगे। स्वरूप की पूर्णता पर दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन आदि पर्याय हुई और उस समय थोड़ा राग तथा दुःख भी बाकी रहे, क्योंकि साधक हुआ न? आहा..हा..! और पूर्ण पर विशेष दृष्टि के जोर से वहीं की वहीं दृष्टि लगाते हुए... आहा..हा..! तेरी दशा में अपूर्ण शुद्धता, अपूर्ण आनन्द जो प्रगट हुआ है, उस पूर्ण पर आश्रय करने पर पर्याय में पूर्ण आनन्द प्रगट हो जायेगा। आहा..हा..! आनन्द प्रगट हुआ, वह पर्याय है। पूर्ण है, वह ध्रुव है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। साधारण लोगों को तो ऐसा

लगता है कि ऐसा कैसा धर्म! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, भाई! आहा..हा..! अद्‌भुत.. अद्‌भुत.. आश्चर्यकारी चीज़ परमात्मस्वरूप है। एक समय की पर्याय के समीप में पूरा भगवान पूर्णानन्द प्रभु है। आहा..हा..! यदि पूर्ण न हो तो पर्याय में पूर्णता कहाँ से आयेगी? बाहर से आती है? आहा..हा..! मालचन्दजी! यह तो बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसा है, बापू! आहा..हा..!

यदि स्वभाव में अधूरापन मानेगा तो... वस्तु जो पूर्ण प्रभु है, उसमें कमी और **अधूरापन मानेगा तो पूर्णता को कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा।** अधूरापन मानेगा तो उसके आश्रय से पूर्णता प्राप्त नहीं होगी। आहा..हा..! अब ऐसी बातें! अगम्य को गम्य करना। आहा..हा..! पहले पद्धति यह है, ऐसा ज्ञान तो करे। पद्धति ही यह है। समझ में आया? यदि स्वभाव में अपूर्णता, अधूरापन **मानेगा तो पूर्णता को कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा।** अधूरा है, उसमें से पूर्णता किस प्रकार प्राप्त होगी। समझ में आया? आहा..हा..!

जैसे छोटी पीपर होती है। छोटी पीपर। उसमें अन्दर में चौंसठ पहरी अर्थात् सोलह आना / रुपया, उसमें चरपराहट पूर्ण भरी है। भले कद छोटा और रंग से काली है परन्तु अन्तर में जो चरपराहट है, गुजराती भाषा में हमारे तीखास की शक्ति है और अन्दर में हरा रंग पड़ा है। वह हरा रंग पूर्ण है। आहा..हा..! इसे घोंटने से जो पूर्ण है, चौंसठ पहरी ताकत थी, वह चौंसठ पहर घोंटने से पर्याय में पूर्णता प्रगट हुई। आहा..हा..! वह अन्दर पूर्ण है। वह चौंसठ पहरी चरपराहट आती है, वह कहाँ से आती है? घोंटने से आती है? पर्याय में से आती है? वर्तमान चरपराहट तो अल्प है, उसमें से आती है? पूर्णइदम्। आहा.हा..! यह तो समझ में आये ऐसा है, प्रभु! बालक को भी (समझ में आये ऐसा है)। यह तो आत्मा है, उसकी बात है न, प्रभु! परन्तु बाह्य में दृष्टि पड़ी है और क्रियाकाण्ड में रुक गया है और उसमें लाभ होगा, यह दृष्टि मिथ्यात्व है।

यहाँ तो कहते हैं कि राग करते-करते होगा, यह तो मिथ्यात्व है, परन्तु वस्तु को अपूर्ण अधूरी माने तो भी मिथ्यात्व (होगा) और पूर्णता प्राप्त नहीं होगी। आहा..हा..! अरे रे! ऐसे चौरासी के अवतार, उसमें मनुष्य का अवतार, उसमें तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव की वाणी मिले और यह काम न करे, प्रभु! कब करेगा? भाई! आहा..हा..! यह शक्ति जैसे स्वभाव... छोटी पीपर का चौंसठ पहरी कहते हैं न? चौंसठ पहर घोंटते हैं तो चौंसठ पहरी पर्याय में पूर्ण प्रगट होती है। चौंसठ कहो, सोलह आना कहो, रुपया कहो, पूर्ण कहो।

पर्याय में पूर्ण चौंसठ पहरी चरपराहट प्रगट होती है तो कहाँ से प्रगट होती है ? अन्दर में पूर्ण चौंसठ पहरी शक्ति-ताकत पड़ी है। आहा..हा..! अरे!

इसी प्रकार भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभाव, सर्वदर्शीस्वभाव, पूर्ण आनन्दस्वभाव, पूर्ण अकषायस्वभाव, पूर्ण वीतरागस्वभाव, पूर्ण प्रभुत्वस्वभाव, पूर्ण स्वच्छत्वस्वभाव। आहा..हा..! ऐसे पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान है। आहा..हा..! ऐसा कठिन पड़े, इसलिए लोग ऐसा कहते हैं कि यह इनका एकान्त है। कहे, प्रभु! क्योंकि यह व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति से होता नहीं, बापू! भाई! तू ठगा जायेगा। अरे! यह मनुष्य देह चला जायेगा, प्रभु! आहा..हा..! समझ में आया ? यह क्रियाकाण्ड के विकल्प तो क्लेश हैं, वे तो दुःख हैं। आहा..हा..! दुःख के आश्रय से आत्मा आनन्द प्रभु, वह दृष्टि में आता है ? समझ में आया ? पूर्ण आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण स्वरूप भगवान है। आहा..हा..! कोठी में। कोठी होती है न ? ज्वार या गेहूँ भरे हों, तो वह चीज़ किस प्रकार है ? कोठी भिन्न है, चीज़ भिन्न है। वैसे यह नहीं है। यह तो आत्मारूपी कोठी में अनन्त गुणरूप शक्ति भरी है। आहा..हा..!

यदि स्वभाव में अधूरापन मानेगा तो... अर्थात् कि तेरी दृष्टि पूर्ण का स्वीकार न करे, और अपूर्ण पर्याय में है तो मैं अपूर्ण वस्तु हूँ, ऐसा मानेगा तो तू मिथ्यादृष्टि है। तुझे शुद्धता नहीं प्रगट होगी। आहा..हा..! **इसलिए तू अधूरा नहीं,...** है पैराग्राफ ? भगवान! तू अधूरा नहीं, तू अपूर्ण नहीं। आहा..हा..! तुझमें आवरण नहीं, तुझमें अशुद्धता नहीं, तुझमें -पूर्ण में अपूर्णता नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान सत्व है, तत्त्व है न ? अनादि-अनन्त वस्तु है न ? सत् है न ? तत्त्व है न ? और है, वह पूर्ण ही है। आहा..हा..! यदि उस पूर्ण पर दृष्टि न हो अथवा तेरी पर्याय में अपूर्णता है तो वस्तु अपूर्ण मानेगा तो सम्यग्दर्शन नहीं होगा। सत् पूर्णस्वरूप है, ऐसा दर्शन नहीं होगा। समझ में आया ? हमारे भाई आये हैं न ? वसन्तभाई आये हैं। आहा..हा..! अरे! यह वस्तु! कितनी सरस बात है! लो। आहा..हा..!

ऐसा मान। अधूरा नहीं, पूर्ण है। वस्तु पूर्ण-पूर्ण प्रभु है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहा..हा..! जैसे यह लोक, चौदह ब्रह्माण्ड क्षेत्र है, बाद में आकाश क्षेत्र है, उस आकाश का अन्त कहाँ है ? अस्तिरूप से आकाश है, उसका अन्त कहाँ है ? अन्त होवे तो फिर क्या ? आहा..हा..! नास्तिक भी एक बार विचार करे तो (खड़े हो जाना पड़े)। आहा..हा..! यह क्षेत्र-आकाश पूरा हुआ, ऐसा है कहीं ? दसों दिशाओं में... आहा..हा..!

जिस क्षेत्र का अन्त नहीं, प्रभु ! उस क्षेत्र के जितने अंश, प्रदेश हैं, एक परमाणु जितनी जगह रोके, उसे प्रदेश कहते हैं। ऐसा अमाप (अर्थात्) मापरहित क्षेत्र... आहा..हा.. ! उसमें जितने प्रदेश हैं, आहा..हा.. ! उससे अनन्त गुणे आत्मा में गुण हैं। क्या कहना है ?

आत्मा भगवान पूर्ण है, तो उसमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त की संख्या को अनन्तगुना करो, तो भी अन्तिम अन्त, अनन्त का यह अन्त यह अन्तिम पर्याय है, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! क्षेत्र अमाप का माप करनेवाली पर्याय... आहा..हा.. ! क्षेत्र-ज्ञ भगवान आत्मा है। आहा..हा.. ! तो उसके गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द, ऐसे अनन्त, ऐसे अनन्तगुने अनन्त, उनसे अनन्तगुने अनन्त, और यह अन्तिम गुण है, ऐसा उसमें नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? आहा..हा.. !

एक बार नास्तिक विचार करे कि यह क्षेत्र है, ऐसा का ऐसा... यह क्षेत्र जो जड़-चैतन्य से भरपूर है, वह क्षेत्र तो असंख्य योजन में है। चौदह ब्रह्माण्ड जो कहते हैं। बाद में अनन्त आकाश अलोक है। लोकयन्ति इति लोकः। जिसमें जड़-चैतन्य ज्ञान में ज्ञात हों, उसे लोक कहते हैं और अलोक, जिसमें जड़-चैतन्य कोई चीज़ (नहीं, मात्र) एक आकाश नाम का पदार्थ है। आहा..हा.. ! वह आकाश नाम का पदार्थ, जिसका कहीं अन्त नहीं। तर्क से ले तो भी उसका कहीं अन्त नहीं। उसे जाननेवाला भगवान, उसके गुण की संख्या का अन्त नहीं है। आहा..हा.. ! ऐसे अनन्त गुण पूर्ण भरे हैं। संख्यारहित चीज़ अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भगवान के तल में, ध्रुव के तल में जाये। वर्तमान पर्याय ध्रुव के तल में-पाताल में जाये। मालचन्दजी ! भाषा तो सादी है परन्तु अब भाव तो बापू ! भगवान ! तू कौन है ? भाई ! आहा..हा.. !

ऐसी जिसकी महिमा... आहा..हा.. ! ऐसी जिसकी पूर्णता। उसकी पूर्णता पर... आहा..हा.. ! क्षेत्र का जैसे माप नहीं, तथापि ज्ञान ने माप ले लिया। अनन्त का माप अनन्तरूप से ले लिया। समझ में आया ? अनन्त है, वह ज्ञान ने जाना। उस अनन्त-अनन्त का अनन्त रीति से माप लिया। मापरहित चीज़ को माप में लिया। माप अर्थात् प्रमाणज्ञान। उसका माप इसकी (ज्ञान की) पर्याय में लिया। आहा..हा.. ! तो वह ज्ञान की पर्याय अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ताकतवाली है। उससे अनन्त-अनन्त पर्याय का समूह एक गुण और अनन्त गुण का समूह प्रभु आत्मा। आहा..हा.. ! अरे भाई ! तू कौन है ? ऐसी पूर्ण पर दृष्टि इस प्रकार से है। और यदि दृष्टि पूर्ण पर न हो और अधूरा मानेगा तो वह वस्तु पूर्ण

है, वह तेरी दृष्टि मिथ्या है। अधूरा अल्प मानेगा... है पूर्ण, उसे अधूरा मानेगा तो तेरी दृष्टि विपरीत है। सम्यक्-सत्यदर्शन नहीं। जैसा त्रिकाली पूर्ण है, उसकी प्रतीति हो तो वह सम्यग्दर्शन है। आहा..हा..! समझ में आया? भाई! मार्ग बहुत अलौकिक है। २६१ बोल हुआ।

द्रव्य सूक्ष्म है; इसलिए उपयोग को सूक्ष्म कर तो सूक्ष्म द्रव्य पकड़ में आयेगा। सूक्ष्म द्रव्य को पकड़कर आराम से आत्मा में बैठना, वह विश्राम है ॥२६२॥

२६२, **द्रव्य सूक्ष्म है;...** भगवान आत्मा सूक्ष्म अरूपी है। आहा..हा..! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी स्थूल है और भगवान आत्मा तो उससे पार सूक्ष्म है। आहा..हा..! सूक्ष्म द्रव्य अर्थात् वस्तु। यह द्रव्य अर्थात् पैसा द्रव्य नहीं। यह धूल.. धूल तुम्हारी। ऐई! आहा..हा..! इन पुरुभाई को कल याद किया था, हों! यह भाई है न? ये सामने बैठे हैं। इनके साले के पास दो अरब चालीस करोड़... कल कहा था न? याद किया था। गोवा में इनका साला। अभी तो गुजर गया है। दो-ढाई करोड़। धूल में क्या है? प्रभु! आहा..हा..! समझ में आया? यह तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अरब गुण का सागर भगवान पूर्ण... आहा..हा..! प्रभु तुझे विश्वास नहीं। आहा..हा..! बाहर की प्रवृत्ति और क्रियाकाण्ड के कारण निवृत्त नहीं होता कि यह चीज़ क्या है? आहा..हा..!

मुमुक्षु : धन्धा-व्यापार.....

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धे-व्यापार में से निवृत्त हो तो और इस क्रियाकाण्ड में घुस जाये। व्रत, तप, भक्ति, पूजा, और यात्रा। आहा..हा..! यह सब राग की क्रिया है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। राग तो तुझमें नहीं परन्तु अपूर्णता तुझमें नहीं। आहा..हा..! पर्याय में अपूर्णता, परन्तु वस्तु में अपूर्णता नहीं। आहा..हा..! जिसे वस्तु कहते हैं, तत्त्व-आत्मतत्त्व, वह अपूर्ण कैसे होगा? उसमें अशुद्धता कैसे होगी? आहा..हा..! वह तो शुद्धता का परिपूर्ण पिण्ड प्रभु, पवित्रता के गुण की गाँठ है। आहा..हा..! एक बार राग की एकता तोड़ तो आत्मा खुल जाये। राग से दया, दान और विकल्प से लाभ होगा, वह राग की एकता का ताला लगाया है, तो वह खजाना खुलता नहीं। आहा..हा..!

एक बार... एक बार... एक बार... आहा..हा.. ! अन्दर राग से भिन्न और पर्याय से भी भिन्न ऐसी सूक्ष्म चीज़ है, प्रभु ! है भले अनन्त गुण पूर्ण, परन्तु है सूक्ष्म। यह विकल्प से, दया, दान के राग की मन्दता से पकड़ में नहीं आता। आहा..हा.. ! व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा या पंच महाव्रत के विकल्प से पकड़ में नहीं आता, वह तो राग है। आहा..हा.. !

द्रव्य सूक्ष्म है;... यहाँ स्वाध्यायमन्दिर में लिखा है न ? द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि। 'थान' का एक व्यक्ति आया था। तुम्हारा ऐई ! भाई ! माणिकलाल पोटरीवाला। वह कहे, ये सब पैसेवाले लोग आनेवाले, लिखा था 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' महाराज ! द्रव्यदृष्टि अर्थात् पैसेवाले वे सम्यग्दृष्टि ? अरे माकिचन्दभाई ! यहाँ द्रव्य की - पैसे की बात कहाँ है ? माणिकचन्दभाई थे न ? गुजर गये न ? थान.. थान। पोटरी। यहाँ आये थे। उनके सगे-सम्बन्धी सब सही न, नानालालभाई और... सब करोड़पति, इसलिए ऐसा कि यह सब करोड़पति यहाँ आवें, वे द्रव्यदृष्टि-द्रव्यवाले वे सम्यग्दृष्टि ? अरे ! भगवान ! उस द्रव्य की यहाँ बात नहीं है, प्रभु ! द्रव्य तो यह। (भगवान आत्मा) आहा..हा.. !

तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, चैतन्य के चमत्कार से भरपूर भरा हुआ है। प्रभु ! आहा..हा.. ! वह सूक्ष्म है। आहा..हा.. ! **इसलिए... द्रव्य सूक्ष्म है; इसलिए उपयोग को सूक्ष्म कर...** वर्तमान ज्ञान के परिणाम को सूक्ष्म कर। जो स्थूल पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, उसे सूक्ष्म बना। अरे ! सूक्ष्म ज्ञान का व्यापार वर्तमान ज्ञान परिणाम, ऐसे सूक्ष्म कर कि जिससे पकड़ में आ जाये। समझ में आया ? आहा..हा.. ! बड़ा चिमटा होता है न ? सर्प को पकड़ने का। उससे मोती पकड़ा जाता है ? मोती पकड़ने के लिये लोहखण्ड की छोटी सँडासी होती है। यह जात्राणुओं अब आये। जात्रा में रुक गये और यह रह गया। मूल बात रह गयी और वह बात.. आहा..हा.. ! समझ में आया ? आहा..हा.. !

द्रव्य सूक्ष्म है;... प्रभु ! यह मोती चिमटे से नहीं पकड़े जाते, वे तो सोनी की सँडासी से पकड़े जाते हैं। यह लड़कियाँ बनाती हैं न ? तोरण बनाती हैं, मोती का तोरण। उसी प्रकार भगवान आत्मा सूक्ष्म है। उसे पकड़ने की सूक्ष्म बुद्धि होनी चाहिए। आहा..हा.. ! शास्त्र का ज्ञान भी उसे पकड़ नहीं सकता। आहा..हा.. ! अरे ! भव के अभाव करने की पद्धति तो यह है। बाकी बातें हैं, बापू ! चौरासी के अवतार अनन्त बार किये। अनन्त बार पंच महाव्रत लिये, अनन्त बार भगवान की यात्रा की, वह कोई चीज़ नहीं। आहा..हा.. !

अन्तर भगवान पूर्णानन्दस्वरूप सूक्ष्म है, तो उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय में धीरे से सूक्ष्मता से पकड़ में आता है। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप है, बापू! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर सर्वज्ञदेव का यह हुकम है। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु... वस्तु अन्दर अनन्त गुण का अमाप शक्ति का सागर प्रभु, वह सूक्ष्म है। वह निमित्त से पकड़ में नहीं आता, राग से पकड़ में नहीं आता, स्थूल ज्ञान से भी पकड़ में नहीं आता। आहा..हा..! ऐसी बाते हैं। अन्दर चैतन्य भगवान सूक्ष्म अरूपी आनन्दघन, पूर्णइदम् है। वह सूक्ष्म ज्ञान के उपयोग से पकड़ में आता है। आहा..हा..! वह शास्त्रज्ञान से भी पकड़ में नहीं आता क्योंकि वह परलक्ष्यी ज्ञान है। आहा..हा..! अपने स्वरूप की पूर्ण की दृष्टि, उसका सूक्ष्म उपयोग। धीर होकर सूक्ष्म उपयोग करके पकड़। आहा..हा..! **सूक्ष्म द्रव्य पकड़ में आयेगा।** वह सूक्ष्म ज्ञान के परिणाम (से पकड़ में आयेगा)। राग से तो नहीं पकड़ में आयेगा, स्थूल ज्ञान के उपयोग से भी पकड़ में नहीं आयेगा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : सूक्ष्म कहना किसे? और स्थूल किसे कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परसन्मुख के लक्ष्यवाला ज्ञान, वह स्थूल है। यह शास्त्रज्ञान भी स्थूल उपयोग है। भगवान सूक्ष्म है, अरूपी आनन्दघन प्रभु को पकड़ने में ज्ञान की वर्तमान पर्याय को सूक्ष्म धीर करनी पड़ेगी। ऐसी बातें हैं, प्रभु! क्या हो।

मुमुक्षु : इसका उपाय क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का उपाय स्वयं करे। करने का उपाय कि सूक्ष्म उपयोग करना, वह इसका उपाय है। आहा..हा..! सूक्ष्म अर्थात् भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु है, उसके आश्रय से-अवलम्बन से जो पर्याय होती है, उस पर्याय से पकड़ में आता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! सूक्ष्म बात, बापू! यह तो जन्म-मरण के अन्त की बातें हैं। यह कोई पुण्य करे, दया पाले, व्रत करे, यात्रा करे तो पुण्य हो और स्वर्ग में जाये। वहाँ से वापस मरेगा, नीचे जायेगा। आहा..हा..!

यहाँ तो परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जो आत्मा द्रव्यरूप से सूक्ष्म देखा और पर्याय में प्रगट किया, वे भगवान ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू अन्दर बहुत सूक्ष्म है न? तो उस सूक्ष्म ज्ञान के परिणाम बहुत सूक्ष्म करेगा, तब अन्तर में जा सकेगा। सुमेरुमलजी! इस मेरु को अन्दर पकड़ना है। आहा..हा..! जैसे मेरु अडोल है, वैसे वस्तु अडोल है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : भगवान ने अंगुली छुआकर मेरु को हिलाया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बिल्कुल झूठ बात है। यह तो श्वेताम्बर कहते हैं। यह तो श्वेताम्बर कहते हैं। मेरु कभी नहीं हिलता। आहा..हा..!

भगवान आत्मा ध्रुव कभी पर्याय में नहीं आता। आहा..हा..! समझ में आया? निश्चय से तो प्रभु, यह मोक्षमार्ग की जो पर्याय है... आहा..हा..! इसका (पर्याय का) भी ध्रुवस्वरूप कर्ता नहीं है। समझ में आया? पर्याय का कर्ता पर्याय है। समझ में आया? ऐसा बारीक-सूक्ष्म। पर्याय से पकड़ में आता है परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में एकमेक नहीं होती। आहा..हा..! सूक्ष्म ज्ञान उपयोग से 'यह चीज़ है' ऐसा ज्ञान होता है, परन्तु वह चीज़ अपनी पर्याय में नहीं आती। चीज़ का जितना सामर्थ्य है, उतनी पर्याय में सामर्थ्य की प्रतीति होती है। ऐसी बात है। आहा..हा..! पर्याय तो पर्यायरूप रहकर द्रव्य का ज्ञान करती है। रतनलालजी! कभी सुना नहीं, वह यह चीज़ है। अन्दर रत्न का भण्डार भरा है, प्रभु! आहा..हा..! अरे! तुझे उस चैतन्य चमत्कारी वस्तु का विश्वास नहीं किया। विश्वास से जहाज चलते हैं, ऐसा कहते हैं न? आहा..हा..! उस पूर्णानन्द के नाथ के अन्दर विश्वास, प्रतीति सूक्ष्म उपयोग करके करता है, उसे मोक्षमार्ग शुरु हो गया। तिरने का जहाज शुरु हो गया। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। साधारण लोग को तो पागल कहे। ऐसा लगे कि यह क्या करते हैं? बापू! भाई!

शरीर, वाणी, मन तो कहीं रहे; शुभ-अशुभभाव तो कहीं रहे, परन्तु अपनी पर्याय में परलक्ष्यी ज्ञान भी जहाँ दूर रहा। आहा..हा..! इतनी शर्तोंवाला शुद्ध उपयोग, सूक्ष्म उपयोग। आहा..हा..! यहाँ तो समय-समय का लेखा है। समझ में आया? पूर्ण को सूक्ष्म उपयोग से पकड़ा तो भी पूर्ण पर्याय जहाँ तक न हो, वहाँ तक आनन्द और दुःख दोनों साथ में मिश्र है। इसलिए कहते हैं न कि पूर्ण का लक्ष्य करके वहीं की वहीं दृष्टि रख। समझ में आया?

कोई ऐसा कहे कि सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ, इसलिए ज्ञानी को अब दुःख है ही नहीं। वह तत्त्व को समझते ही नहीं। साधक को समझते नहीं, साध्य को समझते नहीं, द्रव्य को भी नहीं समझते। आहा..हा..! यह कहा न? तू दृष्टि वहाँ रख। आहा..हा..! और आगे बढ़। आहा..हा..! ध्रुव के ध्येय को कभी चूक नहीं। आहा..हा..! और ध्रुव के ध्येय से तेरी पर्याय में धखती धुनी आनन्द की प्रगट होगी। आहा..हा..! और उस पूर्ण पर दृष्टि

होने से तुझे पर्याय में पूर्ण आनन्द प्रगट हो जायेगा। वह अपूर्ण नहीं रह सकेगा। समझ में आया ? आहा..हा.. !

उपयोग को सूक्ष्म कर तो सूक्ष्म द्रव्य पकड़ में आयेगा। सूक्ष्म द्रव्य को पकड़कर... आहा..हा.. ! ज्ञान की वर्तमान पर्याय को सूक्ष्म करके अन्दर में पकड़ और आराम से वहाँ रह। आहा..हा.. ! जैसे व्यक्ति को थकान लगी हो, थकान। फिर पलंग बिछाकर आराम करे। आहा..हा.. ! पूर्ण वस्तु को, सूक्ष्म वस्तु को, सूक्ष्म उपयोग से पकड़कर... आहा..हा.. ! **सूक्ष्म द्रव्य को पकड़कर आराम से...** आनन्द में रहे। भगवान आनन्द के नाथ में जहाँ दृष्टि हुई तो पर्याय में आनन्द आया, आराम हुआ। चार गति के दु:ख की थकान उतर गयी। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं। क्या हो ? भाई ! जहाँ पूर्ण प्रभु है, वहाँ दृष्टि किये बिना, उसके विश्वास बिना कभी यह धर्म की दशा नहीं होती। समझ में आया ?

सूक्ष्म द्रव्य को पकड़कर आराम से आत्मा में बैठना, वह विश्राम है। आनन्द के धाम में बैठना, वह विश्राम है। राग में और पर्याय में बैठना, वह नहीं। आहा..हा.. ! पर्याय में टिकने नहीं दूँ। उस भाई ने डाला न ? रमेश, घाटकोपर की मण्डली है न ? होशियार व्यक्ति है। गायन बहुत अच्छे बनाता है। प्रभु ! तुझे पर्याय में टिकने नहीं दूँ। आहा..हा.. ! राग में और निमित्त में तो नहीं... उसका भजन है ? आता है न उसमें ? '**रे तुझे पर्याय में टिकने नहीं दूँ**' आहा..हा.. ! एक समय की पर्याय में तुझे रुकने नहीं दूँ।

भगवान महल में विराजते हैं, वहाँ जा ! यह महा चैतन्य महल प्रभु, यह महल (जड़ महल) मैल है और वह तो महल निर्मल है। आहा..हा.. ! अरे ! **आराम से आत्मा में...** आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, उसमें आराम से बैठ जा। उदासीन, उद आसन। पर्याय का आसन छोड़ दे, द्रव्य का आसन लगा दे। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं। **वह विश्राम है।** २६२ हुआ।

साधना करनेवाले को कोई स्पृहा नहीं होती। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए, एक आत्मा ही चाहिए। इस क्षण वीतरागता होती हो तो दूसरा कुछ ही नहीं चाहिए; परन्तु अन्तर में नहीं रहा जाता, इसलिए बाहर आना पड़ता है। अभी केवलज्ञान होता हो तो बाहर ही न आयें॥२६३॥

२६३ **साधना करनेवाले को कोई स्पृहा नहीं होती।** अन्तर की चीज़ की साधना करनेवाले की कोई स्पृहा—कोई दुनिया मुझे माने, दुनिया पूजे, मुझे गिनती में गिने—ऐसी कोई स्पृहा नहीं होती। आहा..हा..! दुनिया में मैं गिनती में गिना जाऊँ, ऐसी स्पृहा साधक को नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया? **साधना करनेवाले को...** भगवान आत्मा पूर्ण की दृष्टि करके साधना करनेवाले को... आहा..हा..! अपने अतिरिक्त दूसरी कोई स्पृहा नहीं होती। समझ में आया? दुनिया मुझे ज्ञानी कहे, माने, यह सब स्पृहा ज्ञानी को नहीं होती। आहा..हा..! साधक को वह स्पृहा नहीं होती। आहा..हा..! और मुझसे लोग प्रसन्न हों तो मेरे ज्ञान की प्रशंसा हो, वह स्पृहा साधक को नहीं होती। मालचन्दजी! वहाँ कहीं कभी सुना नहीं। ढूँढ़िया में तो कुछ है नहीं। श्वेताम्बर और स्थानकवासी में तो यह बात ही नहीं। वे तो गृहीत मिथ्यात्व हैं। कठिन काम। जैन ही नहीं। उन्होंने जैन की पद्धति तोड़ डाली है। आहा..हा..!

साधना करनेवाले को कोई स्पृहा नहीं होती। मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए,... मुझे तो प्रभु आनन्द का नाथ मुझे चाहिए, दूसरा कुछ नहीं चाहिए। आहा..हा..! मुझे तो भगवान का साक्षात्कार चाहिए। आहा..हा..! भगवान यह, हों! दूसरे भगवान का साक्षात्कार, वह शुभराग है। आहा..हा..! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव जिनेश्वर दिव्यध्वनि द्वारा कहते थे, वह यह बात है। समझ में आया? आहा..हा..!

एक आत्मा ही चाहिए। आहा..हा..! यहाँ तो वहाँ तक लिया है कि ज्ञान का विशेष क्षयोपशम भी मुझे तो नहीं चाहिए। आहा..हा..! प्रवचनसार में आता है न? आहा..हा..! हमारे तो भगवान पूर्णानन्द प्रभु एक ही चाहिए। साधक जीव की यह भावना होती है। बाकी सब गड़बड़। आहा..हा..! **मुझे दूसरा कुछ नहीं चाहिए, एक आत्मा ही चाहिए।** एक आत्मा 'ही' चाहिए। एकान्त हुआ। एक भगवान पूर्णइदम् प्रभु, बस! वह चाहिए। दुनिया माने, न माने, पूजा करे न करे कोई। (कोई प्रयोजन नहीं)। आहा..हा..! समझ में आया?

इस क्षण वीतरागता होती हो तो... आहा..हा.. ! साधक जीव को यदि इस क्षण में वीतरागता होती हो तो दूसरे क्षण की दरकार नहीं है। है ? **तो दूसरा कुछ ही नहीं चाहिए;...** आहा..हा.. ! थोड़े शास्त्र पढ़ लें और भक्ति-वक्ति खूब कर लें। मन्दिर बनावें, यह सब नहीं चाहिए। अन्तर पूर्णानन्द के नाथ का जहाँ साधकपना प्रगट हुआ, तो फिर उसे दूसरी कोई चीज़ नहीं चाहिए। आहा..हा.. ! ऐसी बात है, बापू ! आहा..हा.. ! **परन्तु अन्तर में नहीं रहा जाता,...** आहा..हा.. ! स्वरूप की दृष्टि हुई, अन्तर में गये, परन्तु कमजोरी से अन्तर में रह नहीं सकते तो ज्ञानी को भी राग आता है। आहा..हा.. ! भक्ति का, वाँचन का, श्रवण का राग आता है। **इसलिए बाहर आना पड़ता है।** अन्तर में जम नहीं जाते तो राग आता है, इसलिए बाहर आना पड़ता है परन्तु है दुःख। आहा..हा.. ! समकिती ज्ञानी को भी राग आता है परन्तु वह दुःख है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? ज्ञानधारा और आनन्दधारा प्रगट हुई परन्तु उसमें रह नहीं सकते। तो बाहर आते हैं। श्रवण करने का भाव, कहने का भाव, वह राग आता है। आहा..हा.. ! **इसलिए बाहर आना पड़ता है।** आहा..हा.. !

अभी केवलज्ञान होता हो तो बाहर ही न आयें। अन्दर में जम जाये तो एक क्षण भी बाहर (आवे नहीं)। आहा..हा.. ! विशेष जानकारी हो जाये तो लोगों को समझाने में ठीक पड़े। आहा..हा.. ! समझ में आया ? **अभी केवलज्ञान होता हो तो बाहर ही न आयें।** आहा..हा.. ! कल बताया था न ? समकिती को बाहर का विकल्प आता है, परन्तु अरे रे ! हम परदेश में कहाँ आ गये ? शुभराग, हों ! भक्ति का, श्रवण का विकल्प आता है। अरे ! हम हमारे देश को छोड़कर कहाँ परदेश में आ गये ? उस राग में हमारी चीज़ नहीं। समझ में आया ? दुःख में भी हमारी चीज़ नहीं। वह राग दुःख है। उसमें कोई हमारी चीज़ नहीं। हमारा स्वदेश वहाँ नहीं। ऐसी बातें हैं, प्रभु ! आहा..हा.. !

साधक जीव को इस क्षण वीतरागता और केवलज्ञान होवे तो दूसरा क्षण नहीं चाहिए। भाई ! थोड़ा दुनिया को समझा दूँ और उपकार कर लूँ, यह विकल्प बन्ध का कारण है। समझ में आया ? वर्तमान में अन्तरस्वभाव में आश्रय करके इस क्षण में ही वीतरागता होवे तो दूसरा क्षण नहीं चाहिए। जानना बढ़े, जानकारी बढ़े, वह कुछ आवश्यक नहीं है। विशेष कहेंगे....... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र कृष्ण-९, सोमवार, दिनाङ्क २५-०९-१९७८
वचनामृत-२६४ से २६६ प्रवचन-१००

तेरे चित्त में जब तक दूसरा रंग समाया है, तब तक आत्मा का रंग नहीं लग सकता। बाहर का सारा रस छूट जाये तो आत्मा—ज्ञायकदेव प्रगट होता है। जिसे गुणरत्नों से गुँथा हुआ आत्मा मिल जाये, उसे इन तुच्छ विभावों से क्या प्रयोजन ?२६४॥

तेरे चित्त में... जब तक **दूसरा रंग समाया है,...** क्या कहते हैं ? **तेरे चित्त में जब तक दूसरा रंग समाया है,...** चाहे तो संयोगी चीज़ का प्रेम हो, राग का प्रेम हो और बाह्यलक्ष्यी शास्त्र का ज्ञान हुआ, उसका प्रेम हो तो अपने स्वभाव का प्रेम नहीं आता। आहा..हा..! तेरे चित्त में जब तक दूसरा रंग समाया है... आहा..हा..! राग का, दया, दान का विकल्प है, उसका प्रेम समाया हुआ हो... आहा..हा..! **तब तक आत्मा का रंग नहीं लग सकता।** भगवान चैतन्य ज्योति का प्रेम नहीं आता। आहा..हा..! एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती। निमित्त का प्रेम रहे, राग का प्रेम रहे और एक समय की पर्याय में परलक्ष्यी ज्ञान का उघाड़-विकास हुआ, उसमें प्रेम रुके, तो अपना आत्मा ज्ञात नहीं होता। ऐसी बात है, भाई ! आहा..हा..! समझ में आया ? **आत्मा का रंग नहीं लग सकता।** आहा..हा..!

बाहर का सारा रस छूट जाये... बाहर की कोई भी चीज़ विस्मयकारी लगे, तब तक अपने स्वभाव की विस्मयता नहीं आती। आहा..हा..! समझ में आया ? **बाहर का सारा रस छूट जाये...** आहा..! राग का रस छूट जाये, निमित्त का रस छूट जाये, अपनी पर्याय भावेन्द्रिय में क्षयोपशम है... आहा..हा..! उसका भी प्रेम / रंग छूट जाये। आहा..हा..! **तो आत्मा—ज्ञायकदेव प्रगट होता है।** आहा..हा..! भगवान तो चैतन्यस्वरूप ज्ञायकस्वभाव का पिण्ड प्रभु (है), पर के सब रंग छूट जाये तो अपना रंग लगे। अरे ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : आत्मा का रंग कैसा ? नीला या पीला ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रंग अर्थात् रस / आत्मा का रंग लगे, अर्थात् प्रेम लग जाये। आहा..हा.. ! मेरा नाथ परमानन्दमूर्ति प्रभु, उसका जिसे प्रेम लग जाये, उसे सर्वभाव, पर का प्रेम छूट जाये। आहा..हा.. ! समझ में आया ? कहाँ-कहाँ अटकता है। या स्त्री का प्रेम, पुत्र का प्रेम, इज्जत का प्रेम, लक्ष्मी का प्रेम, शुभभाव राग होता है, उसके प्रेम (में अटक जाता है)।

मुमुक्षु : चक्रवर्ती को तो सब प्रेम होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक भी प्रेम नहीं है। यह अभी मैं कहनेवाला था। समकिती को छह खण्ड का राज्य है.. आहा..हा.. ! यह छह खण्ड... न्यालभाई ने द्रव्यदृष्टि प्रकाश में लिखा है कि चक्रवर्ती, तीर्थंकर छह खण्ड नहीं साधते; वे तो अखण्ड को साधते थे। ऐसा बोल है।

मुमुक्षु : व्यवहार से तो साधते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं साधते। विकल्प आता है, उसके भी जाननेवाले रहते हैं। आहा..हा.. ! राग होता है। छह खण्ड के राज में, व्यवस्था में खड़े रहना पड़ता है। पहले आया था कि खड़े नहीं रहना। आहा..हा.. ! राग आता है, परन्तु वहाँ खड़े रहकर कि इस चक्रवर्ती की सम्पदा की व्यवस्था मैं करता हूँ - यह नहीं। आहा..हा.. ! 'सर्व भाव से उदासीन वृत्ति करि...' आहा..हा.. !

मुमुक्षु : सर्व भाव में तो शुद्धभाव भी आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध नहीं; राग। रागादि सर्व भाव से उदासीन (हो), तब तो शुद्धभाव प्रगट होता है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? धर्मी को भी राग तो आता है, परन्तु राग मैं सुखबुद्धि नहीं है। आहा..हा.. ! छह खण्ड का राज्य, छियानवें हजार स्त्रियाँ और एक स्त्री की तो हजार देव सेवा करते हैं। (परन्तु उनमें) सुखबुद्धि नहीं। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : पत्नी की सेवा करे, उसमें पति को क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे ? धर्मी को राग आता है, परन्तु काला नाग जैसे देखे, वैसा दिखता है। दु:ख दिखता है। मेरे प्रभु आनन्दस्वरूप में से मैं बाहर निकल गया। दृष्टि में से नहीं; दृष्टि तो वहाँ लग गयी है। समझ में आया ? उसमें मैं रह नहीं सका। मेरी

कमजोरी से राग, शुभ भक्ति आदि का भाव आया, वह भी दुःख है। आहा..हा..! ऐसा मार्ग! वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. आहा..हा..!

बाहर का सारा रस छूट जाये तो आत्मा—ज्ञायकदेव... आत्मा अर्थात् ज्ञायकदेव। लाईन करके (लिखा है)। **प्रगट होता है।** आहा..हा..! **जिसे गुणरत्नों से गुँथा हुआ आत्मा...** आहा..हा..! ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्त गुणों से गूँथा हुआ भगवान **मिल जाये,...** आहा..हा..! अनन्त गुणों से गूँथा हुआ-अभेद। आहा..हा..! अरे! परमात्मस्वरूप। पर का रस छूट जाये, तेरा रंग लग जाये तो तुझे भगवान मिल जाये। आहा..हा..! राग में आना, वह भी व्यभिचार है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव... आहा..हा..! वह राग व्यभिचार है। असमाधि है, अशान्ति है। वह पर का रस छूट जाये तो भगवान आत्मा के रस में जागृत स्वरूप चैतन्यदेव प्रगट होगा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पर का रस छूटे किस प्रकार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किया है, वह छोड़े। जिसने जोड़ा है, वह तोड़े। जिसने पर का रस जोड़ा है, वह जिसने जोड़ा है, वह तोड़े। आहा..हा..! यह परसन्मुख का जो जुड़ान किया है, वह स्वयं से किया है। उसे स्वयं तोड़कर भगवान के साथ लग जाये। आहा..हा..! समझ में आया ? यह तो, भाई! जगत से पागल जैसी बात है। आहा..हा..! वह समकिती छह खण्ड के राज्य में पड़ा है, राग आता है, परन्तु दुःख लगता है। रस नहीं है, उसमें सुखबुद्धि नहीं है। आहा..हा..! उसमें रुचि-बुद्धि नहीं है। वह पर का रस छूट जाने से भगवान प्रगट होता है।

जिसे... क्या प्रगट हुआ ? क्या अनुभव में आया ? **जिसे गुणरत्नों से गुँथा हुआ...** गुणरत्नों से गूँथा हुआ। हिन्दी में गूँथा हुआ कहते हैं ? **आत्मा मिल जाये,...** आहा..हा..! बापू! मार्ग बहुत कठिन है। अनादि का अभ्यास नहीं और विपरीत अभ्यास में चढ़ गया है। आहा..हा..! **उसे इन तुच्छ विभावों से क्या प्रयोजन ?** आहा..हा..! जहाँ भगवान आत्मा अनन्त गुणों से गूँथा हुआ प्रभु, उसके रस में भगवान मिल जाये, तो दूसरे विभाव से क्या प्रयोजन ? शरीरादि लक्ष्मी आदि और रागादि के साथ क्या प्रयोजन है ? आहा..हा..! समझ में आया ?

इन तुच्छ विभावों से... अरे! चक्रवर्ती का राज्य, इन्द्र का इन्द्रासन हो, वह तुच्छ वैभव है। भगवान चैतन्य के वैभव के समक्ष (वह तुच्छ है)। आहा..हा..!

कुन्दकुन्दाचार्य ने पाँचवीं गाथा में कहा न ? मैं मेरे निज वैभव से कहूँगा। वह कौन सा वैभव ? मैं आनन्दमूर्ति भगवान सच्चिदानन्द प्रभु हूँ, ऐसा मेरी दृष्टि में, मेरे अनुभव में आया, मेरी वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, वीतरागी सम्यग्ज्ञान, वीतरागी दर्शन, वीतरागी चारित्र (प्रगट हुए), वह मेरा निज वैभव है। आहा..हा.. ! उस निज वैभव से मैं समयसार शास्त्र कहूँगा। प्रभु ! तू प्रमाण करना। आहा..हा.. ! मेरे निज वैभव से भगवान कहते हैं, वह मैं कहूँगा, ऐसा नहीं। श्वेताम्बर में पहले से ऐसा आया है। भगवान ऐसा कहते थे, ऐसा कहते हैं। यहाँ कहते हैं मैं मेरे निज वैभव से कहूँगा। आता है न आचारांग में ? ...वह शैली पूरी अलग। यह शैली कोई अलग। आहा..हा.. ! मेरा भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान का दल, अतीन्द्रिय शान्ति का सागर, अनन्त गुण का गोदाम, अनन्त शक्ति का संग्रहालय, अनन्त स्वभाव का सागर है। आहा..हा.. ! वह जिसे अन्तर में मिल गया, उसे दूसरे वैभव से क्या प्रयोजन ? आहा..हा.. !

मुमुक्षु : जिसे न हो उसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे कब ? होवे तो जड़ का। उसमें क्या है ? यह बंगला करोड़ों का... ऐई ! पुरुभाई ! इनके साले को गोवा में चालीस लाख का बंगला है। चालीस लाख का एक, दस-दस लाख के दो। साठ लाख के तीन (बंगले हैं)। दो अरब चालीस करोड़, ढाई अरब हैं। लींबड़ी के हैं। उनकी लड़की यहाँ बालब्रह्मचारी है। आहा..हा.. ! उसमें क्या है ? धूल-धाणी। मरकर ऐसे (जाये)। आहा..हा.. ! मुझे दुःखता है... दुःखता है। हार्ट में खून जम जाता है। पहले अपने ऐसा कहते थे कि पाटिया भिसाय छे, गुजराती में ऐसा कहते हैं। पाटिया अर्थात् हार्ट में खून जम जाये। गति न करे तो पाटिया भिसाय, ऐसा कहते हैं। उसे अब हार्टफेल कहते हैं। आहा..हा.. ! ऐसा हुआ तो (कहा), डॉक्टर को बुलाओ। अब तेरे अरबों रुपये और धूल और.... वहाँ कहीं शरण नहीं मिलती। डॉक्टर जहाँ आता है, वहाँ तो देह छूट जाती है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : डॉक्टर तो वहाँ नजदीक रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर या कोई धूल भी नहीं था। उसका रिश्तेदार था, उसने कहा, कोई रिश्तेदार था या नहीं ? रिश्तेदार। वहाँ खड़ा था। उससे कहा, डॉक्टर को बुलाओ। वहाँ मुम्बई हम उसके घर गये थे। वह कहता है कि मैं खड़ा था और भाई ने कहा, मुझे दुःखता है। डॉक्टर को बुलाओ। मैं बुलाने गया। आया वहाँ तो .... चलो चार गति में

भटकने। आहा..हा..! यह वैभव पर का, वह तेरा नहीं, प्रभु! आहा..हा..! अपने अनन्त गुण का वैभव, उसके प्रेम के समक्ष तुझे पर वैभव का क्या प्रयोजन है? समझ में आया? आहा..हा..! वह तो **तुच्छ विभावों से क्या प्रयोजन?** आहा..हा..!

आत्मा जाननेवाला है, सदा जागृतस्वरूप ही है। जागृतस्वरूप ऐसे आत्मा को पहिचाने तो पर्याय में भी जागृति प्रगट हो। आत्मा जागती ज्योति है, उसे जान॥२६५।

२६५। **आत्मा जाननेवाला है,...** भगवान तो जाननेवाला जागृतस्वरूप प्रभु है। आहा..हा..! आत्मा जाननेवाला जागृतस्वरूप है। उसमें कोई निद्रा या आवरण नहीं है। आहा..हा..! जागृतस्वरूप भगवान अन्दर है। आहा..हा..! जागती ज्योत चैतन्यप्रभु विराजता है। अरे! आहा..हा..! **आत्मा जाननेवाला है, सदा जागृतस्वरूप ही है।** दो बात। **सदा जागृतस्वरूप ही है।** कायम त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव जागृतस्वरूप ही प्रभु है। आहा..हा..! जाननेवाला 'ही' आया। जागृतस्वरूप दूसरा 'ही' आया।

जागृतस्वरूप ऐसे आत्मा को पहिचाने... रागादि तो अन्धकार है। आहा..हा..! चाहे तो दया, दान, व्रत का विकल्प राग हो, वह स्वयं को नहीं जानता और दूसरे के द्वारा ज्ञात होता है, इस कारण से राग तो अचेतन जड़ है। आहा..हा..! भगवान तो चैतन्य, चैतन्यस्वरूप है। आहा..हा..! **जागृतस्वरूप ऐसे आत्मा को...** पहिचान। आहा..हा..! गजब काम कठिन! **जागृतस्वरूप ऐसे आत्मा को...** जागती ज्योति, स्वयं ज्योति सुखधाम स्वयं ज्योति सुखधाम। श्रीमद् में आता है। स्वयं ज्योति सुखधाम। अतीन्द्रिय आनन्द का स्थान। आहा..हा..! उस क्षेत्र में अतीन्द्रिय (आनन्द) पकता है। आहा..हा..! राग पके, वह चीज़ आत्मा नहीं। आहा..हा..!

जागृतस्वरूप ऐसा आत्मा, **जागृतस्वरूप ऐसे आत्मा को पहिचाने...** पर्याय में उसे पहिचान ले। आहा..हा..! रागस्वरूप अन्धकार, उसे छोड़ दे। आहा..हा..! और जागृतस्वरूप भगवान आत्मा को पहिचान ले। आहा..हा..! देखो, इन शब्दों में बहुत भाव भरा है। जागृत भगवान आत्मा, चैतन्य की जागृत शक्ति सम्पन्न प्रभु को पहिचान। जागृत को पहिचान ले। अजागृत रागादि की पहिचान छोड़ दे। आहा..हा..! समझ में आया? कठिन बात लगे,

भाई! अभी प्रथा–पूरी वस्तु बदल गयी है। धर्म के नाम से अभी भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, मन्दिर करो, रथयात्रा चलाओ, गजरथ कराओ। अरे... भगवान!

मुमुक्षु : यह तो आपने भी सब किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं किया। रामजीभाई ने कहा था कि ऐसा करो... ऐसा करो... उससे हुआ नहीं। ऐसा कहे अब हो गया; इसलिए फिर अब किया नहीं (ऐसा कहते हैं)। आत्मा ने पहले से किया ही नहीं। यह मन्दिर बना, उसे कारीगर बना सकते ही नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : मजदूरी मुफ्त में ले गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन ले? रामजीभाई का, कारीगर का राग था कि ऐसा बनाओ। रतनलालजी! अपने घर में से (दृष्टान्त देते हैं)। आहा..हा..! एक आँख की पलक फिरावे, वह तीन काल–तीन लोक में आत्मा फिरा नहीं सकता। यह ऐसे होता है, वह तो जड़ की क्रिया जड़ से होती है। आहा..हा..! क्या है? चिमनभाई! यह तुम्हारे स्टील के बासन और फासड़ कांप में बड़ा कारखाना है न? एक बार कारखाने में चरण करने गये थे। लो स्टील। लो कलश। हमें क्या करना है?

मुमुक्षु : आप लो तो हमारे ग्राहक बहुत आवें।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्राहक आवें। आहा..हा..!

यहाँ तो तीन लोक का नाथ, जागृत ज्योति, जलहल ज्योति अन्दर जलती है न! आहा..हा..! शान्ति का सागर जलहल ज्योति प्रभु, वह आत्मा, उसे पहिचान। तेरी चीज़ ऐसी है। आहा..हा..! यहाँ शास्त्र को जान, ऐसी बात नहीं की है। समझ में आया? जागृतस्वरूप भगवान को जान। जागृत को जान। आहा..हा..! अरे! अनन्त काल (व्यतीत हुआ)। परिभ्रमण मिटाने का उपाय तो यह है, प्रभु! आहा..हा..! इसमें देखो न, बात नहीं? फतेपुर में बाबूभाई के काकाजी। एक अंगुली में जरा कालापन आया। कुछ रोग नहीं। ६५ वर्ष हुए। ऐसे जहाँ देखे वहाँ आधे घण्टे में वह एकदम सड़ गया। पहले कुछ नहीं था, ऐसा देखा। ये क्या है? वहाँ तो अन्दर पीड़ा हुई, ऐसा ठण्डा लगे, अन्दर पीड़ा हो। आधे घण्टे–घण्टे में सड़ गया। दो घण्टे हुए वहाँ यहाँ तक सड़ गया। डॉक्टर के पास ले गये। आहा..हा..! काट दिया। अपने फतेपुरवाले बाबूभाई आते हैं न, उनके काकाजी। इसके

ससुर आये थे। भाई को दु:ख है और काट दिया है। अब मैं नहीं बचूँ... नहीं बचूँ... ऐसा करता है। वह काट दिया है न, इसलिए। आहा..हा..! शरीर का अवयव है, वह कहीं आत्मा का अवयव नहीं। आहा..हा..! वह अवयव टूटने से कहीं अन्दर में भगवान टूटा? आहा..हा..! परन्तु वहाँ दृष्टि है न कि मेरा अवयव टूटा। देह तो जड़ है, उसका एक अंश टूटा तो मेरा अंश टूटा। क्योंकि मैं ऐसा। वापस दाहिना हाथ था। काम ले सके, वह दाहिना हाथ था। दवाखाने में थे। अभी क्या हुआ होगा? वह तो कहता था कि भाई! ऐसा कहते थे कि मैं नहीं बचूँगा। करवत से यहाँ से काट दिया। यह जड़ की दशा है, प्रभु! आहा..हा..!

अनन्त गुण का नाथ गुणभेद में भी नहीं आता। पर्याय में नहीं आता तो राग में और पर में कहाँ से आवे? आहा..हा..! अभी भाई का-रमेश का भजन नहीं आया था? 'तुझे पर्याय में टिकने नहीं दूँ'। प्रभु! तुझे राग में नहीं टिकने दूँ, परन्तु पर्याय में टिकने नहीं दूँ। तेरी चीज़ अन्दर आनन्द का नाथ भगवान विराजमान है, वहाँ जा न! आहा..हा..! बहुत अच्छा गाया था। आहा..हा..!

जागृतस्वरूप ऐसे आत्मा को... आहा..हा..! रागवाला आत्मा या अल्पज्ञ आत्मा, वह नहीं। सर्वज्ञस्वरूपी, जागृतस्वरूपी सर्वज्ञस्वरूप आत्मा। आहा..हा..! ज्ञ-स्वभावी कहो, सर्वज्ञस्वभावी कहो, जागृतस्वरूप कहो। आहा..हा..! चैतन्य चेतना स्वभावस्वरूप कहो, उसे पहिचान। आहा..हा..! **तो पर्याय में भी जागृति प्रगट हो**। आहा..हा..! जागृत भगवान ज्ञायकस्वरूप को पहिचानने से पर्याय में जागृतपना प्रगट होगा। जो स्वभाव जागृत त्रिकाल है, नित्यानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप की पहिचान कर तो तेरी पर्याय में भी जागृत ज्ञातादृष्टा की पर्याय, आनन्द की पर्याय तुझे प्रगट होगी। आहा..हा..! कहो, मालचन्दजी! यह तुम्हारे यहाँ सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, रात्रि भोजन त्याग करना... आहा..हा..! भाई! यह तो क्रिया का राग, यह तेरी चीज नहीं। आहा..हा..! तेरी चीज़ तो जागृतस्वरूप ही है। अन्दर अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम पड़ा है।

मुम्बई में माल लेने जाते थे न, वहाँ केसर के डिब्बे (पड़े रहते थे)। तब तो रुपया भार था। यह केसर-केसर। अब तो महँगी हो गयी है, ऐसा कहते हैं। बड़ी अलमारी भरी हो। थप्पी (लगी हो)। केसर के डिब्बे। बड़ा व्यापारी हो न करोड़पति। पालेज से दुकान का माल लेने जाते थे परन्तु छोटी उम्र की बात है। १८-१९-२० वर्ष की उम्र। आहा..हा..! यह अनन्त गुण का गोदाम भगवान है। अनन्त-अनन्त गुण की थप्पी अन्दर लगी है।

आहा..हा.. ! समझ में आया ? अनन्त-अनन्त गुण की अन्दर थप्पी लगी है। आहा..हा.. ! वहाँ नजर कर, प्रभु ! ऐसी बातें हैं।

तेरी पर्याय में भी जागृतदशा प्रगट होगी। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह जागृतदशा है। आहा..हा.. ! त्रिकाली भगवान जागृतस्वरूप प्रभु है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! आनन्द का सागर प्रभु सच्चिदानन्द, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का गंज प्रभु (है), उसे पहिचान-उसके सन्मुख हो। पर्याय और राग से विमुख हो। समझ में आया ? तो तेरी पर्याय में भी जो स्वभाव जागृत है, आनन्द है, उस पर्याय में भी चैतन्य की जागृति और आनन्द की दशा तुझे होगी। आहा..हा.. ! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ की दृष्टि करने से, उसका आदर करने से तेरी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द आयेगा, वह आत्मसाक्षात्कार है। आहा..हा.. ! ऐसी बात है प्रभु !

पर्याय में भी जागृति प्रगट हो। आत्मा जागती ज्योति है,... स्वयं ज्योति। जैसे अग्नि स्वयं ज्योति है, वैसे भगवान स्वयं चैतन्य ज्योति है। ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. वज्र की तरह, जैसे वज्रबिम्ब हो, वैसे ध्रुवबिम्ब। ज्ञायक का बिम्ब प्रभु पड़ा है। आहा..हा.. ! वह जिनबिम्ब है। आहा..हा.. ! श्रीमद् में आता है 'जिनप्रतिमा हो... जिनप्रतिमा हो।' ऐसा श्रीमद् में आता है, परन्तु उसकी लोगों को कहाँ (पड़ी है) जिनप्रतिमा जिनस्वरूपी भगवान है, तो उसका लक्ष्य और दृष्टि करने से तेरी पर्याय में जिनपना आयेगा। वह जिनबिम्ब है। वह चैतन्य प्रतिमा है। यह बाह्य प्रतिमा तो व्यवहार में शुभराग आता है, तब लक्ष्य वहाँ जाता है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! ऐसी बातें ! ऐसा उपदेश किस प्रकार का ? बापू ! तेरे घर में जाने की बात है।

'पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये। अब हम कबहूँ न निज घर आये। अब हम कबहूँ न निज घर आये रे... अब हम कबहूँ न निज घर आये। पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये।' मैं लक्ष्मीवाला, मैं पुण्यवाला, मैं पापवाला, मैं पण्डित और मूर्ख और.... आहा..हा.. ! 'पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये। अब हम कबहूँ न निज घर आये।' आहा..हा.. ! यह गाय और बैल सबेरे बाहर निकलते हैं, शाम को आते हैं। देखा है ? तो दरवाजा बन्द हो तो सिर मारते हैं। शाम को जब जंगल में से आते हैं। क्योंकि नीचे अन्दर चरनी होती है न, उसमें बाँधे और बारह घण्टे वहाँ रहेगा। आहा..हा.. ! हमारे घर में रहना है, तो दरवाजा बन्द हो। मनुष्यों को खबर नहीं हो कि अभी गाय-भैंस आयी है, तो सिर मारता है। इसी प्रकार प्रभु ! घर

में जाने के लिये एक बार सिर तो मार। आहा..हा..! समझ में आया? राग की एकता का दरवाजा बन्द है, वह टूट जायेगा। आहा..हा..!

आत्मा जागती ज्योति है, उसे जान। जागती ज्योति को जान। चैतन्यस्वरूप को-चैतन्य को जान। आहा..हा..! जानती है, वह पर्याय है। परन्तु पर्याय में जानने में आता है त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव। आहा..हा..! पर्याय में, ज्ञान की पर्याय में यह जागृतस्वभाव ज्ञात हुआ, तथापि वह जागृतस्वभाव पर्याय में आया नहीं। जागृतस्वभाव का सामर्थ्य कितना है, वह पर्याय में आया? समझ में आया? पर्याय कहीं द्रव्यरूप हो जाती है, ऐसा नहीं है और द्रव्य, पर्याय में आता है, ऐसा भी नहीं है। आहा..हा..! उसे पहिचान। स्वयं जागती ज्योति है। वह जागती ज्योति, वह चीज़ है। पहिचान की, वह पर्याय है। पर्याय में कार्य होता है न? ध्रुव में कहाँ कार्य होता है? ध्रुव तो जागती ज्योति एकरूप कूटस्थ नित्य है ही। आहा..हा..! **उसे जान।** जागती ज्योति को जान। आहा..हा..! ऐसा है। २६५ (बोल पूरा हुआ)।

यदि तुझे जन्म-मरण का नाश करके आत्मा का कल्याण करना हो तो इस चैतन्यभूमि में खड़ा रहकर तू पुरुषार्थ कर; तेरे जन्म-मरण का नाश हो जायेगा। आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं :—तू मुक्तस्वरूप आत्मा में निस्पृहता से खड़ा रह। मोक्ष की स्पृहा और चिन्ता से भी मुक्त हो। तू स्वयमेव सुखरूप हो जायेगा। तेरे सुख के लिये हम यह मार्ग बतला रहे हैं। बाहर के व्यर्थ प्रयत्न से सुख नहीं मिलेगा॥२६६॥

२६६ **यदि तुझे जन्म-मरण का नाश करके...** तेरा ऐसा भाव हो कि मुझे तो जन्म-मरण का नाश करके आत्मा का कल्याण करना है। दुनिया में मैं स्वर्ग में जाऊँ, पुण्य-बंध हो, लक्ष्मी मिले, वह कुछ नहीं। जन्म-मरण का नाश करना हो तो। आहा..हा..! चौरासी लाख योनि (है, उसमें) एक-एक योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। ऐसे जन्म-मरण का नाश करना हो तो। आहा..हा..! माता के गर्भ में सवा नौ महीना रहता है परन्तु शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि उत्कृष्टरूप से रहे तो बारह वर्ष रह सकता है। उसे छोल कहते हैं। बारह वर्ष तक बालक का जन्म नहीं होता। गर्भ में रहता है, ऐसा भगवान कहते हैं। तीन-तीन वर्ष रहता है, ऐसा सुना है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तीन-तीन वर्ष गर्भ में रहे। यह तो भगवान कहते हैं कि बारह वर्ष रहता है। आहा..हा..! उल्टे सिर, श्वांस लेने की जगह नहीं। आहा..हा..! एक बार बारह वर्ष (रहे), भगवान तो ऐसा कहते हैं कि कदाचित बारह वर्ष हुए और जहाँ बाहर आया, और मर जाये तो वापस उसमें आवे तो फिर बारह वर्ष (रहे)। चौबीस वर्ष कायस्थिति गिनने में आयी है। आहा..हा..! ऐसा अनन्त बार हुआ है, प्रभु! ऐसा बारह-बारह वर्ष माता के गर्भ में (रहा), ऐसे चौबीस वर्ष (व्यतीत किये)। दो बार। ऐसा अनन्त बार हुआ है, प्रभु! तेरा अनन्त काल गया।

यदि तुझे जन्म-मरण का नाश करके... आहा..हा..! **करके आत्मा का कल्याण करना हो तो इस चैतन्यभूमि में खड़ा रहकर...** जो राग में और पर्याय में खड़ा है, उसे छोड़ दे और चैतन्यभूमि दल जो चैतन्यभूमि है, उसमें दृष्टि लगाकर वहाँ खड़ा रह जा। अरे रे! ऐसी बातें! **तुझे जन्म-मरण का नाश करके आत्मा का कल्याण करना हो तो...** यह शर्त है। **चैतन्यभूमि में खड़ा रहकर...** चैतन्यध्रुव ध्रुवभगवान में खड़े रहकर। आहा..हा..! **खड़ा रहकर तू पुरुषार्थ कर;...** अन्तर में पुरुषार्थ कर। आहा..हा..! चैतन्यभूमि में रहकर पुरुषार्थ कर। आहा..हा..! वह पुरुषार्थ शुद्ध चैतन्य की परिणति। समझ में आया? **तेरे जन्म-मरण का नाश हो जायेगा।** आहा..हा..! इस चैतन्यभूमि-दल, अस्ति, मौजूदगी चीज़ जो शुद्ध चैतन्यघन, उसमें खड़े रहकर। आहा..हा..! ऐसी भाषा! पुस्तक ऐसी बाहर आयी है, अन्यमति वेदान्तवाले एक बार पढ़ें तो उन्हें (हो जाये)... आहा..हा..! एक वेदान्त ने हाथ में लिया, पढ़ा तो ओहो..! यह चीज़! यह तो वस्तु का स्वरूप है। यह कोई पक्ष की, वाड़ा की बात नहीं है। आहा..हा..! **तेरे जन्म-मरण का नाश हो जायेगा।**

आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं... भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य सन्त **करुणापूर्वक कहते हैं :—तू मुक्तस्वरूप आत्मा में...** भगवान अन्दर तो मुक्तस्वरूप है, प्रभु! आहा..हा..! द्रव्य जो वस्तु है, उसे आवरण नहीं, उसमें अशुद्धता नहीं, उसमें अपूर्णता नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? यह श्लोक आगे है। कल आ गया है। 'स्वर्ण को जंग नहीं' काइ। कंचन को काई नहीं, अग्नि को दीमक नहीं। अग्नि से वहाँ दीमक नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा में आवरण नहीं, अशुद्धता नहीं। आहा..हा..! अपूर्णता नहीं। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर (विराजता है)। आहा..हा..! अरे! यह प्रयत्न तो कितना है। आहा..हा..!

तू मुक्तस्वरूप... आहा..हा..! समयसार १४-१५ गाथा में कहा है न? '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्ध**' जो कोई इस आत्मा को अबद्ध देखता है (अर्थात्) राग के सम्बन्धरहित चीज़ देखता है, उसने जैन शासन देखा। आहा..हा..! अबद्ध देखा कहो या मुक्तस्वरूप कहो। राग के सम्बन्धरहित चीज़ अबद्ध और जब नास्ति से अबद्ध कहा तो अस्ति से कहो तो मुक्तस्वरूप है। आहा..हा..! ऐसा उपदेश इसलिए उन लोगों को तो ऐसा लगता है कि ये सोनगढ़िया एकान्त-एकान्त... अरे, प्रभु! सुन न! तेरे घर की बात है, प्रभु! आहा..हा..! तुझे घर में ले जाने की बात है। पर घर में भ्रमता है। आहा..हा..!

तू मुक्तस्वरूप आत्मा में निस्पृहता से खड़ा रह। कोई भी आशा (रखे बिना)। दुनिया मुझे गिने या विशेष ज्ञान हो तो दुनिया में मैं (प्रसिद्ध होऊँ).. आहा..हा..! और लोगों को तारने के लिये मैं जरा एकाध भव करूँ, यह भी भ्रम है। समझ में आया? भले एकाध भव हो परन्तु दुनिया मेरा लाभ ले, यह दृष्टि विपरीत है। आहा..हा..! समझ में आया? कहते हैं न? कि भाई! दुनिया के लाभ के लिये कदाचित् एकाध-दो भव करना पड़े...

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न! यह सब सुना है। गाँधीजी कहते थे। (संवत्) १९९५ के वर्ष में गाँधी राजकोट व्याख्यान में आये थे। कहते थे कि इस दुनिया के भले के लिये कदाचित् एकाध-दो भव करना पड़े तो क्या? अरे भगवान! क्या करता है तू? आहा..हा..! भव करना तो भव का कारण राग करना और राग का फल भोग मिलना, उसे तो भव की भावना है। आहा..हा..! और तुझसे दुनिया का कल्याण होगा, यह तीन काल में नहीं है। उसके वीतरागभाव से कल्याण होगा और अज्ञानभाव से बन्ध होगा। आहा..हा..! ऐसी बातें बहुत, भाई!

तू मुक्तस्वरूप आत्मा में... कैसे जँचे? मुक्त, मुक्त। वस्तु जो द्रव्य है, पदार्थ है, वह तो मुक्त ही है। पर्याय में राग का सम्बन्ध है। एक समय की पर्याय में राग का सम्बन्ध है। वस्तु में तो राग का सम्बन्ध है ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? भगवान अरागस्वरूप, मुक्तस्वरूप, अबन्धस्वरूप है। आहा..हा..! उसे जिसने देखा, उस शुद्धोपयोग में जिसने देखा, वह शुद्धोपयोग जैनशासन है। आहा..हा..! '**पस्सदि जिण सासणं सव्वं**' (समयसार, गाथा १५), उसने सम्पूर्ण जिनशासन को देखा। आहा..हा..! यह क्या कहा? तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर, जिनेश्वरदेव का हुकम है, प्रभु! एक बार तेरी चीज़ अबद्ध अन्दर

है, (उसे देख)। आहा..हा..! वस्तु को आवरण नहीं। आवरण हो तो वस्तु, अवस्तु हो जाये। समझ में आया? अरे! वस्तु है, उसे आवरण हो तो आवरण का अर्थ वस्तु का अभाव-अवस्तु हो जाये। वस्तु त्रिकाल है, उसका अभाव कब हो? आहा.हा..! जगत से बहुत अलग बातें, बापू! सम्प्रदाय में तो अभी गड़बड़ उठी है। आहा..हा..!

परमेश्वर-जिनेश्वरदेव, जिन्हें सर्वज्ञता और परिपूर्ण वीतरागता प्रगट हुई, उन परमात्मा को वाणी बिना इच्छा के निकलती है। उस वाणी में स्व-पर प्रकाशक कहने की ताकत है-स्व-पर कहने की ताकत है। स्व-पर प्रकाशक की ताकत चैतन्य की है और वाणी में स्व-पर कहने की ताकत है। आहा..हा..! उन भगवान की वाणी में ऐसा आया कि एक बार मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है (उसे देख)। आहा..हा..! यदि मुक्त न हो तो मुक्त की पर्याय कहाँ से आयेगी? सिद्धपर्याय, केवलज्ञानपर्याय। मुक्तस्वरूप है, उसमें से मुक्ति का पर्याय आती है। आहा..हा..! बन्धस्वरूप हो तो उसमें से बन्ध का फल आता है। आहा..हा..!

तू मुक्तस्वरूप आत्मा में... मुक्तस्वरूप आत्मा में, तू मुक्तस्वरूप आत्मा में... आहा..हा..! भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप आत्मा है। अरे रे! कैसे बैठे? राग का, कर्म का सम्बन्ध तो एक समय की पर्याय के साथ है। उस पर्याय का भी द्रव्य में तो अभाव है। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ तो तुझे जन्म-मरणरहित होना हो तो, तेरा कल्याण करना हो तो, प्रभु! (उसकी बात है)। बातें करके जगत को प्रसन्न करना हो तो उसकी यह बात नहीं है। समझ में आया?

तू मुक्तस्वरूप आत्मा... आहा..हा..! अबद्धस्वरूप भगवान आत्मा, वस्तुरूप से, द्रव्यरूप से, पदार्थरूप से शाश्वत् वस्तु अर्थात् अनन्त गुण में बसी हुई, रही हुई; वस्तु अर्थात् अनन्त गुण की वस्तु, उसमें बसता है, अनन्त गुण की बस्ती उसमें है। बादशाह भगवान, उसके बादशाह में अनन्त गुण की प्रजा पड़ी है। आहा..हा..! यह बात है। क्षेत्र भले शरीर प्रमाण हो, परन्तु भाव तो अमाप है प्रभु! आहा..हा..! ऐसा मुक्तस्वरूप प्रभु आत्मा है। उसमें **निस्पृहता से खड़ा रह।** कोई भी आशा... मैं मोक्ष हूँ, ऐसी भी जहाँ इच्छा नहीं। मुक्तस्वरूप है। आहा..हा..! **मोक्ष की स्पृहा और चिन्ता से भी मुक्त हो।** आहा..हा..! मोक्ष की इच्छा से मोक्ष नहीं होगा। मुक्तस्वरूप भगवान में रहने से मुक्त होगा। आहा..हा..!

यहाँ तो जन्म-मरणरहित होने की बात है, प्रभु ! जन्म-मरण में स्वर्ग मिले, बड़ा चक्रवर्ती राजा हो, वापस मरकर नरक में जाये।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अन्तिम चक्रवर्ती था। छियानवें हजार रानियाँ, एक कुरुमती नामक रानी थी, उसकी हजार देव सेवा करें। परन्तु इतनी गृद्धि हो गयी। सात सौ वर्ष, चक्रवर्ती का पद तो थोड़ा, परन्तु उम्र सात सौ वर्ष। वह मरते हुए देह छूटते हुए कुरुमती... कुरुमती करते हुए (मरा)। वह हीरे के पलंग पर सोता था। वह दूसरे क्षण में सातवें नरक में पहुँच गया। सातवाँ नरक नीचे है, नरक। सब बात सिद्ध करने जाये तो सब लॉजिक-न्याय से सिद्ध होता है। समझ में आया ? सातवाँ नरक है। तैतीस सागर की स्थिति है। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम जाते हैं। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष होते हैं। आहा..हा..! उस सात सौ वर्ष की आयुष्य में मरकर तैंतीस सागर में गया। यह जन्म-मरण ! आहा..हा..! ....भाई ने कुछ कहा था। एक श्वास का फल उसे कितना आया ?

मुमुक्षु : ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर पल्योपम।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर पल्योपम। एक श्वास का फल इतना। सात सौ वर्ष के श्वास होते हैं, तो एक श्वास में नरक के दु:ख के फलरूप से ग्यारह लाख छप्पन हजार (नौ सौ पिहचत्तर) पल्योपम। अरे प्रभु ! क्या करता है तू ? कितनी विपरीतता थी ? आहा..हा..! अभी सातवें नरक में पड़ा है। अभी तो पिच्यासी हजार वर्ष व्यतीत हुए हैं। आहा..हा..! ऐसे जन्म-मरण से तुझे छूटना हो, प्रभु ! आहा..हा..! तो भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप में खड़ा रह, उसका स्वीकार कर। आहा..हा..!

मोक्ष की स्पृहा और चिन्ता से भी मुक्त हो। उससे भी मुक्त हो। **तू स्वयमेव सुखरूप हो जायेगा।** मुक्तस्वरूप, सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप प्रभु में रहने से तेरी पर्याय में सुख अनन्त आनन्दरूप हो जायेगा। अनन्त आनन्द, पर्याय में प्रगट होगा। आहा..हा..! है ? **स्वयमेव सुखरूप...** किसी की अपेक्षा बिना। भगवान आनन्द प्रभु में रहने से-खड़े रहने से तेरी पर्याय में अनन्त सुख की प्राप्ति हो जायेगी। आहा..हा..!

तेरे सुख के लिये हम यह मार्ग बतला रहे हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! **तेरे सुख के लिये हम यह मार्ग बतला रहे हैं। बाहर के व्यर्थ प्रयत्न से**

सुख नहीं मिलेगा। आहा..हा..! चाहे तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव हो, वह तो राग है। आहा..हा..! तुझमें एक वीर्य नाम का गुण है। तेरी दृष्टि में द्रव्य का स्वीकार करने से वीर्य गुण का कार्य यह है कि स्वरूप की निर्मल की रचना करे, वह वीर्य। बीच में राग की रचना करे, वह नपुंसक वीर्य है। आहा..हा..! जैसे नपुंसक को प्रजा नहीं होती; इसी प्रकार शुभभाव में धर्म की प्रजा नहीं होती। ऐसी बात है। आहा..हा..!

पूर्णानन्द का नाथ मुक्तस्वरूप में खड़े रहकर दृष्टि वहाँ लगाने से तेरी पर्याय में भी परम आनन्द की दशा प्रगट होगी। यह मार्ग बताते हैं। **बाहर के व्यर्थ प्रयत्न से सुख नहीं मिलेगा**। तेरे व्रत, भक्ति, तप, दान के भाव से तुझे कहीं मोक्ष नहीं मिलेगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाई! अन्तर में विचार करो....

भाई! यह तो अन्तर की बात अपूर्व है, जिसे अत्यन्त सरल रीति से कहा जा रहा है। दूसरी सब बातें तो सारी जिन्दगी में सुनी होगी, परन्तु यह आत्मा की अपूर्व बात है, जो भाग्यशाली को ही सुनने मिलती है। प्रभु! तुमने अपनी आत्मा की बात कभी प्रीति से सुनी भी नहीं है।

भाई! अन्तर में विचार करो कि तुम्हें आत्मा का प्रेम कितना है? और स्त्री-पुत्रादि के प्रति कितना प्रेम है? अन्दर में जो पुण्य-पाप की वृत्तियाँ होती हैं, वही मैं हूँ – ऐसा मानकर उनकी प्रीति करता है परन्तु आत्मा कौन है? – उसकी समझ नहीं करता। बाहर में 'यह ठीक है और यह ठीक नहीं है' – ऐसा मानकर अटक जाता है परन्तु आत्मा को तो पहचानता नहीं; इस प्रकार परवस्तु में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके अज्ञानी तो संसार में परिभ्रमण किया करता है और ज्ञानी तो पर से भिन्न आत्मा को पहचानकर निर्मलपर्याय प्रगट करके सिद्ध हो जाता है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-४

भाद्र कृष्ण-१०, मंगलवार, दिनाङ्क २६-०९-१९७८
वचनामृत-२६७ से २७० प्रवचन-१०१

ज्ञानी द्रव्य के आलम्बन के बल से, ज्ञान में निश्चय-व्यवहार की मैत्रीपूर्वक, आगे बढ़ता जाता है और चैतन्य स्वयं अपनी अद्‌भुतता में समा जाता है॥२६७॥

२६७वाँ बोल है। धर्मी जीव की बात चलती है। २६७। **ज्ञानी...** धर्मी जीव। आहा..हा..! **द्रव्य के आलम्बन के बल से,...** त्रिकाली भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, वह द्रव्य, उसके अवलम्बन के बल से। आहा..हा..! **ज्ञान में निश्चय-व्यवहार की मैत्रीपूर्वक,...** आहा..हा..! भगवान आत्मा पूर्ण सच्चिदानन्द नित्यानन्द प्रभु (है)। धर्मी जीव उसका अवलम्बन लेकर निश्चयस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता (करता हुआ), और उसमें रह नहीं सके, तो मैत्री-व्यवहार का विकल्प भी आता है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों विरोध और मैत्री किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : मैत्री कहा न? निश्चयपूर्वक व्यवहार होता है। मैत्री अर्थात् उस स्थान में होता है। विरोध नहीं। यह पहले आ गया है। ११० कलश में आ गया है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप भगवान, वह आनन्द की धारा, ज्ञान की धारा, उसके साथ राग आता है, तो उसे साथ में रहने में कोई विरोध नहीं है। जैसे मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन को साथ में रहने का विरोध है, वैसे भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन से जो निर्मल धारा (प्रगट हुई) है। वहाँ पूर्ण स्वरूप नहीं (हुआ); इसलिए राग आये बिना रहता नहीं है। समझ में आया? यह ज्ञानधारा, भेदज्ञान से राग से भिन्न करके (जो धारा प्रगट हुई), वह भी है और राग भी साथ में है, जब तक पूर्ण नहीं, तब तक राग साथ में है। आहा..हा..! समझ में आया?

निश्चयव्यवहार की मैत्री अर्थात् उसके साथ राग की मन्दता दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इत्यादि का भाव ज्ञानी को भी आता है। अन्दर स्थिर रह नहीं सके तो अशुभ से बचने को ऐसा शुभभाव आता है, वह बन्ध का कारण है। आहा..हा..! आज जगन्मोहनलालजी का बड़ा लेख आया है। समयसार.... करते-करते पहले ठीक लिखा है। फिर चरणानुयोग की अपेक्षा से शुभभाव भी कथंचित् उपादेय है, (ऐसा लिखा है)। ऐसा कि यह व्रत अंगीकार करे, ऐसा आवे न? वह व्यवहारनय से... ऐसा कहते है, परन्तु व्रत का भाव राग है। आता है। सम्यग्दृष्टि (होने के) उपरान्त अपने स्वरूप का अवलम्बन उग्र हुआ तो पंचम गुणस्थान प्रगट हुआ। वह श्रावक है। वह श्रावक, हों! वाड़ा के श्रावक, वह नहीं। आहा..हा..! उसे बारह व्रत का विकल्प आता है। समझ में आया? और मुनि होता है तो अन्तर आनन्दधारा विशेष प्रगट हुई है, परन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं, इस कारण से महाव्रतादि का विकल्प, राग आता है। उसके साथ में राग और अरागी धारा साथ में रहने में विरोध नहीं है। समझ में आया? है बन्ध का कारण, परन्तु वह राग आता है। राग दुःखरूप है।

भगवान आनन्द की दृष्टि और आनन्दधारा, अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द की धारा बहती है, वह निश्चय है और साथ में पूर्ण नहीं है; इसलिए राग आता है, वह व्यवहार है। ऐसी बात है। तब वे लोग कहते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। (परन्तु) ऐसा नहीं है। साथ में होता है, आता है। यह तो द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा में नहीं कहा? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' अपना भगवान पूर्णानन्द है, उस ओर ढलते हुए राग की एकता टूटने से वीतरागी सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आहा..हा..! समझ में आया? तो वह ध्यान में प्रगट होता है। अन्तर ध्यान की पर्याय त्रिकाल को विषय करके ध्येय बनाकर... आहा..हा..! गजब काम, भाई! अन्तर में अवलम्बन से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ध्यान में प्राप्त होते हैं। प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह भी स्वद्रव्य के अवलम्बन में ध्यान में प्राप्त होते हैं और फिर चारित्र जो है, वह भी अन्तर में ध्यान में स्थिर होता है, तब वह चारित्र प्राप्त होता है। समझ में आया? भारी कठिन काम, भाई! अनन्त काल से इसकी... दो अधिकार आये हैं। वे और आगरावाले.. सागरवाले पन्नालाल, व्रत, वह आस्रव कहा, वह राग का आस्रव है, व्रत नहीं। आहा..हा..!

निश्चयव्रत तो स्वरूप की स्थिरता है, वह विकल्प नहीं। अन्तर आनन्दस्वरूप में

स्थिरता जमती है, वह निश्चयव्रत-लिपट जाता है, आनन्दस्वरूप में एकाकार हो जाता है। अरे रे! ऐसी बात! इसका नाम निश्चयव्रत है। वह तो संवर और निर्जरा है तथा साथ में महाव्रत के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (और अपरिग्रह) महाव्रत का विकल्प उठता है, वह आस्रव है, बन्ध का कारण है, परन्तु आता है। साथ में रहने में विरोध नहीं है। ११० कलश में तो ऐसा लिखा है। कोई ऐसा माने कि मिथ्यादृष्टि के व्रत, तप, भक्ति आदि बन्ध का कारण है, परन्तु सम्यग्दृष्टि के यतिपने के महाव्रत आदि हैं, वे बन्ध के कारण नहीं हैं, ऐसा कोई माने, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? है? आहा..हा..! (कलश टीका में) ११० कलश है। **यहाँ कोई भ्रान्ति करेगा कि मिथ्यादृष्टि का यतिपना क्रियारूप है,...** महाव्रतादि। **वह बन्ध का कारण है, सम्यग्दृष्टि का है, जो यतिपना...** सम्यग्दर्शन चारित्रस्वरूप है, उसे शुभ क्रिया महाव्रत का भाव आता है, वह **यतिपना शुभक्रियारूप, वह मोक्ष का कारण है;....** ऐसा कोई माने, **क्योंकि अनुभव ज्ञान तथा दया, व्रत, तप, संयमरूप क्रिया...** शुभभाव, **दोनों मिलकर ज्ञानावरणादि कर्म का क्षय करते हैं। ऐसी प्रतीति कितने ही अज्ञानी जीव करते हैं।** आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि को भी व्रत, नियम, तप, दया के विकल्प आते हैं, वे भाव भी बन्ध का 'ही' कारण है और स्वभाव के आश्रय से जितने अबन्धपरिणाम—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, वे मोक्ष का कारण हैं। यह बहुत सब बदल देना पड़ेगा। स्वरूप ही ऐसा है न, भगवान! आहा..हा..!

ऐसा कि मिथ्यादृष्टि है, उसके तो व्रत, तप, दया आदि के भाव, बन्ध का कारण है, परन्तु धर्मी (जिसे) आत्मा का भान हुआ, सम्यग्दृष्टि हुआ, उसे जो बारह व्रत और पंच महाव्रत का विकल्प, शुभक्रियारूप व्रत, तप, संयम, क्रिया, शुभभाव (आता है), वह भी बन्ध का कारण है क्योंकि वह व्रत, तप, संयमरूप भाव तो शुभराग है और शुभराग है, वह आत्मा के अनाकुल स्वभाव से विरुद्ध आकुलता है। आहा..हा..! भारी कठिन काम! ऐसा तो स्पष्टीकरण करते हैं, तथापि ऐसे (लेख आते हैं)। पहले बड़ा स्पष्टीकरण किया कि पुण्य-पाप दोनों हेय है, ऐसा है, बन्ध का कारण है, चाण्डाल की भाँति (एक सरीखे हैं) परन्तु चरणानुयोग की अपेक्षा से व्रत, तप, भाव कथंचित् उपादेय है, ऐसा (वे) कहते हैं।

यह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन हुआ, स्वचैतन्य के अवलम्बन से उसकी विशेष स्थिरता हुई, अन्दर विशेष स्थिरता हुई, तब उसे महाव्रत के और बारह व्रत के विकल्प आते हैं, परन्तु हैं वे बन्ध का कारण। समझ में आया? और यह अधिकार तत्त्वार्थसूत्र में

है। पुण्य, व्रतादि को आस्रव कहा है, परन्तु वे ऐसा कहते हैं कि इस व्रत को आस्रव नहीं कहा, अन्दर रागभाव... परन्तु व्रत स्वयं राग है। सागर के हैं न पन्नालाल? सागर गये तब वहाँ तो व्याख्यान में आते थे। पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग व्याख्यान में आते थे। सेठों को प्रेम है न? भगवानदास, शोभालाल बहुत इज्जतवाले व्यक्ति हैं। बहुत पैसा खर्च करते हैं। धर्मशाला है। बड़ी आमदनी है। चार-पाँच करोड़ रुपये हैं। यहाँ मकान बनाया है न? आते हैं। वहाँ व्याख्यान में तो पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग। कोई विरोधी लोग भी व्याख्यान में बैठते थे। परन्तु बात यह अन्दर.. आहा..हा..! खटक.. खटक.. खटके 'शुभभाव भी कथंचित् आदरणीय है।' अरे! राग आदरणीय नहीं होता। होता अवश्य है।

मुमुक्षु : पुण्य-पाप में....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह नहीं। प्रवचनसार ७७ गाथा है। जो कोई शुभ और अशुभभाव दोनों में अन्तर मानता है कि शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है, वह घोर संसार में भटकेगा। प्रवचनसार ७७ गाथा। यह? यह है न? यह लो ७४ निकली। यह ७७।

'**ण हि मण्मदि जो एवं णत्थि वसेसो त्ति पुण्णपावाणं।**' शुभ और अशुभ में कोई अन्तर नहीं है। दोनों बन्ध का कारण है। '**ण हि मण्मदि**' ऐसा जो न माने। '**हिंडदि घोरमपारं संसारं**' आहा..हा..! घोर निगोदादि संसार में भटकेगा, प्रभु! आहा..हा..! '**हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो**' मिथ्यात्व से आच्छादित आत्मा (मानता है कि)... आहा..हा..! कि शुभभाव वह ठीक है, अशुभभाव अठीक है। मार्ग ऐसा, भाई! वीतरागमार्ग वीतरागभाव से उत्पन्न होता है। राग कहीं धर्म नहीं है। अशुभ से बचने को ऐसे भाव आते हैं, परन्तु वह अधर्म है। ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं। प्रवचनसार की ७७वीं गाथा। भगवान की दिव्यध्वनि का सार। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं कि जितनी शुभ-अशुभ क्रिया, शुभभाव। बहिर्जल्परूप विकल्प। वृत्ति उठती है वह बहिर्जल्प। इसमें, हों इसमें। कलश है। '**(बहिर्जल्परूप) विकल्प अथवा अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्यों का विचाररूप अथवा शुद्ध स्वरूप का विचार इत्यादि समस्त कर्मबन्ध का कारण है।**' आहा..हा..! अरे भाई! कठिनाई से अवसर मिला, उसमें सम्यग्दर्शन में गड़बड़ करेगा... आहा..हा..! आता है, होता है, ऐसा भी कहता है, व्रत अंगीकार करता हूँ। ऐसा आता है न? वह तो अशुभ को टालने को व्रत ग्रहण करता हूँ, ऐसा व्यवहारनय से कहने में आता है। आहा..हा..! क्या हो? भगवान परमात्मा का

विरह पड़ा। विरह रह गया, भगवान वहाँ रह गये। आहा..हा..! और सर्वज्ञपने की प्रगट दशा होने की योग्यता रही नहीं और लोग अपने स्वच्छन्द से वीतरागमार्ग की कल्पना करें, वह सब मिथ्या है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **ज्ञान में निश्चय-व्यवहार...** स्वरूप शुद्ध चैतन्य प्रभु के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय हुई, वह निश्चय है परन्तु साथ में व्रत, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय, ऐसा शुभभाव आता है। समझ में आया? परन्तु वह शुभभाव मैत्री... उसमें कलश-टीका में कहा था न? निश्चय और व्यवहार मैत्री अर्थात् साथ में होते हैं। कलश-टीकाकार ने तो दूसरा कहा है। इस व्यवहार का अभाव, वह मैत्री है। निश्चयस्वभाव का अवलम्बन और राग का अभाव। आहा..हा..! तथापि वह व्यवहार से होता है, चरणानुयोग की अपेक्षा से (ऐसा कथन होता है)। परन्तु है बन्ध का कारण, भाई! आहा..हा..! जितनी पर के लक्ष्य से वृत्ति उत्पन्न होती है, वह सब बन्ध का कारण है। स्व के आश्रय से जो परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह अबन्ध / मोक्ष का कारण है। क्योंकि मुक्तस्वरूप भगवान मुक्तस्वरूप है। उसके अवलम्बन से परिणाम होते हैं, वे मुक्त परिणाम होते हैं। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

यह तो देह छूटने से सब छूटेगा, प्रभु! तू अकेला जायेगा कहाँ? दृष्टि की विपरीतता यदि रही तो कहाँ जायेगा? भाई! क्योंकि भविष्य में रहना तो है। आत्मा का नाश होता है? आहा..हा..! यदि दृष्टि में राग आदरणीय है, ऐसा मानता है तो भविष्य में कहाँ रहेगा? मिथ्यात्व में रहेगा। आहा..हा..! और राग से भिन्न मेरी चीज़ है। मैं तो पूर्ण आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसी परिणति करके, भले राग साथ में हो, तो वह परिणति करके जाता है तो अपने में द्रव्यदृष्टि कायम रहती है। आहा..हा..! द्रव्य के अवलम्बन से जो दृष्टि हुई, उस द्रव्य का जैसे अभाव नहीं होता, वैसे उसे दृष्टि का अभाव नहीं होता। फिर भले स्वर्ग में जाये। समझ में आया?

चैतन्य आनन्द दल प्रभु के अवलम्बन से ज्ञानी को जो निश्चयदर्शन-ज्ञान आदि धर्म पर्याय उत्पन्न होती है, उसके साथ राग-शुभभाव भी मैत्रीरूप से आता है। उस **मैत्रीपूर्वक, आगे बढ़ता जाता है...** आगे बढ़ता जाता है अर्थात् अन्तर का आश्रय विशेष करता जाता है। आहा..हा..! शुभभाव आता है, तब अन्तर का आश्रय विशेष नहीं है। आश्रय है। अशुभ आता है, तब आश्रय थोड़ा भी नहीं है। शुभभाव आया, तब थोड़ा आश्रय है, परन्तु शुभ आया, वह आश्रय नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें, अब।

वह **आगे बढ़ता जाता है...** शुद्ध चैतन्य भगवान ज्ञानस्वभावी प्रभु के अवलम्बन में आगे बढ़ता जाता है। भले शुभभाव आओ, परन्तु अन्तर में तो अन्दर ध्येय में तो वह पड़ा है। भगवान ध्येय में है। लक्ष्य तो वहाँ है। आहा..हा..! समझ में आया? **और चैतन्य स्वयं अपनी अद्भुतता में समा जाता है।** आहा..हा..! अपनी आत्मा के अन्दर आनन्द का अवलम्बन लिया, वह तो इतना निश्चय हुआ और साथ में राग आया वह व्यवहार है। ऐसे करते-करते स्व का आश्रय करते हुए वह राग छूट जायेगा और पूर्णानन्द की अद्भुत प्राप्ति हो जाएगी। है?

और चैतन्य स्वयं... स्वयं अर्थात् वह राग आया, इस कारण आगे बढ़ता नहीं है। आहा..हा..! **चैतन्य स्वयं अपनी अद्भुतता में समा जाता है।** आहा..हा..! निर्विकल्प भगवान आत्मा निर्विकल्प दृष्टि और स्थिरता में अन्दर समा जाता है। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप है। २६७ **स्वयं अपनी अद्भुतता...** आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द का दल प्रभु, उसका अवलम्बन करते-करते बीच में राग आया, परन्तु विशेष अवलम्बन करते हुए अन्दर में समा जाता है। समझ में आया? ऐसा प्रभु है। यह २६७ (बोल पूरा हुआ)।

बाह्य रोग आत्मा की साधकदशा को नहीं रोक सकते, आत्मा की ज्ञातृत्वधारा को नहीं तोड़ सकते। पुद्गलपरिणतिरूप उपसर्ग कहीं आत्मपरिणति को नहीं बदल सकते॥२६८॥

२६८। **बाह्य रोग आत्मा की साधकदशा को नहीं रोक सकते,....** आहा..हा..! शरीर में बुखार, क्षयरोग हो... आहा..हा..! परन्तु अपने स्वरूप का साधन करते हुए इसे ये (रोग) नहीं रोक सकते। समझ में आया? नारकी जीव में जन्म से सोलह रोग होते हैं। ओहो! वह पीड़ा.. पीड़ा.. परन्तु जब उसने आत्मा का अवलम्बन लेकर नारकी में भी सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, तो उस शरीर की व्याधि तो इतनी है.. आहा..हा..! जैसे शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायें तो भी वह रोग आत्मा के साधकपने को रोक नहीं सकते। समझ में आया? आहा..हा..!

बाह्य रोग... क्षय हो, केंसर हो, हार्ट बन्द पड़ जाता है न? वह **आत्मा की साधक दशा को नहीं रोक सकते,...** अन्तर भगवान पूर्णानन्द के नाथ को ध्येय बनाया तो उस

साधक को कोई रोग रोक नहीं सकते। आहा..हा..! अथवा निरोगता के काल में साधक को सहायता मिलती है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? शरीर की निरोगता, वह साधक की पुष्टि करती है, तथा रोग साधक को रोक सकता है, ऐसी चीज़ नहीं है। आहा..हा..!

आठ-आठ वर्ष के बालक, राजकुमार आत्मा के ज्ञान के भान से माता के पास आते हैं। माता! आहा..हा..! मेरी चीज़-मेरे ज्ञान का भान हुआ है। माता! मैं तो अन्दर में जाना चाहता हूँ। मैं तो वनवास में जाना चाहता हूँ। आहा..हा..! समझ में आया? वह अन्तर का रस जहाँ जगा है, उस रस को बढ़ाने के लिये... आहा..हा..! माता! जननी! आज्ञा दो, माता! और माता! एकबार रोना हो तो रो ले, परन्तु माता! कोलकरार करते हैं, हम अन्तर में जाकर अब भव नहीं करेंगे, दूसरी माता नहीं करेंगे। रतनलालजी! आहा..हा..! समझ में आया?

एक बार भावनगर गये थे। पालेज से दुकान से आये थे तो ध्रुव का नाटक था। ध्रुव है न तुम्हारे? ध्रुव और प्रहलाद। भावनगर में बड़ा नाटक था (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष में। ध्रुव और प्रहलाद आता है न? वह तो इसे पता है। वह ध्रुव का नाटक था। उसकी माता मर गयी थी, पिता ने दूसरी रानी से विवाह किया था तो इसने दीक्षा ले ली। बड़ा नाटक था। लकड़ी की घोड़ी होती है न? जंगल में ऐसे हाथ रखकर बैठा था। राजकुमार त्यागी होकर। भले वह दृष्टि अलग, परन्तु यह तो एक बाह्य से ऐसे बैठा था।

उसमें-नाटक में इन्द्राणियाँ ऊपर से लकड़ी के वे रखकर डिगाने को उतरती हैं। वह इन्द्राणी वहाँ ऐसा बोलती थी। यह तो बहुत वर्ष पहले की (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष की बात होगी। हमने सब नाटक देखे हैं। फिल्म भी देखी है। सब देखा है, तो वह स्त्री ऐसा कहती है, अरे राजकुमार! हमारा शरीर तो देखो, कोमल माँस और सुन्दर शरीर, केल के गर्भ जैसी हमारी जाँघ, यह केल होता है न? बहुत कहती है तब ध्रुव ऐसा कहता है... यह तो नाटक ऐसा था। माता! तुम्हारा शरीर बहुत अच्छा है। यदि मुझे भव करना होगा तो माता तुम्हारे गर्भ में एक बार आऊँगा। बाकी दूसरा है नहीं। आहा..हा..! ऐसे तो नाटक करते थे। अभी तो सब धर्म के नाम पर बदलाव। ऐसा भी प्रदर्शन करे। हरा पर्दा। वनवास बतावे न? टुकड़े-टुकड़ेवाला पर्दा गहरे-गहरे बैठे हुए। लकड़ी की वह घोड़ी होती है न बाबा की। ऊपर से बहुत ललचावे। जवाब में ऐसा कहा, माता! मुझे भव तो करना नहीं

है परन्तु कदाचित् भव करना होगा तो माँ! तेरे गर्भ में आऊँगा, बाकी दूसरी बात हवा में रहने दे। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं **बाह्य रोग आत्मा की साधक दशा को नहीं रोक सकते,...** आहा..हा..! श्वास का रोग हुआ। मुनि तो जंगल में रहते हैं। आहा..हा..! वृक्ष के नीचे बैठे हों, सिर पर पानी का प्रपात गिरे और रोग हो.. आहा..हा..! परन्तु अन्तर के आनन्द के धाम में दृष्टि घुस गयी है। आहा..हा..! उसे कोई रोक नहीं सकता। इसी प्रकार सुविधायें अन्तर के धाम में जाने में मदद करे, ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आहा..हा..! है? **आत्मा की ज्ञातृत्वधारा को नहीं तोड़ सकते।** आहा..हा..! मैं जाननस्वरूप हूँ, ऐसी भेदज्ञान की धारा प्रगट हुई, उसे रोग की दशा उस धारा को तोड़ नहीं सकती। आहा..हा..! समझ में आया? जैसे बिजली गिरे और पर्वत के दो टुकड़े हो जाते हैं, वैसे अन्दर में भेदज्ञान (हुआ), और राग तथा आत्मा दो भिन्न हो गये। अब वह बिजली गिरने के बाद पर्वत के दो टुकड़े हुए, वे रेण देने से एक हों, ऐसा तीन काल में नहीं बनता। रेण समझे? आहा..हा..! इसी प्रकार भगवान आत्मा, राग और भगवान के बीच प्रज्ञाछैनी से भेदज्ञान किया। अब वह कभी एक नहीं होते। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है, प्रभु! अन्दर तेरा चैतन्य चमत्कार से भरपूर भगवान है। आहा..हा..! उस भगवान का माहात्म्य तुझे आना चाहिए। दूसरे के माहात्म्य सब छोड़ देना चाहिए। आहा..हा..! उस **ज्ञातृत्वधारा को...** जानन-देखन आनन्दधारा जो प्रगट हुई, उसे वे रोग तोड़ नहीं सकते आहा..हा..! वे तो परज्ञेयरूप से ज्ञात होते हैं। आहा..हा..!

पुद्‌गलपरिणतिरूप उपसर्ग कहीं आत्मपरिणति को नहीं बदल सकते। उपसर्ग आया, देव मारने आया। शरीर के टुकड़े करे, वह **पुद्‌गलपरिणतिरूप उपसर्ग कहीं आत्मपरिणति को नहीं बदल सकते।** आहा..हा..! देखो! यह वस्तु तो देखो! आहा..हा..! राग से भिन्न होकर भगवान के दर्शन किये। यह अनादि काल से राग के दर्शन करता था। राग से भिन्न होकर सम्यग्दर्शन में भगवान के दर्शन हुए। उस दर्शन की धारा.. आहा..हा..! बाहर की पुद्‌गलपरिणति का उपसर्ग तोड़ नहीं सकता। पुद्‌गलपरिणति रोगादि तो बाहर जड़ की पर्याय है। आहा..हा..! वह कहीं आत्मपरिणति—भगवान वीतरागी दशा जो स्वभाव के अवलम्बन से हुई—जैसे द्रव्य का अभाव नहीं होता, वैसे परिणति का भी अभाव नहीं होता। आहा..हा..! यह २६८ (बोल पूरा हुआ)।

अहो! देव-शास्त्र-गुरु मंगल हैं, उपकारी हैं। हमें तो देव-शास्त्र-गुरु का दासत्व चाहिए।

पूज्य कहानगुरुदेव से तो मुक्ति का मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओर से मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेव का अपार उपकार है। वह उपकार कैसे भूला जाय?

गुरुदेव का द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परम-उपकारी गुरुदेव का द्रव्य मंगल है, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावन्त गुणों से भरपूर हैं।

पूज्य गुरुदेव के चरणकमल की भक्ति और उनका दासत्व निरंतर हो॥२६९॥

२६९ में बहिन ने भक्ति का वर्णन किया है, वह पढ़ लेना।

अहो! देव-शास्त्र-गुरु मंगल हैं,... उपकारीरूप से। व्यवहार है न? विकल्प है न? **उपकारी हैं।** व्यवहार है न? मंगल तो भगवान है। मं-पाप, गल अर्थात् गाले, नाश करे, ऐसा भगवान आत्मा मंगल है। हरि। यह कहा था न? अज्ञान और राग-द्वेष का नाश करे, वह हरि, प्रभु! आत्मा मैं हूँ। दोष को हरे वह हरि। 'हरते फिरते प्रगट प्रभु देखूँ रे... मेरा जीना तब जब लेखूँ रे, नित्यानन्द का नाथ बिहारी रे। ऐसा... जीवन डोरी हमारी रे।' आहा..हा..! पतंग की डोर पकड़ने से पतंग चाहे जहाँ उड़े, परन्तु डोर हाथ में है। इसी प्रकार आत्मा की परिणति द्रव्य के अवलम्बन से हुई है, वह चाहे जहाँ जाये, रागादि हो, परन्तु अपनी परिणति नहीं छूटती। आहा..हा..! उस उपसर्ग के काल में भी वह तो पुद्गल की अवस्था है। भगवान की ज्ञानधारा को कोई रोक नहीं सकता। आहा..हा..! वीतराग उदासीन भगवान राग से भी उदासीन—भिन्न जिसका आसन अन्दर है।

एक बार बड़ोदरा की बात कही थी न, बड़ोदरा (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष में माल लेने गये थे। तब तो अठारह वर्ष की उम्र थी। रात्रि में अनुसूईया का नाटक देखने गये थे। एक महिला थी, वह महिला स्वर्ग में जा रही थी। वेद में तो ऐसा कहा है न कि

'अपुत्रस्य गति नास्ति', जिसे पुत्र नहीं, उसे गति नहीं मिलती। तो वह स्त्री जा रही थी तो स्वर्ग में इनकार किया। नीचे क्या करूँ? नीचे उतर और विवाह कर। अन्धा ब्राह्मण था, उसके साथ विवाह किया और उसे बालक हुआ। उस बालक को, भाई! नाटक में (उसकी माता कहती है)... आहा..हा..! बेटा शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निर्विकल्पोऽसि, उदासीनोऽसि। ऐसा तो नाटक में आता था। आहा..हा..! यहाँ तो यह तो मैं अशुद्ध हूँ, मैं राग हूँ, राग से मुझे लाभ होगा... अरे! मार डाला (आत्मा को)। शुद्धोऽसि ऐसा कहती थी। वह पाठ था नहीं? बुद्धोऽसि-ज्ञान का पिण्ड प्रभु है न! आहा..हा..! उसमें तो बहुत बोल है। समयसार बन्ध अधिकार में है, सर्वविशुद्ध अधिकार में है, परमात्मप्रकाश में है। तीन जगह बोल लिये हैं। ये चार बोल तो वहाँ याद रहे। बाकी तो बहुत बोली थे, परन्तु बहुत वर्ष हुए।

प्रभु! तू शुद्ध चैतन्यघन है न! बुद्धो अर्थात् अकेला ज्ञान का पिण्ड है न! राग-बाग या अल्पज्ञता तुझमें कहाँ है? उदासीनोसि। प्रभु! तू राग से उदासीन तेरा आसन भिन्न है। राग में रहना, वह तेरा आसन नहीं है। आहा..हा..! और निर्विकल्पोऽसि प्रभु! तू निर्विकल्प अभेद है न? आहा..हा..! ऐसा निर्णय करनेवाली पर्याय आत्मा को ऐसा मानती है। है निर्णय करनेवाली पर्याय, परन्तु पर्याय अनित्य है, वह नित्य का निर्णय करती है। आहा..हा..! कहो, चिमनभाई! ऐसा है यह। आहा..हा..! मांगलिक तो यह है। व्यवहार में देव-शास्त्र-गुरु मंगल है। **उपकारी हैं। हमें तो देव-शास्त्र-गुरु का दासत्व चाहिए।** ऐसा बहिन विनय से (कहती हैं)। ऐसा पूरा ले लेना। आहा..हा..! बहिन का विनय से-भक्ति से वर्णन है।

अपनी जिज्ञासा ही मार्ग बना लेती है। शास्त्र साधन हैं, परन्तु मार्ग तो अपने से ही ज्ञात होता है। अपनी गहरी तीव्र रुचि और सूक्ष्म उपयोग से मार्ग ज्ञात होता है। कारण देना चाहिए॥२७०॥

२७०, **अपनी जिज्ञासा ही मार्ग बना लेती है।** है? आहा..हा..! स्वरूप की भावना, जिज्ञासा, वही मार्ग करती है। आहा..हा..! रुचि अनुयायी वीर्य। जिसे अपने स्वरूप की रुचि है, उसकी रुचि अनुसार वीर्य होकर मार्ग हो जाता है। आहा..हा..! अन्तर के पंथ में

रुचिवाला जाता है। मार्ग हो जाता है। कैसे चलना ? यह मार्ग का भान हो गया। ऐसा गजब काम, भाई! अनन्त-अनन्त काल में अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं किया। भाई! यह चीज़ किस प्रकार होती है ? अनन्त भव में स्वर्ग के अनन्त भव किये। यह इसने लिया... ऐसा कि 'मुनिव्रत धार अनन्त बार' यह तो मिथ्यादृष्टि अभव्य की बात है, ऐसा (वे कहते हैं)। अरे भाई! क्या करना है तुझे।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।

— इसका अर्थ क्या हुआ ? कि पंच महाव्रत ऐसे शुभभाव तो अभी है ही नहीं। वह शुक्ललेश्या। शुक्लध्यान अलग चीज़ है, शुक्ललेश्या अलग चीज़ है। शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। ऐसी शुक्ललेश्या... आहा..हा..! कि जिसके प्रताप से स्वर्ग में नौवें ग्रैवेयक चला जाये। उससे क्या हुआ ? आहा..हा..! पक्षी उड़कर ऊँचे जाये, वैसे यह ऊँचे गया। अपने आत्मा के ज्ञान बिना लेश सुख नहीं पाया। यह पंच महाव्रत के परिणाम राग, विकार, वह दु:ख है। इसमें आया या नहीं ?

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।

तो यह पंच महाव्रत के परिणाम मुनि को होते हैं। वह तो अज्ञानी की बात है। परन्तु वे दु:खरूप हैं। ऐसे पंच महाव्रत (पालन कर) दु:खरूप अनुभव किया परन्तु सुखरूप भगवान आत्मा का अनुभव नहीं किया। आहा..हा..! ऐसा आया न ? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।' इसका अर्थ क्या हुआ ? (यही) कि पंच महाव्रत के परिणाम, साधु के अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम, वे दु:खरूप हैं, आस्रव हैं। आत्मा का आनन्द प्राप्त नहीं किया। आहा..हा..! ऐसी बात है। 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।' लेश सुख नहीं पाया। आहा..हा..! वह तो दु:ख है। भाई! तुझे खबर नहीं। सम्यग्दृष्टि को भी विकल्प आता है, वह दु:ख है। आहा..हा..! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं **अपनी जिज्ञासा ही मार्ग बना लेती है**। भगवान स्वरूप की प्रतीति की भावना ही मार्ग अन्दर में कर देती है। आहा..हा..! **शास्त्र साधन हैं,...** निमित्त है परन्तु

शास्त्र कहीं अन्दर मार्ग नहीं करते। आहा..हा..! 'शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहते हैं।' शास्त्र दिशा दिखावे, परन्तु चलना तो इसे है। आहा..हा..! श्रीमद् में आता है, शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहते हैं। श्वेताम्बर में आनन्दघनजी हो गये हैं, वे कहते हैं। शास्त्र (दिशा) दिखावे कि देखो! यह पंथ। यहाँ जाना है किन्तु जाना तो इसे है न? आहा..हा..! ऐसी बात है।

अरे! भगवान! आठ वर्ष का बालक भी अनुभव करके केवलज्ञान ले लेता है। तेरी महिमा का पार नहीं, प्रभु! तू कौन है? ऐसा नहीं समझना कि मैं बालक हूँ, युवक हूँ। बालक युवक तो देह की स्थिति है। आत्मा की स्थिति, राग मेरा है तो मुझे लाभ होगा, यह अन्दर बाल स्थिति है और राग से भिन्न होकर अपने अन्तरात्मा का भान हुआ, वह युवक है और अन्तर में आश्रय लेकर केवलज्ञान प्राप्त करे, वह वृद्ध है। यह (शरीर बाल, युवक वृद्ध) नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बात कैसी! व्रत करो, अपवास करो, यह करो रात्रि भोजन त्याग पालन करो। वह छोड़कर (यह करने की बात)। रात्रि में आहार नहीं करना...

मुमुक्षु : पहले तो अनन्त बार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार किया, भाई! तुझे खबर नहीं। अशुभभाव भी अनन्त बार हुए और उत्कृष्ट में उत्कृष्ट शुक्ललेश्यावाले शुभभाव अनन्त बार हुए, भाई! यह कोई चीज़ नहीं। वे तो दु:खरूप हैं। भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु का आश्रय लेकर प्रगट हो, वह आनन्ददशा है। राग की दशा तो दु:खरूप है। आहा..हा..! ज्ञानी को आता है। वह तो कहा मैत्री। निश्चय और व्यवहार आता है। आहा..हा..!

शास्त्र साधन हैं, परन्तु मार्ग तो अपने से ही ज्ञात होता है। अन्तरस्वरूप ज्ञानस्वरूप राग से भिन्न होकर अपने को पकड़े तो वह स्वयं अपने से ज्ञात हो जाता है। किसी गुरु से नहीं, शास्त्र से नहीं। आहा..हा..! अरे! भाई! तुझे कहाँ जाना है? बाहर में जरा सुविधा देखे, पाँच-पच्चीस लाख रुपये (दिखायी दे)... ऐई पुरुभाई! इसका साला फिर अरबपति था। यह पुरुभाई है न? इनकी पुत्री अपने यहाँ बालब्रह्मचारी है। वे पीछे बैठे। इनके साला थे। दो अरब चालीस करोड़। धूल में नहीं। अज्ञानी मूढ़ ऐसा मानता है कि मैं सुखी हूँ। आहा..हा..! मिथ्याबुद्धि है। इस शुभराग में भी सुखबुद्धि मानना, वह मिथ्याबुद्धि है।

आहा..हा.. ! लक्ष्मी में सुखबुद्धि, स्त्री के भोग में सुखबुद्धि मानना, वह तो मिथ्यात्व और पाखण्ड, अज्ञान है। आहा..हा.. !

ज्ञानी को भी, समकिती को भी शान्तिनाथ जैसे तीर्थंकर चक्रवर्ती को भी भोग तो होते हैं। परन्तु भोग का भाव, वह राग है, वह दुःख है। आहा..हा.. ! छियानवें हजार स्त्रियाँ, वे सब रानियाँ उत्कृष्ट। एक रानी की तो हजार देव सेवा करे। आहा..हा.. ! परन्तु उस ओर का भोग का भाव, कमजोरी से समकिती तीर्थंकर को गृहस्थाश्रम में हों, उन्हें भी आता है, परन्तु वह दुःख है। धर्मी की उसमें सुखबुद्धि नहीं। आहा..हा.. ! समकिती को उस भोग के काल में, राग में सुखबुद्धि नहीं, अन्दर दुःखबुद्धि है। आहा..हा.. !

भरत चक्रवर्ती छह खण्ड साधने गये तो प्रतिदिन हमेशा सैकड़ों रानियों के साथ विवाह करते थे। छियानवें हजार अर्थात्! सैकड़ों रानियाँ। आहा..हा.. ! वह राग है, वह दुःख है, जहर है परन्तु अपनी दशा में पूर्णता नहीं कर सकते, इसलिए यह राग आया है। ज्ञानी को काले नाग जैसा दुःख लगता है। आहा..हा.. ! मेरा नाथ आनन्द का सागर, उसमें यह कहाँ विकल्प-दुःख आया ? कमजोरी के कारण आता है। समकिती को, ज्ञानी को भी। आहा..हा.. ! सबेरे कहा था न ? रौद्रध्यान, आर्तध्यान होता है, परन्तु दुःख है। आहा..हा.. !

यहाँ कहते हैं, **परन्तु मार्ग तो अपने से ही ज्ञात होता है। अपनी गहरी तीव्र रुचि...** पूर्णानन्द के नाथ की गहरी गम्भीर रुचि, गहरी-गहरी रुचि, तल में भगवान विराजता है, उसकी रुचि। आहा..हा.. ! जैसे पाताल में पानी भरा है, वैसे आत्मा के स्वभाव में पर्याय के समीप अनन्त आनन्द का पाताल भरा है। आहा..हा.. ! उस पाताल की दीर्घ रुचि, आहा..हा.. ! समझ में आया ? भाई ! भाषा तो सादी है परन्तु अब मार्ग तो यह है, ऐसा है। **अपनी गहरी तीव्र रुचि...** तीव्र गम्भीर महा (रुचि)। आहा..हा.. ! जिसे आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त दूसरी रुचि नहीं होती। कोई रुचि उसे रोकती नहीं। आहा..हा.. !

और सूक्ष्म उपयोग से मार्ग ज्ञात होता है। जो उपयोग / ज्ञान का व्यापार परसन्मुख जाता है, वह तो स्थूल उपयोग है। भगवान आत्मा को पकड़ने में... आहा..हा.. ! ज्ञान का उपयोग सूक्ष्म करके सूक्ष्म द्रव्य को पकड़ ले। ऐसी बात है, भाई ! क्या हो ? भाषा तो समझ में आये ऐसी है। भाव तो भले.. आहा..हा.. ! प्रभु ! तेरे मार्ग की बलिहारी, भाई ! आहा..हा.. !

गहरी तीव्र रुचि और सूक्ष्म उपयोग से मार्ग ज्ञात होता है। गहरी-गहरी महा रुचि

और सूक्ष्म उपयोग से अन्दर में जाया जा सकता है। आहा..हा..! जैसे पाताल कुँए में पानी पड़ा है। आहा..हा..! बोटाद के पास जनडा है। जनडा, वहाँ एक कुँआ था। बहुत खोदा। खोद-खोदकर लोग थक गये। फिर ऐसे छोड़ दिया। अन्दर एक पत्थर का पट रह गया था। थक गये, इसलिए चले गये। उसमें एक बारात आयी। विवाह, तो दस बजे और साढ़े दस बजे तो भोजन करना हो, कुँआ देखकर रुक गये। ऐसे जहाँ अन्दर देखते हैं, वहाँ पानी नहीं मिलता। अरे रे! अब ? एक व्यक्ति ने, दस-बीस मण का पत्थर था, उसे अन्दर डाला। उस पाताल के पत्थर की रग टूट गयी, एकदम टूट गयी। अभी पानी है। अठारह कोस बहता है। कोस समझे ? अठारह-अठारह। पानी नहीं कम होता। बोटाद के पास जनडा है। हम उस कुँए के पास से निकले थे। उस कुँए के पास से निकले थे। आहा..हा..! इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहा..हा..! राग की एकता की शल्य अन्दर पड़ी है, उसे एक बार तोड़ डाल। आहा..हा..! तो तुझे मार्ग ज्ञात होगा। अब ऐसा उपदेश। वार्ता हो, राजा हो, रानी हो... अरे! सुन न अब, यह तेरे भगवान की बात है। भागवत कथा है। आहा..हा..!

कारण देना चाहिए। यह क्या कहते हैं ? अन्तर्दृष्टि करने का कारण देना चाहिए। कारण बिना कार्य नहीं होगा। अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी रुचि और उसकी भावना.. आहा..हा..! और शुद्धोपयोगरूपी कारण देना चाहिए, तो वह प्रगट होगा। समझ में आया ? अब ऐसी बातें। उसको व्रत करना, भक्ति करना, उससे कल्याण होगा, (ऐसा मानना है)। अरे भाई! वह क्रिया का राग तो अनन्त बार किया, प्रभु! यहाँ तो राग से भिन्न होना और (दो के बीच) सन्धि है। (समयसार मोक्ष) अधिकार में आता है। प्रज्ञाछैनी। १८१ (कलश) राग और आत्मा के बीच दरार है, सन्धि है। एक नहीं हुए। तू एक मानता है। यदि भिन्न पड़ते हैं तो कभी एक हुए ही नहीं। आहा..हा..!

अपने ज्ञान की पर्याय में तीव्र रुचि होकर सूक्ष्म उपयोग से अन्दर में पकड़ ले, तो तुझे मार्ग का ज्ञान होगा। बाकी किसी दूसरी चीज़ से मार्ग नहीं मिलेगा। आहा..हा..! **कारण देना चाहिए।** है न ? **कारण देना चाहिए।** तीव्र रुचि की दृष्टि का कारण देना चाहिए - ऐसी बात है, बापू! बापा यहाँ आते थे। यह खबर है न ? पहले तुम्हारे पिताश्री आते थे, खबर है परन्तु ऐसी बात सुनने मिलना भारी कठिन है।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-११, बुधवार, दिनाङ्क २७-०९-१९७८
वचनामृत-२७१ से २७३ प्रवचन-१०२

जिसकी जिसे तन्मयता से लगन हो, उसे वह नहीं भूलता। 'यह शरीर सो मैं' वह नहीं भूलता। नींद में भी शरीर के नाम से बुलाये तो उत्तर देता है, क्योंकि शरीर के साथ तन्मयता की मान्यता का अनादि अभ्यास है। अनभ्यस्त ज्ञायक के अन्दर जाने के लिये सूक्ष्म होना पड़ता है, धीर होना पड़ता है, स्थिर होना पड़ता है; वह कठिन लगता है। बाह्य कार्यों का अभ्यास है इसलिये सरल लगते हैं। लेकिन जब भी कर तब तुझे ही करना है॥२७१॥

२७१ भव्यसागर का पत्र आया है। व्याख्यान के बाद पढ़ने जैसा है। जालना में है न? चातुर्मास। बहुत बार आता है न? अपने यहाँ से उन्हें पुस्तकें भेजी हैं। अभी उन्हें पहुँची नहीं है। उनका पत्र (आया है, उसमें) बहुत प्रमोद बताया है। पत्र है कि मैं कब वहाँ आऊँ? आहा..हा..! ऐसी बात। बीस वर्ष... यह साहित्य पढ़कर मुझे जो आनन्द आया, ऐसा कहीं कुछ नहीं आया। बीस वर्ष की दीक्षा है। दिगम्बर। बापू! यह मार्ग अलग, भाई! आहा..हा..! व्याख्यान के बाद (पढ़ना)। पत्र यहाँ है। बाद में पढ़ना।

यहाँ कहते हैं, देखो! **जिसकी जिसे तन्मयता से लगन हो, उसे वह नहीं भूलता।** सिद्धान्त। जिसका तन्मयरूप से रस हो अर्थात् जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ लगन लगे बिना नहीं रहती। जिसे... आहा..हा..! **जिसकी जिसे तन्मयता से लगन हो....** आहा..हा..! **उसे वह नहीं भूलता। 'यह शरीर सो मैं' वह नहीं भूलता।** आहा..हा..! **नींद में भी शरीर के नाम से बुलाये तो उत्तर देता है,...** आहा..हा..! नाम करे इसे मंगलदास। मंगलदास! तो कहे हं। हुंकार करे। यह तो मिट्टी धूल है। आहा..हा..! जड़ की पर्याय है। आहा..हा..! एक बार बिच्छु के डंकरूप इस रजकण ने परिणमन किया था, वह परिणमन अभी जड़ की पर्यायरूप यह है। आहा..हा..! परन्तु उसे अपना माना है तो नींद में भी कोई

बुलावे तो कहे, हाँ। आहा..हा..! **क्योंकि शरीर के साथ तन्मयता की मान्यता का अनादि अभ्यास है।** आहा..हा..! बाह्य यह देह मैं हूँ। अन्तर मैं चीज़ आनन्दकन्द हूँ, उसका तो पता नहीं, उस ओर की दृष्टि नहीं, रुचि नहीं, तन्मयता नहीं। आहा..हा..! यह बात है। **तन्मयता की मान्यता का अनादि अभ्यास है।** आहा..हा..! शरीर की सुन्दरता, कोमलता देखने से ऐसा लगता है कि यह मैं हूँ और पर के शरीर की सुन्दरता देखकर, वही आत्मा है, ऐसा (लगता है)। आहा..हा..! ऐसा तन्मयता का अनादि से अभ्यास है।

अनभ्यस्त... भगवान आत्मा अनभ्यस्त है। **ज्ञायक के अन्दर जाने के लिये...** आहा..हा..! भगवान ज्ञायकस्वरूप चिदबिम्ब सच्चिदानन्द प्रभु, शाश्वत् अन्दर ध्रुव चीज़ है। आहा..हा..! एक समय की वर्तमान जो पर्याय है, उसके समीप में भगवान स्थित है, परन्तु नजर उस ओर नहीं है। आहा..हा..! **अनभ्यस्त ज्ञायक के अन्दर जाने के लिये सूक्ष्म होना पड़ता है,...** आहा..हा..! ज्ञान में उपयोग को सूक्ष्म करना पड़ता है। स्व को पकड़ सके, ऐसी ज्ञानधारा सूक्ष्म करनी पड़ती है। अरे! भवभ्रमण कर-करके... इसमें आया न? भवभ्रमण करके तुझे इतना दुःख हुआ। ज्ञानी को... आहा..हा..! अरे! भाई! तू किसमें प्रसन्न होकर रुक गया। आहा..हा..! उस भवभ्रमण का कारण राग, शरीर मेरा, राग मेरा... आहा..हा..! उसमें रुका है, प्रभु! अनन्त भव परिभ्रमण का वह कारण है। आहा..हा..! उसमें तेरी तन्मयता है। आहा..हा..!

भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकस्वरूप के अनभ्यस्त के कारण.. आहा..हा..! **सूक्ष्म होना पड़ता है,...** पर से भिन्न, राग से भिन्न अपने ज्ञायकस्वभाव से अभिन्न प्रभु को पकड़ने के लिये ज्ञान का व्यापार सूक्ष्म करना पड़ता है। आहा..हा..! क्योंकि पर्याय के पास में पूरा द्रव्य पड़ा है, परन्तु अनादि से पर्याय के ऊपर झुकाव, पर्यायमूढ़, एक समय की चलती पर्याय में इसका अनादि से व्यापार है। आहा..हा..! वह पर्याय एक समय चलती है, उस पर्याय के समीप में भगवान ध्रुव पड़ा है, परन्तु अनभ्यस्त के कारण उसे पकड़ने के लिये सूक्ष्म उपयोग करना पड़ता है। आहा..हा..!

भाई! भव्यसागर ने बहुत अच्छा लिखा है इसमें कि यह बहिन की वाणी, एक-एक अक्षर मनन करनेयोग्य है, ऐसा लिखा है। बीस वर्ष का दीक्षित है। मैंने बीस वर्ष से दीक्षा ली है, परन्तु तुम्हारा साहित्य देखकर मुझे जो आनन्द हुआ है, वैसा कभी आया नहीं। आनन्द अर्थात् प्रसन्नता, वह आनन्द (अतीन्द्रिय आनन्द) तो कहाँ? आहा..हा..!

प्रभु ! मार्ग तो यह है, भाई ! दुनिया को ठीक पड़े, न ठीक पड़े, दुष्कर लगे, परन्तु भगवान आत्मा का हित करना हो तो सूक्ष्म उपयोग करके अभ्यास करना पड़ेगा। और उसने फिर ऐसा लिखा है कि मेरा हित किस प्रकार हो, यह मुझे कहो। अरे ! भाई ! नग्न साधु हुआ और यह क्रिया... ये पंच महाव्रत की क्रिया भी कहाँ व्यवस्थित है ? अभी तो स्वयं के लिये बनाया हुआ आहार लेते हैं। आहा..हा.. !

यहाँ तो भगवान विकल्प की वृत्तिरहित वह चीज़ है। बाहर में नग्न हुआ, वह नहीं। अन्दर नग्न है। आहा..हा.. ! जो शुभ विकल्प है, उससे भी वह भिन्न चीज़ है और विकल्प से भी वह ज्ञात नहीं होता। आहा..हा.. ! उसे सूक्ष्म निर्विकल्प उपयोग करना पड़े। ...भाई ! ऐसी बात है, भाई ! दुनिया मानो, न मानो, दुनिया के साथ क्या ? आहा..हा.. !

शरीर का लक्ष्य छोड़कर। लक्ष्य अर्थात् उस ओर का उपयोग। राग की ओर का लक्ष्य छोड़कर, भगवान अन्दर एक समय की पर्याय में नीचे है, पर्याय ऊपर है और ध्रुव उस पर्याय से नीचे है। आहा..हा.. ! तल में भगवान विराजता है। पर्याय तो द्रव्य से ऊपर तैरती है। चन्दुभाई ! कलश में आता है न ? है न ? पानी के दल में तरंग ऊपर-ऊपर उठती है, वह तरंग अन्दर प्रविष्ट नहीं करती। आहा..हा.. ! इसी प्रकार वर्तमान पर्याय ध्रुवद्रव्य के ऊपर तैरती है। अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकती। वह अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकती परन्तु उस पर्याय को सूक्ष्म करके द्रव्य को पकड़ सकता है। द्रव्य में प्रवेश नहीं हो सकती। सुमेरुमलजी ! समझ में आया ? आहा..हा.. ! पर्याय में कार्य होता है न ? ध्रुव तो कूटस्थ वस्तु है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : तन्मय होकर रस लेना योग्य है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तन्मय का अर्थ उस ओर झुकना, तन्मय का अर्थ यह है। तन्मय में द्रव्य एकमेक हो जाये, ऐसा नहीं है। ऊपर है। तन्मय का अर्थ, (यह कि) जो राग और पर में तन्मय है, मान्यता में एकत्व माना है। उस मान्यता में पर से भिन्न (करे)। तन्मय अर्थात् एकता कर दे। वह तन्मय है। एकता की पर्याय, द्रव्य में एक हो जाती है, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! ऐसी बात ! सर्वज्ञ के सिवाय यह बात कहीं नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? सम्यग्दर्शन की पर्याय त्रिकाली द्रव्य को प्रतीति करती है, परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में घुस नहीं जाती। आहा..हा.. ! सूक्ष्म उपयोग है, वह (स्व को) पकड़ता है परन्तु सूक्ष्म उपयोग की पर्याय, द्रव्य में एकमेक नहीं होती। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

सूक्ष्म होना पड़ता है,... आहा..हा..! जहाँ प्रभु शुद्ध द्रव्यस्वभाव चैतन्यबिम्ब पड़ा है, उसे पकड़ने के लिये सूक्ष्म.. सूक्ष्म.. ज्ञान का व्यापार सूक्ष्म करना पड़ता है। आहा..हा..! **धीर होना पड़ता है,...** है? धीर.. धीर.. आहा..हा..! धी-बुद्धि-पर्याय; र (अर्थात्) अन्तर में प्रेरे, वह धीर है। समझ में आया? धीर.. धी—ज्ञान की पर्याय-बुद्धि... धी...र.. उसे अन्दर में प्रेरे। आहा..हा..! ऐसी धीर है। आहा.हा..! दुनिया से मान लेना हो तो यह चीज़ नहीं मिलती। आहा..हा..! यश के लिये, नाम के लिये (कि) प्रसिद्धि हो, प्रभु! प्रसिद्धि तो राग है। आहा..हा..!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि **धीर होना पड़ता है,...** आहा..हा..! वस्तु अखण्ड आनन्दकन्द ध्रुव तत्त्व जो नित्य है, उसे पर्याय में पकड़ने के लिये धीर होना पड़ता है। आहा..हा..! **स्थिर होना पड़ता है;...** ध्यान जमता है, ऐसा कहते हैं। ध्यान में मिलता है न? आत्मतत्त्व का सम्यग्दर्शन ध्यान में हाता है। आहा..हा..! ज्ञान की पर्याय धीर करते हुए, धीर अन्दर में जाना पड़ता है, तो वहाँ ध्यान में आ जाता है। आहा..हा..! अरे! यह बात। अरे! भाई! इसके बिना तेरा जन्म-मरण नहीं मिटेगा, बापू! कौवे, कुत्ते के भव.. आहा..हा..! कंथवा के भव, कर-करके अनन्त भव हुए। भूल गया प्रभु! भूल गया, इसलिए नहीं था, ऐसा कैसे कहा जाये? आहा..हा..! यह भवभ्रमण मिटाना हो तो अन्दर धीर होकर सूक्ष्म उपयोग करके अन्दर आत्मा को पकड़ अर्थात् वर्तमान ज्ञान की पर्याय ध्यान में उसे ध्येय बनाना, ऐसी बातें हैं। आहा..हा..! ज्ञान की पर्याय ध्यान, उसमें वस्तु त्रिकाली को ज्ञेय बनाना। ऐसी बातें हैं। आहा..हा..!

स्थिर होना पड़ता है;... आहा..हा..! **वह कठिन लगता है।** आहा..हा..! **बाह्य कार्यों का अभ्यास है...** यह करूँ... यह करूँ... राग किया, पुण्य किया, पाप किया। **इसलिए सरल लगते हैं।** भाई! अनादि से राग और पुण्य तथा पाप के भाव, **बाह्य कार्यों का अभ्यास है, इसलिए सरल लगते हैं।** अभ्यास है न? इसका अभ्यास नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? भेद अभ्यास... आता है न? भेद अभ्यास। ३१ गाथा में (आता है)। द्रव्येन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय को किस प्रकार जीता जाये? कि निर्मल भेदज्ञान की प्रवीणता से-ऐसा पाठ है। निर्मल भेदज्ञान की कौशल्यता से। कौशल्य शब्द पड़ा है। व्याख्यान चल गया है। आहा..हा..! जिस ज्ञान में-पर्याय में स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने पर भी वह पर्याय परसन्मुख का ज्ञान करती है, वह मिथ्याज्ञान है। (उसमें) स्वज्ञेय नहीं आया।

आहा..हा.. ! जो ज्ञान अन्तर में ज्ञेय बनाकर यह ज्ञेय है, उसका ज्ञान, ऐसा समझाने के लिये कहना न पड़े। यह ज्ञेय है और मैं ज्ञान हूँ, ऐसा भेद वहाँ नहीं है। समझाना कैसे ? आहा..हा.. ! सूक्ष्म बात है। आहा..हा.. !

बाह्य कार्यों का अभ्यास है, इसलिए सरल लगते हैं। अभ्यास है, इसलिए सरल लगते हैं। कल कहा था, पद्मनन्दिपंचविंशति में लिखा है कि लक्ष्मी मिलना, अनुकूल शरीर मिलना, वह दुर्लभ है, क्योंकि उसमें राग काम नहीं करता। वह तो पूर्व का कर्म हो तो मिले; और भगवान आत्मा का मिलना, वह सुलभ है, क्योंकि वह तो अपनी चीज़ है। उसमें कोई राग और कर्म की मदद मिले, ऐसी वह चीज़ नहीं है। एक ओर कहे सम्यग्दर्शन दुर्लभबोधि, बोधिदुर्लभ। एक ओर कहे कि परवस्तु दुर्लभ। क्योंकि परवस्तु मिलना, वह अपने राग के पुरुषार्थ से नहीं मिलती। वह तो पूर्व का पुण्य हो तो मिलती है, आहा..हा.. ! और आत्मा में अपने मिलने में किसी पर की अपेक्षा नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? वह अपनी चीज़ है, अपने सूक्ष्म उपयोग से प्राप्त होती है। वह अपने सूक्ष्म उपयोग से प्राप्त होती है। किसी पर की अपेक्षा से मिलती है, ऐसी दुर्लभ चीज़ नहीं है। आहा..हा.. ! पहले इसके ज्ञान में निर्धार तो करे कि वस्तु यह है। इसके बिना सब व्यर्थ है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : सुलभ है या दुर्लभ है ? दो बातें कीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दो बातें की। यह दुर्लभ है और यह सुलभ है। यह दुर्लभ है और यह अनन्त बार सुलभरूप से मिली है। सम्प्रदाय में कहते थे। उत्तराध्ययन का १४वाँ अध्ययन है। लड़के हैं-ब्राह्मण के लड़के दीक्षा लेते हैं। है तो सब कल्पित परन्तु श्वेताम्बर में उत्तराध्ययन में (आता है)। श्वेताम्बर में उत्तराध्ययनसूत्र है न ? उसमें १४वें अध्ययन में ऐसा है। ब्राह्मण के लड़के को जातिस्मरण होता है, तो उसे दीक्षित होने का भाव होता है। अन्तर चारित्र। पश्चात् उसकी माता से कहता है, माता! 'अजेवधम्मम पडिवजजयामो जहिं...' यह तो सम्प्रदाय में चलता था। बोटाद में तो १५००-हजारों लोग सभा में। (संवत्) १९७७-७६। लड़का कहता है, माता! 'अजेवधम्मम पडिवजजयामो....' माता! मैं आत्मा का चारित्र अंगीकार करता हूँ। जननी! अब दूसरा भव नहीं करूँगा। '....' माता! जगत में अप्राप्त कौन सी चीज़ रह गयी है ? '...' अनन्त बार अनन्त चीज़ें मिल गयीं, प्रभु! '....' आहा...हा... ! '...' माता! जगत की चीज़ें अप्राप्त कौन सी रह गयी है ?

स्वर्ग के भव, सुन्दर शरीर, व्रजनाराचसंहनन, ऐसा अनन्त बार मिला, प्रभु! वह कोई अप्राप्त चीज़ नहीं... नहीं।'....' माता श्रद्धा करके हमारे प्रति राग छोड़ दे। हम तो वन में चले जाते हैं। आहा..! हमारे भगवान का साधन करने, जहाँ मनुष्यों की पदचाप ही नहीं, माता! हम वहाँ जायेंगे।

आता है न भाई! उसमें-प्रवचनसार में (आता है)। आज्ञा लेता है। माता के निकट आज्ञा लेता है, स्त्री के निकट आज्ञा लेता है। चरणानुयोगसूचक चूलिका (में यह सब आता है)। स्त्री से आज्ञा लेता है। मेरा नाथ मेरे पास है। मैं तो आनन्दकन्द हूँ, मुझे भान हुआ है। हे स्त्री! तू इस शरीर को रमानेवाली है, हों! मुझे रमानेवाली नहीं। आहा..हा..! मैं मेरी अनादि की अनुभूति... यह अनुभूति त्रिकाल स्वभाव, हों! मेरा अनुभव त्रिकाल अनुभूतिस्वरूप चैतन्य हूँ, उसके पास जाता हूँ। समझ में आया? आहा..हा..! हे स्त्री! सुन्दर स्त्री हो, चक्रवर्ती की स्त्री को, चक्रवर्ती के लड़के की स्त्री हो। आहा..हा..! परन्तु मैं तो अब, हे स्त्री! इस शरीर को रमाने में (तू साथ देती है)। आहा..हा..! मेरा आत्मा मेरी अनुभूति जो त्रिकाल है... आहा..हा..! उसके पास जाता हूँ। स्त्री! मेरे प्रति का राग छोड़ दे। मैं राग से मर गया हूँ। तेरे प्रति के राग से मर गया हूँ। उसे तू जीवित नहीं कर सकेगी। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **बाह्य कार्यों का अभ्यास है, इसलिए सरल लगते हैं। लेकिन जब भी कर, तब तुझे ही करना है।** आहा..हा..! जब भी करना पड़ेगा, तब प्रभु! तुझे ही अन्तर में जाने का प्रयत्न करना पड़ेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जहाँ अन्तर आत्मा भगवान विराजता है, वहाँ (उसके) सन्मुख दृष्टि ले जाना। यह दृष्टि जो बाहर में भ्रमती है.. आहा..हा..! व्यभिचारिणी दृष्टि, रागादि निमित्त के संग में चढ़ती है। व्यभिचार नहीं आता? निर्जरा अधिकार में आता है। व्यभिचार, अनेकपना, व्यभिचारपना। २०३ गाथा। निर्जरा अधिकार। आहा..हा..! इस राग की क्रिया के परिणमन की एकताबुद्धि, वह व्यभिचार है। आहा..हा..! मेरी अनुभूति... यह अनुभूति कौन? त्रिकाल स्वभाव, हों! ७३ गाथा में आता है न? समयसार की ७३ गाथा है। राग से तो मैं भिन्न हूँ, परन्तु पर्याय में षट्कारक का निर्मल परिणमन होता है। शरीर, राग से तो भिन्न हूँ परन्तु पर्याय में षट्कारकता निर्मल परिणमन होता है। शरीर राग से तो भिन्न हूँ परन्तु पर्याय में षट्कारक का स्वतन्त्र (परिणमन होता है)। पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण, पर्याय अपादान, पर्याय

सम्प्रदान, पर्याय अधिकरण। एक समय की पर्याय जो निर्मल है, उसका जो षट्कारकरूप से परिणमन है, उससे मेरी अनुभूति भिन्न है। आहा..हा..! अनुभूति का अर्थ द्रव्य। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

पर्याय में उस समय में निर्मल पर्याय उत्पन्न हो और निर्मल पर्याय कर्ता, निर्मल पर्याय, वह पर्याय का कार्य, पर्याय का कार्य। वह पर्याय का कर्म। पर्याय का सम्प्रदान - होकर अपने में रही। अपादान, पर्याय से पर्याय हुई। पर्याय अधिकरण, पर्याय का आधार पर्याय; मैं द्रव्य-गुण नहीं। आहा..हा..! ऐसा मेरा भगवान, अनुभूति स्वभावरूप त्रिकाल, वह मैं हूँ। समझ में आया? आहा..हा..! भाई! सत्य मार्ग सुनने को मिलना कठिन है। भाई! अरे! क्या हो? धर्म के बहाने भी ठगाकर चले जाते हैं।

भगवान आत्मा... आहा..हा..! दु:ख की पर्याय से तो मैं भिन्न हूँ। ए..! परन्तु आनन्द की पर्याय जो पर्याय में होती है, उससे भी मैं अनुभूति / चीज़ तो भिन्न हूँ। पर्याय में मेरा द्रव्य कभी एकमेक नहीं हुआ। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। अरे! आहा..हा..!

एक बार मीराबाई का नाटक देखने गये थे (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष की बात है। वहाँ पालेज में तो हम स्थानकवासी न, इसलिए और घर बड़ा, तीस लोग और साधु-वाधु आवे तो हमें सम्हाल करनी पड़े। स्थानकवासी साधु आवे। भरूच गये थे। मैं और भाई दो थे। धीरुभाई है न? इसका पिता। अभी मनहरभाई के पास अस्सी लाख रुपये हैं। वहाँ दोनों गये, फिर साधु का पता तो मिला। भरूच के स्टेशन के सामने धर्मशाला है। गाँव में खोज की, वहाँ जाते थे, वहाँ हमें मिले। अब समय था। रात्रि को मीराबाई का नाटक था। मीराबाई का नाटक।

वह मीराबाई जब राणा को कहती है। राणा कहता है, हे मीरा! तू मेरे महल में आ। तुझे मैं पटरानी बनाऊँगा। आहा..हा..! ऐसे तो नाटक थे। मीराबाई कहती है, एक जाति की ईश्वर की भक्ति, इस अपेक्षा से, वह चीज़ तो दूसरी है। 'धेली थई रे राणा धेली थई हूं साधूणा संगे राणा धेली थई।' मैं पागल हो गई हूँ, अब तेरे काम की नहीं और तेरे महल में नहीं आ सकूँगी। आहा..हा..! ऐसा नाटक में, हों! चन्दुभाई! सब देखते और हम तो पुस्तक रखते। नाटक के पैसे तो देते परन्तु (पुस्तक लेते) भाई! तुम क्या बोलते हो यह समझे बिना हम नहीं बैठेंगे। तुम्हारी पुस्तक लाओ। उसमें यह आया। आहा..हा..! मीराबाईरूप से वहाँ होवे तो आदमी ही, परन्तु ऐसा बोले। राणा कहता है हे मीरा! है न

मीराबाई का वह, वहाँ एक बार गये थे। मेरे महल में आ। राणा! मैं तो साधु के संग में पागल हो गयी हूँ, मैं तो पागल हो गयी हूँ। मेरी ईश्वर भक्ति में पागल हो गयी हूँ, इसी प्रकार यहाँ आत्मा अर्थात् ईश्वर अर्थात् भगवान आत्मा की भक्ति में पागल, वह किसी के काम का नहीं रहा। मालचन्दजी! ऐसी बात है, प्रभु! आहा..हा..!

यहाँ यह कहते हैं **जब भी कर, तब तुझे ही करना है।** यह भगवान को पकड़ना, वह तेरा काम है। दूसरा कोई मदद करे, गुरु की कृपा हो जाये, (ऐसा नहीं है)। आहा..हा..! यह २७१ बोल हुआ।

जो खूब थका हुआ है, द्रव्य के सिवा जिसे कुछ चाहिए ही नहीं, जिसे आशा-पिपासा छूट गयी है, द्रव्य में जो हो, वही जिसे चाहिए, वह सच्चा जिज्ञासु है।

द्रव्य जो कि शान्तिमय है, वही मुझे चाहिए—ऐसी निस्पृहता आये तो द्रव्य में गहरा जाये और सब पर्याय प्रगट हो॥२७२॥

२७२, **जो खूब थका हुआ है, द्रव्य के सिवा जिसे कुछ चाहिए ही नहीं,...** आहा..हा..! शुभ-अशुभभाव करते.. करते.. करते.. थक गया अब। अरे रे! यह विश्राम नहीं। शुभ-अशुभभाव असंख्य। सबेरे कहा था न? भाई! अमृतचन्द्राचार्य, अन्य का विचार करके, इतना कहा और जयसेनाचार्य ने ये सब सोलह बोल लिये। राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काया, पाँच इन्द्रिय, इसके अतिरिक्त दूसरे असंख्य प्रकार के विभावभाव हैं। असंख्य प्रकार लिये हैं। बताया था। असंख्य प्रकार के विभाव से भगवान भिन्न है। आहा..हा..! समझ में आया? तो यह असंख्य प्रकार का विभाव, व्यक्ति को बहुत-बहुत प्रकार के विभाव होते हैं। समकिती को... आहा..हा..! यह असंख्य प्रकार की दु:ख की दशा होती है। आहा..हा..! उससे मैं भिन्न हूँ। वह भाव्य की (विभाव की) दशा उत्पन्न न होने देना। आहा..हा..! स्वभावज्ञायकसन्मुख झुकने से निमित्त की ओर की भाव्यदशा उत्पन्न न होने देने का नाम भगवान की प्रशंसा है, वह आत्मा की स्तुति है। आहा..हा..!

जो खूब थका हुआ है, द्रव्य के सिवा जिसे कुछ चाहिए ही नहीं,... आहा..हा..!

मेरी चीज़ / वस्तु है, वह मुझे चाहिए, बस ! आहा..हा.. ! **जिसे आशा-पिपासा छूट गयी है,...** आहा..हा.. ! 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञानसुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे।' आहा..हा.. ! पर की सब आशा छूट गयी और निर्विकल्प भगवान आत्मा की आशा हो गयी। एक गायन आता है न 'आश भरीने अमे आवियारे।'

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आशा भरीने अमे आविया। हमारे उमराला में एक मुसलमान की लड़की थी, उसका नाम आशा था। पालेज में साथ में मकान है न ? फिर आशा भरीने ने आव्या तो वह बहिन याद आवे। 'आशा भरीने अमे आविया रे अमने उतारो भवजल पार रे।' आहा..हा.. ! 'लगनी लागी माने नाथनि रे।' आहा..हा.. ! 'आशा भरीने अमे आविया ने मने उतारो भवथी पार रे, प्रभु तारी लगनी लागी रे।' समझ में आया ?

'जिनराज सुजस काहू के अब कबहू न छूटे प्यारे।' जिनराज वीतरागस्वरूप का सुजस अर्थात् अन्दर भान हुआ। आहा..हा.. ! 'जिनरास सुजस सुनो मैं काहू कहे अब कबहू न छूटे, लोकलाज सब डारि।' आहा..हा.. ! आता है न ? आहा..हा.. ! 'आतम अनुभव रस के रसिया कबहू न उतरे खुमारी। आशा औरन की क्या कीजै।' आहा..हा.. ! दुनिया माने, न माने; दुनिया गिने, न गिने, मुझे उसकी कोई आशा नहीं है। आहा..हा.. !

ऐसी **आशा-पिपासा छूट गयी है, द्रव्य में जो हो, वही जिसे चाहिए,...** वस्तु में जो है, वस्तु भगवान अनन्त ज्ञान बेहद अपरिमित आनन्द (स्वरूप है)। आहा..हा.. ! अपरिमित गुण की संख्या। गुण की संख्या अपरिमित। यह कहीं बात है। जैसे लोक का अन्त कहीं नहीं, वैसे भगवान के इतने गुण आत्मा में हैं कि अनन्त वर्ग करो। अनन्त.. अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे अनन्त का अन्तिम अनन्त और उसकी अन्तिम पर्याय – गुण, ऐसा है नहीं। यह क्या चीज़ है यह ?! जिसमें गुण की संख्या इतनी अनन्त कि अनन्त के अनन्त भाग करके अनन्त का अन्तिम भाग रहे, ऐसा नहीं है और अनन्त के अन्तिम भाग में यह... यह गुण अन्तिम अनन्त में से गुण है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, प्रभु ! आहा..हा.. !

द्रव्य में जो हो.... अनन्त अनन्त आनन्द और ज्ञान, बस। आहा..हा.. ! **वही जिसे चाहिए,...** आहा..हा.. ! **वह सच्चा जिज्ञासु है।** वह सच्चा जिज्ञासु है। आहा..हा.. ! कुछ भी

अन्दर आशा रह जाये कि मान मिले, दुनिया मुझे गिनती में गिने, तब तक अन्तर की चीज़ नहीं मिलेगी। आहा..हा..! **द्रव्य जो कि शान्तिमय है...** भगवान जो आत्मा है, वह तो शान्त.. शान्त.. वीतराग अकषायस्वरूप है। वस्तु है। समझ में आया? 'जैसे निर्मलता रे स्फटिक की, त्योंहि जीव स्वभाव रे, श्री जिनवीर रे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव रे।' भगवान अकषायस्वरूप, शान्तस्वरूप प्रभु का आश्रय करके जो अकषाय परिणति हुई, वह धर्म है। वह शान्तिमय वस्तु है। उस शान्तिमय वस्तु के आश्रय से जो पर्याय में शान्ति हुई, अकषायभाव (हुआ), वह धर्म है। अरे रे! ऐसी बातें। आहा..हा..!

द्रव्य जो कि... वस्तु। यह द्रव्य अर्थात् पैसा नहीं, हों! एक बार कहा था, 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि' वहाँ है न? हमारे नानालालभाई के रिश्तेदार आये थे। थानवाले माणिकचन्दभाई हैं। महाराज! यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि? वह मानो कि यहाँ करोड़पति बहुत आते हैं। नानालालभाई करोड़पति उनके रिश्तेदार। यह द्रव्यदृष्टि, वह समकिती। ये पैसेवाले, वे सम्यग्दृष्टि? अरे! भाई! तुम जैन में जन्मे होने पर भी... यह द्रव्य, यहाँ हमारे पैसे का क्या काम है? आहा..हा..! द्रव्य तो भगवान आत्मा जिसमें से पर्याय द्रवे। द्रव्य में से द्रवे, उसे भी व्यवहार कहने में आता है। आहा..हा..! द्रव्य-गुण है न? द्रव्यत्वगुण है न? तो उससे द्रवे ऐसा, पंचास्तिकाय की नौवीं गाथा में आया है।

'दवियद गच्छदि ताइं' ऐसा आता है। शुद्धपर्याय को और अशुद्धपर्याय को द्रवे। दो बोल हैं। '**दवियद**' और '**गच्छदि**' ९वीं गाथा है। आहा..हा..! वह भी पर्याय द्रवे, तो पर्याय तो पर्याय से होती है, परन्तु द्रव्य में से आती है, इस अपेक्षा से द्रवे, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो पर्याय है, वह आती है तो द्रव्य में से न? अध्धर से आती है? परन्तु वह अध्धर से आती है, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। पर्याय, पर्याय से होती है; द्रव्य से नहीं। अरे रे! ऐसी बातें! कहीं अस्तिपना था, उसमें से आती है या नहीं, उसमें से आयी है? अन्दर निर्मल पर्याय की शक्तिरूप, गुणरूप तो था। भगवान के ज्ञान में तो आया है कि यह अंश है, वह बाहर आया। स्थूलदृष्टि से कहने में नहीं आता। वह तो अन्तर में ज्ञायकभाव, वह तो वास्तव में तो निर्मल पर्याय का कर्ता भी ज्ञायक नहीं। आहा..हा..! अब ऐसी बातें। भगवान राग का कर्ता तो नहीं। पर की क्रिया, शरीर, वाणी, मन, धन्धे का कर्ता तो नहीं परन्तु कर्तृत्व जो पर्याय में है, उसका कर्ता ज्ञायकध्रुव चैतन्यबिम्ब नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बात है। दुनिया के साथ तुलना करेगा तो यह मेल नहीं होगा। चीज़ ही दूसरी है। आहा..हा..!

द्रव्य जो कि शान्तिमय है... शान्त अर्थात् जिनस्वरूप, अर्थात् अकषायस्वरूप, अर्थात् वीतरागस्वरूप। त्रिकाल, हों! अथवा वीतराग अर्थात् शान्तस्वरूप। आहा..हा..! **वही मुझे चाहिए...** धर्मी की भावना यह एक ही है। आहा..हा..! शान्त.. शान्त.. 'उपशमरस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में।' आहा..हा..! जिसकी पर्याय में उपशमरस ढल गया। वह आया कहाँ से? भगवान उपशमरस का पिण्ड है। आहा..हा..! अरे! वह उपशम शान्तरस-शान्त अविकारी वीतरागी स्वरूप स्वयं प्रभु है। आहा..हा..! जो विकल्प है, वह तो दुःख है, राग है। वह स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? वह शान्तमय है।

वही मुझे चाहिए—ऐसी निस्पृहता आये... ऐसी निस्पृहता। किसी प्रकार की स्पृहा नहीं। अकेला यह चाहिए, बस। आहा..! ऐसी बातें, लो! वह भव्यसागर पढ़कर तो ऐसा लिखते हैं, पढ़ोगे अभी। बहिनश्री के वचनामृत एक-एक मनन करने योग्य है। हमें हित कैसे हो, ऐसा आप बताओ। ऐसा बेचारा लिखता है। नग्न-दिगम्बर साधु और शीघ्र (आशु) कवि, शीघ्र कवि। एकदम काव्य बना डाले। बोलते-बोलते सुने, उसका काव्य बनावे। अरे बापू! यह चीज़ अलग, यह चीज़ पूरी अलग। आहा..हा..! यह तो शीघ्र में शीघ्र अन्दर में पकड़कर अनुभव करे, वह कवि शीघ्र है। आहा..हा..! और अनुभव होने पर भी जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक दुःख भी है। जानता है। पूर्ण आनन्द का जहाँ अभाव है, पूर्ण स्वरूप तो पूर्ण आनन्द है। उसके अवलम्बन से पूर्ण आनन्द जब तक न हो, तब तक समकिती ज्ञानी को भी अपूर्ण आनन्द और दुःख दोनों दशा एक पर्याय में है।

मुमुक्षु : मिश्रधारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिश्रधारा। आहा..हा..! पर्याय एक, परन्तु उसके भाग दो। जितना स्व के आश्रय से आनन्द हुआ, वह एक भाग; और जितना पर के आश्रय से राग, दुःख होता है, वह दुःख। एक पर्याय में दो भाग हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : दुःख को तो परज्ञेय जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से अपनी पर्याय को जानता है; पर को नहीं। पर को जानना, वह असद्भूत व्यवहारनय से कथन है।

मुमुक्षु : दुःख को जानता है वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस दुःख को जानता है, वह ज्ञान का स्वभाव है। अपना वेदन है न?

मुमुक्षु : पररूप से जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पररूप से नहीं, अपनी पर्याय में है, ऐसा जानता है। प्रवचनसार में ४७ नय में नहीं आया? प्रवचनसार ४७ नय। समयसार ४७ शक्ति। यहाँ ४७ नय में ऐसा आया है कि गणधर, सन्त हों, उन्हें भी अपनी पर्याय में राग होता है तो मैं कर्ता हूँ, ऐसा मानते हैं। करने योग्य है, ऐसी बुद्धि नहीं है परन्तु परिणमन है तो कर्ता मैं हूँ।

मुमुक्षु : द्रव्य का परिणमन तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का परिणमन है, वह कोई पर से नहीं हुआ है और भोक्ता भी मैं हूँ। नय है? समकिती चार ज्ञान के धनी ऐसा मानते हैं। गणधर, अरे...! तीर्थंकर जब छद्मस्थ थे, तब ही ऐसा जानते थे कि जितना राग है, वह दुःख है। आहा..हा..! उस दुःख का भोक्ता मैं हूँ। पर के कारण नहीं और पर नहीं। आहा..हा..! वहाँ तो यह आया न? कि पर्याय में जितना आनन्द, दुःख आदि है, उस सब पर्याय का अधिष्ठाता आत्मा है। आया है? एक ओर स्वामी नहीं तथा एक ओर अधिष्ठाता। किस अपेक्षा से? अपनी पर्याय में आनन्द और दुःख होता है। जब तक साधक है, तब तक। (एक पर्याय में दो भाग हैं।) और उन सबका अधिष्ठाता / आधार मैं हूँ। ऐसा है? प्रवचनसार ४७ नय। आहा..हा..! ऐसी वाणी!

मुमुक्षु : प्रवचनसार ऐसा कहता है, समयसार इनकार करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार हाँ करता है, कहते हैं। जब तक यथाख्यातचारित्र नहीं... आस्रव अधिकार में नहीं आता? तब तक ज्ञान की हीन दशा है, वहाँ तक दुःख है, वहाँ तक राग है। यथाख्यातचारित्र नहीं है। आहा..हा..! यह तो जब दृष्टि और दृष्टि के विषय की मुख्यता का जोर चलता हो, तब कहते हैं कि उसका परिणमन अकेला शुद्ध है। यह तो मुख्यता की बात है। अशुद्धता है, दुःख है, उसे छोड़कर अकेला शुद्ध है, ऐसा नहीं। आहा..हा..! गजब बातें, भाई! समझ में आया? यह कहते हैं।

ऐसी निस्पृहता आये तो द्रव्य में गहरा जाये... क्या कहा? मैं तो शान्त.. शान्त.. स्वरूप, वही मुझे चाहिए। **ऐसी निस्पृहता आये तो द्रव्य में गहरा जाये...** द्रव्य में गहरे जाये। द्रव्य जो महा गम्भीर है, तो पर्याय गहरे जाती है। जहाँ तल में भगवान ध्रुव विराजता

है, वहाँ पर्याय जाती है। अरे रे! ऐसी बातें! भाई! यह मार्ग कोई अलौकिक है। आहा..हा..! यह कहीं शास्त्र का ज्ञान किया, इसलिए मार्ग मिल जाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया? **द्रव्य में गहरा जाये और सब पर्याय प्रगट हो।** आहा..हा..! साधक है, तब तक निर्मल पर्याय अल्प है, परन्तु अन्दर में गहरे जाकर एकदम पूर्ण आश्रय लिया तो पर्याय में पूर्ण पर्याय प्रगट होती है। अकेला केवलज्ञान, केवल दर्शन, अनन्त आनन्द। आहा..हा..! ऐसी क्रीड़ा है।

'निजपद रमे, सो राम कहिये, राग में रमे, वह हराम कहिये।' तथापि राग का वेदन ज्ञानी को भी होता है, उतना भाव दुःखरूप है। आहा..हा..! 'कर्म कृशे, सो कृष्ण कहिये' भगवान कृष्णस्वरूप भगवान आत्मा, वह राग और द्वेष को कृशे अर्थात् नाश कर दे, वह कृष्ण आत्मा है। आहा..हा..! 'तू ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तू ही शंकर, तू ही ईश्वर, तू ही सब है।' आहा..हा..! **और सब पर्याय प्रगट हो।** देखा? साधक में सब पर्याय पूर्ण प्रगट नहीं है, परन्तु गहरे-गहरे पूरे द्रव्य को पूर्ण पकड़ता है, पूरा आश्रय करता है तो पर्याय पूर्ण प्रगट होती है। आहा..हा..! २७२ बोल हुआ।

गुरु के हितकारी उपदेश के तीक्ष्ण प्रहारों से सच्चे मुमुक्षु का आत्मा जाग उठता है और ज्ञायक की रुचि प्रगट होती है, बारम्बार चेतन की ओर—ज्ञायक की ओर झुकाव होता है। जैसे भक्त को भगवान मुश्किल से मिले हों तो उन्हें छोड़ना अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार 'हे चेतन', 'हे ज्ञायक'—ऐसा बारम्बार अन्तर में होता रहता है, उसी ओर रुचि बनी रहती है; 'चलते-फिरते प्रभु की याद आये रे'—ऐसा बना रहता है॥२७३॥

२७३ **गुरु के हितकारी उपदेश के तीक्ष्ण प्रहारों से सच्चे मुमुक्षु का आत्मा जाग उठता है...** आहा..हा..! वेदान्त में आता है न एक। 'जाग कर देखूँ तो...' आहा..हा..! 'द्वैत दिखे नहीं।' जगत दिखे नहीं। यह तो अपेक्षा से कहा है न? जगत जगत में है। जगत नहीं है, ऐसा नहीं है। परन्तु 'जागकर देखूँ तो जगत दिखे नहीं।' अपने में जगत नहीं, परद्रव्य नहीं। आहा..हा...! समझ में आया? ऐसे **गुरु के हितकारी उपदेश के तीक्ष्ण प्रहारों से सच्चे मुमुक्षु का आत्मा जाग उठता है...** यह तो निमित्त है, परन्तु अन्दर जाग उठता है। आहा..हा..! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-१२, गुरुवार, दिनाङ्क २८-०९-१९७८
वचनामृत-२७३ से २७६ प्रवचन-१०३

२७३ वाँ बोल है। **गुरु के हितकारी उपदेश के तीक्ष्ण प्रहारों से सच्चे मुमुक्षु का आत्मा जाग उठता है...** क्या कहते हैं? जैनधर्म के सच्चे गुरु उन्हें कहते हैं कि जिनके उपदेश में राग से अपना आत्मा भिन्न वीतरागस्वरूप है। उसकी दृष्टि का विषय त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु है। यह गुरु का उपदेश है। तीर्थंकर का यह उपदेश है और तीर्थंकर के सन्त जो मुनि, उनका यह उपदेश है कि तेरी चीज़ अन्दर शुद्ध चिदानन्द प्रभु है। आहा..हा..! पर के सम्बन्धरहित चीज़ अन्दर है। आहा..हा..! देखो! छोटी उम्र से देखो तो माँ, पिता, भाई, पुत्र-पुत्री जिसे हो उसे, वह सम्बन्ध छूट गया। कुछ रहा नहीं। आहा..हा..! क्योंकि उनके साथ सम्बन्ध था ही नहीं। आहा..हा..! इसी तरह कर्म के साथ परमार्थ से सम्बन्ध है ही नहीं।

मुमुक्षु : परमार्थ से नहीं तो व्यवहार से तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से भी नहीं है। आहा..हा..! ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति भाव का राग आता है, उसका भी आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं है। वह विकार है। आहा..हा..! ऐसी बात है। आहा..हा..! एक विचार तो करे कि माँ और पिता जब देह छूट गया, तब तू कैसा था? अरे! कहाँ गये? तू कहाँ रहा? आहा..हा..!

मुमुक्षु : संयोग सम्बन्ध था।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का सम्बन्ध सब मिथ्या है, ऐसा बताते हैं। आहा..हा..! माता इसे मेरा पुत्र है, ऐसा करके (ममता करती है)। आहा..हा..! वह माँ देह छोड़कर चली जाती है। आहा..हा..! क्योंकि पर के साथ भगवान आत्मा का सम्बन्ध ही कहाँ है। (नास्ति) सर्व सम्बन्ध... आता है न? (समयसार) २०० कलश में (आता है)। आहा..हा..!

यहाँ तो यहाँ से बात ली है। गुरु का यह उपदेश है, जैनदर्शन के गुरु का यह उपदेश है कि प्रभु! तेरी चीज़ तो पर के सम्बन्धरहित अन्दर है। आहा..हा..! तू वीतरागस्वरूपी जिनबिम्ब अन्दर है। उसका आश्रय ले तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। धर्म की शुरुआत वहाँ से होगी। बाकी लाख तेरे व्रत, तप, भक्ति की क्रिया कर, वह सब राग है; धर्म नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

ताराचन्दभाई व्याख्यान में रोते थे। खबर है? कहाँ गये? यह क्या है? यह तो क्या है? किसके साथ प्रभु! तुझे सम्बन्ध है? आहा..हा..! वह तो नहीं परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव आता है, वह शुभराग है, भाई! तुझे तेरी खबर नहीं। उसके साथ तेरा सम्बन्ध नहीं है। तेरी चीज़ तो अन्दर जिनस्वरूप वीतरागमूर्ति है। अरे! कभी सुना नहीं, कभी किया नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी... आहा..हा..! चली जाती है।

गुरु का उपदेश तीक्ष्ण, हितकारी उपदेश तीक्ष्ण। चार अनुयोग में यह आया है न? वीतरागता। सच्चे जैन सन्त उन्हें कहते हैं कि जिन्हें राग से भिन्न अनुभव हुआ हो और स्वरूप में विशेष स्थिरता जमी हो, वे निर्ग्रन्थ मुनि हैं, उन्हें यहाँ गुरु कहा जाता है। आहा..हा..! उन मुनि का उपदेश और समकितदृष्टि हो तो उसका उपदेश, हितकारी उपदेश है। आहा..हा..!

भगवान! तेरा स्वरूप अन्दर वीतरागमूर्ति है न, प्रभु! राग का विकल्प जो है, उसे छोड़ दे। आहा..हा..! तीक्ष्ण उपदेश हितकारी। अन्दर आनन्द का नाथ भगवान विराजमान है, प्रभु! वहाँ जा। आहा..हा..! ऐसे **उपदेश के तीक्ष्ण प्रहार...** पड़ते हैं। आहा..हा..! भेदज्ञान का वज्रपात। आहा..हा..! देखो न, क्षण-क्षण में देह चला जाता है और जो यह काम नहीं किया तो इसने क्या किया? आहा..हा..! व्रत, तप, भक्ति, पूजा यह सब रागभाव है, यह कहीं धर्म नहीं है। धर्मी को (ऐसा भाव) आता है, परन्तु वह शुभराग है, बन्ध का कारण है। यहाँ तो परमात्मा अपना निजस्वरूप अनन्त अपरिमित ज्ञान, अनन्त अपरिमित आनन्द, अनन्त अपरिमित जिसकी ईश्वरता, ऐसे अनन्त गुणरूप प्रभु, जिसके अनन्त गुणों में यह अन्तिम गुण है, ऐसा स्वरूप में है ही नहीं। ओहो..हो..!

भगवान के पाताल में अन्दर में... एक समय की पर्याय है, उसके समीप प्रभु पूरा आत्मतत्त्व विराजता है। आहा..हा..! उसमें अनन्त आनन्द आदि अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुण का... आहा..हा..! एक विचार तो करे कि यह चीज़ क्या है? आहा..हा..! जैसे

अलोक का अन्त कहाँ है ? लोक का अन्त होने के पश्चात् अलोक है, उसका अन्त कहाँ ? आहा..हा.. ! क्या है यह ? यह क्षेत्र का स्वभाव भी कोई अचिन्त्य आश्चर्यकारी है। आहा..हा.. ! तो इसे जाननेवाले भगवान आत्मा की तो बात क्या करना ! आहा..हा.. ! समझ में आया ? अमाप अपरिमित अनन्त गुण का समुद्र प्रभु अन्दर भरा है। आहा..हा.. ! प्रभु ! वहाँ दृष्टि कर। उन ज्ञानी का यह उपदेश है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! भेदज्ञान कराने का उपदेश है। '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन**' अभी तक जितने मुक्ति / सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, वे सब भेदज्ञान से प्राप्त हुए हैं। संवर अधिकार में आया है न ? इस राग की क्रिया और देह की क्रिया से मैं अन्दर भिन्न हूँ। आहा..हा.. ! ऐसे भेदज्ञान से सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ, भेदज्ञान से चारित्र प्राप्त हुआ और भेदज्ञान से केवलज्ञान प्राप्त हुआ। आहा..हा.. ! इस राग से भिन्न होकर अपना आनन्द प्रभु ज्ञानस्वरूपी प्रभु चैतन्यदल 'ज्ञ' स्वभाव, सर्वज्ञस्वभाव... सर्वज्ञस्वभाव—जिसकी अपरिमितता की मर्यादा नहीं, ऐसे एक-एक गुण, ऐसे अनन्त गुण, उस पर तेरी नजर कर तो तुझे सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली शुरुआत होगी। इसके बिना सब व्यर्थ है। समझ में आया ?

ऐसा उपदेश सुनकर **मुमुक्षु का आत्मा...** मुमुक्षु का आत्मा। जिसे आत्मा की अभिलाषा है। आहा..हा.. ! **जाग उठता है...** (समयसार की) पाँचवीं गाथा में कहा है न ? '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण**।' कुन्दकुन्दाचार्य, नग्न दिगम्बर सन्त, एकाध भव में परमात्मा होने की योग्यतावाले। आहा..हा.. ! वे कहते हैं कि मैं मेरे आनन्द के वैभव से कहूँगा। मैंने सुना है, इसलिए कहूँगा, ऐसा नहीं। आहा..हा.. ! मैं मुनि हूँ तो मुझे अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में ज्वार आता है। जैसे समुद्र में, समुद्र के किनारे ज्वार आता है, इसी प्रकार जिन्हें सच्चे सन्त / मुनि कहते हैं, उन्हें वर्तमान पर्याय में, अनन्त-अनन्त आनन्द जो भरा है, उसका पर्याय में ज्वार आता है। ऐई.. ! ऐसा कभी सुना नहीं वहाँ। ऐसा मालचन्दजी ! बापू ! प्रभु ! क्या कहें ?

भगवान आत्मा सत्ता-अस्तित्व-मौजूदगी चीज़ प्रभु है। वह पर्याय मौजूद नहीं, नाशवान है। दया, दान का विकल्प-राग है, वह तो विकार है, नाशवान है। उसका तेरे साथ सम्बन्ध ही नहीं है। आहा..हा.. ! परन्तु भगवान आत्मा अविनाशी नित्यानन्द प्रभु की वर्तमान एक समय की पर्याय के साथ सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि पर्याय नाशवान है और वस्तु अविनाशी है। आहा..हा.. ! **मुमुक्षु का आत्मा जाग उठता है...** वहाँ प्रमाण कहा न ?

'**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज**' पहले ऐसा कहा, परन्तु दिखाऊँ तो प्रमाण करना, प्रभु! अनुभव से प्रमाण करना, ऐसा कहा। आहा..हा..! समयसार की पाँचवीं गाथा है न?

'**तं एयत्तविहत्तं**' भगवान आत्मा एकत्वस्वरूप है और राग से विभक्त जो है, वह मेरे निजवैभव से तुझे कहूँगा। यदि कहूँ, दिखाऊँ तो... आहा..हा..! '**जदि दाएज्ज पम्माणं**' दिखाऊँ तो प्रमाण करना। आहा..हा..! ...भाई! आहा..हा..! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी तो देखो! लोगों ने सुनी नहीं, क्या चीज़ है? आहा..हा..! बादशाह भगवान आत्मा 'नागा बादशाह थी आगा।' उनको दरकार नहीं, समाज को यह ठीक पड़ेगा या नहीं, इसकी दरकार नहीं। मार्ग यह है। आहा..हा..! तेरे व्रत, तप, भक्ति, पूजा, मन्दिर लाख-करोड़ बनावे, उससे धर्म नहीं होता। आहा..हा..! तीक्ष्ण बात। कठोर बात है, बापू!

उससे भेदज्ञान करना, यह ज्ञानी का उपदेश है। ऐसा भेदज्ञान का उपदेश हितकारी, तीक्ष्ण प्रहार से सुना। आहा..हा..! तो **आत्मा जाग उठता है...** अरे! मैं तो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति हूँ। आहा..हा..! समझ में आया? भले आठ वर्ष की बालिका हो या हजार योजन का बड़ा मच्छ हो, स्वयंभूरमण समुद्र में हजार योजन का मच्छ, चार-चार हजार कोस लम्बा। आहा..हा..! यह पूर्व में सुना था, परन्तु किया नहीं था। मच्छ में चला गया। उसमें जातिस्मरण हुआ और यह अन्दर याद आ गया, ओहो..! यह क्या सुना था? मैं तो परमात्मस्वरूप हूँ, अल्पज्ञ नहीं, राग तो नहीं, सम्बन्ध तो नहीं, परन्तु अल्पज्ञपना मुझमें नहीं। आहा..हा..! कठोर बात, बापू! जैनदर्शन समझना, वह कोई अलौकिक बात है। वाड़ा में जन्में, इसलिए जैन हो गये, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : जन्म-मरण के अन्त लाने की बात अलौकिक ही होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखो न! कितना सुनते हैं। एक क्षण में ऐसे हो गया। खून की उल्टी हुई, क्षय (टी.बी.) हुआ था, क्या कहलाता है वह? केंसर था, अमुक... आहा..हा..! संयोगी चीज़ तो संयोग से पृथक् ही पड़े न! यह तो संयोग, वियोग लेकर ही आया है। आहा..हा..! पद्मनन्दिपंचविंशति के अनित्य (पंचाशत) अधिकार में ऐसा लिया है, माता के गर्भ में से बालक जब बाहर आया, तो यह संयोग हुआ, वह वियोग लेकर ही आया है। किस क्षण में देह छूट जायेगी। आहा..हा..! अभी माता नजर करे कि आया है, वहाँ तो देह छोड़ दे। आयुष्य पूरा हो जाये। आहा..हा..! समझ में आया? बालक जन्मा

और माता देखे कि यह लड़की है या लड़का? यह देखे वहाँ से अनित्यता अन्दर शुरु हो गयी। पद्मनंदिपंचविंशति में अनित्य अधिकार में है। जैसे वैष्णव में गरुड़ पुराण होता है न? वैष्णव में गरुड पुराण। मर जाने के बाद (पढ़ा जाता है)। इसी प्रकार अपने पद्मनंदिपंचविंशति में अनित्य पंचाशत गरुड़ पुराण है। पद्मनंदिपंचविंशति (में) यह अधिकार है। यह अपने (संवत्) १९९३ के वर्ष में हमारे बड़े भाई गुजर गये, तब व्याख्यान में शुरु किया था। अनित्य पंचाशत। ऐसा वैराग्य... आहा..हा..! जिस क्षण में, जिस काल में देह छूटनेवाला है, उस क्षण में वह छूटेगा ही। तू लाख उपाय कर, डॉक्टर को बुला और करोड़ रुपये खर्च कर। तो भी नहीं चलेगा। आहा..हा..! प्रभु! एक बार तू तेरी चीज़ जहाँ भगवानस्वरूप विराजमान है, वहाँ देख न, नजर कर न, प्रभु! आहा..हा..! तेरी प्रभुता की प्रभुता पर नजर कर न! पामरता पर तेरी नजर अनादि से है। या दया पाली, भक्ति की, पूजा की, विषय सेवन किया, इस राग पर तेरी दृष्टि है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। अथवा एक समय की पर्याय-अल्पज्ञपर्याय पर दृष्टि है, वह भी मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! ऐसी बात है।

भगवान! तेरा पूर्णानन्द का नाथ अन्दर विराजता है न, प्रभु! आहा..हा..! एक करोड़पति आदि बड़ा व्यक्ति आया हो और आया तथा पाव घण्टे (१५ मिनिट) की अवधि लेकर बैठा, उसमें अपने लड़के का लड़का छह महीने का-बारह महीने का आया तो उसके साथ क्रीड़ा में रुक गया, तो वह मनुष्य पाव घण्टे रुककर चला गया। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक समय की पर्याय के समीप में विराजमान है और तू राग तथा पुण्य के साथ क्रीड़ा में चला गया। यह तेरा काल चला गया। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई!

आज या कल सबेरे गाया था न? 'एक रे दिवस ऐसा आयेगा रे मानो कि जन्मा ही नहीं था जी...' आहा..हा..! 'सागी नारी रे तेरी कामिनी, वह खड़ी टकटक देखेगी जी। रे इस काया में अब कुछ नहीं, है टकटक रोयेगी जी।' वह रोयगी, बापू! वह रोती है, वह स्वयं की सुविधा के लिये रोती है। यह मरकर कहाँ गया, इसमें हमारे क्या है? मालचन्दजी! बराबर है?

मुमुक्षु : इसे खबर भी नहीं कहाँ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे भान भी कहाँ है, यह विचार भी कहाँ है? वह तो अपनी

सुविधावाला जाता है, उसे रोते हैं। वह मरकर नरक में गया, तिर्यंच में-ढोर में गया, उसकी इसे कहाँ पड़ी है ? आहा..हा.. !

यहाँ कहते हैं **जाग उठता है और ज्ञायक की रुचि प्रगट होती है,...** राग की रुचि छोड़कर ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द प्रभु की रुचि जम जाती है। यह धर्म की पहली शुरुआत है। इसके बिना सब व्यर्थ है। समझ में आया ? **प्रगट होती है, बारम्बार चेतन की ओर—ज्ञायक की ओर झुकाव होता है।** आहा..हा.. ! भगवान चैतन्यस्वरूप, भगवान परमानन्द मूर्ति प्रभु की जहाँ रुचि हुई तो बारम्बार उस ओर का झुकाव होता है। आहा..हा.. !

जैसे भक्त को भगवान मुश्किल से मिले हों तो उन्हें छोड़ना अच्छा नहीं लगता,... तुम्हारे सूरदास की बात आती है न ? सूरदास हैं। कृष्ण गये, कृष्ण चले गये। प्रभु ! तुम चले जाते हो, परन्तु मेरे हृदय में से नहीं चले जाओ। आहा..हा.. ! आता है न ? हमने तो सब देखा है, पढ़ा है। नाटक भी देखे हैं। आहा..हा.. ! सूरदास थे। श्रीकृष्ण आये। श्रीकृष्ण समकिती, ज्ञायक समकिती थे। लोगों ने फिर कर्ता ठहराया, वह बात अलग है। बाकी आत्मज्ञानी थे। आहा..हा.. ! सूरदास कहते हैं, प्रभु ! मेरा हाथ पकड़ा, हाथ छोड़कर चले गये। कहाँ जाओगे ? चरणकमल मेरे हृदय में विराजमान हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि, रुचि होकर मिल गया तो वहाँ से बारम्बार उपयोग जम जाता है। आहा..हा.. !

भगवान मुश्किल से मिले हों तो उन्हें छोड़ना अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार 'हे चेतन', 'हे ज्ञायक'—ऐसा बारम्बार अन्तर में होता रहता है,... आहा..हा.. ! **उसी ओर रुचि बनी रहती है; 'चलते-फिरते प्रभु की याद आये रे'—...** 'चलते फिरते प्रभु हरि देखूं मेरा जीना रे सफल तब लेखूं।' मेरा आत्मा आनन्द का नाथ ज्ञायक है, उसे चलते फिरते मैं तो याद रखता हूँ। आहा..हा.. ! हरि तो दूसरा नहीं, यह हरि है। समझ में आया ? यह स्वामी नारायण में है 'चलते-फिरते प्रगट हरि देखूँ, मेरा जीना रे सफल तब लेखूं, मुक्तानन्द का नाथ बिहारी रे, ओघा जीवन दोरी हमारी रे।' हम आनन्द के नाथ भगवान, उसका जीवन, वह हमारा है। हम राग से जीवें, वह हमारी चीज़ नहीं। आहा..हा.. ! थोड़ी-थोड़ी गुजराती आ जाती है। आहा..हा.. !

'चलते-फिरते प्रभु की याद आये रे'—ऐसा बना रहता है। आहा..हा.. ! ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक की धुन चढ़ती है। आहा..हा.. ! ज्ञायक के ध्येय के ध्यान से पर्याय में

धगती धुनी प्रगट होती है। धगती धुनी। अपने आया था न? उसमें आया था। आत्मधर्म में तेरह बोल आये हैं। गत वर्ष भावनगर में बुखार आया था, तब बनाया था। ध्यान में ध्रुव को ध्येय बनाकर, वर्तमान में धीरज से धकती धुनी लगाओ। धकती धुनी लगाओ। आहा..हा..! **ऐसा बना रहता है**। आहा..हा..!

अनन्त काल में चैतन्य की महिमा नहीं आयी, विभाव की तुच्छता नहीं लगी, पर से और विभाव से विरक्तता नहीं हुई, इसलिए मार्ग नहीं मिला ॥२७४॥

२७४। **अनन्त काल में चैतन्य की महिमा नहीं आयी,...** भगवान अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु, भगवान ने सर्वज्ञ ने देखा। जिनेश्वर परमेश्वर ने जो आत्मा अन्दर देखा, वह तो पूर्णानन्द का नाथ (देखा है)। आहा..हा..! समझ में आया? यह पामर को कैसे जँचे? दो बीड़ी ठीक से पीवे, तब तो दस्त उतरे, ऐसे तो अपलक्षण। अब उसे... आहा..हा..! **अनन्त काल में चैतन्य की महिमा नहीं आयी, विभाव की तुच्छता नहीं लगी,...** यह पुण्य और पाप जो विकल्प / विभाव है, अज्ञानी को उनकी तुच्छता नहीं लगी। आहा..हा..! क्योंकि दया, दान, व्रत किये; लाख, दो लाख, पाँच-दस लाख का दान किया, वहाँ तो आहा..हा..! हम क्या! अरे! धूल भी नहीं, सुन न! इस **विभाव की तुच्छता नहीं लगी,...** आहा..हा..! समझ में आया?

अनन्त काल में चैतन्य की (महिमा नहीं आयी)। प्रभु! चैतन्य ज्ञायकस्वभाव, ध्रुव प्रवाह, ऊर्ध्व प्रवाह (स्वरूप है)। आहा..हा..! चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा, वह ऊर्ध्व ऐसा का ऐसा कायम रहता है। पर्याय बदलती है परन्तु वस्तु तो कायम ऐसी की ऐसी रहती है। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं कि अनादि से **विभाव की तुच्छता नहीं लगी,...** मुनि हुआ, दिगम्बर साधु हुआ।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

आहा..हा..! समझ में आया? श्रीमद् में आता है न?

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाई दीयो।

मन पौन निरोध स्वबोध कियो, हठजोग प्रयोग सुतार भयो;
सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत खंडन मंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।

(श्रीमद् राजचन्द्र) गुजराती थे। यह हिन्दी में बनाया है। श्रीमद् गुजराती थे।

वह साधन बार अनंत कियो,.. यम, पंच महाव्रत; नियम अभिग्रह अनन्त बार धारण किये। इन्द्रिय दमन अनन्त बार किया। बाल ब्रह्मचारी अनन्त बार हुआ। यह क्रिया क्या है ? **यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो;** साधु हुआ। एक रूखी रोटी लेना, दूसरा नहीं लेना, ऐसा त्याग अनन्त बार किया। 'त्याग-वैराग्य' सबसे उदास-उदास, परन्तु अन्तर में गया नहीं। आहा..हा.. !

वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।
अब क्यों न विचारत है मन सें, कछु और रहा उन साधन से ?

इन्द्रिय दमन और पंच महाव्रत ये सब साधन, वे साधन नहीं हैं। भगवान आत्मा को पाने का साधन दूसरी चीज़ है। आहा..हा.. !

यहाँ कहते हैं **अनन्त काल में चैतन्य की महिमा नहीं आयी,...** एक समय में पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, आनन्द का दल, वीतरागमूर्ति जिनबिम्ब प्रभु आत्मा की महिमा नहीं आयी। **विभाव की तुच्छता नहीं लगी,...** यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, अपवास किये वहाँ... आहा..हा.. ! वह तो सब राग की क्रिया है। उस विभाव की तुच्छता तुझे नहीं लगी। आहा..हा.. ! बहुत कठिन बातें, बापू !

पर से और विभाव से विरक्तता नहीं हुई,... आहा..हा.. ! परपदार्थ से और अन्दर विकल्प राग विभाव है, उससे विरक्तता नहीं हुई। रक्त रहा, विरक्त नहीं हुआ। आहा..हा.. ! ऐसी कोई पंच महाव्रत की क्रिया, बारह व्रत की की, वह तो राग की क्रिया है, वहाँ रक्त रहा, विरक्त नहीं हुआ। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं। **इसलिए मार्ग नहीं मिला।** यह राग की क्रिया जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम में इसे महत्ता लगी और स्वयं चैतन्य है, उसकी महत्ता नहीं जानी। आहा..हा.. ! अरे रे ! ऐसे के ऐसे या तो यात्रायें सब की - पच्चीस-पचास-सौ शत्रुंजय और गिरनार की। अब उसमें क्या हुआ ? वह तो राग है। उसकी महिमा इसे लगी कि यह तो किया ? ९९वें यात्रायें कीं, अमुक किया। सम्मेदशिखर...

आता है न 'एक बार वंदे जो कोई, नरक पशु (गति) न होई' परन्तु उसमें क्या है ? वह तो शुभभाव हो तो नरक-पशु में न जाये परन्तु भवभ्रमण तो खड़ा है। आहा..हा..! सम्मेदशिखर की यात्रा, वह भी शुभभाव है, कोई धर्म नहीं है। आहा..हा..! सम्मेदशिखर तो प्रभु आत्मा महा आनन्द का नाथ समतास्वरूप है, उस सम्मेदशिखर पर आरूढ़ हो, वह यात्रा है।

मुमुक्षु : वह तो निश्चय यात्रा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ निश्चय की बात है, वह सत्य है। वह (यात्रा का भाव) तो राग है, होता है, वह व्यवहार है, पुण्यबंध का कारण है। आहा..हा..! अशुभ से बचने को ऐसा भाव आता है, परन्तु वह धर्म नहीं है। आहा..हा..! ऐसा है।

पर से और विभाव से विरक्तता नहीं हुई,... आहा..हा..! यह मेरा काम, यह पुत्री, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री, ये मेरे गुरु, ये मेरे देव और ये मेरे शास्त्र। यह पर की रुचि नहीं छोड़ी। **और विभाव से विरक्तता नहीं हुई,...** यहाँ नियमसार आवश्यक (अधिकार) में तो वहाँ तक कहा है कि अपना द्रव्य जो वस्तु है, उसके गुण और उसकी पर्याय है, तीन का विचार करना ही राग है, आवश्यक नहीं; वह अनावश्यक चीज़ है। आहा..हा..! समझ में आया ? अपना द्रव्य यह पूर्णानन्द प्रभु, वह आत्मा है और उसमें अनन्त गुणादि शक्ति है और उसकी वर्तमान अवस्था, वह पर्याय है। इन तीन भेद का विचार करना, वह भी राग है। आहा..हा..! अनावश्यक कहा न ? वह आवश्यक नहीं, तेरी धार्मिक क्रिया वह नहीं। अवश्य करने योग्य जो क्रिया है, वह (यह) नहीं। अन्तर में आनन्द के नाथ में एकाग्र होना, वह क्रिया अवश्य करने योग्य है। उसे यहाँ आवश्यक, सामायिक आदि उसे कहते हैं। समझ में आया ? **इसलिए मार्ग नहीं मिला**। आहा..हा..!

पंचम काल है, इसलिए बाहर फेरफार होता है, परन्तु जिसे आत्मा का कल्याण करना है, उसे काल बाधक नहीं होता ॥२७५॥

२७५। **पंचम काल है...** कोई ऐसा कहे कि यह तो पंचम काल है। हम इसमें किस प्रकार काम कर सकते हैं ? **इसलिए बाहर फेरफार होता है,...** बाहर में भले फेरफार हो, पंचम काल के कारण **परन्तु जिसे आत्मा का कल्याण करना है...** आहा..हा..! इस पंचम

काल में भी भगवान तो अन्दर ऐसा ही पड़ा है। वहाँ कोई काल बाधक नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : यों ही काल किसी को कहाँ बाधक है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : काल किसे बाधक है ? किसी को बाधक नहीं है। (बाधक है, ऐसा) मानता है। आहा..हा.. ! श्रीमद् ने तो यहाँ तक कहा न, 'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ; भवस्थिति आदि नामलई...' काललब्धि होगी तब होगा... तब होगा... 'छेदो नहीं आत्मार्थ।' समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। मेरी भवस्थिति पकेगी, तब मुझे समकित होगा, ऐसा रहने दे। स्वभाव की ओर का पुरुषार्थ कर तो तेरा काल पक जायेगा। आहा..हा.. ! भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वीतराग जिनबिम्ब। 'घट घट अंतर जिन बसे और घट घट अंतर जैन।' इस देह में भगवान विराजता है, वह जिनस्वरूप है। घट-घट अंतर जिनस्वरूप है, उसका द्रव्यस्वरूप, गुणस्वरूप, वह जिनस्वरूप है। आहा..हा.. ! कैसे जँचे ? 'घट घट अंतर जिन बसे और घट अंतर जैन।' जैनपना किसी बाह्य चीज़ में नहीं है। जिनस्वरूपी भगवान का पर्याय में स्वीकार करना और वीतराग सम्यग्दर्शन हो, वह जैन है। जैन कोई पक्ष और सम्प्रदाय नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? अन्तरंग में जिनपना होता है। बाहर की यह क्रिया की, भक्ति की, पूजा की, इसलिए जैन है, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! बहुत कठिन काम।

अरे ! दुनिया को मुश्किल से समय मिले, तब वह बाहर में कहीं न कहीं गँवा बैठती है और जब न मिले तो... आहा..हा.. ! देखो न, यह कुत्ता, बिल्ली, इन्हें भान ही कहाँ है कि मैं कौन हूँ ? यह क्या है ? वे तो एकाकार (होकर परिणमते हैं)। यह नीम के जीव। लो, एक पत्ते में असंख्य जीव। अब इन असंख्यात में... आहा..हा.. ! पूर्व में माँ-बाप थे, वे मरकर यहाँ अन्दर बैठे हैं। अनन्त बार (ऐसे) भव किये। आहा..हा.. ! ये कब निकलेंगे ? आहा..हा.. ! भगवान तो इसमें अनन्त-अनन्त (गुणस्वरूप विराज रहा है)। इसकी कोर होती है न ? फूल... फूल, नीम के फूल, उस फूल में राई जितनी कणी लो तो उसमें अनन्त आत्मा हैं। फूल, कोर... कोर कहते हैं न ? आहा..हा.. ! एक राई जितना कण लो तो उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर है और एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, उनसे अनन्त गुने जीव हैं। अरे ! कब निकले ? आहा..हा.. ! समझ में आया ?

पंचम काल है, इसलिए बाहर फेरफार होता है, परन्तु जिसे आत्मा का कल्याण

करना है... आहा..हा.. ! भगवान के समवसरण में नहीं किया, वह पंचम काल में सम्यग्दर्शन हो सकता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! काल इसे अन्दर में कोई फेरफार नहीं कर सकता। आहा..हा.. ! समझ में आया ? **परन्तु जिसे आत्मा का कल्याण करना है, उसे काल बाधक नहीं होता**। आहा..हा.. ! तीसरे नरक का नारकी, उसे परमधामी देव गाँठ बाँधकर लोहे के गरम-गरम सरिया बाँधकर ऊपर घन मारे, उस समय में भी समकित प्राप्त कर सकता है। यह बाहर की चीज़ कहीं अन्दर में बाधक नहीं है, ऐसा कहते हैं। भाई ! चन्दुभाई ! आहा..हा.. ! यहाँ कहते हैं न कि जरा निवृत्ति हो, सुविधा हो, लड़के-बड़के काम करते हों, फिर निवृत्ति हो तो यह (काम हो), सब मिथ्या बातें हैं। समझ में आया ? आहा..हा.. ! ऐसी स्थिति अन्दर में, परन्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ तो राग से, देह की क्रिया जो होती है, उससे तो भिन्न अन्दर पड़ा है। आहा..हा.. ! तेरी नजर बदलनी पड़ेगी। बाहर में भले फेरफार हो। आहा..हा.. ! वीतरागमार्ग बहुत (अलौकिक है)। परमेश्वर का मार्ग कोई अलग प्रकार का है और यह मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं है, कहीं नहीं है। वीतराग के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। आहा..हा.. ! भाई ! तुझे पंचम काल मिला, शरीर में रोग इत्यादि आये, वे तुझे अन्दर में बाधक नहीं हैं। बाहर में भले फेरफार हो, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! भगवान ध्रुव वहाँ मौजूद विराजता है या नहीं ?

'मेरी नजर के आलसे रे मैं निरख्या नयने हरि।' हरि अर्थात् भगवान आत्मा। अज्ञान और राग-द्वेष का नाश करे, ऐसा हरि। वह तेरे नयन के आलस्य से तेरी नजर वहाँ नहीं गयी। आहा..हा.. ! तेरी नजर में राग और पर्याय तैरती थी। यह (भगवान आत्मा) नहीं। आहा..हा.. !

(नारकी जीव को) गाँठ बाँधकर लोहे के गरम सरिये बाँधे और सिर पर घन पड़े; वह तो पुद्गल की परिणति हुई, वह कहीं तुझमें विघ्न नहीं करती। आहा..हा.. ! समझ में आया ? उससे दृष्टि हटा ले। भगवान तो अन्दर विराजता है। उस काल में तुझे सम्यग्दर्शन हो सकता है। आहा..हा.. ! क्या बात ! ऐसी बात है, भाई ! वीतराग परमेश्वर जिनराज तीन लोक के नाथ वाणी द्वारा जगत को ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

उसे काल बाधक नहीं होता। आहा..हा.. ! यह पुद्गल की परिणति-शरीर में कठोर रोग आया, बंधन हुआ, वह तेरी परिणति, दृष्टि करने में कुछ विघ्न नहीं करती। आहा..हा.. ! अन्तर में आनन्द का नाथ प्रभु, मौजूद चीज़ विराजमान है, उसकी नजर करने

में तुझे बाहर की कोई चीज़ विघ्न नहीं करती। आहा..हा..! और अन्तर नजर करने में बाहर की सुविधा हो तो सहायक होती है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! यह २७५ (बोल पूरा हुआ)।

'शुभाशुभभाव से भिन्न, मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रत्येक प्रसंग में याद रखना। भेदज्ञान का अभ्यास करना ही मनुष्यजीवन की सार्थकता है ॥२७६॥

२७६। '**शुभाशुभभाव से भिन्न,...**' भगवान आत्मा है। शरीर से तो भिन्न है, कर्म से तो भिन्न है परन्तु दया, दान, व्रत का जो शुभभाव और हिंसा, झूठ, चोरी के अशुभभाव, इन दोनों से भगवान अन्तर भिन्न है। अरे! कैसे बैठे? आहा..हा..! भगवान तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं, वह वाणी यह है। आहा..हा..! '**शुभाशुभभाव से भिन्न,...**' हिंसा, झूठ, विषय, चोरी, भोग, वासना यह पाप भाव और दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, यात्रा का भाव, वह शुभभाव है, परन्तु इस शुभ और अशुभ से प्रभु तो अन्दर भिन्न है। क्योंकि शुभ-अशुभभाव तो पुण्य-पापभाव है। नौ तत्त्व में है न? तो वह पुण्य-पाप है और आत्मा तो ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। नव तत्त्व है या नहीं? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। आहा..हा..! ये शुभाशुभभाव, पुण्य-पाप भाव, इनसे भगवान अन्दर ज्ञायकस्वरूप भिन्न है। अरे! कैसे जँचे? निवृत्ति नहीं, फुरसत नहीं। जगत का धन्धा पूरे दिन, २२-२३ घण्टे पाप का धन्धा, स्त्री, पुत्र, भोग। एक घण्टा मिले, वहाँ सुनने का विपरीत मिले। एक घण्टा लुट जाये। वहाँ ऐसा मिले कि व्रत करो, तप करो, भक्ति करो, पूजा करो, तुम्हारा कल्याण होगा। आहा..हा..! वीतराग की यह आज्ञा नहीं है।

वीतराग की आज्ञा तो यह है। आहा..हा..! हम तो अपने अवलम्बन से वीतरागता को प्राप्त हुए हैं तो तुझे भी तेरा अवलम्बन लेने को कहते हैं। राग और दया, दान आदि के विकल्प से प्रभु अन्दर भिन्न तत्त्व है। चैतन्यस्वभावी वस्तु, वह शुभ-अशुभभाव से भिन्न, मलिनता से भिन्न है। आहा..हा..! ऐसा अब। शरीर से भिन्न, स्त्री-पुत्र से भिन्न, पैसे से भिन्न परन्तु शुभाशुभभाव से (भी) भिन्न। आहा..हा..!

समयसार की ७२ वीं गाथा में आया है कि शुभ-अशुभभाव है, वे अशुचि हैं, आस्रव हैं। समयसार ७२ गाथा। वहाँ अमृतचन्द्राचार्य लेते हैं कि भगवान आत्मा, ऐसा

पाठ लिया है। संस्कृत टीका है। जो शुभ-अशुभराग विकल्प है, वह अशुचि है। भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु अन्दर है। 'भगवान' ऐसा कहा है। आहा..हा..! ७२ गाथा है न? उसमें (कहा है)। आहा..हा..! शुभ-अशुभभाव अशुचि है, मैल है। प्रभु तो निर्मलानन्द भिन्न है न? प्रभु! तो वहाँ नजर कर न! तीन बोल हैं।

शुभ-अशुभभाव जड़ हैं, क्योंकि शुभ-अशुभभाव अपने को नहीं जानते तथा साथ में ज्ञायकमूर्ति है, उसे भी नहीं जानते; तो वे ज्ञान द्वारा ज्ञात होते हैं, इसलिए वे जड़ हैं। आहा..हा..! ऐसी बातें। दया, दान, भक्ति, व्रत का, यात्रा का विकल्प है, वह जड़ है, ऐसा प्रभु कहते हैं। है न भाई! चन्दुभाई! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप अन्दर भिन्न है न! आहा..हा..! दो बोल।

तीसरा बोल, शुभ-अशुभभाव है, वह दु:खरूप है। है? ७२ गाथा में है। शुभ-अशुभभाव है, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव, वह दु:खरूप है। राग है, आकुलता दु:खरूप है। आहा..हा..! तीसरा बोल है। अशुचि, जड़ और दु:ख। आहा..हा..! ७२ गाथा। आहा..हा..! शुभ-अशुभभाव दु:खरूप है, ऐसा कहा। आहा..हा..! उससे भगवान आनन्दस्वरूप भिन्न है, वह सुखरूप है। उस राग का भगवान कारण भी नहीं और राग का वह कार्य भी नहीं। तीसरे बोल में लिया है। राग की मन्दता हो तो कारण होकर यहाँ सम्यग्दर्शन कार्य होता है, ऐसा नहीं है और राग मन्द है, उसका कारण आत्मा है, ऐसा भी नहीं है। आहा..हा..! उस राग के, कारण से रहित उसका अकारणकार्यस्वरूप है। शक्ति निकाली है न? सैंतालीस शक्तियों में चौदहवीं अकार्यकारणशक्ति है। आहा..हा..!

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप कैसा है? कि दया, दान के विकल्प का कारण भी नहीं और वह राग का वह सम्यग्दर्शन की पर्याय कार्य भी नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें अब। लोगों के बेचारों के सिर घूम जाये ऐसा है। ऐसी बात है, बापू! आहा..हा..! भगवान तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में यह आया। भगवन्त! आचार्य ने भगवन्त कहकर बुलाया है। पामर को भगवानरूप से, प्रभुरूप से बुलाया है। आहा..हा..! यह भगवान है, इसे भगवानरूप से बुलाते हैं। आहा..हा..! यह पुण्य और पाप के भाव... है? समयसार में है। दु:खरूप है। आहा..हा..! भगवान आत्मा दु:ख का कारण नहीं, सुखरूप, आनन्दरूप है। समझ में आया? आहा..हा..!

'शुभाशुभभाव से भिन्न, मैं ज्ञायक हूँ'... आहा..हा..! जानने-देखने का पिण्ड प्रभु

मैं हूँ, ऐसा सम्यग्दृष्टि अपने को मानता है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? जगत का सब उत्साह उड़ जाये ऐसा है। आहा..हा.. ! बैंगलोर गये, तब कहा न ! बैंगलोर में बारह लाख का मन्दिर बना है। बैंगलोर में बारह लाख का मन्दिर बनाया है। तो आठ लाख तो भभूतमल ने दिये हैं। अभी आये थे। श्वेताम्बर थे। उन्होंने आठ लाख दिये। बैंगलोर में बारह लाख का दिगम्बर मन्दिर बनाया। आठ लाख तो एक ने ही दिये। अभी आये थे। उनके पास दो करोड़ रुपये हैं। श्वेताम्बर है, परन्तु यहाँ का प्रेम है। सब छोड़ दिया। जाति से बाहर किया था, तो भी इकतालीस हजार भरकर जाति में गये, परन्तु रस यहाँ है। लोग फिर.... इकतालीस हजार भर दिये। लोग ऐसा कहे कि तुमने यह धर्म छोड़कर और वह धर्म अंगीकार किया, इसलिए जाति बाहर। तुमने आठ लाख खर्च किये। मैंने तो कहा, कि भाई ! तुमने आठ लाख खर्च किये, इसलिए धर्म होगा, ऐसा नहीं है। शुभभाव है। राग की मन्दता की होगी तो शुभभाव है, पुण्य-बन्ध है, धर्म नहीं। और दूसरे एक स्थानकवासी है। जुगराजजी, मुम्बई में महावीर मार्केट है। करोड़पति है, उसको दो करोड़, उसने चार लाख दिये। वहाँ बारह लाख का अपना मुमुक्षु दिगम्बर मन्दिर बनाया है। बनाया तब बारह लाख का था। अभी तो पन्द्रह लाख का है। ऐसे मन्दिर देखो तो.... कलकत्तावाले हैं न ? गांगुली। वैद्य है। क्या कहलाता है वह ? होम्योपैथी के (वैद्य हैं)। आये थे न, बालब्रह्मचारी है। ४९ वर्ष की उम्र में राजकुमार जैसे हैं। लाखों रुपये कमाते हैं। पाँच-छह बार यहाँ आये थे। महाराज ! मुझे आजीवन इस प्रकार ब्रह्मचर्य रहे। ४९ वर्ष की उम्र है और लाखों की आमदनी है। दया, में और उसमें दे देते हैं। वह मन्दिर देखकर दर्शन करने आये थे। देखकर एक हजार रुपये दिये, परन्तु फिर भी कहते हैं, प्रभु ! तेरे हजार दिये, उसमें राग की मन्दता की तो पुण्य है। उससे धर्म होगा, ऐसा बिल्कुल नहीं है। समझ में आया ?

यह यहाँ कहते हैं। **'शुभाशुभभाव से भिन्न, मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रत्येक प्रसंग में याद रखना। भेदज्ञान का अभ्यास करना....** भेदज्ञान का—राग से भिन्न पड़ने का अभ्यास करना, यह मनुष्य जीवन की सार्थकता है। बाकी तो सब मनुष्य जीवन व्यर्थ चला जायेगा। आहा..हा.. ! समझ में आया ? राग से भिन्न होने का भेद-अभ्यास अन्दर करना। **यह मनुष्य जीवन की सार्थकता है।** बाकी पाँच-पच्चीस लाख, करोड़-दो करोड़ मिले, धूल मिली, वह सब धूल है। उसमें तुझे क्या आया ? समझ में आया ?

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र कृष्ण-१३, शुक्रवार, दिनाङ्क २९-०९-१९७८
वचनामृत-२७७ से २७८ प्रवचन-१०४

पर से विरक्तता नहीं है, विभाव की तुच्छता नहीं लगती, अन्तर में इतनी उत्कण्ठा नहीं है; फिर कार्य कहाँ से हो? अन्तर में उत्कण्ठा जागृत हो तो कार्य हुए बिना रहता ही नहीं। स्वयं आलसी हो गया है। 'करूँगा, करूँगा' कहता है परन्तु करता नहीं है। कोई तो ऐसे आलसी होते हैं कि सोते हों तो बैठते नहीं हैं, और बैठे हों तो खड़े होने में आलस्य करते हैं; उसी प्रकार उत्कण्ठारहित आलसी जीव 'जीव करूँगा, कल करूँगा' ऐसे मन्दरूप वर्तते हैं; वहाँ कल की आज नहीं होती और जीवन समाप्त हो जाता है॥२७७॥

२७७ वाँ बोल है न? **पर से विरक्तता नहीं है,...** शरीर, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार आदि परद्रव्यों से विरक्तता नहीं। उसका करना, उसे बनाऊँ, उसका रक्षण करूँ, आहा..हा..! इसमें जिन्दगी चली जाती है।

मुमुक्षु : पर का करना इसमें....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर का - यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, व्यापार का करूँ, परन्तु इनसे मैं भिन्न हूँ, इसकी इसे खबर नहीं।

मुमुक्षु : पूरी दुनिया विरक्त कैसे हो सके?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा विरक्त हो तो दुनिया विरक्त हो गयी।

मुमुक्षु : धर्म तो सबके लिये ही होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म तो सबके लिये, परन्तु करे उसके लिये है। आहा..हा..! एक तो ऐसी चीज़ है कि यह शरीर है न? शरीर, इसकी जो परमाणु की उत्पाद-व्यय की

पर्याय है, उसे ध्रुव, उत्पाद-व्यय से अन्दर भिन्न है। इन रजकण में। उत्पाद-व्यय पर्याय है, वह ऊपर है। आहा..हा..! रजकण में जो ध्रुवता है, वह उत्पाद-व्यय के अन्दर है। उत्पाद-व्यय में ध्रुव नहीं आया। आहा..हा..! अन्दर कर्म की पर्याय है, वह शरीर का ध्रुव और पर्याय से भिन्न कर्म की पर्याय है, वह भी उत्पाद-व्यय की पर्याय है और परमाणु अन्दर ध्रुव है, वे उत्पाद-व्यय से भिन्न चीज़ है। परमाणु की ध्रुवता... आहा..हा..! यहाँ तो पर से विरक्तता कहनी है।

पर से विरक्तता नहीं है,... और स्वयं मानता है कि मैं शरीर को बनाता हूँ, शरीर को रखता हूँ। आहा..हा..! और यह कर्म की पर्याय, उदय की, उत्पाद-व्यय की अन्दर ध्रुव, रजकण की ध्रुवता, इनसे भी आत्मा के राग-द्वेष की पर्याय भिन्न है। आहा..हा..! और राग-द्वेष की पर्याय के काल में भी ज्ञान की उत्पाद-व्यय पर्याय भिन्न है। आहा..हा..! और उस ज्ञान की उत्पाद-व्यय पर्याय से भी अन्दर में ध्रुव तो भिन्न है। सुमेरुमलजी! आहा..हा..! ऐसी वस्तु, प्रभु!

भगवान आत्मा, परद्रव्य की पर्याय और परद्रव्य की ध्रुवता से तो भिन्न है। शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, इनकी पर्याय जो शरीर है, और उसकी ध्रुवता अन्दर है, उससे इसका आत्मा भिन्न है और यह आत्मा भी उसकी उत्पाद-व्यय जो आत्मा की-पर की पर्याय है, उससे ध्रुव अन्दर भिन्न है। उस उत्पाद-व्यय-ध्रुव से यह आत्मा भिन्न है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : आत्मा तो निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न है। निमित्त का अर्थ क्या? उसके कारण वह पर्याय होती है, उसमें आत्मा क्या कर सकता है? निमित्त का अर्थ कि उसकी उपस्थिति है, इतना। परन्तु उसके कारण इसमें पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! कठिन काम, बापू! मनुष्यपना मिला है, उसमें यदि यह नहीं किया तो जिन्दगी चली जाएगी। यह लड़के का किया, बालक का किया, व्यापार किया, (इसमें) मर गया, मार डाला। आहा..हा..!

मुमुक्षु : तो लड़के को कहाँ रखने जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ लड़का था? किसका? सुमनभाई उसका था, तुम्हारा कहाँ था?

मुमुक्षु : अपन कहाँ कहते हैं कि अपना है। अपना हो तो.... सेवा न करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसके पाप करके, पैसा इकट्ठा करके उसे पढ़ाया न।

मुमुक्षु : वह भूल की।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें घर की बातें हैं। सुमनभाई है न? छह, सात, आठ हजार का मासिक वेतन है। पाप करके पैसा इकट्ठा किया। पाप। भाव तो पाप किया था, पैसा तो... फिर अमेरिका में पैंतीस हजार का खर्च करके पढ़ाया। अब यह इसका पाप करता है और यहाँ तो रोग होवे तो भी यहाँ नहीं आता। कभी आवे तो जरा पैरा दबावे। पैर तो जड़ है। यह तो भाई का दृष्टान्त लिया। सबको ऐसा है न? भाई! यह प्रभु अन्दर... आहा..हा..!

मुमुक्षु : धर्म तो स्वयं से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ धर्म कैसे होता है? (यह कहते हैं)। पर से विरक्तता नहीं। अन्दर में विरक्तता नहीं तो अन्दर जाने का अवकाश नहीं। समझ में आया? ऐसी बात बहुत कठिन, बापू! आहा..हा..! यह शरीर, मिट्टी, इसकी जो यह उत्पाद-व्यय की पर्याय है, उससे मिट्टी (शरीर) के परमाणु जो ध्रुव हैं, वे उत्पाद के अन्दर हैं। पर्याय में ध्रुवता आयी नहीं। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् है न? आहा..हा..! वह ध्रुव और उत्पाद-व्यय से भी शरीर का और कर्म के उत्पाद-व्यय और ध्रुव से भी भगवान अन्दर भिन्न है। आहा..हा..!

अब अन्दर में राग और द्वेष की दुःखरूप पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी ज्ञान की उत्पाद-व्यय-पर्याय है। उस पर्याय से यह पर्याय भिन्न है। भले एक साथ में है, परन्तु है भिन्न। आहा..हा..! और ज्ञान की जो उत्पाद-व्यय की पर्याय है, उसमें ध्रुवता है, वह तो अन्दर भिन्न है। भगवान ज्ञानगुण, आनन्दगुण, शान्तगुण... आहा..हा..! ऐसी बातें, प्रभु! उस ध्रुव में जहाँ तक न जाये, तब तक उसकी दृष्टि सच्ची नहीं होती। आहा..हा..! अरे! जीवन चला जाता है। मृत्यु के सन्मुख है। लोग ऐसा कहते हैं कि मेरा आयुष्य विशेष है। आगे बड़ा हो गया। प्रभु ऐसा कहते हैं कि आयुष्य की स्थिति पूर्ण होने के समीप तू जा रहा है।

मुमुक्षु : माँ मानती है कि मेरा लड़का बड़ा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (माँ कहे कि) लड़का बड़ा होता है, परन्तु यहाँ कहते हैं कि मृत्यु के समीप जाता है। आहा..हा..!

पर से विरक्तता नहीं... एक बात। **विभाव की तुच्छता नहीं लगती,...** आहा..हा..! राग-द्वेष, पुण्य और पाप उत्पन्न होते हैं, उनकी तुच्छता नहीं लगती। यहाँ तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन हुआ तो आनन्द का स्वाद आया। उसमें विभाव जो राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, उनका ज्ञानी को ख्याल आया कि यह दु:ख का वेदन है। समझ में आया? ज्ञानी ऐसा जानता है कि मुझमें मेरे कारण से दु:ख का वेदन है। आहा..हा..! परन्तु यहाँ तो अकेला दु:ख का वेदन जो राग-द्वेष है, उससे ज्ञान-पर्याय भिन्न है और ज्ञान की पर्याय के उत्पाद-व्यय में ध्रुवता उसके अन्दर है। उत्पाद-व्यय ऊपर है और ध्रुव अन्दर है। आहा..हा..! अरे रे!

मुमुक्षु : ऊपर है अर्थात् पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर है अर्थात् पर्याय है और अन्दर है अर्थात् ध्रुव है। आहा..हा..! यह तो शान्ति का मार्ग, बापू! धीर का है। आहा..हा..! शास्त्र पढ़कर बात धार ले, इससे कहीं वस्तु की दृष्टि हुई है, ऐसा नहीं है। बात समझ में आयी? दृष्टि हो, उसे विवेक (प्रगट होता है कि) मुझे आनन्द भी (प्रगट) हुआ है और दु:ख भी मुझमें है, ऐसा सम्यग्दृष्टि को तो भान हो जाता है। दु:ख है ही नहीं, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी दु:ख वेदते ही नहीं, (ऐसा मानता है), वह मिथ्यादृष्टि है। उसे चीज़ की खबर नहीं है। समझ में आया? भले शास्त्र की बात करे। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि **विभाव की तुच्छता...** विभाव सम्यग्दृष्टि को भी होता है परन्तु यहाँ तो विभाव की तुच्छता लगे बिना अन्तर में नहीं जा सकता। समझ में आया? ...भाई! ऐसा सूक्ष्म है। आहा..हा..! अरे प्रभु! अभी एक विचार आया, एक कुत्ती बैठती है न? पेट में बच्चा है। नीम के नीचे सो रही थी। अन्दर बच्चा है। आहा..हा..! अब वह बच्चा दो महीने-ढाई महीने रहे, कुछ खबर नहीं अपने को। मनुष्य को नौ महीना रहे। इसे कुछ थोड़ा रहता होगा। अपने को कुछ खबर नहीं। अब अन्दर में... आहा..हा..! उसे श्वास लेना हो तो, अन्दर यह तो सब... आहा..हा..! देखो! यह देह। इस देह में अन्दर भगवान (भिन्न है।) इस कुत्ती का शरीर है, उससे बच्चे का शरीर भिन्न है और शरीर की उत्पाद-व्यय की पर्याय से भगवान आत्मा की राग-द्वेष की पर्याय भिन्न है। आहा..हा..! और राग-द्वेष की पर्याय है, उससे मैं भिन्न हूँ। परन्तु उसमें ज्ञान को, राग को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय जो उत्पन्न होती है... आहा..हा..! उसे विभाव की तुच्छता लगती नहीं; इसलिए

अन्दर नहीं जा सकता। आहा..हा..! अरे रे! अभी तो बाहर के ये स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धूलधाणी, धमाहा, इनसे कुछ हम हैं और बढ़े हैं और हम ठीक में आये। मूढ़ है बड़ा। पापी है। ऐई! यहाँ तो यह बात है। बापू! आहा..हा..! प्रभु! तू कहाँ है? आहा..हा..!

जिसे अन्दर विभाव की भी तुच्छता न लगे, परद्रव्य की विरक्तता अन्दर भासित न हो। आहा..हा..! **अन्तर में इतनी उत्कण्ठा नहीं है;...** अन्दर में इतनी उत्कण्ठता नहीं कि विभाव की तुच्छता, पर से विरक्तता (भासित हो)। मेरी चीज़ अन्दर भिन्न है, ऐसी उत्कण्ठा जिसे नहीं है। आहा..हा..! **फिर कार्य कहाँ से हो?** आहा..हा..! अरे! शास्त्र का जानपना हुआ, वह भी परलक्ष्यी वस्तु है, वह कहीं धर्म नहीं है। अरे! आहा..हा..! उससे भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसी उत्कण्ठा जिन्हें नहीं, वह कार्य कहाँ से करेगा? भगवान! ऐसी बात है, प्रभु! आहा..हा..!

भगवान स्वरूप अन्दर विराजता है। जिसे परद्रव्य की अभाव करने की विरक्तता नहीं, विभाव की तुच्छता नहीं लगती और शुभाशुभभाव में महिमा (आवे कि) कुछ पुण्य मैंने किया, दया पाली, व्रत किये, ऐसे भाव की महिमा रहे, वह अन्तर में कैसे जा सकता है? जहाँ ध्रुव प्रभु विराजता है। सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप पर्याय के पीछे अन्दर, पर्याय के अन्दर, पर्याय में नहीं, पर्याय में नहीं, पर्याय में ऊपर नहीं, पर्याय से ऊपर नहीं, पर्याय में नहीं, पर्याय में अन्दर है (अर्थात् पर्याय के अन्दर है।) आहा..हा..! ऐसी उत्कण्ठा (लगे) पहले पर से विरक्तता और विभाव की तुच्छता भासित हो तो अन्दर की उत्कण्ठा जगे तो अन्तर का कार्य करने का प्रयास करे। बराबर है? आहा..हा..! **अन्तर में इतनी उत्कण्ठा नहीं है; फिर कार्य कहाँ से हो?**

अन्तर में उत्कण्ठा जागृत हो तो कार्य हुए बिना रहता ही नहीं। मैं परद्रव्य से भिन्न हूँ, विरक्त हूँ। विभाव से भी मेरी चीज़ तो भिन्न है और वर्तमान उत्पाद-व्यय ज्ञानादि की पर्याय से भी मेरी चीज़ तो अन्दर भिन्न है। आहा..हा..! **अन्तर में उत्कण्ठा जागृत हो तो कार्य हुए बिना रहता ही नहीं।** आहा..हा..! बहुत सादी भाषा में तत्त्व आया है। वचनामृत। आहा..हा..! जगत का भाग्य कि ऐसी चीज़ बाहर आयी। गुजराती सादी भाषा। हिन्दी में तो बाद में किया। बोलचाल की भाषा में। आहा..हा..!

स्वयं आलसी हो गया है। कर्म के कारण नहीं। आहा..हा..! **स्वयं आलसी हो गया है,** अनादि से, प्रभु! अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु है, वहाँ जाने का तेरा प्रयत्न नहीं और

पुण्य-पाप करता है, वह आलसी, प्रमादी, मूढ़ है। चौबीस घण्टे में बाईस घण्टे होली जगत को सुलगती है। यह स्त्री-पुत्र, परिवार, कमाना, दुकान। पाप की होली की घाणी में पिलता है। आहा..हा..! उसमें कुछ लड़का पढ़े, विलायत जाये, अमेरिका जाये, उसमें वहाँ से आवे और पाँच-पच्चीस लाख वाले की अच्छी कन्या मिले तो आहा..हा..! हर्ष... हर्ष... हर्ष... पाप का। आहा..हा..! प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? ऐई!

यहाँ कहते हैं कि **स्वयं आलसी हो गया है**। भगवान आनन्द का नाथ अन्दर, प्रभु! उस ओर का पुरुषार्थ करता नहीं और आलसी हुआ है। पुण्य-पाप, शरीर मेरा, स्त्री-पुत्र, परिवार हमारा; यह हमारा देश, हम रक्षण करते हैं - मूढ़ है, पापी है, पाखण्डी अज्ञानी है। आहा..हा..! उसमें भी धन्धा ठीक चले, वर्ष की और महीने की दो-पाँच लाख की आमदनी (होवे) तो आहा..हा..! मैं चौड़ा और गली सकरी हो जाती है इसे। आहा..हा..! करोड़ों रुपये। अभी तो अपने महाजन तो बहुत करोड़पति हो गये। अमेरिका में। क्या कहलाता है? अफ्रीका में। अफ्रीका में महाजन लोग गये थे न? जीवराज की जाति के कितने ही करोड़पति हो गये हैं। यहाँ तो साधारण बैल की पूंछ वह करते थे और खेती करते थे, परन्तु वहाँ गये तो करोड़पति (हो गये)।

मुमुक्षु : परदेश गये तो मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पुण्य था, इसलिए मिला। परदेश गये, इसलिए नहीं। परदेश तो बहुत जाते हैं और मिले वे इसके पास कहाँ आये हैं? वह चीज़ मुझे मिली, ऐसी ममता इसके पास है। आहा..हा..! समझ में आया? अपने मुमुक्षुओं के नैरोबी में ६० घर हैं। सब श्वेताम्बर (थे), अब दिगम्बर हो गये। भगवान की प्रतिमा प्लेन में ले गये। २५-३० वर्ष से चलता है, हमेशा वाँचन चलता है। रिकार्डिंग ले गये हैं। समयसार के ५००० रिकार्डिंग गये हैं, चलते हैं। अभी जेठ शुक्ल ११ को खात मुहूर्त हुआ। पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाने का शिलान्यास हुआ। निवेदन करने आयेंगे कि वहाँ नैरोबी पधारो। सब पैसेवाले। आठ व्यक्ति तो करोड़पति हैं। श्वेताम्बर (से) दिगम्बर हो गये यहाँ का वांचन करते-करते; और दूसरे सब कोई पन्द्रह लाख, कोई दस लाख, कोई बीस लाख, कोई पचास लाख, कोई चालीस लाख, कोई सत्तर लाख, ऐसे हैं।

मुमुक्षु : यह तो आपकी कृपा हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये रामजीभाई हैं न? बैठे हैं। ये रामजीभाई! इनके भानेज हैं।

उन्होंने अफ्रीका शिलान्यास में अभी दो लाख और दो हजार दिये। ये उसके मामा होते हैं। वह इनका भानेज। उसे लड़का-लड़की नहीं है। उनकी बहिन है, माँ है और पति-पत्नी दो। पैसे अच्छे हैं। दो लाख दो हजार मात्र शिलान्यास में दिये, परन्तु वह तो शुभभाव है, कोई धर्म नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ तो (कहते हैं), उसमें जो राग आया, उस राग से भी भगवान अन्दर भिन्न है। आहा..हा..! राग तो ऊपर-ऊपर तैरता है। ध्रुव आनन्दकन्द प्रभु, नित्यानन्द में राग प्रवेश नहीं करता। आहा..हा..! अरे! किसे खबर? पागल की भाँति लोगों की जिन्दगी जाती है। और दुनिया के चतुर। बातें करने बैठें तो मानो बड़े देव के पुत्र उतरे। यह इसका ऐसा होता है और इसका ऐसा होता है। पचास लाख का कारखाना डाला और पाँच लाख पैदा होते हैं। क्या है? धूल है। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **स्वयं आलसी हो गया है**। नाथ! प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर आनन्दकन्द है। उस ओर जाने के तेरे पुरुषार्थ में तू आलसी हो गया है। यह राग, पुण्य-पाप, देह, वाणी, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब में पापी रुक गया है। आहा..!

मुमुक्षु : कुटुम्ब का बड़ा होवे तो सलाह देनी पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सलाह देना तो यह सलाह नहीं देते रामजीभाई! जेल में जाना पड़ा था। यह भाई है न? गँधी। क्या कहे? भाई! तुम्हारा वह था वह? वह व्यक्ति नहीं था? ...नहीं, वह तुम्हारा वह काम करनेवाला। डेबरभाई! ये उस भाई के गुरु थे। वह डेबरभाई आवे, सब देश की सलाह लेने आवे तो सलाह देते थे। जेल में गये थे। धूल में क्या है?

मुमुक्षु : सलाह से क्या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में सलाह दी नहीं। पाप लिया है। सलाह तो चैतन्य का साम्राज्य...। (वह वास्तविक साम्राज्य है) आहा..हा..!

हम जामनगर थे, तब एक बार कहा था। जामनगर है न, वहाँ के राजा की एक करोड़ की आमदनी है। हम जामनगर गये थे। कौन से वर्ष? तब तुम नहीं थे। (संवत्) २०१० के वर्ष। हम उनके बंगले के पास खेत था, वहाँ जंगल जाते थे, तो दरबार को पता पड़ा। दरबार को आँख की पीड़ा थी। रानी बहुत होशियार। करोड़ों रुपये कमावे, करोड़ों रुपये, उसके अतिरिक्त, हों! करोड़ों राज के और वह महिला (रानी) करोड़ों का व्यापार

करती थी, तो उसे खबर पड़ी कि महाराज मेरे बंगले के पास आते हैं, तो उसके लोगों से कहलवाया कि मुझे महाराज के दर्शन करना है। हम जंगल करने जाते थे, तो वहाँ गये। रानी सामने आयी। वह किया था, क्या कहलाता है वह ? रंगोली। दरबार का महल होता है न ? रंगोली की थी। दरबार अन्दर खड़े थे। पधारो ! पधारो, महाराज ! दस मिनिट बात की।

दरबार ! राजन ! यह साम्राज्य नहीं। आहा..हा.. ! यह धूल का साम्राज्य वह राज नहीं। यह भगवान आनन्द का नाथ अन्दर अनन्त गुण का साम्राज्य विराजता है। राजन ! जीवराजा का अनुभव करना, वह साम्राज्य है। यहाँ हमारे क्या ? राजा हो या रंक हो। दस मिनिट बोले। फिर तो व्याख्यान में जाना था। गाँव में व्याख्यान था। सबेरे एकदम सबेरे में (वहाँ गये थे)। एक हजार रुपये दिये। दस मिनिट भाषण किया न, एक हजार ज्ञानखाते में दिये, परन्तु उसे-बेचारे को कहाँ (खबर है) ? राज की व्यवस्था में मर गये लोग। मार डाला। आहा..हा.. !

यहाँ तो परमेश्वर ऐसा कहते हैं, वह यह वाणी है। तेरे आत्मा में जो कुछ शुभ-अशुभभाव होता है, उसके प्रेम में अन्दर जाने में तू **स्वयं आलसी हो गया है**। आहा..हा.. ! जहाँ चीज़ है, वहाँ जाने के लिये प्रमादी हो गया, प्रभु ! आहा..हा.. ! **'करूँगा, करूँगा' कहता है...** है न ? मुझे करना है... मुझे करना है, परन्तु कब करना है ? मर जाये, देह छूट जाये, फिर नरक-निगोद में चला जायेगा। वहाँ कुदरत के नियम में सिफारिश कुछ काम नहीं लगती कि मैं बड़ा हो गया हूँ, पाँच करोड़ मिले, दो करोड़ धर्म में खर्च किये थे। उसमें क्या आया ? समझ में आया ? ऐरण की चोरी और सुई का दान। स्वर्णकार का ऐरण होता है न ? इसी प्रकार बाईस घण्टे पाप, वह ऐरण की चोरी है। उसमें कोई दो, चार करोड़ धर्म के नाम से खर्च किये हों तो वह सुई का दान है। आहा..हा.. ! उसमें कोई धर्म नहीं है, उसमें कोई विशेष पुण्य नहीं है। बाईस घण्टे लवलीन (पाप में), दुकान और धन्धे में बैठा, इसलिए मानो देव का पुत्र हो।

हमारे भी दुकान में ऐसा हुआ था न ? बुआ का पुत्र भागीदार था। दुकान में साथ में थे। उनके नाम से दुकान थी। दुकान में बैठे तो मानो ऐसा... आहा..हा.. ! हम क्या करते हैं ! वर्ष की दो-दो लाख की आमदनी। मैं तो पहले से भगत था न ? मैंने तो उनसे कहा (संवत्) १९६६ के वर्ष की बात है। सुमेरुमलजी ! १९६६। १९७० से पहले, १९६६। कितने वर्ष हुए ? ६८ वर्ष। ६८ वर्ष पहले मैंने कहा, अरे कुंवरजीभाई ! गद्दी पर बैठे थे।

तीस लोग थे। दो दुकानें थीं। एक रसोई और तीस लोग भोजन करते थे और (कहा) कुंवरजीभाई! मुझे ऐसा कि पूरे दिन राग-राग, पाप-पाप... पाप... भाई! मुझे ऐसा लगता है कि अपन बनिया हैं, इसलिए अपन माँस, अण्डा खाते नहीं, इसलिए नरक में तो नहीं जाओगे। ऐई...! ६८ वर्ष पहले की बात है। बीस वर्ष की उम्र थी। (मैंने कहा) तुम मनुष्य होओगे, यह मुझे लगता नहीं। देव में तो तू जायेगा ही नहीं। ढोर में जायेगा, यह बात याद रखना। मेरे सामने कोई बोलता नहीं था। भगत है, सुनो! मैं यहाँ किसी की सिफारिश नहीं करता। पूरे दिन यह धन्धा, पाप-पाप यह कमाया और यह आया और इतने पैसे कमाये और लाखों पैसे-रुपये यहाँ छोड़ जाये। इज्जत बढ़ी, इसलिए लाखों रुपये छोड़ जाये।

मुमुक्षु : दूसरी पीढ़ियाँ टूट गयी और इनकी पीढ़ी आबाद रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आबाद रही, यह तो पुण्य के कारण (आबाद रही)। उसमें कुछ धूल भी नहीं। रखते बराबर बाहर लौकिक लाईन। तिजोरी में १५-२० हजार पड़े ही हों क्योंकि लाखों रुपये वे लोग रखते थे और माँगने आवे तो इनकार न करे। ले जाओ... परन्तु मरकर ढ़ोर में जायेगा, तू याद रखना। ढ़ोर समझे? पशु, ऐसा हुआ। मृत्युकाल में... आहा..हा..! मैंने किया... मैंने किया... ऐसा किया... ऐसा किया... सन्धिपात हो गया। ऐसे दो लाख की आमदनी, दस लाख रुपये रोकड़, उस समय तो रोकड़-रकम थी। अब यह सब। यह तो २१वें वर्ष की बात है। मरकर ढ़ोर में गया। लड़कों ने कहा, महाराज कहते थे।

अरे प्रभु! यह तूने क्या किया? आहा..हा..! अन्दर आलसी होकर दुनिया के पाप के परिणाम और पुण्य के परिणाम किये, परन्तु अन्दर जाने का पुरुषार्थ तो तूने किया नहीं। मालचन्दजी! आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, भगवान!

मुमुक्षु : कितने घण्टे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! इसकी लगन लगना चाहिए। आहा..हा..! शरीर मेरा-मेरा की लगन कितनी लगी है? कि नींद में भी कहे, पोपट! खड़ा हो। कहाँ से आया पोपट? पोपट नाम तो शरीर का-धूल का था। आहा..हा..! तू कहाँ से आया? जिसकी लगन लगी, वह तो स्वप्न में भी मैं हूँ ऐसा (लगता है)। आहा..हा..! खोटे कर्म करता है न? आत्मा को मारकर कहाँ ले जाना है, यह खबर नहीं। ऐसी बात है, प्रभु! यहाँ तो बाहर के पाँच-पचास करोड़ मिले, घर प्रयोग की चीज़ें देखे तो पाँच-पाँच, दस-दस लाख की घरबखरी। घरबखरी समझते हो? फर्नीचर।

मुमुक्षु : इज्जत प्रमाण फर्नीचर रखना पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इज्जत किसकी ? बापू ! इज्जत कहाँ थी ? इज्जत तो अन्दर पड़ी है। धूल की इज्जत ! बड़ा करोड़पति है, अरबपति है। आहा..हा.. ! इन पुरुभाई के साला, दो अरब चालीस करोड़। गोवा.. गोवा, मर गये, उन्हें दो वर्ष हुए ? मर गये, उन्हें डेढ़-दो वर्ष हुआ ? दो वर्ष हुए। उनके साले, सगे साले हैं। गोवा, दो अरब चालीस करोड़ (अर्थात्) ढाई अरब रुपये, मरकर... स्त्री को हो गया था, वह क्या कहलाता है ? हेमरेज। मुम्बई आये। वहाँ दो-चार दिन हुए, फिर एक रात्रि में कहे, मुझे दु:खता है। ६१ वर्ष की उम्र, पैसे पड़े (रहे)। चालीस लाख का बंगला, दस-दस लाख के दो बंगले, ऐसे साठ लाख के तीन बंगले। और मुझे दु:खता है, मुझे दु:खता है, डॉक्टर को बुलाओ। जहाँ डॉक्टर आता है, वहाँ भाईसाहब... जाओ पशु में भटकने। आहा..हा.. ! ऐसी बात है, बापू !

यहाँ कहते हैं कि अरे ! प्रभु ! तू आलसी (हो गया है) स्व के लिये आलसी और पर के लिये पुरुषार्थी। आहा..हा.. ! **स्वयं आलसी हो गया है। 'करूँगा, करूँगा' कहता है परन्तु करता नहीं है।** मैं आत्मा का कार्य करूँगा, सम्यग्दर्शन करूँगा, करूँगा (कहता है) परन्तु करता नहीं। आहा..हा.. ! **कोई तो ऐसे आलसी होते हैं कि सोते हों तो बैठते नहीं हैं, और बैठे हों तो खड़े होने में आलस्य करते हैं;....** धीरे-धीरे उठूँगा... उठूँगा... आहा..हा.. ! **उसी प्रकार उत्कण्ठारहित आलसी जीव...** आहा..हा.. ! भगवान आनन्द का नाथ सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव, परमेश्वर ने जो अन्दर परमात्मस्वरूप देखा, वह आत्मा अन्दर परमात्मस्वरूप विराजमान है। आहा..हा.. ! कैसे जँचे ? दो सिगरेट पीवे तब भाईसाहब को दस्त उतरे, ऐसे अपलक्षणवाले। अब उसे कहना, तू आत्मा... ! सुमेरुमलजी ! दो बीड़ी पीकर यहाँ सुनने आवे। मस्तिष्क ठीक है। आज चाय पानी पिये बिना आया हूँ। मस्तिष्क ठिकाने नहीं। डेढ़ पाव सेर का उकाली पीकर आवे, तब इसका मस्तिष्क ठीक रहे। अपलक्षण तो देखो ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं... आहा..हा.. ! **उत्कण्ठारहित आलसी जीव...** आत्मा आनन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यस्वरूप सिद्धस्वरूपी प्रभु अन्दर है। उस ओर के पुरुषार्थ में आलसी... आहा..हा.. ! और **'कल करूँगा, कल करूँगा' ऐसे मन्दरूप वर्तते हैं;...** यह बाद में करूँगा। जरा लड़के-लड़की जवान हुए हैं, उनका विवाह करके ठिकाने लगाऊँ, आठ

लड़के हैं तो मेरी मौजूदगी में आठ मकान बराबर बनाऊँ और व्यापार करने में मेरा अनुभव दूँ तो व्यापार चले। ऐसा है या नहीं ? भाई! आहा..हा.. !

ऐसे मन्दरूप वर्तते हैं; वहाँ कल की आज नहीं होती... आहा..हा.. ! एक दृष्टान्त है। हमारी दीक्षा के समय एक दृष्टान्त था। बनिये की जाति में भोजन चलता था। वहाँ लिखा था कि आज बनिया जीमे, कल बारोट। बारोट समझे ? भाट होता है न ? वे आये। (उनसे कहा) कि तुम्हारा भोजन है और हमारा ? तुम्हारा कल है। कल आये। क्या है ? आज हमारा और कल तुम्हारा। वह कल आता नहीं और बारोट जीमता नहीं। उस समय लिखा था। बाहर में जब दीक्षा लेनी थी, तब हाथी आया था। ६५ वर्ष पहले की बात है। दीक्षा लेने बाहर निकले, वहाँ हाथी आया। हाथी के हौदे पर दीक्षा ली थी, परन्तु ऊपर चढ़ने के लिये बड़ी नसैनी थी। कपड़े तो हम ऐसे बहुत साधारण पहनते... धोती, जरी की टोपी, ऊँचा पहनते थे। ऊपर चढ़ते हुए जगन्नाथ की धोती जरा फट गयी। बड़ा हाथी था न ? हम चढ़ नहीं सकें। चढ़ नहीं सकें। नसैनी से चढ़ते थे, वहाँ फट गयी। मन में शंका हुई कि यह क्या हुआ ? परन्तु इतना सब बहुत विचार नहीं, किन्तु कुछ हुआ है। बाद में बहुत विचार करते-करते ऐसा लगा कि... आहा..हा.. ! वस्त्र के साथ दीक्षा नहीं होती, इसलिए फट गया। वस्त्रसहित मुनि तीन काल में होते ही नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

एक बार (संवत्) १९७३ का वर्ष, १९७३। पात्र रंगते हैं न, पात्र ? भोजन करने के लिये (रंगते हैं)। तो १५-२०-२५ पात्र रंग करके रखते। और १५-२० प्रयोग करने के हों, तो वह रंगने में प्रतिदिन दो-दो घण्टे लग जाते। दामनगर में थे। मैं तो स्वाध्याय करता था। गुरु वे रंगते थे (मैंने कहा) परन्तु महाराज! यह क्या उपाधि ? दो-दो घण्टे यह पात्र रंगना। यह क्या है ? कहा। तब गुरु ने ऐसा कहा... वैसे भद्र और सरल थे... तो कहा- पात्ररहित साधु ढूँढ़ लाना। समझ में आया ? ढूँढ़ लाया, कहा। पात्ररहित मुनि होते हैं, दूसरे नहीं होते। यह १९७३ के वर्ष की बात है। सुमेरुमलजी! आहा..हा.. ! मुनि को वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता और पात्र का टुकड़ा नहीं होता। ऐसा अन्तर मुनिपना प्रगट हो, उसे मुनि कहते हैं। यह सब वस्त्र, पात्र रखें वे मुनि ही नहीं हैं और माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा.. ! कठिन बात है, भाई! यह तो तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं। वहाँ से यह बात आयी है। समझ में आया ?

वहाँ कल की आज नहीं होती.... कल का आज नहीं होता। उस बारोट की तरह।

बाद में करूँगा.. बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... बाद में-बाद में रह जायेगा और तेरा देह छूट जायेगा। नरक और निगोद में चला जायेगा। आहा..हा..! तेरी बादशाही, पैसा और कुटुम्ब साथ में नहीं आयेगा और तू मर जायेगा, तो वे रोते हैं और मरकर तू पशु में गया इसके लिये नहीं रोते। हमारी सुविधा थी, दुकान में बैठते थे, धन्धा करते थे और हमें पैसा कमाकर देते थे, इसलिए रोते हैं। आहा..हा..! ये सब लुटेरे... लुटेरों की टोली है। नियमसार में है। नियमसार में है न? ये स्त्री, पुत्र, परिवार सब लुटेरों की टोली, सब ठग हैं। आहा..हा..!

अपना स्वरूप का पुरुषार्थ किया नहीं और पर में रुक गया। अकेला आलसी, पापी है। ऐसे करते-करते जीवन पूरा हो गया। आहा..हा..! बस, देह छूट गयी। जाओ भटकने। आहा..हा..! २७७ (बोला पूरा हुआ)।

जैसे किसी को ग्रीष्मऋतु में पर्वत के शिखर पर अधिक ताप और तीव्र तृषा लगी हो, उस समय पानी की एक बूँद की ओर भी उसका लक्ष्य जाता है और वह उसे लेने को दौड़ता है, उसी प्रकार जिस जीव को संसार का ताप लगा हो और सत् की तीव्र पिपासा जागी हो, वह सत् की प्राप्ति के लिये उग्र प्रयत्न करता है। वह आत्मार्थी जीव 'ज्ञान' लक्षण द्वारा ज्ञायक आत्मा की प्रतीति करके अन्तर से उसके अस्तित्व को ख्याल में ले, तो उसे ज्ञायक तत्त्व प्रगट हो॥२७८॥

२७८। **जैसे किसी को ग्रीष्मऋतु में पर्वत के शिखर पर अधिक ताप और तीव्र तृषा लगी हो, उस समय पानी की एक बूँद की ओर भी उसका लक्ष्य जाता है...** पानी की एक बूँद मिले तो ऐसा लगता है कि... आहा..हा..! ऐसी प्यास लगी हो, ऐसी गर्मी हो। पर्वत के शिखर पर। कोई छाया नहीं, वृक्ष नहीं, वहाँ गर्मी ऐसी लगे। ताप और प्यास। उसमें पानी की एक बूँद मिले तो वहाँ लक्ष्य जाता है। है? **और वह उसे लेने को दौड़ता है,...** आहा..हा..!

उसी प्रकार जिस जीव को संसार का ताप लगा हो... यह पूरा संसार दुःखरूप है। आहा..हा..! स्वर्ग और सेठाई, और राजापन, ये सब आताप, आकुलता का कारण है। आहा..हा..! **उसी प्रकार जिस जीव को संसार का ताप लगा हो और सत् की तीव्र**

पिपासा जागी हो,... सत्प्रभु यह अन्दर कौन है ? नित्यानन्द प्रभु, सहजानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा का सर्वज्ञ जिनेश्वर ने देखा वह। आहा..हा..! उसकी प्यास जिसे लगी हो, वह अन्दर में पानी पीने के लिये गये बिना नहीं रहता – अनुभव किये बिना नहीं रहता। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। ऐसा उपदेश किस प्रकार का ? बापू! मार्ग यह है, भाई! दूसरा उपदेश करनेवाले अज्ञान से चाहे जो कहें कि ऐसा किया, इसलिए धर्म हुआ, व्रत किये और धर्म हो गया, दान किया, मन्दिर बनाया, इससे धर्म हो गया; वे सब मूढ़ हैं। वह धर्म वर्म है ही नहीं। लाख मन्दिर बनावे, नहीं। उसमें करोड़ खर्च करे, नहीं! उसमें राग की मन्दता है तो पुण्य है। उस पुण्य का पुरुषार्थ करता है, परन्तु अन्दर में पुरुषार्थ नहीं करता। आहा..हा..! ऐसा है। ऐसा किस प्रकार का उपदेश ? भगवान का उपदेश ऐसा होगा ? भाई! हम तो अभी तक सुनते हैं कि दया (पालन करना), गर्म नहीं खाना, रात्रिभोजन का त्याग करना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालन करना, दूज, पंचमी, अष्टमी, ग्यारस... अरे! सुन न अब। इन सब क्रियाकाण्ड में राग मन्द हो, वह पुण्य है; कोई धर्म नहीं। समझ में आया ? यह कहते हैं।

सत् की प्राप्ति के लिये उग्र प्रयत्न करता है। आहा..हा..! संसार का ताप–दु:ख लगा हो। आहा..हा..! प्रभु कहते हैं कि निगोद के भव में एक श्वासोच्छ्वास में अठारह भव करता है। वहाँ इतने में तो अठारह भव (करे)। निगोद, यह आलू, प्याज,... लहसुन, मूली, कांदा आता है न ? उसके एक टुकड़े में तो असंख्य औदारिकशरीर हैं। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने देखे हैं और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। आहा..हा..! और वे निगोद के जीव एक श्वास में अठारह भव (करते हैं)। आहा..हा..! ऐसे भव, प्रभु! तूने अनन्त बार भव किये। भूल गया। जन्मे तब ऊं..आ.. ऊं.. आ.. करता है न ? वह वहाँ का वहाँ और यहाँ का यहाँ, अब हमारे कुछ नहीं। अरे प्रभु! क्या किया तूने ? आहा..हा..!

यहाँ यह कहते हैं कि **तीव्र पिपासा जागी हो, वह सत् की प्राप्ति के लिये उग्र प्रयत्न करता है।** आहा..हा..! सत् प्रभु आत्मा ध्रुव है, उस ओर का (उग्र प्रयत्न करता है)। संसार का ताप लगा हो और सत् की पिपासा जागृत हुई हो, वह स्वरूप की ओर का पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहता। आहा..हा..! अरे! ऐसी बात है। यहाँ तो दुकान लगायी हो और दो–पाँच लाख की आमदनी महीने में हो जाये... वहाँ हम बढ़ गये। किसमें ? चार गति में भटकने में। आहा..हा..! ऐई.. हिम्मतभाई! यह लोहे का व्यापार और... आहा..हा..! हमने भी व्यापार किया है। पाँच वर्ष दुकान चलायी थी, परन्तु अकेला पाप। मुम्बई, सूरत,

बड़ोदरा माल लेने जाते थे, परन्तु यह १८-१९-२०-२२ वर्ष की उम्र। बस २२ वर्ष में दुकान छोड़ दी। ६६ वर्ष तो दुकान छोड़ दिये हुए, परन्तु वह अकेला पाप। आहा..हा..! अरे रे! प्रभु! तू कहाँ है? आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि **वह आत्मार्थी जीव...** आत्मार्थी जीव क्या करता है? संसार का दु:ख, ताप लगा हो और सत् की जिज्ञासा-प्यास लगी हो... आहा..हा..! मेरा नाथ आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु को मैं किस प्रकार प्राप्त करूँ? आहा..हा..! ऐसी जिसे जिज्ञासा हुई हो। वह **'ज्ञान' लक्षण द्वारा ज्ञायक आत्मा की प्रतीति करके...** देखो, आया। यह ज्ञान जानना.. जानना.. लक्षण द्वारा ज्ञायक आत्मा (की प्रतीति करके)। आहा..हा..! राग लक्षण नहीं, शरीर लक्षण नहीं; ज्ञान लक्षण। जानना लक्षण, जो ज्ञान पर्याय में जानता है न? उस ज्ञान लक्षण द्वारा ज्ञायक। यह मैं त्रिकाली ज्ञायक हूँ। आहा..हा..! ऐसे उत्कण्ठित सत् का अभिलाषी ऐसा पुरुषार्थ करता है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं। अब भाई! हम सुनते हैं सभी धर्म के नाम पर अभी तक, यह बात तो उसमें कोई आयी नहीं। अपवास करो, तपस्या करो, अरे! सुन न अब। तेरे अपवास-वपवास कहाँ थे? यह आहार-पानी छोड़े और राग मन्द होवे तो कदाचित् शुभभाव हो और मान के लिये तपस्या करके, बाहर हमारी इज्जत बढ़े, वह तो अकेला पाप है। तपस्या करके राग मन्द करे और माने कि धर्म किया, तपस्या हो गयी, निर्जरा हो गयी..। धूल में भी नहीं, सुन न! लाख अपवास कर न! परन्तु भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी ओर का आश्रय-दृष्टि नहीं, वह सब पाखण्ड है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : आपने बचा लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है, बापू! मार्ग यह है, भाई! आहा..हा..!

वह आत्मार्थी जीव 'ज्ञान' लक्षण द्वारा... राग नहीं, पर नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म-परद्रव्य नहीं। अपनी पर्याय / अवस्था में जो ज्ञान लक्षण उत्पाद-व्यय... आहा..हा..! उस उत्पाद-व्यय के लक्षण द्वारा ध्रुव में जाता है। लो! यह बात है। इसका नाम सम्यग्दर्शन, इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी है। धर्म की पहली सीढ़ी। आहा..हा..! पश्चात् चारित्र और वह तो सब अलौकिक बातें हैं। बापू! वह अलग बात है।

यहाँ तो प्रथम ज्ञान-जानन लक्षण पर्याय में, जो जानपना है, वह लक्षण किसका है? ज्ञायक का। वह लक्षण ज्ञायक का है, तो लक्षण द्वारा ज्ञायक का लक्ष्य किया और द्रव्य

का अनुभव किया, उसे सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? आहा..हा..! यह लोगों को कठिन लगता है। ऐ... सोनगढ़वाले अकेले निश्चय की बातें करते हैं। सब कहे, प्रभु! तू कहे, तुझे खबर नहीं, भाई! समझ में आया? पूरी दुनिया की खबर नहीं? पूरे हिन्दुस्तान दस-दस हजार मील तीन बार घूमे हैं। दस-दस हजार मील। सब देखा है। दुनिया देखी है। दुकान में बैठे थे, तब सब बहुत देखा था। बापू! यह दूसरी चीज़ है, भाई! आहा..हा..! तेरे व्यापार की पैढ़ी, प्रभु! ज्ञान लक्षण द्वारा अन्दर में जाना, वह तेरी पैढ़ी है। आहा..हा..!

ज्ञान लक्षण द्वारा ज्ञायकवस्तु जो त्रिकाली ध्रुव प्रभु, उसे पकड़ना। आहा..हा..! अरे! यह क्या? **ज्ञायक आत्मा की प्रतीति करके...** क्या आया? अपने ज्ञान लक्षण में ज्ञायक का ज्ञेयरूप से ज्ञान हुआ। जिस पर्याय में पर का ज्ञान करता था, वह पराधीन मिथ्यादृष्टि का मिथ्याज्ञान था। जो ज्ञान की पर्याय अन्तर ज्ञायक में गयी तो उस पर्याय ने ज्ञायक को पकड़ा, तो उसकी ज्ञानपर्याय में यह ज्ञायक है, ऐसा भान हुआ। भान हुआ, उसमें प्रतीति हुई कि यह आत्मा है। अब ऐसी बातें! कितनों ने बेचारों ने जिन्दगी में कभी सुना नहीं होगा। ऐई... पुरुभाई! सब मजदूर। बड़े मजदूर बड़े। दुकान में धन्धे में (बड़े मजदूर हैं)। क्योंकि वे मजदूर हैं, वे तो सबेरे आठ से बारह चार घण्टे (मजदूरी करें), वह भी चार घण्टे में भी पेशाब करने जायें, और कोई जंगल जाये, ऐसा करके एक घण्टा निकाल दे। दोपहर में दो से छह। उसमें बहुत देखे हैं न? और यह बड़े मजदूर। सबेरे छह बजे उठें और रात्रि के आठ बजे तक (मजदूरी करें) ऐई!

हमारे यहाँ दुकान में ऐसा था। दुकान में वे हैं। गाँव में साधु आवें तो सामने देखे नहीं। रात्रि को आठ बजे दुकान बन्द करे, नामा-बामा (हिसाब) लिखकर फिर जाये। दुकान के धन्धे के कारण पूरे दिन सामने देखे नहीं। वे आवे, इसलिए कहे कि ओहो..! रातड़िया श्रावक आया। अन्धेरे में आवे और फिर घण्टे भर सुने। क्या धूल भी... कहनेवाले साधु को धर्म का भान नहीं था। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं भगवान आत्मा सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने जो ज्ञान लक्षण से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा, ऐसा जिसने जाना और जानकर प्रतीति हुई कि यह आत्मा है। ज्ञान में ज्ञेयरूप से भान हुए बिना प्रतीति किसकी? समझ में आया? यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ, परमात्मा का पन्थ है, प्रभु! क्या कहें? अरे! अभी तो धर्म के नाम से सब बड़ी गड़बड़ उठी है। आहा..हा..!

प्रभु तो ऐसा कहते हैं... आहा..हा.. ! **आत्मा की प्रतीति करके अन्तर से उसके अस्तित्व को ख्याल में ले,...** भगवान पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड ध्रुव अस्तित्व / मौजूदगी चीज़ है। उस ज्ञान लक्षण से मौजूदगी चीज़ को ख्याल में ले और (ज्ञान में) लेकर प्रतीति कर, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसा माने कि देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन है। धूल में भी नहीं। समझ में आया? धूल में भी नहीं अर्थात्? पुण्यानुबन्धी पुण्य भी वहाँ तो नहीं। समझ में आया? आहा..हा.. !

भगवान आत्मा देह-देवल में (विराजमान है)। अरे! उत्पाद-व्यय की लक्षण पर्याय के अन्दर में ध्रुव विराजता है, भगवान! अरे! यह क्या होगा? भाई! मार्ग यह है। तुझे भले मिला न हो, उससे कहीं वस्तु दूसरी हो जायेगी? आहा.. ! **अन्तर से उसके अस्तित्व को ख्याल में ले,...** क्या कहते हैं? पूर्णानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड, मौजूद चीज़ ध्रुव है, उसे वर्तमान ज्ञान की पर्याय लक्षण द्वारा पकड़ ले, और उस महा अस्तित्व की प्रतीति कर ले। पर्याय की नहीं, राग की नहीं। वह महा अस्तित्व है, उसकी प्रतीति कर। ऐसी बातें हैं, भाई! आहा..हा.. !

अन्तर से उसके अस्तित्व को ख्याल में ले,... आहा..हा.. ! अन्तर में से जो ज्ञान की वर्तमान लक्षणरूपी पर्याय है, वह लक्षण किसका है? वह ज्ञायक चिदानन्द पूर्णानन्द प्रभु का वह लक्षण है। उस लक्षण से वहाँ लक्ष्य को पकड़ ले और महाअस्तित्व है, उसे ख्याल में ले ले। महाअस्तित्व है। आहा..हा.. ! अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, अनन्त गुण का पिण्ड... आहा..हा.. ! जिसमें अनन्त गुण... आहा..हा.. ! अन्दर ध्रुवरूप से हिलोरें मारते हैं। आहा..हा.. ! ऐसा भगवान आत्मा अन्दर है। आहा..हा.. ! उसे ख्याल में लेकर... **अस्तित्व को ख्याल में ले, तो उसे ज्ञायक तत्त्व प्रगट हो।** पर्याय में ज्ञायक त्रिकाल लक्ष्य में लिया, तो पर्याय में ज्ञायक का भान हुआ, तो पर्याय में आनन्द और ज्ञान की दशा उत्पन्न हुई। इसका नाम समकित, ज्ञान और धर्म है। आहा..हा.. ! यह अधिकार हुआ न?

ज्ञायक तत्त्व प्रगट हो। है तो सही, परन्तु राग के रस में ज्ञायकभगवान का अनादर हो गया था। दया, दान, व्रतादि के विकल्प के राग के प्रेम में, अन्दर प्रभु आनन्दकन्द ध्रुव है, उसका तिरस्कार था। उसे अन्दर ज्ञानलक्षण द्वारा पकड़ा, वहाँ सत्कार हुआ। स्वभाव का स्वीकार हुआ। वह स्वीकार हुआ, यह पर्याय में ज्ञायकपना प्रगट हुआ। ज्ञाता-दृष्टा आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है। ऐसी पर्याय प्रगट हो, इसका नाम धर्म है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-१३, शनिवार, दिनाङ्क ३०-०९-१९७८
वचनामृत-२७९ से २८० प्रवचन-१०५

विचार, मंथन सब विकल्परूप ही है। उससे भिन्न विकल्पातीत एक स्थायी ज्ञायक तत्त्व, सो आत्मा है। उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है; उसके उस पार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है। उसका अस्तिपना ख्याल में आये, 'मैं भिन्न हूँ, यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरन्तर घोटन रहे, वह भी अच्छा है। पुरुषार्थ की उग्रता तथा उस प्रकार का आरम्भ हो तो मार्ग निकलता ही है। पहले विकल्प नहीं टूटता परन्तु पहले पक्का निर्णय आता है॥२७९॥

वचनामृत। २७९वाँ बोल है न? **विचार, मंथन सब विकल्परूप ही है**। क्या कहते हैं? आहा..हा..! अन्दर आत्मा ज्ञायक स्थायी-नित्य प्रभु है। उसमें यह विकल्प उठाना या मन्थन करना कि यह आत्मा है और यह है, ये सब विकल्प हैं। आहा..हा..! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : विकल्प अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग, विकल्प (अर्थात्) राग।

मुमुक्षु : विचार तो ज्ञान की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ रागसहित का विचार लेना। यह विचार पर्याय, ज्ञान की पर्याय नहीं। यह तो विचार करे कि मैं आत्मा हूँ, यह विचार ज्ञान की पर्याय में रागसहित होता है। सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : ज्ञान और चारित्र दो गुण इकट्ठे हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, परन्तु वे साथ में हैं। उस विचार को यहाँ विकल्प में लिया है। कलश-टीका में भी लिया है। ऐसी विचारधारा चले कि मैं ज्ञायक हूँ, ज्ञायक स्थायी

नित्यानन्द प्रभु, वह भी एक राग का अंश रागभाग है। वह आत्मा नहीं। आहा..हा..! शरीर, वाणी, मन से तो पर है। (किसी मुमुक्षु का स्मरण आने पर कहा) वे गये लगते हैं। यात्रा में गये होंगे। दुर्ग से आये थे न, यात्रा में गये होंगे। आहा..हा..! लोगों ने बाहर से ऐसे धर्म मान लिया है।

धर्म, यह चीज़ कोई अपूर्व है। शरीर, वाणी, मन से तो धर्म नहीं होता। कर्म के उदय से तो धर्म नहीं होता। कर्म के उदय की ओर का राग होता है, उससे भी धर्म नहीं होता परन्तु स्व की ओर का... आहा..हा..! यह तो ज्ञानघन, विज्ञानघन, ज्ञायकभाव, स्थायीभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव में मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ – ऐसा राग का विकल्प उठाना, वह भी बन्ध का कारण है। आहा..हा..! ऐसी बात है।

सब विकल्परूप ही है। उससे भिन्न विकल्पातीत... राग की वृत्ति उठती है, उससे प्रभु अन्दर भिन्न है। चैतन्यदल... भाई! यह सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में क्या होता है, यह कहते हैं। समझ में आया? पश्चात् ज्ञानी को रागादि अस्थिरता रहती है परन्तु उस स्वरूप का आश्रय करते-करते वह राग टूट जाता है, परन्तु अभी पहले विकल्पातीत स्वरूप दृष्टि में आया नहीं, तो उसमें स्थिर होना किस प्रकार होगा? आहा..हा..!

राग से भिन्न चैतन्यस्वरूप भगवान के आँगन में-पर्याय में... आहा..हा..! अन्दर प्रवेश किये बिना विकल्प उठाना कि मैं ऐसा हूँ, वैसा हूँ, पूर्ण हूँ, यह सब विकल्प राग है। आहा..हा..! अरे! अनन्त काल हुआ, चौरासी के अवतार में कितना दुःखी था? प्रभु! आहा..! यह मोह की संतति, वह विकल्प तो दुःखरूप है। आहा..हा..! भगवान अन्दर उससे भिन्न, स्थायी, नहीं परिणमनेवाला ध्रुव है। ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? अभी मार्ग फेरफार कर डाला है। लोग मानो यह विचार किया, यह किया, इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ। यह चीज़ नहीं है, बापू! चैतन्य अनादि-अनन्त नित्यानन्द स्थायी स्थिर बिम्ब पड़ा है। वह सब विकल्पों से भिन्न है। आहा..हा..! ज्ञायकतत्त्व, वह आत्मा; वह भिन्न आत्मा है। विकल्प, वह आत्मा नहीं है, वह तो राग है। आहा..हा..!

उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है;... आहा..हा..! अरे! चौरासी के अवतार में से भटकता हुआ (यहाँ पहुँचा)। अकेला चैतन्यदल अन्दर पड़ा है, प्रभु! आहा..हा..! उसे प्राप्त करने के लिये, कहते हैं कि उसके

भेद के विकल्प की भी जिसे आवश्यकता नहीं है। आहा..हा..! '**यह विकल्प तोड़ दूँ,...**' यह भी उसमें नहीं है। '**यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है;...** राग है। आहा..हा..! भगवान अन्दर निर्विकल्प चैतन्यघन प्रभु, ज्ञायक स्थायी... स्थायी.. स्थायी... स्थायी... स्थिर बिम्ब... आहा..हा..! जिनबिम्ब प्रभु है। वीतरागबिम्ब, निर्विकल्पबिम्ब प्रभु है। उसमें मैं विकल्प को तोड़ूँ, यह वृत्ति भी राग है; यह आत्मा नहीं। आहा..हा..! मालचन्दजी! ऐसा मार्ग है, भाई! अरे! कभी किया नहीं। सुनने में आया नहीं कि यह चीज़ कैसे प्राप्त हो? आहा..हा..!

उसके उस पार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है। अन्दर। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प तो स्थूल राग है परन्तु अन्दर में भगवान आत्मा... १४३ गाथा (समयसार) में कहा न? मैं शुद्ध हूँ, अबद्ध हूँ, मुक्त हूँ, परमानन्दस्वरूप हूँ, पूर्ण हूँ – ऐसा विकल्प उठाना, वह भी राग है और उस राग का कार्य मेरा तथा उसका मैं कर्ता, तब तक तो मिथ्यादृष्टि है। ऐसी बात है, भाई! **उसके उस पार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है। उसका अस्तिपना ख्याल में आये,...** क्या कहते हैं? वस्तु भगवान स्थायी अस्तित्व ख्याल में आने पर अनुभव हो जाता है। आहा..हा..!

'मैं भिन्न हूँ, यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरन्तर घोटन रहे,... घोलन। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... नित्यानन्द प्रभु अविनाशी स्वरूप भगवान की ओर का मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा घोलन, हों! विकल्प नहीं। आहा..हा..! घोलन का अर्थ उस ओर का झुकाव। ज्ञान की पर्याय है, परन्तु वह पर्याय अन्दर में जाने को एकाग्र होती है। मैं यह हूँ, मैं यह हूँ। अन्दर प्रवेश करती है। आहा..हा..! **उसका अस्तिपना...** अस्तिपना, मौजूदगी स्थायी प्रभु, ख्याल में आता है और फिर अन्दर में ख्याल आया, उसमें घोटन हुआ। आहा..हा..! **ऐसा निरन्तर घोटन रहे, वह भी अच्छा है।** आहा..हा..! वह राग नहीं। इस घोलन का अर्थ उस ओर ढलना। राग से हटकर स्वभाव की ओर ढलना, वह घोलन है। सूक्ष्म बात है, भाई! भाषा में कितनी आवे। आहा..हा..!

पुरुषार्थ की उग्रता... यह वीर्य जो पुरुषार्थ पर्याय में है, उसकी उग्रता स्वभाव सन्मुख करना। आहा..हा..! विकल्प नहीं। ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : विकल्प तो बड़ा दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग विकार है, दोष है। आहा..हा..! भगवान तो अन्दर पूर्णानन्द,

अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द-दल है, स्थायी पदार्थ है। आहा..हा..! स्थिर है, धीर है, ध्रुव है, नित्य है, बिम्ब है। आहा..हा..!

पुरुषार्थ की उग्रता तथा उस प्रकार का आरम्भ... उस प्रकार की शुरुआत हो, ऐसा कहते हैं। अन्तर में ज्ञायक के ओर की शुरुआत हो... आहा..हा..! **तो मार्ग निकलता ही है।** तो अन्दर से मार्ग / सम्यग्दर्शन होता ही है। आहा..हा..! ऐसी बात है। **पहले विकल्प नहीं टूटता...** पहले विकल्प (नहीं टूटता)। विकल्प में है तो राग, और साथ में ज्ञान की पर्याय है, उसमें पहले ऐसा निर्णय हो। सर्वज्ञ ने जो आत्मा कहा, ऐसा विकल्प से निर्णय करे। अभी वह वस्तु नहीं है, परन्तु पहले विकल्प से निर्णय करे कि यह पूर्णानन्द प्रभु मैं हूँ, राग मैं नहीं, एक समय की पर्याय भी मैं नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन के पहले की पर्याय का पुरुषार्थ ऐसा होना चाहिए, ऐसा कहते हैं।

मैं एक सकल निरावरण, अखण्ड एक अविनश्वर परमपारिणामिकभाव ऐसा जो अपना लक्षण, ऐसा निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ - ऐसा ज्ञान में आना चाहिए। यह बात है, भाई! पश्चात् ज्ञानी को राग की अस्थिरता होती है, परन्तु यहाँ तो पहले राग से भिन्न होकर अभिन्न अखण्डानन्द मैं हूँ, ऐसा अनुभव करना, वह प्रथम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पक्का निर्णय होने के बाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, पक्का निर्णय, परन्तु उससे... कहते हैं, पहले वह आता है। १३ वीं गाथा में आता है। नय, निक्षेप, प्रमाण से भगवान ने जो आत्मा कहा, वैसा निर्णय विकल्पसहित आता है, क्योंकि जहाँ तक यह वस्तु है, पर्याय से भी भिन्न है और यह विचार करने का विकल्प है, इससे भी भिन्न है, ऐसा अन्दर निर्णय विकल्प के आँगन में प्रवेश किये बिना, आँगन में रहकर ऐसा विकल्प का निर्णय पहले पक्का होता है, वह भी सम्यग्दर्शन नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लावे नहीं। यह तो होता है। आहा..हा..! मार्ग, बापू! अनादि से दुःखी है अरे! निगोद के, नरक के दुःख, भाई! एक यह कुत्ती दिखती है, पेट में बच्चा

पड़ा है, इसे कितना दु:ख है। आहा..हा..! ऐसे अनन्त अवतार किये, प्रभु! वह मिथ्यात्व के कारण से है। वह मिथ्यात्व महापाप है। आहा..हा..! पैसा मेरा, स्त्री मेरी, कुटुम्ब मेरा, कर्म मेरा, शरीर मेरा, (यह) महामिथ्यात्वभाव है। वह तो एक ओर रहा, परन्तु मैं ऐसा, ऐसा हूँ, ऐसा हूँ – ऐसा विकल्प आया, वह भी मुझे मोक्ष के मार्ग में मदद करेगा... आहा..हा..! यह भी मिथ्यात्वभाव है। भगवान तो राग से भिन्न स्वत: स्वयं चीज़ अन्दर पड़ी है। आहा..हा..!

पहले विकल्प नहीं टूटता... पहले विकल्प आता तो है। सर्वज्ञ ने कहा, वैसा ज्ञायकभाव अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है और उसकी पर्यायें भी अनन्त हैं, ऐसा विकल्प से, रागमिश्रित विचारधारा से (निर्णय करे)। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह तो एकताबुद्धिवाली विचारधारा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (स्वरूप में) एकताबुद्धि करने के लिये है, परन्तु है विकल्प। ऐसा पहले आये बिना रहता नहीं, परन्तु फिर भी वह सम्यग्दर्शन नहीं है। उसे छोड़कर अन्तर में जाना। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। आनन्दघनजी में कहीं आता है। दरबार में प्रवेश किये बिना बाहर... ऐसी भाषा कुछ है। भूल गये हैं। बहुत बार कहा है। गाना अन्दर गाना। गाना अर्थात् विकल्प से यह पूर्णानन्द प्रभु हूँ, अपरिमित शक्ति का सागर हूँ, ऐसा विकल्प से (निर्णय करे)। आत्मा के ज्ञान की पर्याय के दरवाजे पर ऐसे विकल्प आते हैं। पश्चात् उन्हें तोड़कर स्वरूप में प्रवेश करना। प्रवेश का अर्थ पकड़ना। ज्ञान की पर्याय से ज्ञायक को पकड़ना, यह अनुभव और सम्यग्दर्शन है। आहा..हा..! ऐसी बात है। ज्ञानी को भी पश्चात् रागादि अस्थिरता है, परन्तु एकत्व टूट गया है। समझ में आया? धर्मी को एकता टूट गयी है; राग-द्वेष के परिणाम—क्रोध, मान, माया के परिणाम / भाव ज्ञानी को ज्ञात होते हैं कि ये हैं। समझ में आया? परन्तु मेरी चीज़ में नहीं। वे पर्याय में होते हैं। उन्हें मैं जानता हूँ, और पश्चात् मेरा आश्रय करके मैं उनका नाश करता हूँ। आहा..हा..! समझ में आया?

अरे! देखो न! बीमार पड़े, रोग हो, आहा..हा..! किसी का लेख आया है। कि गला सूखता है, गला दु:खता है। समाचार पत्र में आया था। गला दु:खता है। पानी नीचे नहीं उतरता। आहा..हा..! साधु का आया है। दिगम्बर साधु। बाह्य नग्न। गले में पानी उतरता नहीं। चिल्लाने लगे। उसमें गले का कैंसर हो। वह पीड़ा.. वह पीड़ा.. अभी उसे हुआ या नहीं? फतेपुर बाबूभाई के काकाजी बैठे थे, कुछ नहीं था। एकदम यहाँ काला दिखायी

दिया। इतने में खून घूमना बन्द हो गया। काला दाग दिखायी दिया। जहाँ देखते हैं वहाँ तो आधे घण्टे में ये सब सड़ गया और दाह.. दाह.. ऐसे देखो तो शीतल लगे और पीड़ा-पीड़ा... यह जगत की चीज़ तो देख, प्रभु! दो घण्टे में तो इतना सड़ गया। डॉक्टर के पास गये। इसे काटना पड़ेगा। आहा..हा..! ऐसी तो अनन्त बार नरक में (पीड़ा सहन की है)। आहा..हा..! परमाधामी तेजाब छिड़कते हैं ऐसे... आहा..हा..! और इसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायें और एकत्रित हो जायें, क्योंकि आयुष्य है न? इकट्ठे हो जायें। आहा..हा..! यह सब अज्ञान के दु:ख हैं। इनसे छूटना हो तो प्रभु! यह उपाय है। आहा..हा..!

पहले पक्का निर्णय आता है। पक्का अर्थात् - पक्का अर्थात् सम्यग्दर्शन का निर्णय नहीं। विकल्प से। ज्ञान की पर्याय विकल्पवाली है। उस ज्ञान में निर्णय हुआ। विकल्प तो राग है, परन्तु रागसहित जो ज्ञान की पर्याय है, उसमें यह अखण्डानन्द, पूर्णानन्द प्रभु मैं हूँ। मैं ही परमेश्वर हूँ। मुझमें और परमेश्वर में कोई अन्तर नहीं है, ऐसे अनन्त गुण... 'कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ।' आहा..हा..! 'अपने रस सों भरयो अनादि टेक हूँ, मोहकर्म मम नाहिं नाहिं भ्रम कूप है।' भ्रम कूप- भ्रम का कुआँ है। राग मैं हूँ, यह तो भ्रम का कुआँ है। गहरा कुआँ। 'शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।' आहा..हा..! यह बातों से कुछ जँचे, ऐसा नहीं है, भाई! आहा..हा..! पहले कहते हैं, ऐसा (निर्णय) तो (करे)।

भगवान सर्वज्ञ जिनेश्वर ने कहा और दूसरे अज्ञानी आत्मा कहते हैं, उनसे भिन्न प्रकार की वस्तु भगवान ने कही, ऐसा पहले ज्ञान की विचारधारा में निर्णय आता है कि यह चीज़ दूसरी है। यह असंख्य प्रदेशी है, सर्व व्यापक नहीं, अपने में ही व्यापक है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर... १४४ गाथा में कहा है—आगम अनुसार पहले निर्णय करना कि आत्मा तो ज्ञायकस्वरूप है। आगम अनुसार वहाँ लिया है न? वह विकल्प है। आहा..हा..! पश्चात् मतिज्ञान का जो पर की ओर का झुकाव है, उस ज्ञान को पर की ओर के झुकाव से (हटाकर) पर्याय को मर्यादा में लाना। मर्यादा में लाना, पश्चात् अन्दर में जाना। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। समयसार १४४ गाथा में है। आहा..हा..! आनन्दघन कहे 'रटन करूँ गुणधामा।' यह आता है।

मुमुक्षु : आनन्दघन प्रभु के घर द्वारे...

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्दघन प्रभु के घर द्वारे... बहुत वर्ष पहले पढ़ा था। 'आनन्दघन

प्रभु के घर द्वारे, रटन करूँ गुणधामा, अवधु रे... हीनपंथ का करे निवेणा, जोगी रे गुरु मेरा।' आहा..हा.. !

मुमुक्षु : श्वेताम्बर का आधार।

पूज्य गुरुदेवश्री : ......जरा पढ़ा है। यह लिया है। उसने यह दिगम्बर का भी पढ़ा हुआ है। देवचन्दजी ने थोड़ा लिया है। यहाँ का समयसार आदि पढ़ा है। उसमें से धारणारूप से बात ली है। आहा..हा.. ! मेरा नाथ पूर्णानन्द प्रभु, पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु के आँगन में, उसकी पर्याय के विचार में रागसहित में, उसके गुण गा... गुण गा... 'रटन करूँ गुणधामा।' मेरे गुण के नाथ का वहाँ रटन पर्याय में विकल्पसहित करता हूँ। पश्चात् अन्दर प्रविष्ट हो जाऊँगा। आहा..हा.. ! अब ऐसी बातें। लोगों को यह व्यवहार के रसिया अपवास किये, यह किया। समाचार-पत्र में देखो तो बस इतने अपवास किये, इसने ऐसा किया, इसने ऐसा किया, इसने रस त्याग किया। परन्तु अब वह चीज़... पहले सम्यग्दर्शन बिना तो तेरे व्रत और तप ये सब बालव्रत और बालतप हैं। आहा..हा.. ! कठिन लगे प्रभु ! तुझे क्या हो ? ऐसी क्रिया करता हो, उसे ऐसा कहे कि यह धर्म नहीं है और इससे धर्म नहीं होगा और धर्म का कारण भी नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मिथ्यात्व। मिथ्यात्व की पुष्टि करता है, प्रभु ! आहा..हा.. ! यह महीने, छह-छह महीने के अपवास करे, लुक्खा करे आहार, पानी या दूसरा कुछ नहीं ले। वह भले हो। वह क्या है ? वह कोई चीज़ नहीं। आहा..हा.. ! यह तो कोई विकल्प की मन्दता की हो तो वह राग है। वह तो बन्ध का कारण है। भगवान अबन्धस्वरूप अन्दर पड़ा है, उसकी दृष्टि जब तक न हो, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया ? आहा..हा.. ! यह तो अपने (समयसार गाथा) ३१, ३२, ३३ में आ गया न ? आहा..हा.. ! और सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें भी राग है। उसमें ज्ञानी को राग का दुःख लगता है। पहले दुःख और आत्मा आनन्द एक है, ऐसा मानता था। वह मान्यता टूट गयी परन्तु अभी राग रहा, वह दुःख है। आहा..हा.. ! ज्ञानी को भी पर्याय में दुःख है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : साधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक है तो भी अभी बाधकपना-राग है। ज्ञानी जानता है कि

यह राग है, आग है, दुःख है परन्तु मेरी कमजोरी से अन्दर में आता है। आहा..हा..! समझ में आया? मैं मेरे पूर्णानन्द के नाथ का आश्रय लेकर, मेरी पर्याय में मुझे दुःख होता है, ऐसा ज्ञानी जानता है। मैं आश्रय लेकर तोड़ डालूँगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहा..हा..! २७९ (बोल पूरा हुआ)।

वास्तव में जिसे स्वभाव रुचे, अन्तर की जागृति हो, उसे बाहर आना सुहाता ही नहीं। स्वभाव शान्ति एवं निवृत्तिरूप है, शुभाशुभ विभावभावों में आकुलता और प्रवृत्ति है; उन दोनों का मेल ही नहीं बैठता॥२८०॥

२८०। **वास्तव में जिसे स्वभाव रुचे,...** वास्तव में जिसे भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु रुचे। पहले रुचि पलट जाये। वह राग और पुण्य और पुण्य के फल की रुचि है, वह मिथ्यात्वभाव, पापभाव, झूठ भाव, पाखण्ड भाव है। समझ में आया? पहले **वास्तव में जिसे स्वभाव रुचे,...** वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा, जिनबिम्ब ही प्रभु आत्मा है। वह जिसे रुचे... आहा..हा..! **अन्तर की जागृति हो,...** अन्तर स्वभाव की जागृति अन्दर में हो। **उसे बाहर आना सुहाता ही नहीं।** आहा..हा..! परन्तु बाहर आता है, तब राग है; इसलिए दुःख लगता है। आहा..हा..! सुहाता नहीं।

अपना आत्मा आनन्द का धाम प्रभु, उसकी रुचि हुई... आहा..हा..! और जागृति हुई। जागृत त्रिकाली स्वभाव की जागृति हुई। जागृत त्रिकाल स्वभाव भगवान जागृत स्वरूप ही है। आहा..हा..! पर्याय में जागृति हुई... आहा..हा..! **उसे बाहर आना सुहाता ही नहीं।** आहा..हा..! चाहे तो शुभराग हो, परन्तु बाहर आना, वह दुःखरूप है। आता है। आहा..हा..!

'चाखे रस क्युं करि छूटे? सूरिजन सूरिजन टोली...' निर्विकल्प आनन्द का रस जिसने चखा, उसे राग में आना रुचता नहीं। आहा..हा..! 'चाखे रस क्युं करि छूटे? सूरिजन सूरिजन...' देव का झुण्ड आकर उसे हिलावे कि नहीं, नहीं तुझे अन्दर रहना ठीक नहीं, बाहर आओ। भगवान को मानो, देव-गुरु की श्रद्धा करो, ऐसा कहे परन्तु वह अन्दर रुचे नहीं। आहा..हा..! आता है। ज्ञानी अन्दर स्थिर न रह सके तो उसे राग तो आता है। दुःख होता है। जानता है, मुझे दुःख है। मैं आनन्दमूर्ति प्रभु, मेरी पर्याय में थोड़ा आनन्द आया, परन्तु उस आनन्द के साथ दुःख-राग आया, उसे मिलान करता है। आहा..हा..! मुझे आनन्द में से निकलना सुहाता नहीं। आहा..हा..!

स्वभाव शान्ति एवं निवृत्तिरूप है,... है ? भगवान शान्त... शान्त... शान्त है। शुभराग की वृत्ति है, वह तो अशान्त और दु:ख है। आहा..हा.. ! णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, ऐसा जो विकल्प है... आहा..हा.. ! वह दु:ख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सबेरे बोले, वह तो शुभराग है। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि को भी शुभराग आता है, वह दु:खरूप लगता है। बाहर निकलना सुहाता नहीं। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : राग दु:ख लगे, वह अलग बात है और ज्ञान अलग बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में ज्ञात होता है कि यह राग दु:ख है। मेरी पर्याय में मेरे कारण से दु:ख है। आहा..हा.. ! मैंने आनन्द के नाथ को जाना, तो उसकी अपेक्षा से पर्याय में थोड़ा आनन्द तो आया, परन्तु पूर्णानन्द के नाथ में पूर्णानन्द की पर्याय नहीं हुई, तो मुझमें रागभाव आता है, उसे ज्ञानी दु:ख जानता है। आहा..हा.. ! मुनि को आवश्यक करना, वह राग आता है, परन्तु रुचता नहीं। आहा..हा.. ! ऐसा मार्ग। आहा..हा.. !

स्वभाव शान्ति एवं निवृत्तिरूप है,... यह राग आता है, वह तो विभाव, अशान्ति और प्रवृत्तिस्वरूप है। समझ में आया ? इतने पहुँचना और सुनने को मिले नहीं। वह क्या चीज़ है ? आहा..हा.. ! ऐसे के ऐसे जिन्दगी एक तो व्यापार-धन्धे में चले, निवृत्ति ले तो सुनने का ऐसा विपरीत मिले इसे कि यह करो.. यह करो... यह करो... अपवास करो, तपस्या करो, भगवान की भक्ति करो, दान करो। आहा..हा.. ! यह कोई है, आज आये थे। सुरेन्द्रनगर में कोई है। लालभाई के मित्र थे। गये लगते हैं। बहुत पैसे खर्च किये हैं, कहते हैं। कहाँ के हैं ? स्थानकवासी ? स्थानकवासी हैं। चन्दुभाई कहते थे। अपने को कुछ खबर नहीं। मिले अवश्य हैं। २०-२५ लाख रुपये खर्च किये हैं। उसमें क्या भला हुआ ? आहा..हा.. !

मुमुक्षु : वहाँ नहीं खर्चे परन्तु यहाँ खर्च करे तो.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ खर्च करे तो क्या ? जड़ है, राग है और उसमें दूसरे धर्म धुरन्धर की उपाधि दे दे। अहो ! पच्चीस लाख खर्च किये। दो करोड़ की पूँजी में पच्चीस लाख। धूल में अब। दो करोड़ रुपये कहाँ तेरी चीज़ है ? वे तो जड़ हैं। जड़ का स्वामी होकर जड़ मैंने दिया ऐसा माने, वह तो मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : ....जड़बुद्धि

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व है... मिथ्यात्व है। पैसा मैंने दिया (यह मान्यता मिथ्यात्व है) क्योंकि पैसा तो जड़ चीज़ है, अजीव है, पुद्गल-मिट्टी-धूल है। मेरे थे तो मैंने दिये, यह मिथ्यात्व भ्रम है। सुमेरुमलजी! आहा..हा..! और मेरे नहीं, ऐसा मानकर देने का भाव है, वह जरा शुभराग है, वह भी जहर है, राग है, दु:ख है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : जहर है, उसके बदले हेय है, ऐसा कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर है, ऐसा कहो, दु:ख कहो, हेय कहो। परन्तु हेय क्यों कहा? दु:ख है इसलिए हेय है न? आनन्द है तो हेय है? आहा..हा..! क्या हो? यह तो कल रात्रि में बहुत कहा था। परिहार आदि, प्रतिक्रमण, परिहार, निन्दा, दोष किये उनकी निन्दा, वह सब शुभभाव जहर है। आहा..हा..! विषकुम्भ है। मुनि को, आत्मज्ञानी को, अनुभवियों को... आहा..हा..! मोक्ष अधिकार में है। रात्रि को लिया था। सबेरे थोड़ी बात की थी। तब भाई को याद किया था। कहा, भाई थे। प्रतिमा आदि के दर्शन से अशुभभाव हटाना, वह भी शुभभाव है, वह जहर है। ऐसी बातें।

मुमुक्षु : अमृत की अपेक्षा से तो जहर ही कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर ही है। अमृतस्वरूप प्रभु। शान्त कहा न? शान्त... शान्त... निवृत्त। राग से निवृत्तस्वरूप भिन्न प्रभु है। आहा..हा..! उसमें राग की वृत्ति उत्पन्न होती है, वह ज्ञानी को आनन्द के स्वाद में सुहाती नहीं है। आहा..हा..! उसमें सुखबुद्धि नहीं होती। कमजोरी के कारण ज्ञानी को भी ऐसा भाव आता है, परन्तु सुहाता नहीं। आहा..हा..! **स्वभाव शान्ति एवं निवृत्तिरूप है, शुभाशुभ विभावभावों में...** लो, आया। शुभ-अशुभ जो राग है; दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह सब शुभभाव और अशुभ (राग), वह विभावभाव है, **आकुलता...** है। है? आहा..हा..! ज्ञानी को भी विभावभाव उत्पन्न होता है, वह आकुलता है। आहा..हा..! भगवान की भक्ति णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं (करे) वह विकल्प है, वह शुभभाव है, आकुलता है। आहा..हा..! शास्त्र सुनने का भाव गणधर को भी आता है, परन्तु वह आकुलता है। अरे! ऐसी बात। कहने का भाव भी सन्तों को आता है। आहा..हा..! मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है न? धर्म लोभी देखकर मुनि धर्मी धर्मात्मा को भी शुभराग आता है। परन्तु है तो दु:खरूप, आकुलता है। आहा..हा..!

अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु जहाँ अन्दर रुचि में आया, पोषण हुआ, वहाँ राग की रुचि कैसे रहे? आहा..हा..! राग आता है परन्तु रुचे कैसे? सुहाता नहीं है। आहा..हा..!

ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें हैं, बापू! आहा..हा..! भव का अभाव करने की रुचि और दृष्टि और स्थिरता, वह कोई अलौकिक है। आहा..हा..! आठ वर्ष का बालक भी अनुभव करे तो केवलज्ञान हो जाये। आत्मा कहाँ बालक है? वह तो स्थायी चिद् आनन्दकन्द प्रभु अन्दर है। आहा..हा..!

यह कहते हैं कि **शुभाशुभ विभावभावों...** लो। आहा..हा..! ज्ञानी को भी आता है। अशुभभाव भी आता है। समकिती, ज्ञानी को भोग का भाव आता है। चारित्र नहीं तो पंचम गुणस्थान तक छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं, भोग का राग आता है, परन्तु आकुलता है, दु:ख है। आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्द के दल में से बाहर निकलना, वह विकल्प है। शुभ हो या अशुभ हो (विकल्प है)। समकित दृष्टि और पंचम गुणस्थान के सच्चे श्रावक हैं, उन्हें भी अशुभभाव तो आता है। आहा..हा..! परन्तु काले नाग को जैसे देखे और दु:ख लगे, वैसा दु:ख उन्हें लगता है। तथापि क्यों करते हैं? अपनी कमजोरी के कारण आये बिना नहीं रहता। आहा..हा..! समझ में आया?

भरतेशवैभव में तो ऐसा लिया है। भरतेशवैभव नामक पुस्तक है। भरत स्वयं सम्यग्दृष्टि ज्ञानी थे। उनकी छियानवें हजार स्त्रियाँ... आहा..हा..! परन्तु वह भोग का विकल्प आता था तो भोग की क्रिया में दिखाई देते थे परन्तु जहाँ निवृत्त हुए और नीचे उतरकर ध्यान में बैठते हैं, वहाँ निर्विकल्प ध्यान में उतर जाते थे। समझ में आया? आहा..हा..! यह शुभाशुभभाव ज्ञानी को भी आकुलता, दु:ख है। आहा..हा..! मुनि को भी शुभभाव आता है, वह दु:ख है। सम्यग्दृष्टि छोटे गुणस्थान में तो अशुभभाव भी आता है और शुभभाव भी आता है परन्तु हैं दोनों आकुलता, दु:ख। ज्ञानी उसे दु:ख जानता है। दु:ख का वेदन है। आहा..हा..!

भाई ने भी ऐसा लिखा है न? सोगानी। भट्टी लगता है। ज्ञानी को राग आता है, वह उसे भट्टी लगता है। आहा..हा..! क्योंकि 'राग आग दाह दहै सदा।' यह शुभ-अशुभराग दोनों आग / अग्नि है। भगवान तो अकषायस्वरूप शान्त है। आहा..हा..! यह अशुभभाव भी चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) आता है। परन्तु वह दु:खरूप लगता है और जैसे काले नाग को देखे और त्रास हो, वैसे अशुभभाव का त्रास लगता है। आहा! अरे! मैं कहाँ आ गया? आहा..हा..! ऐसे शुभभाव, यह गजब बात आयी है। वह शुभभाव भी आकुलता है, राग है न? विकल्प है न? कषाय का अंश है न? आहा..हा..!

शुभाशुभ विभावभावों में आकुलता और प्रवृत्ति है;... वस्तु शान्त और निवृत्ति है, जबकि शुभाशुभभाव अशान्त अर्थात् आकुलता और प्रवृत्ति है। पर की प्रवृत्ति नहीं। शरीर, वाणी, मन की तो कर नहीं सकता। यह तो उसमें हो सकती है। अपने आनन्दस्वरूप का अनुभव होने पर भी... आहा..हा..! ज्ञानी का अनुभव ज्ञान में होने पर भी ज्ञानी अन्तर में रह नहीं सकते, तो बाहर शुभ-अशुभभाव-राग में आते हैं तो उसे आकुलतारूप जानते हैं और इस मेरी निवृत्ति से यह प्रवृत्ति हुई। आहा..हा..! ऐसा अब कहाँ? अब लोगों ने ऐसा सुना न हो, उन्हें लगे, यह क्या कहते हैं? पागल जैसी बात लगे। सत्य बात, प्रभु! अनादि का पागल है न? राग और पुण्य, पाप ये मेरे हैं और मुझे इनसे सुखबुद्धि, पागल है। मिथ्यादृष्टि पागल है, पागल है।

मुमुक्षु : पर्याय में पागल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में पागल की बात है। द्रव्य तो है, वह है। द्रव्य तो त्रिकाली है। द्रव्य में तो पागलपना तीनों काल कभी आता नहीं। पर्याय में चाहे जितना पागलपन आवे... मैं आत्मा नहीं, ऐसा पर्याय माने, तो भी त्रिकाली शुद्ध है, उसमें वह प्रवेश नहीं करती। भगवान जो त्रिकाली शुद्ध चिद्घन आत्मा है, उसमें तो कभी आवरण नहीं आता, कभी अशुद्धता नहीं होती। आहा..हा..! आहा..हा..! उसमें कभी अपूर्णता नहीं होती। 'पूर्ण मिदम्' आहा..हा..! यह निर्णय करती है पर्याय। परन्तु किसका? मैं पूर्ण हूँ। समझ में आया? ऐसी बातें लोगों को (कठिन लगती है)। संसार के रसिया, रसवाले, उन्हें यह आत्मा का रस चढ़ाना... बहुत कठिन लगता है, भाई!

तेरी चीज़ निवृत्त, शान्तस्वरूप है न? आहा..हा..! ऐसा अनुभव होने पर भी अन्तर में न रह सके तो अशुभ वंचनार्थ शुभ आता है और कमजोरी से अशुभभाव भी आते हैं, परन्तु वे दोनों आकुलता हैं। आहा..हा..! कितना अन्तर है? सम्यग्ज्ञानी को शुभ-अशुभभाव आता है, दुःख लगता है परन्तु जब भविष्य का आयुष्य बँधे, वह तो जब शुभभाव हो, तब ही बँधता है। अशुभभाव में उसे आयुष्य का बन्ध नहीं होता। ज्ञानावरणीय आदि बन्ध होगा। समझ में आया? धर्मी को शुभभाव होता है, उसमें ज्ञानावरणीय, अरे! चारित्रमोहनीय का बन्ध तो होता है परन्तु अशुभभाव के काल में, भविष्य में स्वर्ग जाना है तो शुभभाव होगा, तब आयुष्य बँधेगी। इतना निर्मल ज्ञान, सम्यग्दर्शन का जोर है। समझ में आया? आहा..हा..! जब वह अशुभभाव की प्रवृत्ति में है, तब ज्ञानी को अशुभभाव से बन्धन तो

होता है, परन्तु अशुभभाव के काल में ज्ञानी सम्यग्दृष्टि मनुष्य को जब शुभभाव आयेगा, तब स्वर्ग का आयुष्य बँधेगा। अशुभभाव में आयुष्य नहीं बँधेगा।

मुमुक्षु : दुःखभाव इतना अच्छा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा किसने कहा ? यह तो उसकी स्थिति ऊँची है, इस कारण अशुभभाव होने पर भी आयुष्य का बन्ध नहीं होगा। ज्ञानी को दूसरे बन्ध होते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि सातों ही कर्मों का बन्ध ज्ञानी को है। आहा..हा.. ! परन्तु आयुष्य का बन्ध तो अशुभभाव के काल में नहीं होता। भगवान अन्दर दृष्टि में तैरता है न ! मालचन्दजी ! ऐसी बातें हैं, भाई !

नारकी में भी सम्यग्दृष्टि है। उसे भी मारफाड़ होती हो तो अन्दर राग का दुःख तो है। ज्ञानी समकिती को। अभी पहले नरक में श्रेणिक राजा हैं। क्षायिक समकिती हैं, आत्मअनुभवी हैं, परन्तु जितने प्रतिकूल संयोग आते हैं, उनमें लक्ष्य जाता है तो अन्दर दुःख होता है। ज्ञानी को भी दुःख होता है। नरक में है, पहले नरक में है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है। ढाई हजार वर्ष हुए हैं। आहा..हा.. ! उस क्षेत्र की वेदना ऐसी है। आहा..हा.. ! वहाँ ऐसी (वैक्रियिक रचना) कृत्रिम वृक्ष है कि जिसका पत्र गिरे तो शरीर के टुकड़े हो जायें। आहा..हा.. ! समकिती को भी शरीर के निमित्त में ऐसी वेदना, राग का भाव आता है। जितना आसक्ति / राग शरीर में है, उतनी प्रतिकूलता में समकिती को भी उतना द्वेष आता है। समझ में आया ?

यह पंचाध्यायी में कहा है। पंचाध्यायी में कहा है। (संवत्) १९८५ के वर्ष में हमारे नारणभाई ने हमारे पास दीक्षा ली थी न ? १९८५ की बात है। कितने वर्ष हुए ? ४९ वर्ष पहले की बात है। वहाँ लाठी में १९८५ के वर्ष में लोंच करते थे। कहा कि कैसा लगता है ? भाई ! तब ऐसा बोले कि जितना अभी राग है, उतना यहाँ द्वेष आता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जितना शरीर के प्रति राग है, इतना खेंचने में जरा द्वेष-दुःख होता है। आहा..हा.. ! उस समय, १९८५ के वर्ष की बात है। ४९ वर्ष पहले की (बात है)। आहा..हा.. !

पंचाध्यायी में ऐसा कहते हैं कि ज्ञानी को जितनी पर के प्रति आसक्ति है, उतना

उस प्रतिकूलता के काल में उसे द्वेष होगा। ज्ञानी को भी द्वेष होगा। आहा..हा..! उस द्वेष का वेदन उसे होगा। आहा..हा..! यह तो क्या बात! क्षायिक समकिती यहाँ पहले नरक में है। जिसकी उष्ण वेदना इतनी है, पहली उष्ण वेदना, बाद में शीत है। एक कण, पहले नरक का अग्नि का एक कण इतना लावे तो आस-पास दस हजार योजन में मनुष्य जलकर राख हो जाये। जलकर भस्म हो जाये। क्या कहा?

पहले नरक में जहाँ श्रेणिक राजा विराजते हैं, वहाँ अग्नि की पीड़ा इतनी है कि वहाँ से एक अग्नि का कण भी यदि यहाँ आवे तो आजू-बाजू के दस हजार योजन में जितने मनुष्य हैं, वे जलकर राख हो जायें। इतनी तो अग्नि की तीव्रता है। आहा..हा..! ऐसा है। वे श्रेणिक राजा भी इतनी वेदना (सहते हैं) । समकिती, क्षायिक समकिती! अरे! वहाँ भी तीर्थंकरगोत्र समय-समय में बाँधते हैं। यहाँ तीर्थंकरगोत्र बाँधते थे, तो वहाँ भी बाँधते हैं। निरन्तर बाँधते हैं। आहा..हा..! इस वेदन के काल में भी तीर्थंकरगोत्र तो बँधता ही है। आहा..हा..! ऐसी बात! आहा..हा..! दु:ख की दशा तो पर्याय में है। वह मेरी चीज़ में तो है ही नहीं। मेरी पर्याय में है, परन्तु मेरे द्रव्य में नहीं। आहा..हा..! दोनों का ज्ञान सत्य होना चाहिए न? द्रव्य का ज्ञान सत्य हो, तथा पर्याय में भी जैसा वेदन है, वैसा ज्ञान होना चाहिए। समझ में आया? आहा..हा..!

यहाँ यह कहा। **शुभाशुभ विभावभावों में आकुलता...** है। भगवान शान्ति और निवृत्तस्वरूप है। जबकि **शुभाशुभ विभावभावों में आकुलता और प्रवृत्ति है;...** आहा..हा..! **उन दोनों का मेल ही नहीं बैठता।** भगवान शान्त.. शान्त.. अकषायचारित्र, अकषायचारित्र-स्वरूपबिम्ब, त्रिकाल है। जबकि शुभाशुभभाव, वह आकुलता है; भगवान निराकुलता। भगवान निवृत्तस्वरूप; जबकि पुण्य-पाप प्रवृत्तिरूप। आहा..हा..! भाषा तो सादी है, प्रभु! भाव तो जो है, वह है। क्या हो? आहा..हा..! **उन दोनों का मेल ही नहीं बैठता।** राग दु:खरूप है, भगवान आनन्दरूप है; राग प्रवृत्तिरूप है, भगवान अन्दर निवृत्तस्वरूप है। ऐसा दु:ख का भाव, वह अपने आत्मा में होता है तो अपना आनन्द का आश्रय लेकर उस दु:ख का नाश करना। यह बताते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-१४, रविवार, दिनाङ्क ०१-१०-१९७८
वचनामृत-२८१ से २८३ प्रवचन-१०६

बाहर के सब कार्यों में सीमा—मर्यादा होती है। अमर्यादित तो अन्तर्ज्ञान और आनन्द है। वहाँ सीमा—मर्यादा नहीं है। अन्तर में—स्वभाव में मर्यादा नहीं होती। जीव को अनादि काल से जो बाह्य वृत्ति है, उसकी यदि मर्यादा न हो, तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो, सदा बाह्य में ही रुका रहे। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आत्मा अगाध शक्ति से भरा है॥२८१॥

२८१। बात जरा सूक्ष्म है। **बाहर के सब कार्यों में सीमा—मर्यादा होती है।** क्या कहते हैं? देह की स्थिति, भव की स्थिति, राग की स्थिति, वह सब मर्यादित है। संयोग जो मिलते हैं, उनकी स्थिति भी मर्यादित है। अमुक काल रहेंगे। वह कहीं स्थायी चीज़ नहीं है। इसी प्रकार कर्म का संयोग भी मर्यादित चीज़ है, इसी तरह आत्मा में उत्पन्न होनेवाले पुण्य-पाप के भाव की भी सीमा है, उनकी मर्यादा है। वह अमर्यादित चीज़ नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : मतिश्रुत भी ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय मर्यादित (है, अमर्यादित) नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! पर्याय जो है, केवलज्ञान है, वह भी एक समय की मर्यादित स्थितिवाला है। आहा..हा..! बाहर के जितने कार्य हैं, उन सबकी मर्यादा होती है। सूक्ष्म बात है, भाई!

अमर्यादित तो अन्तर्ज्ञान... अन्तर में ज्ञानस्वरूप, वह अपरिमित, अमर्यादित वस्तु है। समझ में आया? **अमर्यादित तो अन्तर्ज्ञान और आनन्द है।** मुख्य दो लिये। ज्ञायकभाव, ज्ञानभाव वह अमर्यादित, शाश्वत् रहनेवाली चीज़ है और अन्तर आनन्द है, वह भी अमर्यादित अन्दर कायम रहनेवाली चीज़ है। **वहाँ सीमा—मर्यादा नहीं है।** अन्तर में ज्ञान

और आनन्द है, उसकी सीमा नहीं। जैसे क्षेत्र की सीमा होती है कि इस सीमा से क्षेत्र पूरा हुआ, ऐसा अन्तर में ज्ञान और आनन्द (है, उसे मर्यादा नहीं है)। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहा..हा..! अन्तर्ज्ञान अमर्यादित स्वभाववाला और अन्तर आनन्द अमर्यादित स्वभाववाला.. आहा..हा..! उसे मर्यादा नहीं है।

नियमसार की ३८ वीं गाथा में तो कहते हैं कि संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय भी नाशवान है, क्योंकि एक समय रहती है न? आहा..हा..! और भगवान आत्मा अमर्यादित स्वभाव से भरपूर प्रभु मर्यादारहित चीज़ है। आहा..हा..! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है। परस्थिति तो सर्वार्थसिद्धि की आयुष्य देहस्थिति हो तो भी मर्यादित है। यह देह की स्थिति हो तो भी मर्यादित है। आहा..हा..! कर्म की स्थिति है, वह भी एक मर्यादित स्थिति है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस समय की पर्यायमात्र है, वह मर्यादित है। यहाँ तो इसकी पर्याय लेनी है न? कार्य लेना है न? कार्य की बात का सवाल है न? क्या है? **बाहर के सब कार्य...** कार्य की बात है। परमाणु में ध्रुवता है, यह बात अभी नहीं है। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात है। बाहर के कार्य शब्द से (आशय यह है कि) देह की स्थिति हो, सर्वार्थसिद्धि के भव की स्थिति हो, कर्म की स्थिति हो, अरे! राग-द्वेष की स्थिति हो, अरे! पर्याय में संवर और धर्मदशा प्रगटी, वह भी एक समय की मर्यादा मात्र की चीज़ है। कार्य की बात है न? वस्तु रजकण कायम (रहते हैं), उसका यहाँ प्रश्न नहीं है। आहा..हा..!

अपनी पर्याय में कार्य होता है। राग-द्वेष या धर्म की पर्याय का कार्य (होता है), वह भी मर्यादित है। यहाँ सिद्ध तो विकार का करना है कि विकार है, वह मर्यादित है; इसलिए उसका नाश हो सकता है। समझ में आया? और अविकारी भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसकी कोई भी शक्ति या स्वभाव अमर्यादित है। आहा..हा..! ऐसी अमर्यादित चीज़ में मर्यादित कार्य की सीमा है। आहा..हा..! ऐसी भाषा और यह वस्तु। ऐसा मार्ग है, बापू! आहा..हा..!

अन्तर में—स्वभाव में मर्यादा नहीं होती। जिसका वस्तुस्वभाव... आहा..हा..! त्रिकाली ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, पवित्रस्वभाव, स्वच्छस्वभाव, प्रभुत्व-ईश्वरस्वभाव, इस स्वभाव की मर्यादा नहीं है। क्या कहते हैं, समझ में आया? वस्तु है न? सद्चिदानन्द

प्रभु—सत् शाश्वत और ज्ञान तथा आनन्द भी अमर्यादित शाश्वत् वस्तु है। यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि धर्मी की दृष्टि वहाँ अमर्यादित चीज़ पर पड़ी है। समझ में आया? धर्मी उसे कहते हैं कि जो अमर्यादित भगवान आत्मा का स्वभाव (है, उस) पर (जिसकी) दृष्टि चिपट गयी है। अमर्यादित स्वभाव पर दृष्टि पड़ी है। आहा..हा..! मर्यादित कार्य में दिखायी दे परन्तु वह तो अमर्यादित कार्य में झूलता है। आहा..हा..!

स्वभाव में मर्यादा नहीं होती। बहुत सूक्ष्म बात। मूल तत्त्व है। आहा..हा..! वस्तु भगवान आत्मा का जो ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, उस स्वभाव की मर्यादा नहीं है। अमर्यादित, अपरिमित स्वभाव है। आहा..हा..! केवलज्ञान की पर्याय निकले, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... काल तो भी वह वस्तुस्वभाव तो अमर्यादित है। आहा..हा..! कठिन बात है, भाई! भगवान आत्मा अमर्यादित स्वभाव से भरपूर प्रभु है। अन्तर में तो उसका अमर्यादित स्वभाव है।

जीव को अनादि काल से जो बाह्य वृत्ति है... आहा..हा..! रागादि या पुण्यादि, आहा..हा..! **उसकी यदि मर्यादा न हो...** उसकी सीमा, हद न हो, **तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो,...** पुण्य और पाप, दया, दान, रागादि भाव पर्याय में होते हैं, परन्तु उनकी मर्यादा है। यदि मर्यादा न हो तो उनसे हटकर स्वभाव में नहीं आ सकता। समझ में आया? ऐसी बातें, भाई! आहा..हा..! **जीव को अनादि काल से जो बाह्य वृत्ति...** विकल्पादि हैं, **उसकी यदि मर्यादा न हो...** उस विकार की मर्यादा और हद है। मर्यादित.. आहा..हा..! यह नाशवान चीज़ है। आहा..हा..! **यदि मर्यादा न हो, तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो,...** अमर्यादित हो तो मर्यादित बिना विमुख ही न हो। अमर्यादित हो तो कहाँ से विमुख हो। आहा..हा..! क्या कहते हैं?

शुभ और अशुभराग। बाहर की स्थिति तो ठीक, वह तो सब बाहर है। वह तो उसके कारण से मर्यादित बाह्य है, परन्तु यहाँ तो अन्तर में शुभ-अशुभ विकल्प जो राग है, वह यदि सीमित अर्थात् मर्यादित न हो तो उससे विमुख नहीं हो सकता। अमर्यादित कार्य से विमुख किस प्रकार होगा? समझ में आया? अलोक की कोई मर्यादा नहीं। है? इस क्षेत्र का और लोक के क्षेत्र का अन्त / मर्यादित है परन्तु यह क्षेत्र जो अलोक है, अस्तिरूप से जो पूरा अमाप... अमाप.. (है, वह) अमर्यादित है। आहा..हा..!

इसी प्रकार भगवान आत्मा के पुण्य और पाप के विभावरूपी परिणमन की स्थिति हद वाली है, अवधिवाली है; वह कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है, तो उनसे विमुख हो

सकता है। सीमा-मर्यादित विकार है। अनन्त-अनन्त अमर्यादित नहीं। इसलिए विकार से आत्मा विमुख हो सकता है। सेठिया गये ? गये लगते हैं। देखा नहीं। आहा..हा..! बात बापू! बहुत कठिन।

भगवान आत्मा, जिसका स्वभाव—स्व-भाव—अपना भाव-अमर्यादित है। जिसका पार नहीं आता। ओहो..हो..! ज्ञानस्वभाव है, तो यहाँ अन्दर पूरा हो गया। यह ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ऐसा है नहीं। अन्दर में अमर्यादित ज्ञानस्वभाव है। आहा..हा..! ऐसे ही आनन्दस्वभाव आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... तो कहीं आनन्द की मर्यादा है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

प्रभु! तू देख तो सही! आहा..हा..! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है। अभ्यास नहीं और रुचि होवे तो वहाँ वीर्य स्फुरित हुए बिना रहे नहीं। जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उस ओर पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं। आहा..हा..! ऐसे भगवान आत्मा वीतरागस्वभाव से अमर्यादित भरा हुआ है। अकषायस्वभाव भी अमर्यादित है। उसकी कोई हद नहीं कि अब इसकी पूर्णता हो गयी। आहा..हा..! इसके अकषायस्वभाव का तल अमर्यादित है। आहा..हा..! पाताल के कुएँ की भी हद है, वह कहीं अमर्यादित नहीं है। अमुक जगह पूरा हो जाता है। आहा..हा..!

यह तो भगवान आत्मा, इसके अनन्त ज्ञान, दर्शन की गहराई की बात क्या करना, कहते हैं! आहा..हा..! यह अमर्यादित जिसका स्वभाव है, तो मर्यादित चीज़ से विमुख हो सकता है। हदवाली चीज़ है न ? तो हदवाली है, उससे विमुख हो सकता है। आहा..हा..! अरे! दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, आदि का राग (आवे) परन्तु वह मर्यादित है। आहा..हा..! विभाव में अमर्यादित (स्थिति) नहीं होती। विभावरूप भाव अमर्यादित नहीं होते। विभावरूप भाव में अमर्यादित स्वभाव नहीं आता। आहा..हा..! ऐसी बातें! ऐसा यह कैसा उपदेश! भाई! यह अलौकिक गम्भीर वस्तु है, प्रभु! आहा..हा..! उसका एक-एक गुण कायम रहनेवाला तो है, परन्तु एक-एक गुण अमर्यादित अन्दर है। यहाँ पूरा हुआ, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! ऐसा आनन्दगुण, ऐसा ईश्वरत्वगुण, ऐसा जीवत्वगुण। वह अन्दर अमर्यादित स्वभाव है। आहा..हा..!

जो बाह्य वृत्ति है, उसकी यदि मर्यादा न हो, तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो,... यदि अमर्यादित हो तो वहाँ से विमुख होकर स्वभाव में न आ सकता। आहा..हा..!

एक समय की अवधि है। आहा..हा..! मर्यादित है तो उससे (विमुख होकर) अमर्यादित स्वभाव की ओर झुक सकता है। ऐसी बात है, भाई! अरे! जिसे यह मार्ग हाथ में (नहीं आया), अनन्त काल से पर को मेरा मान मानकर पर में उत्साह-हर्ष करके मर गया है। आहा..हा..! आहा..हा..! इसका पर का उत्साह, वह राग है, वह भी कहते हैं मर्यादित है। सामनेवाली चीज़ तो इसके पास मर्यादित ही रह सकती है। यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार वे तो मर्यादित रह सकते हैं, परन्तु तेरी पर्याय में विकृत अवस्था है, वह भी मर्यादित है, प्रभु! आहा..हा..! सीमा है... सीमा है, वहाँ हद है। आहा..हा..! इस कारण से सीमा जो मर्यादित राग है, उससे हट सकता है। अमर्यादित होवे तो हट नहीं सकता। भगवान अमर्यादित स्वभाव है। आहा..हा..! वह अमर्यादित स्वभाव मर्यादा में आता है, ऐसा नहीं है। उस अमर्यादित स्वभाव का माप सम्यग्दर्शन-ज्ञान ने लिया है... आहा..हा..! वह पर्याय भी मर्यादित है। आहा..हा..! क्योंकि वह पर्याय कायम नहीं रहती। आहा..हा..! भगवान आत्मा... आहा..हा..! गजब बात है, प्रभु! यह तो पाताल में अनन्त गुण का गहरा कुआँ मर्यादारहित है। आहा..हा..!

तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो, सदा बाह्य में ही रुका रहे। जो पुण्य और पाप के विकल्प और विकार आदि कायम रहनेवाली चीज़ हो तो वहाँ ही रुक जाये। **सदा बाह्य में ही रुका रहे।** आहा..हा..! **अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है।** आहा..हा..! जिस स्वभाव की कभी हद, मर्यादा (आ गयी) कि यह स्वभाव यहाँ पूरा हुआ, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! स्वभाव की शक्ति में, हों! आहा..हा..! उसके अनन्त गुण हैं। स्वभाव अनन्त गुण है तो अनन्त की संख्या कि इस आत्मा में अनन्त स्वभाव गुण-शक्तियाँ हैं तो यह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ऐसे अनन्त-अनन्त का अन्तिम अनन्त, उसमें हो नहीं सकता और अन्तिम अनन्त नहीं हो सकता परन्तु अन्तिम अनन्त में यह अन्तिम शक्ति है, ऐसा नहीं हो सकता। सूक्ष्म है, भाई! समझ में आया? आहा..हा..!

यह इस बाह्य की चीज़ की विस्मयता में रुक गया। यह रुका, वह चीज़ भी मर्यादित है। आहा..हा..! इस कारण हदवाली चीज़ है तो उससे हट सकता है। भगवान आत्मा अमर्यादित स्वभाववाला है... आहा..हा..! उसे पकड़। यह अब अमर्यादित शक्ति को पकड़ी है तो अब उसकी मर्यादा नहीं। वह ऐसा का ऐसा रहेगा। आहा..हा..! भले पर्याय क्षणिक है परन्तु उसका आधार जो अमर्यादित है, वह तो कायम रहेगा। आहा..हा..! क्या कहते हैं। दृष्टि है, वह मर्यादित है। आहा..हा..! परन्तु वस्तु जो अन्दर है, वह अमर्यादित

है। आहा..हा.. ! जहाँ निर्विकल्प वस्तु है, वहाँ निर्विकल्प दृष्टि गयी, तो पर्याय की तो हद है, पलट सकती है, परन्तु वस्तु की हद नहीं है। आहा..हा.. ! भाई ! यह तो त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ प्रभु, ज्ञान का सागर, आनन्द का सागर, उसकी शक्ति की मर्यादा नहीं। कायम रहनेवाली तो ठीक परन्तु वर्तमान शक्ति की भी मर्यादा नहीं कि यहाँ पूरी हो गयी। आहा..हा.. ! सूक्ष्म बात है। यह तो विषय आया, तब (स्पष्टीकरण होता है) । आहा..हा.. !

यदि मर्यादा न हो, तब तो जीव कभी उससे विमुख ही न हो, सदा बाह्य में ही रुका रहे। अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। आहा..हा.. ! **आत्मा अगाध शक्ति से भरा है।** अगाध, गम्भीर, जिसकी हद नहीं, ऐसे स्वभाव से भरपूर है। संख्या तो अगाध है। आहा..हा.. ! परन्तु उसके स्वभाव की मर्यादा भी अमर्यादित है। यह क्या कहा ? आत्मा में जो शक्ति गुण है, वे तो अनन्त हैं परन्तु वह तो संख्या से अनन्त हैं, किन्तु जहाँ एक-एक गुण की मर्यादा नहीं। आहा..हा.. ! भले क्षेत्र का वहाँ अन्त आया कि यह गुण इतने असंख्य प्रदेश में हैं परन्तु भाव का अन्त-भाव की मर्यादा नहीं है। आहा..हा.. ! ऐसा भगवान इसने कभी सुना नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

अमर्यादित तो आत्मस्वभाव ही है। कायम रहनेवाला तो ठीक, परन्तु इस कायम चीज़ की मर्यादा नहीं। इतने.. इतने.. इतने (गुण भरे हैं) । गजब बात है ! अलोक का कहीं अन्त नहीं। उससे अनन्तगुने आत्मा में गुण हैं। अलोक और लोक के आकाश के जो प्रदेश हैं; एक पॉइन्ट-एक रजकण जिसमें रहे, उसका नाम प्रदेश, तो ऐसे आकाश के जितने प्रदेश हैं, वे अमर्यादित हैं। कि यहाँ अब हद आ गयी, ऐसा नहीं है। इतने आकाश के जो प्रदेश हैं, उन प्रदेश की संख्या से भी अनन्तगुने गुण प्रभु में हैं। आहा..हा.. ! और एक-एक गुण की संख्या तो अनन्त है (अर्थात् अनन्त गुण है) । परन्तु एक-एक गुण अमर्यादित है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

असंख्य प्रदेश में क्षेत्र से मर्यादा हुई कि असंख्य प्रदेश में ही है, परन्तु इस भाव की मर्यादा आत्मा... आत्मा.. आत्मा... आत्मा इतना, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! मालचन्दजी ! ऐसी बात है। यह हल्दी की गाँठ से पंसारी हो जाये, यह ऐसा नहीं है। लोग नहीं कहते ? हल्दी-हल्दी होती है न ? हल्दी की गाँठ से पंसारी हो जाये। भाई ! ऐसे पंसारी नहीं हुआ जाता। ऐसे किसी ने शास्त्र की अमुक बात पकड़ ली, इसलिए अमर्यादित आत्मा का ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. !

जिसे भव का अन्त लाना है, क्योंकि भव तो मर्यादित है, अन्त आयेगा। आहा..हा..! समझ में आया? और भव को जाननेवाला जो भगवान अन्दर ज्ञानस्वभाव, दर्शनस्वभाव, आनन्दस्वभाव है, उसकी संख्या से अमर्यादित अनन्त शक्ति है, परन्तु उसके भाव भी अमर्यादित हैं। क्या है यह? आहा..हा..! ऐसे आत्मा पर जिसकी दृष्टि हुई... आहा..हा..! वह अन्दर में क्या काम होता है, यह अज्ञानी नहीं जान सकते। आहा..हा..!

आत्मा अगाध शक्ति से भरा है। आहा..हा..! संख्या से अगाध और स्वभाव के सामर्थ्य से भी अगाध। समझ में आया? अरे! प्रभु! तू कितना और कैसा है? भाई! तुझे खबर नहीं, भाई! आहा..हा..! पाँच-पच्चीस, दो-पाँच करोड़ मिले तो हम लक्ष्मीवाले हो गये। प्रभु! वह चीज़ क्या है? वह तो मर्यादित है और दया, दान के भाव किये तो मैंने बहुत किया, प्रभु! यह क्या है? यह तो राग की दशा है, यह तो मर्यादित है, भाई! आहा..हा..! भगवान चैतन्य की सत्ता, अस्तित्व, उसके गुण की संख्या की तो मर्यादा है नहीं। ओहो..हो..! परन्तु एक-एक गुण की... यह गुण यहाँ पूरे हुए, ऐसी मर्यादा नहीं। ओहो..हो..! अरे! ऐसी बातें। यह दया पालो, व्रत पालो, उसे यह बैठना कठिन पड़ता है। आहा..हा..! भाई!

आत्मा अगाध शक्ति से भरा है। आहा..हा..!

यह जो बाह्य लोक है, उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है। बाह्य में लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा किया', परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं। बाहर से देखनेवाले मनुष्यों को ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं, परन्तु अन्तर में तो वे कहीं चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं॥२८२॥

२८२। **यह जो बाह्य लोक है उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है।** आहा..हा..! वास्तव में तो यह बाह्य लोक, पुण्य-पाप के भाव, अरे! एक समय की पर्याय जो है... आहा..हा..! बाह्य है। अन्दर से वह बाह्य चीज़ है। **बाह्य लोक है...** शरीर, वाणी, कर्म आदि संयोग और विभावभाव... आहा..हा..! या एक समय की पर्याय है, वह बाह्य लोक है। **उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है।** पर्याय के अन्दर; पर्याय में नहीं, पर्याय के अन्दर... आहा..हा..! पर्याय ऊपर रहती है। यह भगवान आत्मा का स्वभाव पर्याय से अन्दर है। अब ऐसी बातें। समझ में आया?

यह **चैतन्यलोक पृथक् ही है।** पृथक् ही है। आहा..हा..! चैतन्यलोक द्रव्यस्वभाव, भगवान आत्मा का तत्त्वस्वभाव, वह बाह्य लोक से पृथक् लोक है। **बाह्य में लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा किया',...** धर्मी की दृष्टि अन्तर्मुख में है। बाहर में अज्ञानी देखते हैं कि देखो! ऐसा किया... ऐसा किया। ऐसे लोग बाहर से देखते हैं (कि) इन्होंने ऐसा किया। **परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं,...** आहा..हा..! यह बाहर की पर्याय और प्रवृत्ति देखे, परन्तु धर्मी की दृष्टि तो अमर्यादित स्वभाव पर पड़ी है। आहा..हा..! तो लोग ऐसा कहें, मानें, कि यह करते हैं... यह करते हैं। आहा..हा..! परन्तु अन्तर में पड़े हैं, उनकी दशा क्या है, वह अज्ञानी नहीं जानते। आहा..हा..! सूक्ष्म बोल आ गया है।

क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं। आहा..हा..! क्योंकि धर्मी तो अपना ज्ञायक अमर्यादित स्वभाव है, उसके स्वीकार में दृष्टि पड़ी है। आहा..हा..! त्रिकाली ज्ञायकभाव, सामान्यभाव, अमर्यादितभाव पर उसकी दृष्टि काम करती है। बाहर में है, उसके तो वे ज्ञातादृष्टा हैं। आहा..हा..! वह चक्रवर्ती छह खण्ड के राज्य में दिखायी दे, भोग के काल में भोग, भाव और क्रिया को लोग देखें, परन्तु वह अन्तर्दृष्टि में पड़ा है। परमात्मस्वरूप को पकड़ लिया है। आहा..हा..! उस अन्तर में से हटते नहीं। ऐसा मार्ग लोगों को कठिन पड़ता है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह कहीं नयी बात है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव अमर्यादित है, उसे जहाँ अन्दर में पकड़ा, तो वर्तमान में उसकी जो पर्याय है, वह बाहर है, वह अन्तर्दृष्टि में नहीं आती। लोग ऐसा देखते हैं कि यह काम करते हैं, यह भक्ति करते हैं – ऐसा देखते हैं। आहा..हा..! ऐसा काम गजब, भाई! **क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं।** आहा..हा..! **बाहर से देखनेवाले मनुष्यों को ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते....** देखे। **विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं,...** आहा..हा..! देखो, इस शुभभाव में आये। आहा..हा..! एक बार श्रीमद् को पूछा – श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण कहाँ हैं? तो उन्होंने जवाब दिया कि वे आत्मा में हैं। भाई! श्रीमद् ने ऐसा कहा। यह बाहर की स्थिति है, वह तो दूसरी चीज़ है। अन्तर में समकिती, ज्ञानी, श्रीकृष्ण आत्मज्ञानी धर्मात्मा, अल्प काल में परमात्मा होने के योग्य हैं। आहा..हा..! बाहर के भाव और यह गति हुई, उसे न देख। वे आत्मा में हैं। समझ में आया? मनुष्यपने में आया, स्वर्ग का भव मिला तो भी आत्मा तो आत्मा में है। स्वर्ग या स्वर्ग के विकल्प में आता ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

कोई कहे कि श्रेणिक राजा नरक में गये हैं न? तो नरक में हैं। अरे! सुन तो सही,

प्रभु! एक बार (सुन)। वे आत्मा में हैं। समझ में आया? आहा..हा..! दिखते हैं कि वे नरक में हैं। वेदन दिखायी दे। आहा..हा..! वह अपना ज्ञातादृष्टा स्वभाव है, उसमें हैं। बाहर के कार्य और राग में वे आये ही नहीं। आहा..हा..! बहुत सरस बात आयी है। यह बोल ऐसे आये हैं। हीराभाई! वापस रविवार और भावनगरवाले आये हैं। अमृत है, प्रभु! आहा..हा..! जिसका अमृतस्वभाव अमर्यादित है-ऐसा जहाँ अन्तर में भान हुआ; अब वह बाहर में विकल्प में आता है, दिखता है, परन्तु वह है नहीं। वह तो जहाँ है, वहाँ है। आहा..हा..!

अज्ञानी ने बाहर से त्यागी होकर, राज, कुटुम्ब, स्त्री, सब छोड़ा। छूटा हुआ ही था, परन्तु राग के एकत्व में पड़ा है तो उस राग में आत्मा है। आत्मा राग में है। आत्मा, आत्मा में नहीं। आहा..हा..! राग का विभाविक कण, उसमें जहाँ एकत्वबुद्धि है, वह चाहे तो राजपाट छोड़कर बाहर में सन्त हुआ, साधु हुआ, परन्तु वह अन्दर में राग में है, आत्मा में नहीं। आहा..हा..!

बाहर से देखनेवाले मनुष्यों को ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं, परन्तु अन्तर में तो वे कहीं चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं। ज्ञानस्वरूप की पर्याय में विचरते हैं। राग में आये ही नहीं। आहा..हा..! अब ऐसा मार्ग। जैन में जन्में हैं, उन्हें भी सुनने को नहीं मिलता, तो वे बेचारे कहाँ अन्दर जायें? आहा..हा..! चैतन्य लोक भगवान अन्दर विराजता है न, प्रभु! जिसकी शक्ति की संख्या भी अमाप और जिसके एक-एक गुण में ताकत की भी अमापता, ऐसे आत्मा में भान, सम्यग्दर्शन हुआ... आहा..हा..! सम्यग्ज्ञान हुआ, वह तो ज्ञान और दर्शन में ही रहते हैं, वे राग में आते ही नहीं। आहा..हा..!

(समयसार की) ११वीं गाथा में ऐसा कहा न? '**भूदत्थमस्सिदो**' भूतार्थ प्रभु, सत्यार्थ साहिब प्रभु पूर्णानन्द। कबीर में ऐसा कहते हैं, साहेब आत्मा। परन्तु वह साहेब यह। आहा..हा..! वह साहेब परमात्मस्वरूप... आहा..हा..! जहाँ दृष्टि में आया और जहाँ पर्याय में उसका स्वीकार हुआ तो धर्मात्मा तो ज्ञान और आनन्द की पर्याय में ही है। आहा..हा..! ज्ञान जानता है कि रागादि दुःख है, वह मेरी पर्याय में है, परन्तु उस दृष्टि की अपेक्षा से तो ज्ञान और आनन्द में ही है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें। एक ओर कहे कि अमर्यादित भगवान का भान हुआ, तथापि उस काल में उसे-ज्ञानी को जरा राग का दुःख है, वह जानता है। परन्तु मैं उसमें हूँ,... वेदन है परन्तु मैं पूरा द्रव्य उसमें हूँ,

ऐसा नहीं है। आहा..हा..! द्रव्य ऐसा है, वह उसमें नहीं है। आहा..हा..! अब ऐसी बातें। कहो, रतिभाई! स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी, दिगम्बर मूर्ति और मन्दिर बनाया। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह तो पहले दिगम्बर हुए थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर किसे कहना, इसकी तो बात चलती है। दया, दान आदि राग विकल्प है, वह भी कपड़ा है। उससे मेरी अमर्यादित चीज़ भिन्न है। आहा..हा..! ऐसी दृष्टि होवे तो वह शुरुआत का दिगम्बर हुआ। मुनि दिगम्बर हो, वह बाद में। दिगम्बर कोई पक्ष नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं। वह तो वस्तु का स्वरूप है। आहा..हा..! जैसे दिग अर्थात् आकाश। दिगम्बर - आकाशरूपी अम्बर / वस्त्र है। वैसे भगवान में वस्त्ररूपी विकल्प तो है ही नहीं, परन्तु रागरूपी विकल्प भी उसमें नहीं। वह तो आनन्द का नाथ परमात्मा... आहा..हा..! यह ज्ञान की पर्याय और आनन्द की पर्याय में धर्मी विचरता है। गजब काम, भाई! वह युद्ध करने के काल में भी समकिती दिखायी दे, चक्रवर्ती शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती थे, छह खण्ड साधते थे, परन्तु अन्तर में तो दृष्टि और ज्ञान में ही थे। वे राग में और पर की क्रिया में आये ही नहीं। आहा..हा..! ऐसी शर्तोंवाला सम्यग्दर्शन धर्म है। आहा..हा..!

परन्तु अन्तर में तो वे कहीं चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं। अमर्यादित भगवान की शक्ति और स्वभाव की सामर्थ्यता, इस दृष्टि से ज्ञान की पर्याय ने पकड़ लिया, तो वह तो चैतन्य की गहराई में ज्ञानी विचरते हैं। राग की मर्यादा में वे आते नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें। व्यवहार के रत्नत्रय के विकल्प आते हैं, परन्तु कहते हैं कि उनमें वे स्वयं नहीं आते। समझ में आया? अलौकिक बाते हैं, बापू! भगवान! तेरी बात ही कोई अलौकिक है। आहा..हा..! वह सर्वज्ञ ने जगत को प्रसिद्ध किया है। जिसे अन्तर (ज्ञान) होवे, उसे वह प्रसिद्ध होता है। आहा..हा..!

द्रव्य तो अनन्त शक्ति का स्वामी है, महान है, प्रभु है। उसके सामने साधक की पर्याय अपनी पामरता स्वीकार करती है। साधक को द्रव्य-पर्याय में प्रभुता और पामरता का ऐसा विवेक वर्तता है॥२८३॥

२८३। **द्रव्य तो अनन्त शक्ति का स्वामी है,...** अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहा..हा..! अनन्त.. अनन्त संख्या से, अनन्त शक्ति का प्रभु स्वामी है। ओहो..हो..!

यह अनन्त-अनन्त शक्ति गुण जो है.. आहा..हा..! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ऐसे अनन्त-अनन्तगुने करके अन्दर में जाये तो भी उस शक्ति का अन्त नहीं है। इतनी अन्दर शक्तियाँ हैं। क्या कहते हैं, समझ में आया? जो शक्तियाँ संख्या से अनन्त हैं, उनमें यह अनन्तपना यहाँ पूरा हुआ, ऐसा नहीं है। संख्या से इतनी अनन्तता है कि जिसमें यह अनन्त.. यह अनन्त.. यह अनन्त.. अनन्त.. करते-करते यह अन्तिम अनन्त उसमें नहीं है। अन्तिम समझे? आखिरी। आहा..हा..! ऐसा जो भगवान आत्मा... आहा..हा..! वह तो **अनन्त शक्ति का स्वामी है,...** सबेरे अपने आया था। भगवान ज्ञाताद्रव्य। अभी तो इतना आया। प्रत्याख्यान का अधिकार चलता है न? इतने तक आया है। भगवान ज्ञाता द्रव्य। आहा..हा..! अब राग का अभाव करने को स्वरूप का आचरण करने का प्रत्याख्यानी अभिलाषी है। आहा..हा..! तो स्वरूप में स्थिर होता है, उसका नाम प्रत्याख्यान / पच्चक्खाण / त्याग है। आहा..हा..! यह बात तो बहुत सरस आयेगी। आहा..हा..!

ज्ञानी तो अन्तरज्ञान में रमणता में जो गये... आहा..हा..! प्रत्याख्यान; तो उसमें राग का अंश रहा नहीं और राग का त्याग करता है, वह परमार्थ में नाममात्र नहीं। आहा..हा..! क्योंकि जो अपरिमित भगवान स्वभाव है, उसमें अनुभव हुआ, उस अनुभव-उपरान्त स्वरूप में लीनता, प्रत्याख्यान हुआ। ज्ञान, ज्ञान में जम गया। आहा..हा..! वह आत्मा राग का त्याग करता है, ऐसा कहना, वह नाममात्र कथन है। आहा..हा..! यह प्रत्याख्यान है। यहाँ तो अभी कुछ भान नहीं होता और यह रात्रि भोजन त्याग किया, अपवास किया, यह किया... यह किया... हो गये अपवास। धूल में भी नहीं, भाई! आहा..हा..! ठगा गया, प्रभु! आहा..हा..!

तेरा नाथ अन्दर अनन्त शक्ति का धनी, जिसकी संख्या की हद नहीं। क्या है यह, कोई बात! बात क्या है यह? आहा..हा..! अनन्त को अनन्तगुना करे। अनन्त जो है, उसे इतनी संख्या से सामने अनन्तगुना करे और वह आवे, पश्चात् उतनी संख्या से उसे अनन्तगुना करे, पश्चात् उतनी संख्या से उसे अनन्तगुना करे। आहा..हा..! तो भी जिसकी अनन्त शक्ति की हद और मर्यादा पूरी नहीं होती।

द्रव्य तो... द्रव्य अर्थात् वस्तु, हों! यह द्रव्य अर्थात् पैसा नहीं। **द्रव्य तो अनन्त शक्ति का स्वामी है,** आहा..हा..! **महान है,...** प्रभु महान है। **प्रभु है।** तीन बोल लिये हैं।

भगवान आत्मद्रव्य है, वह तो प्रभु है, परमेश्वर है। परम अनन्त शक्ति का संग्रहालय प्रभु है। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त संख्यारहित गुण का गोदाम है। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त स्वभाव का प्रभु सागर है। ऐसा वह द्रव्य प्रभु है। समझ में आया? **उसके सामने साधक की पर्याय अपनी पामरता स्वीकार करती है।** क्या कहते हैं? भगवान महा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त स्वभाव का सागर प्रभु, उसके सामने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र साधकदशा हुई, वास्तविक मोक्षमार्ग हुआ... आहा..हा..! वह साधक अपनी पामरता स्वीकार करता है कि मैं तो पामर हूँ। आहा..हा..! प्रभु तो यह है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, तो भी वह पर्याय है। वह त्रिकाली की अपेक्षा से तो पामर है। राग की तो बात क्या करना? आहा..हा..! ऐसी बात है, प्रभु! आहा..हा..!

कहते हैं, साधकपर्याय जो मोक्षमार्ग प्रगट हुआ; त्रिकाली भगवान अमर्यादित स्वभाव का पिण्ड है, उसका आश्रय लेकर, सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, परन्तु वह पर्याय है, साधक की पर्याय है। वह त्रिकाल (स्वभाव) की अपेक्षा से तो पामर है। आहा..हा..! समझ में आया? एक बात।

दूसरी बात, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय हुई, परन्तु वह पर्याय, सर्वज्ञ की पर्याय के समक्ष पामर है। पर्याय के सामने। त्रिकाली के समक्ष तो ठीक, परन्तु पूर्ण पर्याय के समक्ष भी पामर है। समझ में आया? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा लिया है कि सम्यग्दृष्टि जीव, जिसे आत्मज्ञान, आत्मदर्शन हुआ और स्वरूप में थोड़ी स्थिरता भी हुई, वह पर्याय में अपने को पामर मानता है। कहाँ पूर्ण पर्याय सर्वज्ञ वीतराग! जलहल ज्योति ज्ञान और आनन्द की दशा हुई, उसके समक्ष मेरी साधकपर्याय पामर है। पूर्ण पर्याय की अपेक्षा से पामर है, तो त्रिकाली की अपेक्षा से तो पामर में पामर है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। आहा..हा..!

अपनी पामरता स्वीकार करती है। साधक को द्रव्य-पर्याय में प्रभुता और पामरता का ऐसा विवेक वर्तता है। देखो! है? सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को पूर्ण प्रभुता और पर्याय की पामरता, दोनों का विवेक—यथार्थ ज्ञान है। आहा..हा..!

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण-अमावस्या, सोमवार, दिनाङ्क ०२-१०-१९७८
वचनामृत-२८४ से २८७ प्रवचन-१०७

साधकदशा तो अधूरी है। साधक को जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, और चैतन्य आनन्दधाम में पूर्णरूप से सदा के लिये विराजमान न हो जाय, तब तक पुरुषार्थ की धारा तो उग्र ही होती जाती है। केवलज्ञान होने पर एक समय का उपयोग होता है और वह एक समय की ज्ञानपर्याय तीन काल एवं तीन लोक को जान लेती है।।२८४।।

२८४। **साधकदशा तो अधूरी है।** क्या कहते हैं ? साधकपना तो चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। यहाँ चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में) आत्मा का अनुभव हुआ। राग से भिन्न अपना त्रिकाली द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण है, ऐसा ज्ञान में और प्रतीति में आया और वेदन में भी आया। ऐसी साधकदशा की प्रथम शुरुआत होती है, तथापि वह **साधक दशा तो अधूरी है।** सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, अरे! छठवें (गुणस्थान में) चारित्र हुआ, तथापि वह साधकदशा अधूरी है। **साधक को जब तक पूर्ण वीतरागता न हो,...** आहा..हा..! **साधक को जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, और चैतन्य आनन्दधाम में पूर्णरूप से सदा के लिये विराजमान न हो...** आहा..हा..! चैतन्य भगवान आनन्दधाम भगवान आत्मा में **पूर्णरूप से सदा के लिये विराजमान न हो...** आहा..हा..! **तब तक पुरुषार्थ की धारा तो उग्र ही होती जाती है।** आहा..हा..!

श्रीमद् राजचन्द्र एक बार कहते थे, सम्यग्दृष्टि थे, आत्मज्ञानी थे, अनुभवी थे, परन्तु व्यापार के धन्धे में जरा जुड़ना पड़ता था। राग (था), तो ऐसा कहते थे। यह २६वें (वर्ष के पत्र में) है। उसमें बताया था न ? आहा..हा..! कि इस व्यापार-धन्धे में ऐसा राग आता है, परन्तु बहुत दु:ख लगता है और उसमें तो यहाँ तक लिया है कि धड़ पर सिर रह सकता नहीं, ऐसी उपाधि आ पड़ी है। मालचन्दजी! धड़ समझते हो ? वे तो साधक जीव हैं,

सम्यग्दृष्टि हैं, अनुभवी हैं, परन्तु जब तक वीतरागता न हो, तब तक उन्हें व्यापार-धन्धा, भोगादि का राग तो आता है। आहा..हा..! और पश्चात् तो ऐसा भी कहा है कि ऐसी आकुलता-व्याकुलता हो जाती है कि जीव को त्याग करने का भाव आता है कि यह छोड़ दें, परन्तु कर्म का प्रारब्ध जब तक है तो तीर्थंकर को भी गृहस्थाश्रम में रहना पड़ता है। आहा..हा..! समझ में आया? आकुलता-व्याकुलता, धन्धा-पानी... ओहो...! और छोटी उम्र थी। उनके संयोग ऐसे थे कि आकुल-व्याकुल हो जाते। राग है न? वीतरागता नहीं। भान है कि यह आकुलता दुःखरूप है। मुझे वेदन में आती है परन्तु उसमें मेरी शान्ति का तो खून होता है। आहा..हा..! समझ में आया?

चौथे गुणस्थान में अनुभवी सम्यग्दृष्टि को भी साधकदशा अल्प है तो उसे रागादि, द्वेषादि भाव की रागधारा आती है। आहा..हा..! ज्ञानी को राग होता ही नहीं और ज्ञानी को दुःख का वेदन होता ही नहीं, (ऐसा जो मानता है), उसे दृष्टि की, तत्त्व की खबर नहीं है। समझ में आया? और दुःख वेदन करे तो वह तीव्र कषायी जीव है, (ऐसा माने तो) वह एकदम झूठ है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! तत्त्व की दृष्टि इसे होने के बाद तत्त्व की दृष्टि कैसे रहे, यह कोई अलौकिक बात है। आहा..हा..! तीर्थंकर जैसे गृहस्थाश्रम में हैं। तीन ज्ञान (और) क्षायिक समकित लेकर आते हैं, वे भी छह खण्ड साधने निकलते हैं। आहा..हा..! राग, विकल्प, अधूरी साधकदशा है (तो ऐसा राग) आता है।

यह (यहाँ) कहते हैं। **साधकदशा तो अधूरी है। साधक को जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, और चैतन्य आनन्दधाम में पूर्णरूप से सदा के लिये...** आहा..हा..! आनन्दधाम भगवान आत्मा अतीन्द्रिय का स्थल, अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र... आहा..हा..! उसमें पूर्णरूप से अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में **सदा के लिये विराजमान न हो जाय, तब तक पुरुषार्थ...** करना पड़ता है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..! **तब तक पुरुषार्थ की धारा...** राग आता है, साधकदशा है, अनुभव है तो राग की धारा में इस ओर पुरुषार्थ करते-करते ज्ञान की धारा उग्र होती जाती है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। अन्तर के हल (समाधान) की बातें हैं, भाई! यहाँ तो साधक सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, अनुभव हुआ, तब तक भी पूर्ण दशा नहीं है, तो उसे रागादि आता है, दुःख का वेदन होता है, तो उसे ज्ञानधारा में उग्र पुरुषार्थ करना पड़ता है। समझ में आया? आहा..हा..!

श्रीमद् ने यहाँ तक कहा, भाई! २६वें वर्ष में आता है। मुझे तो देखना था, वह

समकित में अर्थात् क्या ? बोध है या कौन सा शब्द है ? समकित में अर्थात् बोध में प्राय: शंका नहीं पड़ती। यह शब्द देखना था। २६वें वर्ष में। २६वें वर्ष में। कितना चलता है ? २६। सम्यग्दर्शन है, आत्मज्ञान है, वह बात करते हैं। यह साधक अपूर्ण है न ? **गत वर्ष के मागसर शुक्ल छठवीं को यहाँ आना हुआ था, तब से आज दिन पर्यन्त में बहुत प्रकार का उपाधियोग वेदन करने का बना है...** बाहर में है। **और यदि भगवत् कृपा न हो...** अन्दर **तो इस काल में वैसे उपाधियोग में सिर धड़ पर रहना कठिन हो...** सिर घूम जाये। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और वेदन का अनुभव होने पर भी... आहा..हा..! पूर्व के प्रारब्ध के योग से उपाधियोग होता है, उसमें राग जाता है। आहा..हा..!

यहाँ तक कहते हैं कि **सिर धड़ पर रहना कठिन हो....** अर्थात् सिर घूम जाये। आहा..हा..! दृष्टि की स्थिरता बदल जाये, ऐसा। दृष्टि नहीं बदले। अन्दर से स्थिरता बदल जाये। आहा..हा..! अनुभवी को भी साधकपना है न ? पूर्ण नहीं है। **ऐसा होते-होते बहुत बार देखा है...** कहते हैं। **और आत्मस्वरूप जिसने जाना है, ऐसे पुरुष को और इस संसार को समानता भी आवे नहीं...** मिलता मेल आवे नहीं। जगत के प्राणी के साथ ज्ञानी को मिलता मेल आवे नहीं। आहा..हा..! तुम ज्ञानी हुए, तब ऐसे व्यापार-धन्धा किसलिए लगाये ? ऐसा अज्ञानी कहता है, परन्तु वैसा रागभाव विकार आता है, भाई! जब तक पूर्णता न हो, तब तक आता है। आहा..हा..! **ज्ञानी पुरुष भी अत्यन्त निश्चय उपयोग से वर्तते-वर्तते कदाचित् मन्द परिणाम पा जाता है...** यह २६वें वर्ष में अनुभव-सम्यग्दर्शन होने के बाद की बात है। लोगों को तत्त्व क्या है, इसकी खबर नहीं। आहा..हा..!

आत्मस्वरूप सम्बन्धी बोध का तो यद्यपि नाश नहीं होता, तथापि आत्मस्वरूप के बोध के विशेष परिणाम के प्रति एक प्रकार का आवरण होनेरूप उपाधियोग होता है। अस्थिरता का भाव आता है। **हम तो उस उपाधियोग से अभी त्रास पाये हैं...** आहा...हा..! विशेष तो यह बात समकित की है। अभी तो दूसरा कहना है। **और इससे बहुत बार आत्मा आकुल-व्याकुलपने को पाकर त्याग को भजता था...** अरे रे! यह क्या ? छोड़ दूँ यह सब, परन्तु प्रारब्ध के उदय के योग में छोड़ा नहीं जा सकता। है ? **त्याग को भजता था...** अरे! यह व्यापार-धन्धा, यह सब छोड़ दूँ। **तथापि उपार्जित कर्म की स्थिति को समपरिणाम से, अधीनरूप से अव्याकुलरूप से वेदना, यही ज्ञानी पुरुषों का मार्ग है...** आहा..हा..! कहो नवरंगभाई! यह साधक जीव को, यह... बापू! मार्ग अलग, भाई!

तुझे खबर नहीं। विशेष आकुलता का लेना था। आकुल-व्याकुल हो जाते हैं। उपाधि में अस्थिरता के भाव आ जाते हैं। इससे मानो यह धन्धा छोड़ दूँ, परन्तु छूटे कैसे? राग का उदय और संयोग है और अभी राग है। आहा..हा..! समझ में आया? यह (यहाँ) कहते हैं। **आनन्दधाम में पूर्णरूप से सदा के लिये विराजमान न हो जाय, तब तक पुरुषार्थ की धारा...** राग आता है परन्तु उससे भिन्न अपने ज्ञान की धारा चढ़ती है। आहा..हा..! **उग्र ही होती जाती है।** आहा..हा..! **केवलज्ञान होने पर एक समय का उपयोग होता है...** साधकपना पूरा हुआ, पश्चात् केवलज्ञान हुआ, पश्चात् कुछ करना नहीं पड़ता। आहा..हा..! **एक समय का उपयोग होता है और वह एक समय की ज्ञानपर्याय तीन काल एवं तीन लोक को जान लेती है।** आहा..हा..! साधकपने में अपूर्ण है, तो वहाँ तक रागादि आते हैं। दु:ख का वेदन भी ज्ञानी को, क्षायिकसमकिती को, अरे! मुनि को (होता है)। आहा..हा..! साधक है न? छठवें गुणस्थान में भी प्रमादभाव, महाव्रत आदि का भाव आता है, वह सब दु:खरूप आकुलता, दु:ख है। आहा..हा..! अरे! ऐसा विवेक किये बिना इसे धर्म कैसे हो? आहा..हा..! समझ में आया?

यह यहाँ कहा। **एक समय की ज्ञानपर्याय तीन काल एवं तीन लोक को...** आहा..हा..! भूतकाल में अनन्त द्रव्यों की पर्याय जो बीत गयी, उसे भी सर्वज्ञ पर्याय, वर्तमान पर्याय है – ऐसा देखती है। जैसे भूत में थी, वैसे यहाँ देखती है। आहा..हा..! और भविष्य में जो द्रव्य की पर्याय होगी, वह भी जहाँ आत्मा पूर्ण आनन्दधाम में गया और केवलज्ञान हुआ तो भविष्य में जब पर्याय होगी, वैसा वर्तमान में जानते हैं। आहा..हा..! और उस भूत की / गत काल की पर्याय कारणरूप से अन्दर जाती है, भविष्य की पर्याय की योग्यता अन्दर वर्तमान में है, परन्तु देखनेवाली केवलज्ञान की पर्याय तो भूत, वर्तमान और भविष्य को वर्तमान जैसे वर्तता है, वैसे देखती है। आहा..हा..! समझ में आया? साधना का फल केवलज्ञान, वह क्या चीज़ है? अनन्त आनन्द के धाम में विराजमान प्रभु, पूर्ण रूप से। सम्यग्दर्शन, ज्ञान में अनन्त धाम में अपूर्णरूप से धाम में तो आया है। आहा..हा..! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द का धाम नाथ, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान में अल्पपना आनन्दधाम में आया है परन्तु जब पूर्ण आनन्दधाम में बसेगा, तब अनन्त केवलज्ञान प्रगट होगा। आहा..हा..! ऐसी चीज़ है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

तीन काल एवं तीन लोक को जान लेती है। आहा..हा..! परन्तु भूत की पर्याय

तो चली गयी। यह देखता है कि जिस समय में वहाँ भूत में थी, ऐसा भगवान केवलज्ञान में देखते हैं। वर्तमान में तो वहाँ द्रव्य में नहीं और भविष्य की पर्याय वर्तमान में नहीं परन्तु ऐसी होगी, ऐसा देखते हैं। यह तो क्या चैतन्य की...! भगवान केवलज्ञान साधक के फलरूप... आहा...हा...! उस केवलज्ञान में भी वर्तमान में तो विवाद। केवली तीन काल-तीन लोक देखे तब तो क्रमबद्ध हो जाता है। क्या कहा? समझ में आया? द्रव्य में जिस समय में जो पर्याय वहाँ होगी और हुई है, ऐसा जाने वह तो क्रमबद्ध हो गया। क्रमबद्ध ही है। आहा..हा..! समझ में आया? तब बड़ा विवाद था न? (संवत्) २०१३ के वर्ष, वर्णीजी के साथ चर्चा हुई थी। २१ वर्ष हुए। बहुत चर्चा हुई थी। आये थे? मालचन्दजी! आये थे? नहीं? तुम आये थे? ठीक। बहुत चर्चा हुई थी। वे कहें, नहीं, एक के बाद एक पर्याय होती है परन्तु इसके बाद यही होगी, ऐसा नहीं है। कहा - नहीं, ऐसा ही होता है। दीपचन्दजी सेठिया आये थे।

भाई! प्रभु! वस्तु ऐसी है कि जैसे मोती का हार है हार, तो जहाँ-जहाँ जो मोती है वहाँ वह मोती है। आगे-पीछे नहीं। भगवान आत्मा और अनन्त द्रव्य। जहाँ-जहाँ पर्यायरूपी मोती है, वहाँ-वहाँ वह रहेगा, आगे-पीछे नहीं। आगे-पीछे कोई नहीं कर सकता। आगी-पाछी को क्या कहते हैं? आगे-पीछे। आहा..हा..! वैसे ही केवलज्ञान ऐसे प्रत्यक्ष जानता है। आहा..हा..! मुझे तो ऐसा कहना था कि द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध है, ऐसा तुमको न जँचे तो केवलज्ञान से देखो। 'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसि वीरा, अणहोनी कबहूँ न होसे काहे होत अधीरा?' द्रव्य का स्वभाव ही क्रमबद्ध है, ऐसा तुम्हें कदाचित् न जँचे तो केवलज्ञान से लो। एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक एक समय में (जानती है)। आहा..हा..! बस, वह वीतरागभाव और केवलज्ञान में ज्ञात होती है। सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता है। समझ में आया? आगे-पीछे हो और मैं पुरुषार्थ से बदल सकूँ, यह बात ही नहीं है। वह पुरुषार्थ की दशा ही ऐसी है। आहा..हा..!

केवलज्ञान की पर्याय एक समय में ज्ञानपर्याय, एक समय की ज्ञानपर्याय तीन काल-तीन लोक को जानती है। आहा..हा..! बापू! देख। तेरी पर्याय का स्वभाव... पूर्ण पर्याय का स्वभाव ऐसा है। समझ में आया? आहा..हा..! तेरे दरबार में तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द पड़ा है, प्रभु! आहा..हा..! इसका जहाँ अनुभव करते-करते स्थिर होकर जब केवलज्ञान होगा, तो तीन काल-तीन लोक की पर्याय एक समय में जान लेता है। यह तो अपनी पर्याय जानती है तो तीन काल की पर्याय जानी, ऐसा कहा जाता है। आहा..हा..!

अरे इसका ज्ञानस्वभाव, जिसका ज्ञानस्वभाव और वह भी सर्वज्ञ ज्ञानस्वभाव। आत्मा का सर्वज्ञ ज्ञानस्वभाव है। वह ज्ञानस्वभाव कहो या 'ज्ञ' स्वभाव कहो या ज्ञायकभाव कहो... आहा..हा..! वह ध्रुव ज्ञायकभाव, ध्रुव सर्वज्ञस्वभाव, ध्रुव ज्ञानभाव, जिसकी सामर्थ्य का पार नहीं। आहा..हा..! पहले जब ऐसी दृष्टि होती है, तब तो सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! पुण्य-पाप (अधिकार में) गाथा आती है न? ऐसा कि सर्व से सर्व को नहीं जानता। सर्वज्ञ ज्ञानी होने पर भी, सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु का स्वरूप है। प्रत्येक आत्मा का। उस पण्डित के साथ बहुत चर्चा हुई थी। सेठ आये थे, पण्डित जीवंधर आये थे। कुछ खबर नहीं होती। सब पण्डित पढ़-पढ़कर पढ़े, ऐसा कहते हैं, देखो! इस प्रकार शक्ति में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तथापि निज कर्म आच्छादन को, ऐसा पाठ है। निज कर्म से ढँका हुआ है। वहाँ यह कहे देखो! कर्म आया। परन्तु ऐसा है नहीं। पाठ में ऐसा अर्थ ही नहीं है। अपने पुरुषार्थ से, ऐसा पाठ है। यह लोग कर्म के कारण ढँक गया, (ऐसा कहते हैं)। कर्म तो जड़ है। परद्रव्य से तेरी पर्याय ढँक जाती है। तेरी पर्याय तेरी निर्बलता के कारण उल्टी होती है, तो कर्म तो निमित्त है। वह कहीं कर्म के कारण तुझमें हुआ है? आहा..हा..! गजब बात, भाई! निमित्त से होता है, निमित्त से होता है, ऐसा कहे। देखो! केवलज्ञानावरणीय प्रकृति केवलज्ञान को रोकती है। झूठ बात है। ऐसा है ही नहीं। भावकेवलज्ञान की पर्याय भावघाति स्वयं से घात हुआ है, तब ज्ञानावरणीय कर्म को निमित्त कहा गया है। ऐसी बात है। 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' कर्म से नहीं। आहा..हा..! देखो न! यह शरीर। क्षण में दो घण्टे में हाथ काट डालना पड़ा। हीराभाई! सुना है? अपने बाबूभाई के काकाजी हैं। यहाँ एकदम काला (दाग) आया। अरे! क्या हुआ? वहाँ आधा घण्टा हुआ, वहाँ यह सब सड़ गया। ठण्डा... ठण्डा... ठण्डा... अन्दर जलन.. जलन.. थोड़ी देर दो घण्टे हुए, वहाँ यहाँ तक हो गया। डॉक्टर के पास गये। उसने कहा, काट डालो, नहीं तो आगे बढ़कर अभी देह छूट जायेगी। यह जड़। आहा..हा..! हाथ काट दिया। यहाँ से ऐसे टूट गया। आहा..हा..! दो घण्टे पहले शरीर में कुछ नहीं और दो घण्टे बाद शरीर के टुकड़े। आहा..हा..! जड़ की दशा, बापू! अरे! तेरे रखने से रहे, ऐसा नहीं है। यह तो जिस समय में जो पर्याय होनी है, वह होगी, होगी और होगी। आहा..हा..! उसका तू जाननेवाला रह। फेरफार करनेवाला तू नहीं है। आहा..हा..! ऐसे जाननेवाला रहने से ज्ञानधारा में पुरुषार्थ उग्र होता है तो केवलज्ञान हो जाता है। आहा..हा..! २८४ (बोल पूरा) हुआ। इसमें माल-माल आया है। मालचन्दजी! माल आया है।

स्वयं पर से और विभाव से भिन्नता का विचार करना चाहिए। एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है। प्रतिक्षण एकत्व को तोड़ने का अभ्यास करना चाहिए॥२८५॥

स्वयं पर से और विभाव से भिन्नता का विचार करना चाहिए। आहा..हा..! **स्वयं पर से...** रागादि, कर्म आदि से, पर से और विभाव से। शरीरादि कर्म से और अपनी पर्याय में विभाव से भिन्नपने का विचार करना चाहिए। शरीर, जड़, मिट्टी, धूल... आहा..हा..! कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार यह सब पर, इनसे भिन्नपने का विचार करना चाहिए और तदुपरान्त अन्दर में पुण्य-पाप के भाव, विभाव होता है, उससे भी भिन्नपने का विचार करना चाहिए। समझ में आया?

स्वयं पर से... पर से, विभाव से भिन्नपने का विचार स्वयं करना चाहिए। आहा..हा..! शास्त्र सुनने से यह विचार आता है, ऐसा नहीं कहते। स्वयं विचार करना चाहिए। आहा..हा..! मैं देह से भिन्न, विभाव से भी भिन्न, स्वभाव से मैं अभिन्न हूँ - ऐसा स्वरूप है, प्रभु! क्या हो? ऐसा विचार करना चाहिए। **एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है।** पर मेरा और राग विभाव मेरा, ऐसी एकत्वबुद्धि तोड़ना, यह मुख्य वस्तु है। '**एयत्तविहत्तं**' एकत्व-विभक्त आता है न? आहा..हा..! '**एयत्तविहत्तं**' एकत्व-विभक्त स्वरूप में एकत्व और राग से विभक्त। पाँचवीं गाथा। आहा..हा..! भाई! मार्ग तो बहुत ऐसा है।

एकताबुद्धि तोड़ना वह मुख्य है। प्रतिक्षण एकत्व को तोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। आहा..हा..! किसी समय क्षण में करे, उससे कुछ न हो सके। आहा..हा..! क्षण-क्षण में पर से, राग से, विभाव से भिन्न होने का अभ्यास करना चाहिए। क्षण-क्षण में करना चाहिए। आहा..हा..! जैसे शरीर मेरा है, ऐसे हो गया न? तो शरीर के नाम से बुलावे तो बोलता है, हाँ.. हाँ.. परन्तु तू कहाँ शरीर है? ऐसा क्षण-क्षण में इसकी एकताबुद्धि है, ऐसे क्षण-क्षण में भिन्न पड़ने का अभ्यास करना चाहिए। आहा..हा..! शरीर में रोग आवे, श्वास का दम आवे, वह जड़ की पर्याय है, प्रभु! पर है। उस ओर का जरा राग आवे, द्वेष आता है, वह विभाव है। आहा..हा..! पर से और विभाव से भिन्न पड़ने का अभ्यास करना चाहिए। प्रतिक्षण **एकत्व को तोड़ने का अभ्यास करना चाहिए।** आहा..हा..! २८५ (बोल पूरा) हुआ।

यह तो अनादि का प्रवाह मोड़ना है। कार्य कठिन तो है, परन्तु स्वयं ही करना है। बाह्य आधार किस काम का ? आधार तो अपने आत्मतत्त्व का लेना है॥२८६॥

२८६। **यह तो अनादि का प्रवाह मोड़ना है**। क्या कहते हैं ? राग की ओर का झुकाव तो अनादि का है। है ? उसे बदलना है, फिराना है। आहा..हा..! शुभ-अशुभराग, शरीरादि परद्रव्यों का... आहा..हा..! प्रवाह अनादि का है। इस ओर का झुकाव तो (अनादि से है)। आहा..हा..! तेरा भगवान की ओर झुकाव नहीं है। क्या कहना है ? **यह तो अनादि का प्रवाह मोड़ना है**। अनादि का प्रवाह बदलना है। अनादि जो अभ्यास है, उसे बदलना है, गुलाँट खाना है। आहा..हा..! जानपना विशेष हो या न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। आहा..हा..!

अनादि का प्रवाह मोड़ना है। कार्य कठिन तो है,... इस ओर दया, दान, राग अशुभभाव और पर की ओर की दृष्टि तो अनादि की है। आहा..हा..! अनन्त काल की पर की ओर की दृष्टि का प्रवाह बदलना कठिन तो है, प्रभु! आहा..हा..!

मुमुक्षु : अमुक जगह ऐसा कहा है कि सुगम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुगम तो, स्वरूप है इस अपेक्षा से। यह तो अनादि का अभ्यास है न ? इस अपेक्षा से कहा। अनादि का अनन्त-अनन्त काल का (अभ्यास है)। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक अनन्त बार गया, परन्तु स्वभाव के अनभ्यास से। अभ्यास वह कि पर की क्रिया मैं हूँ, विभाव मैं हूँ, शरीर मैं हूँ। आहा..हा..! क्योंकि जो स्वरूप है, वह तो ख्याल में आया नहीं, तो कहीं अस्तित्व तो मानना पड़ेगा। बराबर है ? क्या कहा ? अपना जो अस्तित्व भगवान पूर्णानन्द के नाथ की मौजूदगी चीज़ है, वह तो ख्याल में आयी नहीं, तो अपना अस्तित्व कहीं मानना तो पड़ेगा न ? आहा..हा..! तो जो कुछ राग, शरीर, वाणी आदि परचीज़ जानने में आयी, उसमें यह मेरा है, उसमें अस्तित्व माना, यह (आत्मा) मेरा अस्तित्व है, वह छूट गया। आहा..हा..! समझ में आया ?

कार्य कठिन तो है,... काम क्यों कठिन है ? अनादि का प्रवाह है, उसे बदलना है इसलिए। आहा..हा..! नदी में पानी घोत ऐसे जाता हो, उसे इस ओर लाना... आहा..हा..!

कार्य कठिन तो है,... अनादि का अभ्यास है। आहा..हा..! कोई भी पल 'पर मेरा है' ऐसा प्रवाह अनादि से छूटा नहीं है। कोई भी पल। मुनि हुआ, दिगम्बर सन्त हुआ, तथापि ये महाव्रत के परिणाम राग, यह मेरी क्रिया है, मुझे लाभदायक है, ऐसी एकत्वबुद्धि वहाँ तक चालू रही है। आहा..हा..! दिगम्बर मुनि हुआ, बड़ा राजपाट छोड़ा, बाल ब्रह्मचारी हुआ, परन्तु अन्दर में यह राग का भाव विकल्प है, उससे रहित वस्तु का ख्याल नहीं है। वह पूर्णानन्द का नाथ अन्दर अस्तित्वरूप सम्बन्ध मौजूदगी चीज़ पड़ी है। उसका अन्तर पूर्ण अस्तित्व है, वह तो प्रतीति में आया नहीं, तो कहीं अपना अस्तित्व तो मानना पड़ेगा न? आहा..हा..! राग, दया, दान, काम, क्रोधादि और उनके फलरूप से ये बाहर के संयोग दिखाई दें, वे अपने हैं - ऐसा माना है। यह तो अनादि का है। अनन्त काल में कोई एक समय भी मेरे नहीं हैं, ऐसी दृष्टि कभी नहीं हुई। पर मेरा नहीं, ऐसी दृष्टि नहीं हुई। पर मेरा है, ऐसी दृष्टि रही। प्रवाह बदलना है न? आहा..हा..!

परन्तु स्वयं ही करना है। भले अनादि का अभ्यास है परन्तु अन्दर तोड़ने का अभ्यास स्वयं ही करना है। कोई करा दे, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! क्या कहा? पर का अभ्यास अनादि से है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त काल, जिस काल की आदि नहीं, ऐसे अनादि.. अनादि.. अनादि.. आदि नहीं। इतने काल से राग और पर मेरे हैं, ऐसा अभ्यास है। अब उसे बदलना है। वह कठिन तो है। आहा..हा..! ज्ञान की पर्याय, वह राग और पर मेरे, इस अभ्यास से मानती थी, उसके ज्ञान की पर्याय को अन्तर में झुकाना, भेद करना, कठिन तो है, परन्तु कार्य का कर्ता तो स्वयं है। इसलिए कार्य तो करना पड़ेगा। आहा..हा..! समझ में आया?

स्वयं ही करना है। कोई अन्दर से भेदज्ञान करा दे, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! **बाह्य आधार किस काम का?** देव-गुरु-शास्त्र और उनकी ओर की श्रद्धा का राग, वह किस काम का? आहा..हा..! देव-गुरु-शास्त्र भी कोई भेद करने में आधार नहीं हैं। आहा..हा..! ऐसा मार्ग!

मुमुक्षु : मार्ग तो ऐसा ही होता है, दूसरा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग यही है, ऐसा ही है। आहा..हा..! अनादि का अभ्यास होने पर भी, प्रभु! तुझे वह अभ्यास छोड़ना पड़ेगा। क्योंकि **स्वयं ही करना है।** कठिन है परन्तु करना पड़ेगा। आहा..हा..! राग और परद्रव्य मेरे, इस प्रकार का प्रवाह तो अनादि से चला

आता है। अब उसे एक क्षणमात्र में भिन्न करना, कठिन है। परन्तु तुझे करना पड़ेगा। एक क्षण में भिन्न हो जाता है। आहा..हा..! समझ में आया? ज्ञानस्वरूप प्रकाश का बिम्ब प्रभु, उसका लक्ष्य करके राग को तोड़ना-भिन्न करना। उस ओर का लक्ष्य है, वहाँ एकत्वबुद्धि है। वह लक्ष्य छोड़कर स्व की ओर का लक्ष्य करना चाहिए। आहा..हा..!

परन्तु स्वयं ही करना है। बाह्य आधार किस काम का?... देव-गुरु-शास्त्र या शरीर का संहनन-मजबूती या निरोगता किस काम की? आहा..हा..! वे तो सब पुद्गल की-पर की अवस्थायें हैं। वह भेद करने में क्या काम आवे? क्या कहते हैं? दया, दान आदि देव-गुरु-शास्त्र का राग हुआ, परन्तु राग से भिन्न पड़ना है, उसमें राग का क्या आधार होगा? समझ में आया? आहा..हा...! जिसे भिन्न करना है, उसे यह आधार क्या काम करेगा? आहा..हा..! ऐसी बात, प्रभु!

बाह्य आधार किस काम का? आधार तो अपने आत्मतत्त्व का लेना है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की पर्याय में उसका आधार लेना। जिसे राग को भिन्न करना है, उसका आधार काम नहीं आता। यह लोग कहते हैं न कि व्यवहाररत्नत्रय करते-करते निश्चय होगा। वह झूठ है। आहा..हा..! (बाहर) वर्षा आयी। यह वर्षा अमृत की है। आहा..हा..!

राग से भिन्न करना है, उसमें भिन्न करने में राग आधार किस प्रकार होगा? समझ में आया? उसमें क्या कहा? जो लोग ऐसा कहते हैं कि कषाय की मन्दता करो.. मन्दता करो.. मन्दता करो..! और मन्दता करते-करते अन्दर में निश्चय हो जायेगा। आहा..हा..! कहते हैं, **बाह्य आधार किस काम का?** वह आधार ही नहीं हो सकता। आहा..हा..! भाषा सादी, परन्तु भाव बहुत ऊँचा। सरल जैसी गुजराती भाषा। यह तो बाद में हिन्दी किया है। आहा..हा..!

अनादि का अभ्यास भी तूने किया है न? किसी कर्म ने कराया है? किसी दूसरे ने कराया है? जैसे तूने कर्ता होकर किया है, उसे छोड़ दे। जिसने जोड़ा, वह तोड़े। आहा..हा..! जिसने राग के साथ जोड़ा था, वह तोड़े। आहा..हा..! पहले ज्ञान में यथार्थपना भावभासन होना चाहिए। आहा..हा..! कि भाई! यह तोड़ना क्या? एकता क्या? समझ में आया? ऐसी बातें हैं, भाई! मूल बात के बिना यह व्रत-तप करके मर जाये, आहा..हा..! रस त्याग किया, यह त्याग किया, रूखा खाता है.. क्या खाता है? चिकना खाता है, अन्दर आत्मा आनन्द को भूलकर राग को खाता है। आहा..हा..!

आधार तो अपने आत्मतत्त्व का लेना है। यह क्या कहा? कि जो राग की मन्दता

है, उससे भिन्नता करनी है, तो उसमें राग की मन्दता का आधार उसमें काम नहीं लगेगा। आधार तो भगवन त्रिलोकनाथ परमात्मा का आधार काम आयेगा। आहा..हा..! समझ में आया? निमित्त के आधार से अपने को भिन्न करना है? निमित्त पर है, उससे भिन्न करने में निमित्त आधार है? राग से भिन्न करने में राग आधार है? आहा...हा...! वह तो साधारण भाषा समझ में आये ऐसी है।

आधार तो अपने आत्मतत्त्व का लेना है। आहा..हा..! क्या कहते हैं? राग की मन्दता का जो भाव है, उससे मुझे लाभ होगा, यह अनादि की दृष्टि है, उसे छोड़ दे। आहा..हा..! भगवान आत्मा का आधार ले। त्रिलोक का नाथ चैतन्य प्रभु विराजता है। आहा..हा..! उसका आश्रय ले। आहा..हा..! समझ में आया? सादी भाषा में कितनी बात है! बहुत लोग अब तो यह पढ़ते हैं।

आधार, ऐसा कहकर क्या कहा? निमित्त और राग, वे मेरे हैं – ऐसा अभ्यास तो अनादि का था। अब उसे बदलना है, गुलाँट खानी है। अत: गुलाँट खाने में, बदलने में राग की मन्दता और निमित्त कोई आधार नहीं है। जिनसे भिन्न करना है, उसमें वे आधार नहीं होते। उन्हें भिन्न करने में आधार तो भगवान ज्ञायकस्वरूप का आश्रय लेना, वह आधार है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। वस्तुस्थिति ऐसी है। आहा..हा..! २८६ (बोल पूरा) हुआ। थोड़ा-थोड़ा है न? शब्द थोड़े-थोड़े हैं।

द्रव्य सदा निर्लेप है। पर्याय में सबसे निर्लेप रहने जैसा है। कहीं खेद नहीं करना, खिंचना नहीं—कहीं अधिक राग नहीं करना॥२८७॥

२८७। **द्रव्य सदा निर्लेप है**। वस्तु जो वस्तु ज्ञायकस्वभावभाव, त्रिकाली ज्ञायकस्वभावभाव, वह द्रव्य तो निर्लेप है। उसमें कोई लेप नहीं है। राग का लेप भी नहीं, कर्म का लेप-आवरण नहीं, कुछ नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बात! राग का लेप है, वह तो पर्याय में है; द्रव्य में नहीं। द्रव्य तो त्रिकाली निर्लेप वस्तु पड़ी है। आहा..हा..!

द्रव्य सदा निर्लेप है। वस्तु ज्ञानस्वभावभाव, द्रव्यस्वभावभाव सदा निर्लेप है। उसमें तो आवरण भी नहीं, अशुद्धता नहीं, अल्पता नहीं। आहा..हा..! अरे! ऐसी बात। **पर्याय में सबसे निर्लेप रहने जैसा है**। अब तो कहते हैं, द्रव्य तो सदा निर्लेप है, परन्तु

पर्याय में सबसे निर्लेप रहने योग्य है। आहा..हा..! निर्लेप भाव भगवान का आश्रय करके पर्याय में लेपरहित रहना है। पर्याय में राग और निमित्त के लेपरहित रहना। वस्तु जैसी है, वैसे पर्याय में रहना, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? वस्तु निर्लेप है, तो उसका आश्रय करना तो पर्याय में भी निर्लेपता रहना। राग का सम्बन्ध और निमित्त का सम्बन्ध नहीं रहना। आहा..हा..! वस्तु निर्लेप है, उसका सम्बन्ध रहा; राग का सम्बन्ध और निमित्त का सम्बन्ध तोड़ा तो पर्याय में निर्लेपता हुई। जैसा द्रव्य निर्लेप है, वैसा मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहो या निर्लेप कहो, एक ही बात है। आहा..हा..! क्या कहा? भगवान...

मुमुक्षु : निर्लेप के आश्रय से निर्लेपता प्रगट होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्लेप के आश्रय से निर्लेपता प्रगट होती है अर्थात् क्या? कि वह वस्तु जो निर्लेप है, उसकी प्रतीति हुई, उसका ज्ञान हुआ, वह निर्लेप में से हुआ, वह निर्लेप वस्तु है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। लोगों को कठिन पड़ती है। अभ्यास नहीं है और अभी तो सब विपरीत अभ्यास चलता है। आहा..हा..! जो करने योग्य है, वह अभ्यास छोड़ दिया और अनादि का अभ्यास चालू रखा। राग करना, ऐसा करना, वैसा करना।

भगवान वस्तु निर्लेप, निर्दोष, अनावरणी, अशुद्धतारहित शुद्ध, अपूर्णरहित पूर्ण है। वह द्रव्य जो निर्लेप, निर्दोष और वीतरागस्वरूप है, उसे राग से भिन्न करने में भगवान का आधार लेकर पर्याय में निर्लेपता प्रगट की है। पर्याय में निर्लेपता रहना, वह मोक्षमार्ग है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें गुरु के उपदेश का आधार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी का आधार-फाधार नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ कि दूसरी चीज़ है। जो अपने आधार में काम नहीं करती। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। स्वतन्त्र कर्ता। उसमें परता नाम का गुण है कि जो स्वतन्त्र कर्ता। आहा..हा..! राग और निमित्त का जिसमें सम्बन्ध नहीं। आहा..हा..! भगवान आत्मा उसमें आनन्द और ज्ञान जैसे अनादि गुण हैं, ऐसा कर्ता नाम का एक गुण है। वह कर्ता गुण है, वह निर्लेप द्रव्य को पकड़ने से कर्ता गुण,

राग की क्रिया बिना वीतरागी पर्याय का कर्ता होकर निर्दोष दशा प्रगट होती है। आहा..हा..! अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट) होते हैं। जो चीज़ निर्लेप है, उसका आधार लेकर सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ, स्थिरता-शान्ति हुई, वह सब निर्लेप में से आया, निर्लेप है। आहा..हा..! यह निर्लेप कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो। आहा..हा..! समझ में आया? वे (अन्य लोग) कितने ही मजाक करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य का छोड़कर बहिन का (बहिनश्री के वचनामृत) पढ़ने लगे। यह वाणी तो एक का एक प्रकार है। सुन न! अरे! आहा..हा..! वे मजाक करते हैं, ऐसा करके। कैलाशचन्दजी ने ऐसा लिखा है। अरे प्रभु! क्या करता है? बापू! आहा..हा..!

सम्यग्दृष्टि की वाणी हो या केवली की हो, वह तो जो है वह है। अरे! तिर्यंच के समकित में और सिद्ध के समकित में कोई अन्तर नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है। आहा..हा..! द्रव्य अर्थात् वस्तु, निर्दोष वीतरागस्वरूप निर्लेप है। पर्याय में सबसे निर्लेप रहना चाहिए। राग से और पर से भिन्न होकर अपने स्वभाव के आश्रय से निर्लेप पर्याय में रहना चाहिए। आहा..हा..!

निर्लेप रहने जैसा है। पर्याय में सबसे निर्लेप रहने जैसा है। आहा..हा..! **कहीं खेद नहीं करना,...** प्रतिकूल संयोग देखकर खेद नहीं करना। अनुकूलता में **खिंचना नहीं...** अनुकूलता में खिंचना और ललचना नहीं। आहा..हा..! **कहीं खेद नहीं करना, खिंचना नहीं...** अर्थात् लाईन की, इसका अर्थ यह। लाईन क्यों की? इसका अर्थ यह। खिंचना नहीं अर्थात् क्या? **—कहीं अधिक राग नहीं करना।** आहा..हा..! कमजोरी के कारण राग आता है, परन्तु राग का राग करना, ऐसा नहीं है। उस राग का प्रेम नहीं करना। जिसे राग का प्रेम है, उसे भगवान स्वभाव हेय है; और जिसे भगवान स्वभाव उपादेय है, उसे रागभाव हेय है। ऐसी बात है। भाषा तो बहुत संक्षिप्त परन्तु भाव तो यह है, भाई! आहा..हा..!

कहीं खेद नहीं करना,... अर्थात् द्वेष नहीं करना और **खिंचना नहीं अर्थात् कहीं अधिक राग नहीं करना।** अधिक अर्थात् राग अधिक हो जाये और स्वभाव ढँक जाये, ऐसा नहीं करना। समझ में आया? कमजोरी के कारण राग आवे, वह अलग बात है। राग अधिक नहीं करना। स्वभाव की अपेक्षा राग विशेष है, यह नहीं करना। आहा..हा..! २८७ (बोल पूरा हुआ।)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

असोज कृष्ण १, मंगलवार, दिनाङ्क ०३-१०-१९७८
वचनामृत-२८८ से २९० प्रवचन-१०८

वस्तु सूक्ष्म है, उपयोग स्थूल हो गया है। सूक्ष्म वस्तु को पकड़ने के लिये सूक्ष्म उपयोग का प्रयत्न कर॥२८८॥

२८८वाँ बोल है न ? **वस्तु सूक्ष्म है,...** भगवान आत्मा... परमाणु भी सूक्ष्म है परन्तु यहाँ अभी आत्मा की बात है। वस्तु अरूपी सूक्ष्म है। अनादि से एक समय की पर्याय जो प्रगट है, व्यक्त प्रगट पर्याय, उस पर इसकी अनादि से दृष्टि है, परन्तु पर्याय के समीप में वस्तु सूक्ष्म अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, ऐसी सूक्ष्म वस्तु पड़ी है। आत्मतत्त्व। एक समय की वर्तमान पर्याय जो चलती है, उस पर तो इसकी अनादि से दृष्टि है। परन्तु पर्याय के समीप में सूक्ष्म (वस्तु पड़ी है, उस पर लक्ष्य नहीं है)। पर्याय है, वह भी वर्तमान स्थूल है। पर के लक्ष्यवाली पर्याय (स्थूल है)। आहा..हा..! वस्तु अन्दर सूक्ष्म अन्तर्मुख, पर्याय के अन्तर द्रव्य वस्तु सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म है।

उपयोग स्थूल हो गया है। अनादि से... यह सूक्ष्म बात, भाई! ज्ञान की पर्याय में उपयोग अर्थात् उसका व्यापार स्थूल हो गया है। राग और पुण्य, पाप, शरीर, वाणी, मन - ऐसा परलक्ष्यी **उपयोग स्थूल हो गया है।** स्थूल समझते हो न ? आहा..हा..!

सूक्ष्म वस्तु को पकड़ने के लिये... सूक्ष्म भगवान आत्मा अरूपी चिद्घन, ज्ञायक, यह पर्याय की प्रगटता अंश है, इस अपेक्षा से उसे-त्रिकाली को ज्ञायक कहा। परन्तु अनन्त त्रिकाल ज्ञायक है। ध्रुव अनन्त आनन्द है ध्रुव। अनन्त सत्ता स्वभाव सूक्ष्म चैतन्य-दर्शन, ज्ञान, आनन्द, वह वस्तु सूक्ष्म है। उस **वस्तु को पकड़ने के लिये सूक्ष्म उपयोग का प्रयत्न कर।** आहा..हा..! ऐसी बात लोगों को (कठिन पड़ती है)। परमार्थ वचनिका में ऐसा कहा है कि आगमपद्धति का व्यवहार इसे सरल हो गया है। पंच महाव्रत, दया,

दान, व्रत, भक्ति, पूजा... आहा..हा..! यह आगम का जो व्यवहार, व्यवहार, वह इसे अनादि से सरल हो गया है। आहा..हा..! इसलिए अन्दर अध्यात्म का व्यवहार भी जानने में आया नहीं। आहा..हा..!

लोग ऐसा कहते हैं कि यह एकान्त है... एकान्त है, ऐसा कहते हैं। शोर मचाते हैं। भाई! राग की मन्दता की क्रिया से भी अन्तर आत्मज्ञान होता है, यह बात सत्य नहीं है क्योंकि राग जो मन्द राग—दया, दान, व्रत आदि, वह स्थूल उपयोग है। आहा..हा..! यी परलक्ष्यी उपयोग है। सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान अन्दर सूक्ष्म वस्तु पड़ी है। आहा..हा..! आनन्द और ज्ञान का पिण्ड, पुंज। आनन्द का, ज्ञान का, शान्ति का (पुंजस्वभाव)। शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. अकषायस्वभाव, शान्तस्वभाव अन्दर सूक्ष्म पड़ा है। आहा..हा..! उस सूक्ष्म वस्तु को पकड़ने के लिये उपयोग का प्रयत्न सूक्ष्म कर। आहा..हा..!

जो ज्ञान की वर्तमान दशा का उपयोग, अन्दर पकड़ सके ऐसा उपयोग कर – ऐसा कहते हैं। ज्ञायक अनन्त आनन्दस्वभाव से भरपूर प्रभु / द्रव्य सूक्ष्म है। अरूपी तो है परन्तु सूक्ष्म है। आहा..हा..! तो उसे पकड़ने के लिये यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से पकड़ में नहीं आता। वह तो स्थूल उपयोग है, भाई! यह लोगों को कठिन पड़ता है न? आहा..हा..! यहाँ का (सोनगढ़ का) साहित्य एकांतिक है – ऐसा (वे लोग) कहते हैं। आहा..हा..! भाई! सम्यक् एकान्त तो उसे कहते हैं कि ज्ञान का सूक्ष्म उपयोग करके, अन्तर वस्तु है, उसे पकड़े, उसका नाम सम्यक् एकान्त उपयोग कहते हैं। वह सम्यक् एकान्त है और राग से, पुण्य से, क्रिया से लाभ होगा, निश्चय से भी होगा और व्यवहार से भी (लाभ) होगा, यह मिथ्या अनेकान्त है। सुमेरुमलजी! ऐसा मार्ग है, प्रभु! लोग क्या करे? आहा..हा..!

ऐसा कि ऐसी भक्ति करे, व्रत पाले, नग्न मुनि आजीवन का ब्रह्मचर्य पाले और सत्य बोले.. परन्तु सत्य कहना किसे? भाई! आहा..हा..! जिसकी प्ररूपणा में, उपदेश में ऐसा चलता है कि व्रतादि की क्रिया, राग की मन्दता से अपने को लाभ होगा, वह उपदेश ही मिथ्या उपदेश है। आहा..हा..! क्योंकि भगवान तो सूक्ष्म है। आहा..हा..! वे राग की मन्दता के परिणाम स्थूल हैं। पुण्य-पाप अधिकार में तो कहा है कि शुभविकल्प है, वह स्थूल है। पुण्य-पाप अधिकार में (कहा है)। आहा..हा..! पाप के परिणाम तो स्थूल हैं... आहा..हा..! परन्तु भगवान की भक्ति का भाव, व्रत पालने का भाव, ब्रह्मचर्य पालने का

भाव... आहा..हा..! वह भी स्थूल विकल्प है, स्थूल है–स्थूल है – ऐसा लिया है। वह स्थूल उपयोग अपने को (आत्मा को) पकड़ नहीं सकता। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। इसीलिए कहा **सूक्ष्म वस्तु को पकड़ने के लिये...** धीर... धीर... **सूक्ष्म उपयोग का प्रयत्न कर।** प्रयत्न से प्रगट होगा। आहा..हा..! पहली स्थिति की बात है। आहा..हा..!

चैतन्य की गहरी भावना तो अन्य भव में भी चैतन्य के साथ ही आती है। आत्मा तो शाश्वत पदार्थ है न? ऊपरी विचारों में नहीं परन्तु अन्तर में मंथन करके तत्त्वविचारपूर्वक गहरे संस्कार डाले होंगे तो वे साथ आयँगे।

''तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्॥''

जिस जीव ने प्रसन्नचित्त से इस चैतन्यस्वरूप आत्मा की बात भी सुनी है, वह भव्य पुरुष भविष्य में होनेवाली मुक्ति का अवश्य भाजन होता है॥२८९॥

२८९। **चैतन्य की गहरी भावना...** गहरी। चैतन्यस्वभाव जो पूर्ण सूक्ष्म पड़ा है, उस ओर की एकाग्रता–भावना–गहरी–गहरी अन्दर ले जा। आहा..हा..! पर्याय के पाताल में, पर्याय के अन्दर भगवान पूर्णानन्द प्रभु विराजता है। आहा..हा..! वहाँ गहरी भावना ले जा। गहरी है न? गुजराती में ऊंडी कहते हैं। ऊंडी अर्थात् उस पर्याय को अन्दर में ले जा। आहा..हा..! ऐसी बातें अब। इसके बिना आत्मा नहीं पकड़ में नहीं आयेगा, प्रभु! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह तो राग है, शुभविकल्प है, स्थूल है, प्रभु! आहा..हा..! भगवान तो सूक्ष्म वीतरागी स्वभाव का पिण्ड है। अकषायस्वभाव का दल है। अकषायस्वभाव पर्याय में प्रगट होता है, वह कहाँ से आता है? अन्दर में अकषायस्वभाव शान्त... शान्त... शान्त... है। आहा..हा..! वह निर्विकल्प स्वभाव शान्त है। उसे पकड़ने को... आहा..हा..! सूक्ष्म उपयोग गहरी भावना करे। आहा..! तल को पकड़ने की एकाग्रता की भावना करे। ऐसी भाषा है। मालचन्दजी! आहा..हा..!

यहाँ तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की बात है। सबेरे तो सम्यग्दर्शन के बाद प्रत्याख्यान की बात चलती है न? आहा..हा..! सम्यग्दर्शन हुआ तो भी पर्याय में अभी

अव्रतभाव, रागभाव है। चौथे गुणस्थान में तीन कषाय का भाव है। आहा..हा..! यहाँ तो राग की एकता (छोड़कर) और स्वभाव की एकता करनी है। राग की एकता जो है, उसे तोड़कर स्वभाव की एकता करनी है। आहा..हा..!

चैतन्य की गहरी भावना... जहाँ अन्दर स्वभाव सूक्ष्म प्रभु (विद्यमान है)। एक समय की वर्तमान प्रगट पर्याय पर तेरी अनादि से क्रीड़ा है, परन्तु प्रभु अन्दर परमात्मस्वरूप विद्यमान है, उसे पकड़ने के लिये गहरी भावना चाहिए। गहरी-गहरी एकाग्रता-भावना चाहिए। आहा..हा..! उसमें-परमार्थवचनिका में लिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे तीन (चिट्ठियाँ हैं) उनमें परमार्थवचनिका है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी है, परमार्थवचनिका है, उपादान निमित्त (की चिट्ठी है)। ये तीन हैं। भाई ने पढ़ा था, उसमें ऐसा लिया है, भगवान! आगम में जो व्यवहार कहा, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, व्यवहार समकिती को भी, अनुभवी जीव को आता है परन्तु वह भाव शुभराग है। उस शुभराग का आचरण करना, वह तुझे अनादि का अभ्यास है, इसलिए सरल हो गया है, परन्तु उससे भिन्न चैतन्य सहजानन्द प्रभु... आहा..हा..!

एक सज्झाय में आया था न? कहा था, सज्झाय में (आता है)। उस समय दुकान पर पढ़ते थे। 'सहजानन्दी...' तब एक बार ऐसा कहा कि सहजानन्दी ऐसा जब कहे, तब यह तो स्वामी नारायण की बात है। उमराला में ऐसा हुआ था। ऊपर बात चलती थी, वहाँ उनके मकान में महिलायें बाहर बैठी थीं। वे सुनती थीं। कि महाराज (कहते हैं), सहजात्मस्वरूप सहजानन्दी.... तो सहजानन्दी तो स्वामी नारायण को हो। कुछ खबर नहीं होती। आहा..हा..! सहज स्वभाव... सहज स्वभाव, आनन्द, भगवान का स्वभाव ही आत्मा के सहजानन्दस्वरूप है। आहा..हा..! उस सहजानन्दस्वभाव को पकड़ने के लिये, प्रभु! सूक्ष्म उपयोग करना पड़ेगा। बहुत धीर होना पड़ेगा। आहा..हा..! परलक्ष्य छोड़ना पड़ेगा। आहा..हा..!

अनन्त-अनन्त काल गया। यह शुभ-अशुभ का अभ्यास तो अनादि का है। आहा..हा..! इससे अन्तर में ज्ञायक, शान्त, वीतराग अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसे पकड़ने के लिये सूक्ष्म उपयोग करना पड़ेगा, प्रभु! आहा..हा..! सण्डासी से सर्प पकड़ा जाता है, परन्तु सण्डासी से कहीं मोती पकड़ में आता है? सण्डासी, सूक्ष्म सण्डासी। सोनी की सवाणी अथवा ये लड़कियाँ मोती के तोरण बनाती हैं न? उसमें हाथी बनावे, वे

मोती कहीं सण्डासी से पकड़े जाते हैं ? उसी प्रकार भगवान आत्मा, राग के स्थूल उपयोग से पकड़ में नहीं आता। आहा..हा.. ! वह तो अन्दर रागरहित परिणाम में सूक्ष्मता रागरहित होकर... आहा..हा.. ! वस्तु पकड़ में आती है। ऐसी बात ! है तो सूक्ष्म उपयोग पर्याय; जैसे राग का भाव स्थूल उपयोग, वह भी पर्याय है। आहा..हा.. ! अरे रे !

चैतन्य की गहरी भावना तो अन्य भव में भी चैतन्य के साथ ही आती है। आहा..हा.. ! क्योंकि भगवान चैतन्य ज्ञायक शान्त है। इसकी एकाग्रता की भावना, संस्कार किये तो देह छूटने के बाद भी साथ में आती है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? जैसे द्रव्य नहीं छूटता, वैसे द्रव्य के संस्कार डाले, वे भी नहीं छूटते। आहा..हा.. ! समझ में आया ? **अन्य भव में भी चैतन्य के साथ ही आती है। आत्मा तो शाश्वत पदार्थ है न ?** भगवान तो शाश्वत् है न ? आदि-अन्तरहित चीज़ है न ? उसकी कोई शुरुआत है, उसका कोई अन्त है ? आहा..हा.. ! न छिदन्ति, न भिदन्ति-(ऐसा) गीता में भी आता है न ? वह छेदा नहीं जा सकता, भेदा नहीं जा सकता। गीता में तो यहाँ तक कहा है कि उस चीज़ का कोई कर्ता भी नहीं, ऐसा लिया है परन्तु लोग कर्ता... कर्ता... मानते हैं। समझ में आया ? वस्तु है, उसे करे कौन ? नहीं है, उसे बनाये कौन ? आहा..हा.. !

भगवान अन्दर वस्तु, शाश्वत ध्रुव, शाश्वत वस्तु अन्दर पड़ी है। आहा..हा.. ! वह **शाश्वत पदार्थ है न ? ऊपरी विचारों में नहीं परन्तु अन्तर में मंथन करके...** ऊपर-ऊपर से शास्त्र का विचार और... आहा..हा.. ! उससे पता नहीं लगता। समझ में आया ? ज्ञान की बहुत बात करे और धारणा बहुत हो जाये... आहा..हा.. ! उससे पकड़ में नहीं आता। भगवान सूक्ष्म है। धीर होकर सूक्ष्म उपयोग करके, मन्थन करके अन्तर में जा। **ऊपरी विचारों में नहीं परन्तु अन्तर में मंथन करके तत्त्वविचारपूर्वक गहरे संस्कार डाले...** आहा..हा.. ! गहरे.. गहरे.. गहरे.. गहरे.. ज्ञायक हूँ, शुद्ध-चैतन्य हूँ—ऐसे संस्कार अन्दर डाले.. आहा..हा.. ! वस्तु तो शाश्वत् है तो संस्कार साथ में आयेंगे। स्वर्ग में जायेगा, क्योंकि पंचम काल है तो अभी मुक्ति तो नहीं। आहा..हा.. ! परन्तु ऐसे संस्कार लेकर साथ में शुभभाव होता है, उसमें स्वर्ग का पुण्यबंध होगा, परन्तु वे संस्कार लेकर जायेगा। आहा..हा.. ! समझ में आया ? क्योंकि वस्तु शाश्वत है न ? ध्रुव है न ? तो शाश्वत में शाश्वत के संस्कार करने से वे शाश्वत वस्तु के साथ में ही जायेंगे। आहा..हा.. ! समझ में आया ? ऐसी बातें हैं। अरे !

डाले होंगे तो वे साथ आयँगे। अन्तर में मंथन करके अपने स्वरूप सन्मुख की एकाग्रता का प्रयत्न करके **तत्त्वविचारपूर्वक गहरे संस्कार डाले होंगे तो वे साथ आयेंगे।** आहा..हा..! जैसे शुभाशुभभाव करते हैं तो पुण्य-पाप बँधते हैं तो वे भी साथ में आयेंगे। स्वर्ग में जायेगा तो (वहाँ साथ में आयेंगे)। आहा..हा..! इसी प्रकार भगवान आत्मा की पर्याय की सूक्ष्मता करके अपार गहन स्वभाव से भरपूर भगवान के संस्कार साथ में आयेंगे। भले कहते हैं कि सम्यग्दर्शन पहले न हो, परन्तु यह संस्कार होंगे तो आगे जायेगा। आहा..हा..! आधार दिया है। है न? पद्मनन्दि पंचविंशति का श्लोक है। पद्मनन्दि पंचविंशति का २३वाँ श्लोक है। पद्मनन्दि आचार्य दिगम्बर सन्त जंगलवासी, उन्होंने पद्मनन्दि पंचविंशति (ग्रन्थ बनाया है)। निश्चय अधिकार है, उसमें यह अधिकार है।

''तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्॥''

'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन' आहा..हा..! संस्कार की धुरा द्रव्य में लगा दी। भावश्रुतज्ञान का.. भले अनुभव न हो, परन्तु अन्दर भावश्रुत यह शुद्ध चैतन्य ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... अखण्ड अभेद हूँ, ऐसे संस्कार डाले तो कहते हैं **'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन' जिस जीव ने प्रसन्नचित्त से...** प्रीति का अर्थ किया है (कि) प्रसन्नचित्त से। उकताहट नहीं कि यह सूक्ष्म है तो (छोड़ दो)। समझ में आया? **प्रसन्नचित्त से इस चैतन्यस्वरूप आत्मा की बात भी सुनी है,...** आहा..हा..! व्यवहार की सुनी है, निमित्त की सुनी है, उसका यहाँ प्रश्न नहीं। आहा..हा..! भगवान आत्मा अन्दर डोले, चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु... आहा..हा..! जैसे समुद्र भरा है, वैसे अनन्त गुण का समुद्र... समुद्र है। क्षेत्र भले थोड़ा, परन्तु स्वभाव की अनन्तता का पार नहीं। ऐसी बात। **'प्रीतिचित्तेन'** आहा..हा..!

चैतन्यस्वरूप... भगवान की। चैतन्यस्वरूप ऐसा है न? **'येन वार्तापि'** यह बात सुनी। आहा..हा..! **वह भव्य पुरुष...** वह भव्य पुरुष है। आहा..हा..! वह **भविष्य में होनेवाली मुक्ति का अवश्य भाजन होता है।** उसे अवश्य केवलज्ञान होगा। आहा..हा..! समझ में आया? आत्मा अन्दर पूर्णानन्द प्रभु है, उसकी वार्ता भी प्रेम से सुनकर संस्कार डाले होंगे तो वह भव्य जीव है, वह भविष्य में निर्वाण का भाजन होगा। निर्वाण पर्याय को प्राप्त होगा। आहा..हा..! समझ में आया? भले एक-दो भव हों, परन्तु उस भव में निर्वाण की प्राप्ति होगी, होगी और होगी ही। आहा..हा..!

जिसने सुई में डोरा... डोरा कहते हैं न ? धागा। सुई में डोरा पिरोया तो वह सुई नहीं खोयेगी। आहा..हा.. ! उसे कोई चिड़िया इसकी माला में ले गयी होगी, तो वह डोरा मेरा है, यह डोरा मेरा, यह डोरा है तो सुई है। हाथ में आयेगी। आहा..हा.. ! इसी प्रकार जिसने भगवान आत्मा, राग से रहित है, वीतरागमूर्ति है, अनाकुल आनन्द का कन्द है, सच्चिदानन्द प्रभु है, ऐसी चैतन्य की वार्ता प्रेम से सुनी है। यह इतना प्रश्न है, यह शर्त है। आहा..हा.. !

स्त्री-परस्त्री का प्रेम है तो इसके स्वप्न में भी वह आती है। वह स्त्री नहीं आती हो तो भी वह देखने में आती है, यह आयी... यह आयी... ऐसा लगता है। आहा..हा.. ! भ्रमणा... यह तो सच्ची भ्रमणा है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ, इस राग से भिन्न निर्मलानन्द प्रभु है। आहा..हा.. ! ऐसे परमात्मा शुद्ध चैतन्य की प्रेम से, हर्ष से, अन्दर रुचि से... आहा..हा.. ! यह बात सुनी है, **वह भव्य पुरुष भविष्य में...** भावि निर्वाण है न ? '**निश्चितं स भवेद्भव्यो**' निश्चय से वह भव्य ही है और '**भाविनिर्वाणभाजनम्**।' आहा..हा.. ! निसन्देह भविष्य में केवलज्ञान की भाजन दशा होगी। केवलज्ञान का पात्र होगा। वहाँ केवलज्ञान प्रगट हो, ऐसा पात्र होगा। आहा..हा.. !

अन्यमत में कहते हैं न 'हरतां फरतां प्रगट हरि देखूँ, मारुँ जीवूँ रे सफल तब लेखूं, ए ओघा मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे, ए ओघा जीवन दोरि अमारि रे।' आहा..हा.. ! वीतराग ज्ञायकस्वरूप को चलते-फिरते लक्ष्य में लूँ, मेरा नाथ परमात्मस्वरूप है। 'हरतां फरतां प्रगट प्रभु देखूँ' पर को देखूँ, वह नहीं - ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! देखनेवाले को देखूँ। आहा..हा.. ! 'मारुँ जीवूँ रे सफल तब देखूँ, आ मुक्तानन्दनो नाथ विहारी' भगवान मुक्तस्वरूप है, यह (समयसार १९८) कलश में आ गया है। मुक्तास्वरूप है, अबद्ध है। 'ए मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे ओघा जीवन....' हमारा जीवन उसमें रहे। आहा..हा.. ! जिसने आनन्द के नाथ को ढूँढ़कर खोज लिया। 'जीवन डोरी हमारी' वह तो जीवन की डोरी है। आहा..हा.. !

जिसने पर्याय में आत्मा के संस्कार लिये... आहा..हा.. ! अनादि से पर्याय में पुण्य और पाप के असंख्य प्रकार के संस्कार पड़े हैं। आहा..हा.. ! माता के उदर में बालक जन्म ले, तब बालक जन्म ले, तुरन्त वह बिना सिखाये माता का दूध पीता है। किसने सिखाया ? आहा..हा.. ! ये पूर्व के संस्कार हैं। आहा..हा.. ! वह माता का दूध पीता है... आहा..हा.. ! ऐसे बच्चा मुँह करे। किसने सिखाया ? अभी तो जन्मा है न ? पूर्व जन्म के संस्कार काम करते हैं। आहा..हा.. !

इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द को चूसने के संस्कार डाले हों। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसके प्रेम से उसकी बात सुनी हो। आहा..हा..! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है। इसलिए ऐसा कहते हैं, परन्तु उसका साधन? वह साधन यह सब करना, उसे साधन मानते हैं परन्तु वह साधन ही नहीं है, प्रभु! तेरा साधन तो प्रज्ञाज्ञान से राग को पृथक् करना, वह तेरा साधन है। आहा..हा..!

प्रज्ञाछैनी—राग और भगवान स्वभाव के बीच दरार है। बीच में दरार है। (गुजराती में) तड़ कहते हैं? जोड़, जोड़ नहीं सांध। भिन्न है। जोड़ नहीं, दरार है। समझ में आया? आहा..हा..! जंगल में बहुत पत्थर होते हैं न? उनमें बारीक रग होती है। देखा है? हमने तो सब देखा है। बारीक होती है, वहाँ सुरंग डाले और एकदम वहाँ से भागे और वहाँ दो की सपाटी अन्दर सरीखी होती है। वहाँ ऊपर से आगे-पीछे हो जाये परन्तु जहाँ टूटे वहाँ एक सरीखी सपाटी होती है। राजकोट में देखा था। इसी प्रकार भगवान आत्मा की वर्तमान पर्याय और राग के बीच दरार है। आहा..हा..! दरार है, भाई ने कहा न? आहा..हा..! भिन्न पड़ता है तो अन्दर दरार है, इसलिए भिन्न पड़ता है। एक हो गया होता तो भिन्न नहीं पड़ता। आहा..हा..!

शरीर में चाहे जो रोग हो, शरीर की चाहे जो स्थिति हो, वह जड़ की चीज़ जड़ में है; मेरी नहीं। आहा..हा..! इसी प्रकार राग की स्थिति भी मेरी पर्याय में नहीं। मेरी दशा तो राग से भिन्न मैं हूँ। आहा..हा..! ऐसे गहरे... गहरे... गहरे... गहरे संस्कार डाले। आहा..हा..! वह जीव निःसन्देह, उसे भविष्य में पूर्ण प्राप्ति होगी। निर्वाण को प्राप्त होगा। निर्वाण-मोक्ष प्राप्त होगा। शान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण शान्ति, निर्वाण अर्थात् पूर्ण शान्ति की प्राप्ति, उसका नाम निर्वाण है। आहा..हा..!

मोक्ष अर्थात्? दुःख से पूर्ण मुक्ति और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति। मोक्ष शब्द है, तो दुःख जो है, दुःख है। वह आंशिक तो नाश चौथे (गुणस्थान) से हुआ है और पूर्ण होता है, तब सम्पूर्ण दुःख का नाश हो जाता है। वास्तव में तो बारहवें गुणस्थान में सम्पूर्ण दुःख का नाश हो जाता है। समझ में आया? वहाँ आनन्द पूर्ण हो जाता है। चौथे गुणस्थान में आनन्द का अंश है, पूर्ण नहीं। सम्यग्दर्शन है, अनुभव है, अनुभवी है। उसे तो आनन्द है, परन्तु वह अल्प है। समझ में आया? साथ में दुःख भी वेदन में है। आहा..हा..! परन्तु वह आगे जाते.. जाते.. जाते.. आगे एकाग्र होते.. होते.. आनन्द की वृद्धि होगी और दुःख का सर्वथा नाश होगा। अरे! ऐसी बातें अब। एक तो समझना कठिन पड़े। आहा..हा..! अरे!

भाई ! देखो न यह शरीर, युवक व्यक्ति हो, क्षण में हार्ट फेल। मौत सिर पर तैयार है। जिस समय आयेगी तो एकदम (चला जायेगा)। वह कहीं पहले कहेगी कि तेरा समय पूर्ण हुआ है, ऐसा कहती है ? कि भाई ! तेरा आयुष्य पूर्ण हुआ है – ऐसा कहकर मृत्यु होती है ?

इसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा के संस्कार करने से... आहा..हा.. ! पूर्ण सर्वज्ञ पर्याय प्राप्त होगी ही होगी। आहा..हा.. ! जिसे दूज उगे, दूज; पश्चात् पूर्णिमा होगी ही होगी। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यहाँ तो आत्मा के पूर्व के संस्कार डाले हों न... आहा..हा.. ! कहीं राग रुचे नहीं, भगवान रुचे – ऐसे संस्कार डाले हैं, वह भविष्य में निर्वाण का पात्र बनेगा अर्थात् निर्वाण प्राप्त करेगा, आहा..हा.. ! और जिसे अन्दर शल्य रही है। समझ में आया ? कि.. धर्मी जीव को दु:ख का वेदन ही नहीं, वह मिथ्यात्व की शल्य है। समझ में आया ? तो शल्य लेकर जायेगा तो वहाँ शल्य रहेगी। आहा..हा.. ! कठिन काम, भाई ! है तो अपनी चीज़; प्राप्त की प्राप्ति करनी है। है, उसे प्राप्त करना है। नहीं है, उसे प्राप्त करना है ? राग में एकाग्र होकर करे तो राग अपना होगा ? परमाणु को अपना करने का प्रयत्न करे तो परमाणु अपना हो जाएगा ? यह तो अपनी चीज़ (आत्मा) अन्दर है। आहा..हा.. ! प्रेम से अन्दर गया, उसे अन्तर संस्कार से भविष्य में मुक्ति होगी। वह बन्धन को काट डालेगा और भगवान आत्मा का अबन्धस्वभाव प्रगट करेगा। आहा..हा.. ! है ? २८९ (बोल पूरा) हुआ।

आत्मा ज्ञानप्रधान अनन्त गुणों का पिण्ड है। उसके साथ अन्तर में तन्मयता करना, वही कर्तव्य है। वस्तुस्वरूप को समझकर 'मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसी लगन लगाये तो ज्ञायक के साथ तदाकारता हो॥२९०॥

२९०। **आत्मा ज्ञानप्रधान अनन्त गुणों का पिण्ड है।** क्या कहते हैं ? भगवान ज्ञायक ज्ञान मुख्य है, यह ज्ञान मुख्य है। क्योंकि स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है, वह असाधारण ज्ञानस्वभाव है। दूसरे अनन्त गुण में ऐसा गुण (स्वभाव) नहीं है। अत: ज्ञानप्रधान। ज्ञान की मुख्यता से **अनन्त गुणों का पिण्ड है।** यह ज्ञानस्वरूप, अकेला ज्ञानस्वरूप है, ऐसा नहीं। आहा..हा.. ! जिसकी ज्ञान की अपरिमितता-स्वभाव, परन्तु वह ज्ञान प्रधानता से दूसरे अनन्त गुणों के साथ अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु है। एक गुण का पिण्ड है, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

आत्मा ज्ञानप्रधान अनन्त गुणों का पिण्ड है,... ऐसा कहने में आया है। आहा..हा..! भगवान प्रज्ञाब्रह्म है, ऐसा कहना, परन्तु उस प्रज्ञा के साथ में प्रज्ञा को मुख्य करके भी उसके साथ अनन्त आनन्द आदि, अस्तित्व गुण आदि अनन्त गुण का पिण्ड है। समझ में आया? आहा..हा..! इसलिए यह करना, वह लोगों को कठिन लगता है। इसलिए कोई दूसरा रास्ता पकड़ लिया। मुनि नग्न होकर इतनी-इतनी क्रिया करे, उन्हें तुम कहो कि यह सब क्रिया धर्म की नहीं है! वह धर्म की क्रिया नहीं, भाई! धर्म की क्रिया तो राग से रहित, अन्तर में ज्ञान का परिणमन होना, वह धर्म की क्रिया है। दिल्ली में विद्यानन्दजी ने पूछा, (कि) १५५ गाथा है कि लोगों को एक जीवादि सद्दणं जीव आदि की श्रद्धा वह समकित। हो गया। टूटूटच, परन्तु इसका अर्थ क्या? १५५ गाथा है। दिल्ली में.... आहा..हा..!

अन्दर प्रश्न किया था कि जीवादि सद्दणं समकित की व्याख्या क्या? कहा, जीवादि सद्दणं अर्थात् जीवादि की मान्यता। उस मान्यता की व्याख्या क्या? अन्दर आनन्दस्वरूप भगवान, वस्तु का स्वरूप जो ज्ञानस्वरूप है... वहाँ ज्ञान प्रधान लिया है। ज्ञानरूप परिणमन होना, अकेली श्रद्धा नहीं परन्तु ज्ञानरूप परिणमन होना, आनन्द का परिणमन होना, प्रभुता का परिणमन होना, स्वच्छता का परिणमन होना, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होने की शक्ति है तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होना। ऐसी बातें! लोगों को बाहर से प्रसन्न-प्रसन्न करे, बस ऐसा। और जिनवाणी में कलंक है, एक पुस्तक में ऐसा लिखा है। यहाँ की बात होगी। जिनवाणी में विकार... उसने लिखा था न? बेचरदास पण्डित ने? स्थानकवासी, नहीं? उसने एक बार लिखा जिनवाणी में विकार, ऐसा कुछ शब्द था। वह दूसरे प्रकार से था। इसका दूसरे प्रकार से है। बात तो जो होगी, उसमें लिखा होगा। यह इसने लिखा था। आज जैनदर्शन में (तात्कालिक समाचारपत्रिका में) कुछ लेख आया है। उसने एक पुस्तक बनायी है, जिनवाणी में वाणी का विकार हो गया। एकान्त कर डाला।

मुमुक्षु : ब्रह्मचर्य पानी... देवियाँ मिलें। ऐसा और कैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो फिर बेचरदास कहते थे। यह ब्रह्मचर्य तो शुभराग है। बाल ब्रह्मचारी हो परन्तु वह शुभविकल्प है। उसमें पुण्य बँधे तो स्वर्ग में हो। उसमें क्या हुआ? आहा..हा..! समझ में आया? शान्तिनाथ चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियाँ (रानियाँ) थीं। तब हमारे लालनजी थे, वे प्रश्न करते थे। पण्डित लालन, श्वेताम्बर में (पण्डित) थे। जामनगर के थे, बहुत पढ़े थे। बड़ी उम्र ९५ वर्ष। अमेरिका में दस-दस हजार लोगों को

भाषण देते थे, परन्तु दृष्टि विपरीत थी। वे कहते कि यदि हमारे जॉर्ज को एक रानी और तुम कहते हो तीर्थंकर तीन ज्ञान के धनी समकिती, उन्हें छियानवें हजार स्त्रियाँ। होती नहीं... होती नहीं। परन्तु वह तो संयोगी चीज़ है। संख्या के साथ क्या सम्बन्ध है? किसी समकिती का शरीर स्थूल हो और किसी का पतला हो, उससे कहीं स्थूल हो उसका.... अनन्त रजकण स्थूल हों। आहा..हा..! पाँच सौ धनुष का देह हो, समकिती को हजार योजन का देह हो और किसी का-समकिती का इतना छोटा शरीर हो, एक हाथ का या तिर्यंच का हो... आहा..हा..! एक हाथ का मनुष्य होता है न? डेढ़ हाथ का, आठ वर्ष का। वह केवलज्ञान प्राप्त करता है। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? कि शरीर के रजकण बहुत हों, उसमें समकिती को क्या है? इसी प्रकार स्त्रियों की बहुत संख्या हो या थोड़ी संख्या हो, उसके साथ सम्बन्ध कहाँ है? तीन लोक के नाथ शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ समकिती थे, ज्ञानी थे, तीन ज्ञान लेकर आये थे। छियानवें हजार स्त्रियों के साथ विवाह किया। राग है न? राग का वेदन है न? वह दु:ख का वेदन है। समझ में आया? अधिक स्त्रियाँ हैं तो समकित को नुकसान है, थोड़ी स्त्रियाँ हों तो समकित विशेष कहलाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया? जिसके शरीर में बहुत रजकण हैं तो अन्दर दोष है और शरीर पतला हो तो समकित निर्मल है, ऐसी बात नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं **आत्मा ज्ञानप्रधान अनन्त गुणों का पिण्ड है**। प्रभु है। सम्यग्ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. ज्ञान.. जानन.. जानन.. जानन.. जिसका-प्रभु का स्वभाव, उस जाननस्वभाव की मुख्यता करके, प्रधान करके, वह तो अनन्त गुण का पिण्ड है। एक ही गुण है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! **उसके साथ अन्तर में तन्मयता करना, वही कर्तव्य है**। कर्तव्य तो यह है, भगवान! ज्ञान मुख्य है, ऐसे अनन्त गुण के पिण्ड प्रभु में एकाग्रता करना, अन्तर में तन्मयता करना। तन्मयता का अर्थ (यह है कि) पर्याय को उसके साथ जोड़ देना। तन्मय का अर्थ वह पर्याय, द्रव्य में एकमेक हो जाती है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

उसके साथ अन्तर में तन्मयता करना... स्वरूप-सन्मुख की पर्याय में एकाग्रता करना। आहा..हा..! **वही कर्तव्य है**। कार्य तो यह है। धर्मी को कर्तव्य करना हो तो यह है। आहा..हा..! बाकी सब व्यर्थ है। आहा..हा..! राग करना, पुण्य-पाप करना, वह तो सब अधर्म भाव है। अरे! गजब बात! ज्ञान-जाननस्वभाव की मुख्यता करके, प्रधान करके अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उस ओर एकाग्रता करना, उसके साथ तन्मयता

एकरूप (होना)। राग के साथ एकरूप है, उसे आत्मा के साथ एकरूप करना। आहा..हा..! **वही कर्तव्य है।** कार्य तो यह है।

क्योंकि भगवान आत्मा में अकार्यकारण नाम का अनादि-अनन्त एक गुण ऐसा है कि वह पर का, राग का कार्य करे और राग का कारण होकर आत्मा में सम्यग्दर्शन हो, ऐसा आत्मा में गुण नहीं है। क्या कहा? अकार्यकारण है न? आत्मा में अनादि-अनन्त ऐसा गुण है, इस ज्ञान के साथ अनन्त (गुण हैं), उनमें-अनन्त में एक अकार्यकारण नाम का गुण है, जो भगवान आत्मा राग का कारण हो, ऐसा नहीं है। यह व्यवहाररत्नत्रय का राग है, देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति, का कारण होता है, ऐसा नहीं है और व्यवहाररत्नत्रय से अन्दर सम्यग्दर्शन कार्य होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा अकार्यकारण नाम का गुण स्वभाव में है। आहा..हा..! यह अकार्यकारण नाम का गुण अनादि-अनन्त गुण हैं, उनमें एकाग्र होना, वह कर्तव्य है। आहा..हा..! बाकी तो ज्ञान थोड़ा हो, कम हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : थोड़े में आत्मा का होना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका चाहिए। धारणा में बहुत ग्यारह अंग पढ़ जाये, उसमें क्या हुआ? समझ में आया? अन्तर भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, जिसकी सत्ता में-अस्तित्व में ज्ञान भरा है, ऐसे ज्ञानसहित अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें एकाग्रता करना, वह कर्तव्य है। आहा..हा..! बाहर का तो कर नहीं सकता, राग का कर्ता है, वह तो मिथ्यात्व भ्रम है। भगवान चैतन्यस्वरूप चैतन्य ज्योति, राग को क्या करे? मानता है कि मैं राग को करता हूँ तो मिथ्याभ्रम है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को राग का कर्ता....

पूज्य गुरुदेवश्री : करता तो परिणमन है, इसलिए कहते हैं परन्तु कर्ता / करने योग्य है, ऐसी बुद्धि ज्ञानी की नहीं होती। समझ में आया? आहा..हा..! यह तो सम्यग्दर्शन हुआ, वस्तु का भान, अनुभव हुआ, तथापि अभी राग का परिणमन है, कहीं वीतराग नहीं हुआ। राग है, द्वेष है, विकार है, भोग की वासना है। यह परिणमन है, परिणमता है; इसलिए इस अपेक्षा से कर्ता कहने में आया है। आहा..हा..! इसकी पर्याय में परिणमन है न? समकिती को, ज्ञानी को, अरे...! मुनि को (राग का परिणमन है)। आहा..हा..! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को तीन कषाय के राग का परिणमन है। पाँचवें गुणस्थान में दो कषाय का (परिणमन) है, छठवें गुणस्थान में एक कषाय-संज्वलन कषाय का (परिणमन) है परन्तु

परिणमन है न ? वह स्व से हुआ है या पर से हुआ है ? इस अपेक्षा से ज्ञानी, गणधर भी हो तो भी राग का जो परिणमन है, उसे कर्ता कहने में आता है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : राग निमित्त से होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से होता है, यह दूसरी बात है। वह बात यहाँ नहीं लेनी है। यहाँ तो परिणमन है, इसलिए कर्ता है, इतना। पर से हुआ है, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। समझ में आया ? परन्तु परिणमन है न ? अपनी पर्याय में अस्तित्व है या नहीं ? समकिती को भी राग का अपनी पर्याय में अस्तित्व है या नहीं ? समझ में आया ? आहा..हा.. ! ऐसी बातें ! राग का अस्तित्व है तो दु:ख का अस्तित्व है या नहीं ? वह राग दु:ख ही है। 'राग आग दाह दहै सदा।' समकिती को भी अन्दर राग की भट्टी सुलगती है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं।

यह यहाँ कहते हैं, भगवान ज्ञान मुख्य से अनन्त गुण वस्तु, उसमें सन्मुख होकर एकाग्रता होना। राग से और निमित्त से विमुख होकर तन्मयता करना, वह कर्तव्य है, वह धर्मी का कार्य है। समझ में आया ? **वस्तुस्वरूप को समझकर 'मैं तो ज्ञायक हूँ'...** जानन-देखनवाला मैं हूँ, कोई राग का मैं कर्ता नहीं। परिणमन है तो कर्ता है, यह तो परिणमन की अपेक्षा से कहा, परन्तु मैं वस्तुरूप से ज्ञायक हूँ, पर्यायरूप से राग आता है, वह परिणमन है, इसलिए कर्ता कहा, परन्तु वस्तुरूप से जो मैं हूँ, वह तो ज्ञायक हूँ। आहा..हा.. ! समझ में आया ? **ऐसी लगन लगाये तो ज्ञायक के साथ तदाकारता हो।** आहा..हा.. !

मुमुक्षु : तदाकार अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाकार। ज्ञान की पर्याय में एकाकार होना। राग में एकाकार है, ऐसे यहाँ एकाकार होना। एकाकार का अर्थ (यह है कि) निर्मल पर्याय द्रव्य सन्मुख झुक गयी। वह एकाकार। एकाकार का अर्थ कि द्रव्य के साथ पर्याय एकाकार एकमेक हो गयी है।...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

अस्रोज कृष्ण २, बुधवार, दिनाङ्क ०४-१०-१९७८
वचनामृत-२९१ से २९४ प्रवचन-१०९

जिनेन्द्रमन्दिर, जिनेन्द्रप्रतिमा मंगलस्वरूप हैं; तो फिर समवसरण में विराजमान साक्षात् जिनेन्द्रभगवान की महिमा और उनके मंगलपने का क्या कहना! सुरेन्द्र भी भगवान के गुणों की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते, तब दूसरे तो क्या कर सकेंगे ?२९१॥

२९१। **जिनेन्द्रमन्दिर, जिनेन्द्रप्रतिमा मंगलस्वरूप हैं;...** उनका स्वरूप ही मंगल है। अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं... चत्तारि मंगलं में नहीं आता ? वे अरिहन्त मंगल, वैसे अरिहन्त का मन्दिर मंगल, वैसे अरिहन्त की प्रतिमा मंगलिक और फिर अन्त में ऐसा कहा, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं, यह अपना स्वभाव। वीतरागीस्वरूप आत्मा में से वीतरागभाव का प्रगट होना, वह केवली पण्णत्तो धर्म है। वह अपना भाव मांगलिक है और ये बाह्य निमित्तरूप से मांगलिक हैं। आहा..हा..! निश्चय मांगलिक तो अपना (स्वभाव है)। मं अर्थात् पाप और गल अर्थात् गाले। अहंकार, राग और पुण्य मेरे हैं, ऐसे अहंकार को स्वभाव के आश्रय से गाले, मिटाये, वही आत्मा मांगलिक है। आहा..हा..! वह आत्मा शरण है, आत्मा उत्तम है। चार आते हैं न ? अरिहंता मंगलं, अरिहंत लोगुत्तमा, अरिहंत शरणं (सिद्ध, साधु, केवली प्रणीत धर्म मंगल, उत्तम, शरण है) ऐसे चार बोल हैं। चत्तारि मंगलं में (आते हैं)।

उनमें निश्चय से तो भगवान आत्मा मंगल स्वरूप ही है। आहा..हा..! भगवानस्वरूप कहो, हरिस्वरूप कहो या ब्रह्मस्वरूप कहो, वह मंगलस्वरूप ही आत्मा है। आहा..हा..! उसके अवलम्बन से जो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट होती है, वह पर्याय भाव मांगलिक है। वस्तु मांगलिक है। वस्तु ज्ञायक कहो या मांगलिक कहो...

आहा..हा.. ! उसका आश्रय लेकर, (उसके) अवलम्बन से पर्याय में जो वीतरागी पर्याय प्रगट हो, वह मांगलिक है और बाह्य भगवान मांगलिक है, जिनेन्द्र प्रतिमा मांगलिक है, जिनेन्द्र मन्दिर मांगलिक है। उस ओर लक्ष्य जाये तो उसमें शुभभाव आता है। समझ में आया ? तो वह शुभभाव व्यवहार से मांगलिक कहा जाता है। निश्चय मांगलिक हुआ है, उसके राग को आरोप देकर व्यवहार मांगलिक कहते हैं। वास्तव में तो वह अमंगलिक, बन्ध का कारण है। आहा..हा.. ! ऐसी बात है।

तो फिर समवसरण में विराजमान साक्षात् जिनेन्द्रभगवान की महिमा... ओहो..हो.. ! **और उनके मंगलपने का क्या कहना!...** जिस आत्मा में अनन्त... अनन्त.. अनन्त... अनन्त... संख्या का माप नहीं, इतने अनन्त का अन्त नहीं, इतने गुण हैं। इतनी एक समय में निर्मल पर्याय भगवान अरिहन्त को हुई। जितनी संख्या थी अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... यह अन्तिम गुण है, ऐसा नहीं। ऐसे अनन्त गुण का पर्याय में परिणमन हुआ तो वह पर्याय भी एक समय की, अवधि एक समय है परन्तु उसकी एक समय की पर्याय की संख्या है... आहा..हा.. ! (वह) अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... पर्याय है। उसमें यह पर्याय अन्तिम है, ऐसा है नहीं। आहा..हा.. ! क्या चीज़ है ? समझ में आया ? क्या कहते हैं ? आहा..हा.. !

भगवान परमात्मा समवसरण में विराजमान ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा, उनकी जो पर्याय है, प्रगट हुई; इसलिए परमात्मा कहते हैं न ? वस्तु तो परमात्मा है परन्तु (परमात्मदशा) प्रगट हुई। आहा..हा.. ! पर्याय की अवधि एक समय की है। भले सर्वज्ञ हो, सर्वदर्शी हो परन्तु एक समय की अवधि में इतनी पर्याय है कि जिसमें यह पर्याय अन्तिम है, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : किसी गुण की पर्याय अन्तिम नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण में कोई अन्तिम गुण नहीं, पर्याय में यह अन्तिम पर्याय है, ऐसा नहीं। गुण की तो पर्याय है। ऐसे अनन्त गुण की एक समय की पर्याय है परन्तु उन अनन्त पर्यायों में... आहा..हा.. ! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उनका गुणाकार करके अनन्त का वर्ग करके, यह अन्तिम पर्याय है, ऐसा पर्याय में नहीं है। आहा..हा.. ! गजब बात है, भाई ! यह बात भाषा में नहीं, इसे भाव में (भासित होना चाहिए)। आहा..हा.. !

समवसरण में विराजमान। यह स्थापना जिनेन्द्र आदि, वह तो स्थापना प्रतिमा है। जिनसारिखी जिनप्रतिमा, वह व्यवहार है, परन्तु भगवान आत्मा साक्षात् जो आत्मा है... आहा..हा..!

मुमुक्षु : एक बार ऐसा कहे कि....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह एक अपेक्षा से। भगवान तो शाश्वत रहते नहीं और प्रतिमा शाश्वत रहती है, इस अपेक्षा से दीपचन्दजी ने कहा है परन्तु यह लोगों को कठिन पड़ता है। दस हजार केवली और एक तीर्थंकर। पर के ओर की अपेक्षा से महिमा है। और दस हजार तीर्थंकर और एक प्रतिमा, उसकी महिमा विशेष है।

मुमुक्षु : दोनों में से कौन सा सही?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सही है। क्यों? आहा..हा..! अपेक्षा से (बात) है। तीर्थंकर हैं, वे विचरण करते हैं। एक स्थान में नहीं रहते और भगवान की प्रतिमा एक स्थान में चौबीसों घण्टे रहती है। समझ में आया? इस अपेक्षा से कहा है। अपेक्षा समझनी चाहिए न! आहा..हा..! भगवान की पर्याय में अनन्त पर्याय है। वह पर्याय कहीं प्रतिमा में नहीं है। स्थापना निक्षेपरूप से है, परन्तु उस प्रतिमा में पर्याय का आरोप है कि यह सर्वज्ञ की प्रतिमा है, पूर्णानन्द के नाथ की प्रतिमा है। इस पर्याय की अनन्तता उसमें भी है, यह व्यवहार से। इस कारण प्रतिमा की महिमा की है परन्तु यहाँ तो साक्षात् सर्वज्ञ भगवान विराजते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : वह तो व्यवहार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से, परन्तु कैसे? व्यवहार से भी उनकी महिमा की क्या चीज़ है, उसकी बात है। कि एक समय में इतनी निर्मल पर्यायें प्रगटी हुईं कि एक समय की पर्याय में अवधि एक समय, परन्तु यह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. इस अनन्त का अन्त नहीं, इतनी एक समय में पर्यायें हैं। अरे! क्या कहते हैं यह? भाई! यह तो अलौकिक मार्ग की बातें हैं, बापू! आहा..हा..! यह भाषा से कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं है। आहा..हा..!

कहते हैं कि **समवसरण में विराजमान साक्षात् जिनेन्द्रभगवान की महिमा और उनके मंगलपने का क्या कहना!...** आहा..हा..! क्या है यह? सम्यग्दर्शन में भी अनन्त गुणों का-सबका एक अंश व्यक्त-प्रगट होता है। आहा..हा..! परन्तु एक अंश है। वे भी

अनन्त अंश प्रगट हुए, उस पर्याय का भी अन्त नहीं कि यह अन्तिम पर्याय है। अनन्त.. अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक समय में, हों! आहा..हा..! क्या कहते हैं यह? भाई! यह तो अचिन्त्य चैतन्य चमत्कारिक वस्तु है। आहा..हा..!

जिसकी एक समय की पर्याय में सर्वज्ञ परमात्मा को सर्व गुण की पूर्ण पर्याय प्रगट हुई। प्रतिजीवी गुण एक ओर रखो, वह कहीं दु:खरूप नहीं है। समझे? आहा..हा..! अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्तगुणा वर्ग करो तो भी अन्त का अन्त न आवे, ऐसी गुण की शक्तियाँ पड़ी हैं, उनकी इतनी व्यक्तता पर्याय में प्रगट हुई। आहा..हा..! सूक्ष्म बात, भाई! आहा..हा..! इन अरिहन्त की पर्याय को जो वास्तविक (रूप से) जाने, वह अपने आत्मा को जानता है। यह प्रवचनसार की ८०वीं गाथा में आया है न?

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥

प्रवचनसार की ८० वीं गाथा है। आहा..हा..! एक तो ज्ञानी को अनन्त-अनन्त गुण भगवान के हैं, उसकी प्रतीति हुई, द्रव्य की प्रतीति हुई और उसकी एक समय में... आहा..हा..! संख्या इतनी अनन्त है... कोई गजब बात, प्रभु! क्या कहते हैं यह? कि अनन्त का अनन्तगुणा करके अनन्त-अनन्तगुणा करे तो भी अन्तिम अनन्त की यह अन्तिम पर्याय है, ऐसा नहीं है। ओहो..हो..!

मुमुक्षु : अन्तिम पर्याय होवे तो द्रव्य का नाश हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण पर्याय इतनी अमाप है, ऐसा। यहाँ तो पूर्ण पर्याय कितनी है? कि जहाँ अनन्त को.. अनन्त को.. अनन्त को.. अनन्त को.. अनन्त गुणा करो तो भी एक समय की पर्याय का अन्त नहीं। आहा..हा..! उनकी संख्या का अन्त नहीं। है एक समय की पर्याय, परन्तु एक समय की पर्याय की संख्या जो है... आहा..हा..! क्या कहते हैं यह? उस संख्या का पार नहीं होता।

जैसे अलोक के अन्त का पार नहीं होता। आकाश ऐसा का ऐसा चला गया। कहाँ पूरा हुआ? आकाश के अस्तित्व का अन्त कहाँ पूरा हुआ? आहा..हा..! जहाँ क्षेत्र का अन्त नहीं.. आहा..हा..! उसके-आकाश के प्रदेश जो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. उनसे अनन्तगुने तो एक समय में आत्मा के गुण हैं और उनसे अनन्तगुणी एक समय की पर्यायें हैं। आहा..हा..! जिसका अन्त नहीं, ऐसा क्षेत्र जो

अलोक, उसके जितने प्रदेश हैं, उनका अन्त नहीं कि यह अन्तिम प्रदेश है। एक परमाणु जितनी जगह को रोकता है, उसका नाम प्रदेश है तो वह प्रदेश.. प्रदेश.. प्रदेश.. प्रदेश.. प्रदेश.. ओहो..हो..! भगवान! यह वस्तु निर्विकल्प होने से समझ में आये ऐसी है, ऐसा कहते हैं।

एक समय की पर्याय, पर्याय का अन्त हुआ, परन्तु उसकी संख्या का अन्त नहीं। समझ में आया? यह भाषा से (समझ में नहीं आता)। भाई! यह तो... आहा..हा..! ऐसे प्रत्येक अरिहन्त को, ऐसे परमाणु की भी अनन्त पर्याय कितनी? कि जिसका अन्त नहीं। अर..र..! यह क्या है? यह वह पदार्थ किस प्रकार का? एक परमाणु, उसमें भी इस आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे गुण हैं। भले अचेतन जड़ हैं। और उसकी जो पर्याय है, वह भी-एक परमाणु की पर्याय भी अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. तथापि वह परमाणु की पर्याय एक समय में यह अन्तिम है, (ऐसा नहीं) ऐसी अनन्त है, उनका अन्त नहीं। आहा..हा..! क्या वस्तु का स्वभाव! आहा..हा..! क्या वस्तु का अचिन्त्यपना!! आहा..हा..! यह जिसने लक्ष्य में लिया... आहा..हा..!

परमात्मा की एक समय की पर्याय। ऐसे गिनने जाये कि यह अनन्त है... यह अनन्त है... यह अनन्त है... यह अनन्त है... यह अनन्त है... यह अनन्त है... ओहो! प्रभु! इसकी अनन्त पर्याय की संख्या में अनन्त का अन्त नहीं, ऐसे परमात्मा को मांगलिक का क्या कहना? कहते हैं। उनकी महिमा का क्या कहना? आहा..हा..!

वास्तव में तो जितने गुण भगवान आत्मा में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. हैं, वह अन्तर की दृष्टि होने पर, उस ज्ञान की पर्याय ने त्रिकाली गुणस्वरूप भगवान को पकड़ने से सम्यग्दृष्टि को भी जितनी संख्या में गुण हैं, उतनी संख्या में पर्यायें प्रगट होती हैं। आहा..हा..! अंश। आहा..हा..! क्या है यह? परमात्मा का भरपूर भगवान पूर्ण... आहा..हा..! समवसरण में विराजमान सर्वज्ञ परमात्मा की पर्याय का अन्त नहीं, इतनी पर्यायें। आहा..हा..! ऐसे का ऐसा मान लेना, वह दूसरी बात है। उसकी स्थिति कितनी? क्या? यह ख्याल में लेकर, फिर अपने आत्मा को ख्याल में लेना। आहा..हा..! जिसे अरिहन्त की पर्याय का, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान है परलक्ष्यी, परन्तु पश्चात् उस परलक्ष्यी ज्ञान में से मेरी द्रव्यशक्ति कितनी है? भगवान का द्रव्य है, उतना मेरा द्रव्य है। भगवान में गुण हैं, उतने मुझमें गुण हैं। भगवान

की जितनी पर्याय प्रगटी है, उतनी पर्याय मेरी प्रगटी नहीं। आहा..हा..! तो प्रगट अंश में द्रव्यस्वभाव का अवलम्बन लेने से, अंश में, जो शक्तियाँ अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आहा..हा..! उनका अस्तित्व, पर्याय प्रगटी उसका अस्तित्व, अंश भले प्रगट हुआ परन्तु वह अस्तित्व का अंश इतनी संख्या है, ऐसा कोई अन्त नहीं है। आहा..हा..!

ऐसी अनन्त शक्तियाँ गुणरूप 'सर्व गुणांश, वह समकित।' ऐसे अपने शब्द श्रीमद् का है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में (भी) यह शब्द है। अनन्त गुणादि सबका एक अंश प्रगट हुआ, एक देश। भगवान को अनन्त गुण की पूर्ण पर्यायें प्रगट हुई। आहा..हा..! संख्या तो इतनी, परन्तु यह अपूर्ण और वहाँ पूर्ण, इतना अन्तर है। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन में भी अपार.. अपार.. अपार.. पर्याय की व्यक्तता की संख्या अपार है, कुछ पार नहीं। अरे! प्रभु! यह पर्याय कैसी? समझ में आया? विभावरूप पर्याय तो अमुक गुणों की है और स्वभावरूप पर्याय तो अनन्त-अनन्त गुणों की है। आहा..हा..!

बहुत विचार किया था—एक बार बहुत विचार किया था। कुछ ३१ या ३७ बोल निकाले थे। विकाररूप से गुण हुआ और अविकाररूप से परिणमन। अस्तित्वगुण का अविकाररूप से परिणमन, वस्तुत्व का अविकाररूप से परिणमन, एक प्रदेशत्वगुण का विकृतरूप से परिणमन। आहा..हा..! ऐसे अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण हैं, उनका अविकृतरूप परिणमन... आहा..हा..! यह द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? भाई!

भगवान को संख्यारहित, मर्यादारहित पूर्ण पर्याय प्रगट हुई। वे महाप्रभु मांगलिक हैं। समझ में आया? आहा..हा..! उनके इतने अस्तित्व की प्रतीति कर। कब हो? आहा..हा..! ऐसा का ऐसा मान लेना, वह दूसरी बात है और अन्दर में भावभासन होकर मानना, (वह अलग बात है)। आहा..हा..! ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का अंश तो सम्यग्दर्शन में भी प्रगट हुआ। आहा..हा..! वह भी मांगलिक की शुरुआत हुई। आहा..हा..! और.... आहा..हा..! तीर्थंकर का जो आत्मा है, उसे तो सदा मांगलिक गिनने में आया है। समझ में आया? आहा..हा..! समझ में आया? तीर्थंकर का जो जीव है... आहा..हा..!

मुमुक्षु : वह पर्यायरूप से मांगलिक या द्रव्यरूप से?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुरूप से। वस्तुरूप से, शक्तिरूप से, गुणरूप से मांगलिक ही है और पर्याय में प्रगट होनेवाला है तो वर्तमान आरोप करके वर्तमान भी है, ऐसा आरोप करके नैगमनय से मानने में आता है। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जिनेन्द्र भगवान साक्षात् विराजमान (हों)... आहा..हा.. ! उनकी महिमा कौन करे ? कौन कर सके ? **मंगलपने का क्या कहना! सुरेन्द्र भी भगवान के गुणों की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते,...** तीन ज्ञान के स्वामी इन्द्र... आहा..हा.. ! किस संख्या में गुण की पर्याय का वर्णन करे ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? **सुरेन्द्र भी भगवान के गुणों की महिमा...** गुण अर्थात् प्रगट पर्याय। यहाँ गुण शब्द से (आशय है) अभी पर्याय। **का वर्णन नहीं कर सकते, तब दूसरे तो क्या कर सकेंगे ?** आहा..हा.. !

'जो स्वरूप झलका जिनवर के ज्ञान में' जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा 'कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जो।' आहा..हा.. ! ईशारा किया। 'उस स्वरूप का अन्य वाणी तो क्या कहे।' उस स्वरूप को अन्य वाणी क्या कहे ? 'अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब' आहा..हा.. ! अनुभवगम्य में ज्ञात हो, ऐसा है। बाकी उसे क्या कहना ? कहते हैं। आहा..हा.. ! अरे ! ऐसा द्रव्य, ऐसे गुण, ऐसी पर्याय। आहा..हा.. ! वह पर्याय प्रगट हुई। इन्द्र तीन ज्ञान के स्वामी... आहा..हा.. ! वह भी कह सकने को समर्थ नहीं है। वाणी जड़ है। भगवान चैतन्य की पर्याय अलौकिक पर्याय है। वह जड़ कितनी (महिमा) करे ? आहा..हा.. ! **गुणों की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते, तब दूसरे तो क्या कर सकेंगे ?** यह २९१ (बोल पूरा हुआ)।

जिस समय ज्ञानी की परिणति बाहर दिखायी दे, उसी समय उन्हें ज्ञायक भिन्न वर्तता है। जैसे किसी को पड़ौसी के साथ बड़ी मित्रता हो, उसके घर जाता-आता हो, परन्तु वह पड़ौसी को अपना नहीं मान लेता, उसी प्रकार ज्ञानी को विभाव में कभी एकत्वपरिणमन नहीं होता। ज्ञानी सदा कमल की भाँति निर्लेप रहते हैं, विभाव से भिन्नरूप ऊपर-ऊपर तैरते रहते हैं ॥२९२॥

२९२। **जिस समय ज्ञानी की परिणति बाहर दिखायी दे...** रागादि होते हैं, तो बाहर दिखते हैं। आहा..हा.. ! **उसी समय उन्हें ज्ञायक भिन्न वर्तता है।** अन्तर में तो राग से भी ज्ञायक तो भिन्न वर्तता है। समझ में आया ? रागादि आया, बाहर दिखायी दे। बाहर से भगवान की भक्ति करते हैं, यह करते हैं। आहा..हा.. ! उस समय भी ज्ञानी अर्थात् धर्मी की ज्ञायक पर दृष्टि अन्दर पड़ी है। वह ज्ञायक भिन्न वर्तता है। राग से भी भगवान धर्मी को ज्ञायक भिन्न वर्तता है। आहा..हा.. !

जैसे किसी को पड़ौसी के साथ... आहा..हा.. ! **बड़ी मित्रता हो,...** बाजू में पड़ौसी हो, **उसके घर जाता-आता हो,...** नजदीक हो तो जावे-आवे। **परन्तु वह पड़ौसी को अपना नहीं मान लेता,...** मानता है ? आहा..हा.. ! **उसी प्रकार ज्ञानी को विभाव में कभी एकत्वपरिणमन नहीं होता।** परिणमन है अवश्य, परन्तु एकत्वरूप परिणमन नहीं होता। आहा..हा.. ! यह २९५ में कहेंगे। ज्ञानी को भी रागांश आता है, उतना दु:ख का वेदन है, परन्तु उसके साथ एकत्वबुद्धि नहीं; भिन्नबुद्धि है। आहा..हा.. ! मेरा द्रव्य और मेरे गुण की पर्याय विभाव, वह नहीं है। है, वेदन है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? जितने अंश में चैतन्यभगवान के आश्रय से वीतरागता प्रगट हुई, और उस समय में जितने अंश में परलक्ष्य से विभाव हुआ, उन दोनों का वेदन है, तथापि उस विभाव से भिन्न परिणमन मेरी चीज़ है, ऐसा मानता है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : विकार तो निकल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकारी है। मेरा स्वरूप द्रव्य-गुण तो निर्विकारी है। उसमें निर्विकारी जितनी पर्याय प्रगट हुई, वह मेरी। विकार हुआ। यह तो द्रव्यदृष्टि की बात चलती है न ? परन्तु पर्याय में देखो तो वह वेदन मुझमें हैं। आनन्द का भी वेदन है और राग का भी दु:ख (का)। वेदन मुझमें है परन्तु राग के वेदन से आनन्द का वेदन भिन्न है। आहा..हा.. ! अब ऐसी बातें।

प्रभु का चमत्कारी द्रव्य है। प्रत्येक का द्रव्य, हों ! आहा..हा.. ! गुण चमत्कारी, पर्याय चमत्कारी। ऐसे भगवान की पर्याय, जिसे अन्दर में ज्ञान-भान हुआ, उसे ज्ञायक भिन्न वर्तता है। विभाव है, तथापि मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा भान है। विभाव के साथ स्वभाव का एकत्व नहीं हुआ। समझ में आया ? आहा..हा.. ! आनन्द की पर्याय के साथ में दु:ख की पर्याय का एकत्व नहीं हुआ। है अवश्य, परन्तु एकत्व नहीं है; भिन्नरूप से (रहती है)। आहा..हा.. ! अब ऐसी बातें। यह २९५ में विशेष स्पष्टीकरण आयेगा।

उसी प्रकार ज्ञानी को विभाव में कभी एकत्वपरिणमन नहीं होता। ज्ञानी सदा कमल की भाँति निर्लेप रहते हैं,... आहा..हा.. ! राग का लेप भी जहाँ अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में नहीं है। आहा..हा.. ! एकत्वरूप से नहीं है। समझ में आया ? विभाव से भिन्नरूप ऊपर-ऊपर तैरते रहते हैं। राग की पर्याय है, उससे भिन्न-भिन्न अपना स्वरूप तैरता रहता है। तैरता रहता है, इसलिए उसे विभावपर्याय का वेदन नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! ऐसी बातें कठिन (पड़ती है)।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरा आनन्द का नाथ आनन्दरूप परिणमे, उसके साथ में रागरूप परिणमन उस आनन्द के साथ एकत्व नहीं है। एक पर्याय के दो भाग। जितना आनन्द का स्वाद आया, उतना अपना और जितना राग का स्वाद आया, वह मेरी चीज़ नहीं, उससे मैं भिन्न हूँ। सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में यह विवेक है, इतनी बात है। परन्तु है अवश्य। आहा..हा.. ! है, परन्तु एकत्व नहीं। अरे! यह तो बात! एक समय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द की पर्याय है और उसी समय में राग की पर्याय (भी है)... आहा..हा.. ! तथापि दोनों एक नहीं हैं। एक पर्याय के दो भाग, तथापि दोनों एक नहीं हैं। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट की बात है। प्रगट है तो भी पर के साथ एकत्व नहीं है। भिन्नरूप से भासित होती है। आहा..हा.. ! भिन्नरूप से उसका वेदन करता है। आनन्द के साथ आनन्द; दु:ख के वेदन के साथ एकत्व है, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! अब ऐसी बातें! भगवान चैतन्य चमत्कारी पदार्थ, चिन्तामणि रत्न भगवान, कामधेनु... आहा..हा.. ! उसमें अनन्त गुण पड़े हैं। जैसे कामधेनु गाय जब माँगे, तब दूध देती है। दूसरी गाय तो सबेरे-शाम (दूध) देती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : वह गाय तो न विहाये तो भी दूध देती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूध देती है। हमेशा चौबीस घण्टे। वढ़वाण में थी। वढ़वाण में.. उनका लड़का रतिभाई अभी आया था। वहाँ उसे कामधेनु गाय थी। चौबीस घण्टे जब माँगो तब दूध तैयार। इसी प्रकार भगवान कामधेनु गाय अन्दर आत्मा है। जब माँगो, तब दूहो तो आनन्द प्रगट होता है। आहा..हा.. ! जब माँगो, तब स्वरूप में एकाग्र हो, तब आनन्द.. आनन्द और आनन्द झरता है। अरे! ऐसी बात कहाँ सुने ? यह तो दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो। भाई! बापू! मार्ग कोई अलग है, भाई! आहा..हा.. ! **विभाव से भिन्नरूप ऊपर-ऊपर तैरते रहते हैं।** ऊपर-ऊपर तैरते हैं, परन्तु है तो सही न ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? २९२ (बोल पूरा हुआ)।

ज्ञानी को तो ऐसी ही भावना होती है कि इस समय पुरुषार्थ चले तो इसी समय मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त कर लें। बाहर आना पड़े, वह अपनी निर्बलता के कारण है॥२९३॥

२९३, **ज्ञानी को तो ऐसी ही भावना होती है...** अपना शुद्ध आनन्द प्रभु का जहाँ अनुभव हुआ और दृष्टि–सम्यग्दर्शन हुआ, तो उसकी भावना ऐसी रहती है कि **इस समय पुरुषार्थ चले तो इसी समय मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त कर लें**। आहा..हा..! भगवान आनन्द का खजाना, प्रभु! आहा..हा..! उसका अनुभव हुआ, ज्ञान हुआ तो धर्मी को ऐसी भावना (रहती है कि) इस क्षण में मुनिपना लेकर केवलज्ञान हो जाये, ऐसी भावना है, परन्तु पुरुषार्थ की कमी के कारण वह नहीं होता। आहा..हा..! यहाँ क्या कहते हैं? कि ज्ञानी को राग में रहने की भावना नहीं है। राग आता है। समझ में आया? राग रुचता नहीं, ठीक नहीं लगता, अच्छा नहीं लगता। आहा..हा..!

इस क्षण में... आहा..हा..! मेरे आनन्द का नाथ प्रभु, मैं उसमें लीन हो जाऊँ और मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त करूँ, ऐसी भावना है, परन्तु कमजोरी के कारण पुरुषार्थ इतना काम नहीं करता। कर्म के कारण से नहीं। समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं कि तुम ऐसा कहते हो कि ऐसा होवे तो केवलज्ञान क्यों नहीं लेते? आत्मा स्वतन्त्र है तो केवलज्ञान (क्यों नहीं प्राप्त करते)? परन्तु केवलज्ञान स्वतन्त्र है। कर्म बाधक है; इसलिए प्राप्त नहीं करते, यह बात मिथ्या है। अपने पुरुषार्थ की कमी है; इसलिए मुनिपना लेकर चारित्र या केवलज्ञान प्राप्त नहीं करते। आहा..हा..! समझ में आया? परद्रव्य का दोष निकालना, वह तेरी बात सत्य नहीं है।

वे कहते हैं कि आत्मा में ऐसा होवे तो केवलज्ञान ले लो। केवलज्ञान क्यों नहीं लेते? कर्म से तुझमें कुछ होता ही नहीं। कर्म से कुछ होता ही नहीं। आहा..हा..! यह प्रश्न भी वहाँ चला था। (संवत्) २०१३ के वर्ष में। वर्णीजी के साथ। २१ वर्ष हुए। बाद में पत्र प्रकाशित हुए हैं, उनमें है कि ज्ञानी 'कानजीस्वामी' कहते हैं कि ज्ञान में हीनाधिकपना होता है, वह अपनी योग्यता से होता है; ज्ञानावरणीय कर्म से नहीं। वह पुस्तक है। उन लोगों की ओर से तब (प्रकाशित हुई थी) वर्णीजी कहते हैं, नहीं, ज्ञानावरणीय कर्म से हीनाधिकता होती है। परद्रव्य से हीनाधिकता होती है? आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं माने, परन्तु उस दिन ऐसी चर्चा हुई थी। यह बात थी नहीं। शास्त्र में ऐसा आवे न, गोम्मटसार में (कि) ज्ञानावरणीय, ज्ञान को आवरण करता है, वह ज्ञानावरणीय—परन्तु इसका अर्थ क्या? यह तो निमित्त का कथन है, प्रभु! तेरे ज्ञान की भावदशा तू हीन करता है तो तुझे वहाँ इतना घात हुआ, इतने में घातिकर्म का निमित्त कहते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात है। समझ में आया? यहाँ शान्तिसागरजी (भी) आये थे। वे (कहते थे) हम वस्त्र छोड़कर बैठ गये हैं, परन्तु कर्म हटे तो हो न, ऐसा बोलते थे।

मुमुक्षु : नग्न तो हुए परन्तु कर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म हटे तब हो न! यह बात थी नहीं।

'कर्म विचारै कौन मूल मेरी अधिकाई,
अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई'

अकेली अग्नि को घन नहीं पड़ते, परन्तु अग्नि लोहे के साथ होती है तो घन पड़ते हैं। इसी प्रकार आत्मा अकेला स्वतन्त्र होवे तो नहीं परिणमता, परन्तु आत्मा राग के साथ जुड़ता है... आहा..हा..! स्वयं के कारण से, हों! तो दु:ख के घन पड़ते हैं। आहा..हा..! ऐसा उपदेश यह क्या? यह उन वीतराग का मार्ग ऐसा होगा?

मुमुक्षु : वीतराग ही ऐसा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वीतराग का मार्ग है, प्रभु! ऐसा कहे, यह कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन त्याग करना, व्रत करना, ऐसा धर्म तो हम सुनते हैं। ऐई! स्थानकवासी में तो यह सब होता है। आहा..हा..! परन्तु वास्तविक स्थानवासी तो भगवान आत्मा-स्थानक है। उसमें बसे, (वह स्थानवासी है।) यह दया के भाव ही राग हैं, यह मुझमें से मैं हट गये। आहा..हा..! आहा..हा..! इसकी टीका (आलोचना) की थी विद्यानन्दजी ने। दया धर्म है, उसे राग कहते हैं, हिंसा कहते हैं। अरे प्रभु! किस प्रकार? भाई! आहा..हा..! अरे! तीन लोक के नाथ की अनुपस्थिति! सर्वज्ञता प्रगट पर्याय की उपस्थिति नहीं अपने में। उस समय ऐसा मार्ग समझना... आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, धर्मी को आत्मा के आनन्द का स्वाद आया, तो मैं तो पूर्ण स्वाद को प्राप्त करूँ, ऐसी भावना होती है। रुक जाऊँ, ऐसी भावना नहीं। परन्तु भाव की कमजोरी

के कारण राग में रुक जाता है। आहा..हा.. ! तीर्थंकर जैसे तीन ज्ञान और क्षायिक समकित लेकर आये। ऋषभदेव भगवान, चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य था। ८३ लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में रहे। यह तीर्थंकर का आत्मा... आहा..हा.. ! तीन ज्ञान लेकर आये। निश्चय है कि इस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। उन्हें भी ८३ लाख पूर्व समकिती को गृहस्थाश्रम में-राग में रहना पड़ा। आहा..हा.. ! समझ में आया ? पश्चात् जब चारित्र लिया... आहा..हा.. ! पुरुषार्थ की कमी के कारण तीर्थंकर भी वहाँ रुक जाते हैं। आहा..हा.. ! कर्म के कारण से नहीं। समझ में आया ? धर्मी की भावना तो तीर्थंकर के आत्मा की भी ऐसी है कि इस क्षण में मैं मुनिपना लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर लूँ। आहा..हा.. !

श्रीमद् में आता है न ? 'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा।' अपूर्व अवसर आता है ? है ? दूसरी पुस्तक है। अपूर्व अवसर में। कलश-टीका में ? यह, देखो ! गुजराती में से हिन्दी बनाया है। यह अपूर्व अवसर मेरा कब आयेगा ? समकिती भावना भाता है। 'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ ?' बाह्य और अभ्यन्तर निर्ग्रन्थ हो जाऊँ। 'सर्व प्रकार के मोहग्रन्थ को तोड़कर, कब विचरूँगा महत पुरुष के पंथ में ?' भव्य दिगम्बर मुनि मुद्रा को पायेगा। सम्यग्दृष्टि भावना भाता है। भव्य दिगम्बर मुनि मुद्रा को पायेगा। 'अपूर्व अवसर ऐसा प्रभु कब आयेगा ?' समझ में आया ? आहा..हा.. ! तब सम्प्रदाय में इसकी आलोचना हुई थी। कि अपूर्व अवसर ऐसा (कब आयेगा कहते हैं) तो मुनिपना क्यों नहीं ले लेते ? मुनिपना अर्थात् यह उनका माना हुआ। अरे ! प्रभु ! यह मुनिपना लेना, वह कहीं यह बाहर का (त्याग किया, इसलिए) मुनिपना हो गया ? अन्तर में आनन्द की उग्र रमणता प्रगट हो। सबेरे आया था न, भाई अपने ? प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान। आहा..हा.. !

ज्ञानस्वरूप का अनुभव होने पर भी राग का परिणमन है, अव्रत का परिणमन है, दुःखदायक है। आहा..हा.. ! परन्तु ज्ञान उसे भलीभाँति जानता है कि यह तो राग है, दुःख है। ऐसे जानकर ज्ञान, ज्ञान में स्थिर हो जाता है, रमता है, उसका नाम चारित्र और प्रत्याख्यान है। आहा..हा.. ! बाहर में नग्न हुआ और पंच महाव्रत का विकल्प आया, इसलिए चारित्र हो गया, ऐसा नहीं है। यह पूरा अपूर्व अवसर है, यह पूरा हिन्दी है।

बाहर आना पड़े, वह अपनी निर्बलता के कारण है। बाहर आना पड़े, आनन्द के धाम के अनुभव में से बाहर राग में आना पड़े... आहा..हा.. ! वह अपनी निर्बलता-

कमजोरी है। कर्म के कारण नहीं। आहा..हा..! **बाहर आना पड़े...** आनन्द के नाथ में से बाहर विकल्प में आना पड़े... आहा..हा..! **वह अपनी निर्बलता के कारण है।** अपनी कमजोरी है। आहा..हा..! लोगों को एक-एक बात बैठना कठिन, भाई! आहा..हा..! बाहर से लोगों ने लगा रखी है बस, कर्म से नुकसान होता है, कर्म से आत्मा में विकार होता है, कर्म टले तो विकार टले। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं 'कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकाई' मैंने भूल की, तब कर्म को निमित्त कहा गया। ऐसी बातें हैं। आहा..हा..!

ज्ञानी को 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है। वे भक्ति-शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं, तब भी उनकी ज्ञायकधारा तो अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती है॥२९४॥

२९४। **ज्ञानी...** धर्मी **को 'मैं ज्ञायक हूँ'....** मैं जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. ज्ञायक जाननस्वभावी भगवान मैं हूँ। आहा..हा..! **ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है।** आहा..हा..! (स्वरूप) सन्मुख हुआ, वह दशा कायम धारावाही रहती है। भले राग हो परन्तु फिर उससे भिन्नता नहीं करनी पड़ती; भिन्नता चलती ही है। पहले भिन्न किया, फिर भिन्नता चला ही करती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब ऐसी बातें, भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहा..हा..!

ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है। वे भक्ति-शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं.... आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी भक्ति आदि में, वाँचन आदि में, बाहर भक्ति के प्रसंग में उल्लासपूर्वक दिखते हैं परन्तु है अन्दर में भिन्न। आहा..हा..! भक्ति का शुभभाव आता है न? शास्त्र अभ्यास शुभराग। **आदि बाह्य प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं....** आहा..हा..! **तब भी उनकी ज्ञायकधारा...** भिन्न पड़ी हुई ज्ञायकधारा कभी एक नहीं होती। आहा..हा..! समझ में आया? शास्त्र अभ्यास आदि हैं न? वाँचन करना, पूछना इत्यादि-इत्यादि विकल्प ज्ञानी को भी आते हैं। आहा..हा..! बाहर के **प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं, तब भी उनकी ज्ञायकधारा तो अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती**

है। राग के विकल्प से ज्ञायक भिन्न अनुभव में आया, तो भिन्न धारा ही रहती है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं। यह कहा न ? दो धाराएँ (चलती हैं) । ज्ञानधारा और रागधारा / कर्मधारा। (समयसार कलश) ११०। कर्मविरति का ११० वाँ श्लोक। आहा..हा.. ! शरीर, वाणी, मन की पर्याय तो स्वतन्त्र है, परन्तु अपनी कमजोरी के कारण शास्त्र अभ्यास आदि का राग आता है, उस समय भी राग से ज्ञानधारा भिन्न रहती है; एक नहीं होती। आहा..हा.. ! अरे ! ऐसा काम है।

उनकी ज्ञायकधारा तो अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती है। आहा..हा.. ! बाहर में वाँचन में, भक्ति में, शास्त्र अभ्यास में विकल्प उठते हैं, उल्लसित दिखते हैं, तथापि अन्तर में इनसे भिन्न मेरी चीज़ है, यह धारा तो कायम चलती है। समझ में आया ? यह २९४वाँ बोल हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ज्ञानियों का करुणापूर्ण उपदेश है।

आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है, आत्मा में शान्ति है; जिसे इस बात का पता नहीं है, वह बाहर में शान्ति मानता है परन्तु वहाँ शान्ति नहीं है। शरीर, पैसा, परिवार इत्यादि वस्तुओं में सुख नहीं है, वे तो परवस्तुएँ हैं। वे पड़ी रहती हैं और आत्मा कहीं चला जाता है, इसलिए उनमें सुख नहीं है किन्तु जीव, अज्ञान से उनमें सुख मानता है और शरीर इत्यादि में अपनापना मानता है – यही संसार है और इसी का दु:ख है। उस दु:ख के अभाव का उपाय बताते हुए ज्ञानी कहते हैं कि भाई ! सुख तो आत्मा में है। यह बात समझने से ही शान्ति प्राप्त होती है परन्तु पहिले इसकी रुचि होना चाहिए कि अरे रे ! मैं कौन हूँ ? मेरा क्या स्वरूप है ? अनन्त काल में महामूल्यवान् मनुष्यभव प्राप्त हुआ तो उसमें आत्मा का स्वरूप है ? – यह जानने से दु:ख का अभाव होगा। संसारी जीव के भावमरण का अभाव होने के लिये ज्ञानियों का करुणापूर्ण उपदेश है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-६

असोज शुक्ल ३, गुरुवार, दिनाङ्क ०५-१०-१९७८
वचनामृत-२९५ से २९६ प्रवचन-११०

यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है, तथापि उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दु:खरूप से वेदन में आती है और वीतरागता-अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है। जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो, उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है। आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता। यदि साधक को बाह्य में—प्रशस्त-अप्रशस्तराग में—दु:ख न लगे और अन्तर में—वीतरागता में—सुख न लगे तो वह अन्तर में क्यों जाये? कहीं राग के विषय में 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्तराग को 'विषकुम्भ' कहा हो, चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है कि—विभाव का अंश, वह दु:खरूप है। भले ही उच्च में उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो, तथापि जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है और जितना निवृत्त होकर स्वरूप में लीन हुआ, उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है॥२९५॥

यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को... पहली बात तो यह सिद्ध की है कि राग के विकल्प से ज्ञायकस्वरूप प्रभु भिन्न है। रागरहित दृष्टि जो द्रव्य को अनुभव करे, पकड़े, ऐसी दशा को साधकदशा (कहते हैं)। आहा..हा..! जो धर्म के साधकरूप से आया। जिसे राग की एकता पड़ी है, वह तो एकान्त मिथ्यादृष्टि दु:खी है। समझ में आया? यह भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दस्वभावस्वरूप है। इसके साथ राग का कोई भी छोटे से छोटा कण, उसके साथ जहाँ एकत्वबुद्धि है, वह तो झूठी दृष्टि है। इसलिए उसे अकेले दु:ख का ही वेदन है। अरे! ऐसी बातें हैं। चाहे तो वह राजा हो या देव हो या अरबोंपति

सेठ हो। आहा..हा..! परन्तु अन्दर में उस राग के... स्वभाव त्रिकाली शुद्ध चैतन्यघन के साथ विभाव के, राग के कण को एकरूप अनुभव करता है, वह संसारी मिथ्यादृष्टि प्राणी है। आहा..हा..! वह एकान्त दुःखी है। यह पैसेवाले सब, तुम सब सुखी हो? लोग सुखी कहते हैं न? नहीं?

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग तो कहते हैं कि ये सब पैसेवाले करोड़पति सुखी हैं। वह नहीं कहता था? कांपवाला नानालालभाई का रिश्तेदार। (वह कहता था) हमारे रिश्तेदार सुखी हैं।

मुमुक्षु : उनके मामा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे मामा? उनके मामा? आहा..हा..! वे कहते थे कि इन नानालालभाई के रिश्तेदार होते हैं न? कि हमारे रिश्तेदार सुखी हैं। मैंने कहा सुखी की व्याख्या क्या? यह पैसा और स्त्री, कुटुम्ब और इज्जत, यह सुख की व्याख्या है? ये तो दुःख के निमित्त हैं, दुःखी हैं। आहा..हा..! जिसे आनन्द का नाथ सहजात्मस्वरूप प्रभु दृष्टि में आया नहीं और उसके बाह्य की रागादि की चीज़ की बाह्य दृष्टि है... आहा..हा..! वह तो चाहे तो बड़े नौवे ग्रैवेयक का देव हो या चाहे तो दिगम्बर नग्न मुनि / साधु अट्ठाईस मूलगुण पालन करता हो, परन्तु वह राग की एकता में दुःखी है। आहा..हा..! ऐसा काम है।

अब यहाँ तो साधक जीव की बात ली है कि साधक जीव अकेला सुखी है? या उसे भी कुछ दुःख है? आहा..हा..! **यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है...** चाहे तो आनन्द की पर्याय हो, चाहे तो दुःख की पर्याय हो, चाहे तो गुणभेद हो, उनका स्वीकार नहीं। दृष्टि में तो ज्ञायकस्वरूप, पूर्ण परमात्मस्वरूप का ही दृष्टि में स्वीकार है। दृष्टि स्वयं निर्विकल्प है, इसलिए भेद उसका विषय नहीं होता। उसका विषय अभेद निर्विकल्प चीज़ है, वह निर्विकल्प दृष्टि का विषय है। आहा..हा..! वह गुणभेद या पर्याय को दृष्टि स्वीकार नहीं करती, क्योंकि दृष्टि में ज्ञान नहीं है। दृष्टि ज्ञानस्वरूप नहीं है। दृष्टि तो वीतरागी निर्विकल्प दृष्टिस्वरूप है। आहा..हा..! इसलिए वह त्रिकाली ज्ञायकभाव को स्वीकार करती है। इसका अर्थ कि यह है, ऐसा जाना; इसलिए

स्वीकार करती है, ऐसा नहीं है। यह जाना है, वह तो ज्ञान ने,... आहा..हा..! परन्तु ज्ञान ने जाना, उसमें इसकी प्रतीति आती है कि यह पूर्ण स्वरूप है, ऐसी प्रतीति आती है। समझ में आया?

दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है, तथापि उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। आहा..हा..! आनन्दस्वरूप भगवान में कैसे स्थिर होकर पूर्ण होऊँ, यह तो सम्यग्दृष्टि की भावना होती है। आहा..हा..! आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु! जिसे अन्तर में साधकरूप से अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया... आहा..हा..! वह सम्यग्दृष्टि साधक से लेकर आगे सब, (उन्हें) अन्तर में स्थिर होने की ही भावना होती है। समझ में आया?

भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता... आहा..हा..! देखो, यह। उन्होंने कल कहा था। वे लोग सरदारशहर। मैंने यह पढ़ा था, खबर है। दीपचन्दजी की वह श्रद्धा हो गयी थी न, कि ज्ञानी को राग का वेदन नहीं होता, दु:ख का वेदन ही नहीं होता। आहा..हा..! उन्होंने सोगानी का द्रव्यदृष्टिप्रकाश पढ़ा। उसमें उन्होंने कहा है कि राग है तो भट्टी है। इसलिए उन्हें ऐसा कि यह और कौन नया निकला? जिसे राग भट्टी लगे, दु:ख का वेदन लगे, वह तो तीव्र कषाय जीव है, ऐसा वे कहते थे। आहा..हा..! अरे रे! क्या हो? ऐसा शल्य लेकर चले गये। बहुत वर्ष का यहाँ परिचय, और उनने ऐसा कहा था एक बार कि ऐसा था और मुझे समकित हुआ है परन्तु इसमें तो कुछ ठिकाना नहीं। यदि दृष्टि सत्य होवे तो उसे राग का भाग बाकी है, वह दु:ख लगे। आहा..हा..! और जितना ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करके जितनी आनन्ददशा प्रगटी, उसे आनन्द लगे और उसके समक्ष राग का विकल्प उठे, वह दु:ख लगे। आहा..हा..! बाह्य चीज़ें कोई दु:खरूप या सुखरूप नहीं हैं। आहा..हा..! बाह्य चीज़ें तो ज्ञेय हैं। मात्र अन्तरस्वरूप में, स्वरूप की एकता नहीं और राग की एकता, वह दु:ख की दशा है। आहा..हा..! और साधक को स्वरूप की एकता हुई, तथापि जितना राग भाग है, उतना दु:ख का वेदन है। आहा..! है?

मुमुक्षु : धर्मी को दु:ख और अधर्मी को भी दु:ख। इसमें अन्तर क्या पड़ा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अधर्मी को अकेला राग का दु:ख है और ज्ञानी को जितना आत्मा के आश्रय से शुद्धता, पवित्रता का अंश आनन्द प्रगट हुआ है, उतना तो आनन्द है। वह एक ही पर्याय में इतना परलक्ष्यी अभी राग है, वह दु:ख है। आहा..हा..! वे कहते थे

ऐसा कि मैंने उन्हें कहा था कि अपने महाराज के पास जायें। वे बहुत बातें किया करे न, तो यह कहे भाई! अपने महाराज के पास जायेंगे। आ नहीं सके। अरे रे!

यह आत्मा सम्यग्दृष्टि साधक हुआ। अरे! पाँचवें गुणस्थान में हो या छठवें में हो, परन्तु जितना रागांश आता है, उतना दुःख का वेदन ज्ञानी को भी ज्ञान में ज्ञात होता है। आहा..हा..! यह कोई मार्ग है! वह **रागांशरूप बहिर्मुखता...** देखो! क्या कहते हैं? जितना राग भाग है, वह बहिर्मुखता है, क्योंकि उसका लक्ष्य पर के ऊपर है। देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार के प्रति लक्ष्य, वह शुभ और अशुभराग दोनों... आहा..हा..! वह रागांशरूप; पूर्ण राग नहीं रहा क्योंकि साधकपना हुआ है, इसलिए अनन्तानुबन्धी के राग की एकता तो टूट गयी। इतनी तो स्वरूप में आनन्दरूपी दशा प्रगट हुई है, आहा..हा..! परन्तु जितना बहिर्मुखता का राग अभी (वर्तता है, उतना दुःख भी है)। आहा..हा..!

भरत जैसे समकिती, ज्ञानी को भी भाई के साथ युद्ध करने का राग आया। आहा..हा..! बहिर्मुख का राग है न? आहा..हा..! इतना दुःख है। सीताजी आत्मज्ञानी धर्मात्मा... आहा..हा..! उन्हें वह लंका का रावण ले गया। हनुमानजी आये, अरे! वीरां प्रभु अँगूठी, रामचन्द्रजी की अँगूठी लेकर रामचन्द्रजी ने हनुमान को भेजा। वहाँ सीता के पास जा। (हनुमानजी) कामदेव पुरुष थे, राजकुमार थे। हनुमानजी कहीं बन्दर नहीं थे। बन्दर का तो उनकी ध्वजा में राजचिह्न था। लोगों ने उन्हें बन्दर सिद्ध किया। वे पुरुष वहाँ गये हैं। ऐसे सीताजी अकेली (बैठी हैं)। ऐसे हनुमान को देखती हैं। आहा..हा..! दो दिन पहले कहा था।

भाई! हम दुकान पर यह बोलते थे। १८-१९ वर्ष की उम्र की बात है। वहाँ उस समय अभ्यास तो यह करते थे न? लक्ष्मण ऐसे पड़े हैं, करोड़ों मनुष्य बड़ा पण्डाल भरा है, करोड़ों मनुष्य। राम कहते हैं, भाई! देखो! एक विकल्प आया, 'आये थे तब तीन जन और जाऊँ एकाएक।' लक्ष्मण, हम वन में तीन जनें आये थे न! सीता को रावण ले गया। प्रभु! तू इस स्थिति में पड़ा है। 'आये थे तब तीन जन, और जाऊँ एकाएक। माताजी खबर पूछेगी उन्हें क्या-क्या जवाब दूँगा लक्ष्मण। जागने होजी, हे बन्धव बोल न एक बार!' एक बार बोल, एक बार बोल। यह क्या है? रागांश है। आहा..हा..! समझ में आया? नवरंगभाई! यह ऐसी बातें हैं। आहा..हा..!

भगवान को लो न, ऋषभदेव भगवान। यह लोगों को सिखाया, यह सब क्या है?

विकल्प है कि ऐसे घड़ा बनाना, हाथी को हाथी को... रखकर मिट्टी डाले। उसका कुम्भस्थल होता है न, और कुण्डा बनाने का और ऐसा बनवाये और दूसरे तो साधन कहाँ थे? घड़ा ऐसा बनाये, फिर उसमें से पानी ऐसे लिया जाये। यह सब कर्मधारा उन्हें सिखायी। ऋषभदेव भगवान ने सिखायी। वह तो विकल्प था या क्या था? आहा..हा..! समझ में आया? क्योंकि कल्पवृक्ष के वृक्ष तो रहे नहीं। अब इन लोगों को खाना क्या? फिर उन्होंने कहा, भाई! यह अनाज पकता है तो इस अनाज को लेकर... यह बड़ा पत्थर है, इसे बीच में रखकर ऐसे करना। उसका (अनाज का) आटा बनेगा, फिर उसमें पानी डालकर बाँधना। फिर उसे यह जो लकड़ियाँ हैं न, उनमें से लकड़ियों का टुकड़ा लो, फिर उससे... आहा..हा..! समकिती ज्ञानी, तीन ज्ञान के धनी तीर्थंकर प्रभु और इस भव में जिन्हें मोक्ष जाना है, परन्तु ऐसा रागांश आया। आहा..हा..!

मुमुक्षु : राग का अंश है या लोक कल्याण का अंश है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये कल्याण-फल्याण। लोग ऐसा कहे कि लोगों को शिक्षा। उसमें आया तो राग है न, वह कहाँ वीतरागता थी? आहा..हा..!

इतना **रागांशरूप बहिर्मुखता, उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** आहा..हा..! शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ चक्रवर्ती, तीर्थंकर और कामदेव थे। छह खण्ड में उनके जैसा रूप नहीं, ऐसे पुरुष तीन ज्ञान लेकर आये थे, तथापि उन्हें स्त्री के विवाह का विकल्प (आया)। यह विकल्प क्या है? भाई! अशुभराग है, दुःख है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ज्ञानी दुःखरूप परिणमे?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख वेदता है। आहा..हा..! अमृत का सागर भगवान आत्मा, उसकी धारा से विरुद्ध रागधारा... आहा..हा..! ज्ञानधारा भी साथ में है, साथ में यह रागधारा आती है। इतना ज्ञानी तीर्थंकर को भी उतना दुःख वेदन में आता है। समझ में आया? आहा..हा..!

और वीतरागता-अंशरूप अन्तर्मुखता... और भगवान आनन्द का नाथ प्रभु की सन्मुखता की दशा से हुई वीतरागता का अंश, वह आनन्दरूप से वेदन में आता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बात धारणा में ले लेवे परन्तु उसके ख्याल में उसे बात बैठना चाहिए, भाई! आहा..हा..! ऐसी धारणा तो अनन्त बार शास्त्र से की है। आहा..हा..!

परन्तु अन्दर में इसे रुचि में यह बात बैठनी चाहिए। आहा..हा.. ! साधक जीव समकिती, ज्ञानी, अरे ! चारित्रवन्त मुनि हों, उन्हें भी जितना पंच महाव्रत का रागादि-रागांश आता है, उतना दु:खरूप से वेदन में आता है; जितना स्व के आश्रय से दर्शन-ज्ञान और चारित्र की स्थिरता जमी है, उतना आनन्द अंश वेदन में आता है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? संयोग चाहे जो हो, उन्हें तो चक्रवर्ती के संयोग हैं। बहत्तर हजार पाटन, अड़तालीस हजार... छियानवे करोड़ गाँव। वे कहीं सुखरूप हैं ? दु:खरूप हैं ? वे तो दु:ख के निमित्त हैं। आहा..हा.. ! हैं तो ज्ञेय, परन्तु धर्मात्मा को उनके प्रति जरा अन्दर राग आता है। आहा..हा.. ! वह दु:खरूप है और जितना प्रभु के आश्रय से, सच्चिदानन्द प्रभु के अवलम्बन से जितनी निर्मल दशा हुई, उसे वीतराग अंश लिया, उतना उसे आनन्द का वेदन है। कहो, समझ में आया ? आहा..हा.. !

जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो... जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति अर्थात् रागादि; वृत्ति अर्थात् परिणति **वर्तती हो, उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है**। दृष्टि में तो मेरा स्वरूप उनसे भिन्न है, ऐसा रहता है। समझ में आया ? रागांश वेदन में आता है, वीतरागता वेदन में आती है परन्तु स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से राग के वेदन से भी भिन्न रहता है। आहा..हा.. ! एक ओर वेदन करता है, ऐसा कहना और एक ओर उससे भिन्न रहता है। आहा..हा.. ! **न्यारा का न्यारा रहता है।**

आँख में किरकिरी नहीं समाती... हिन्दी में किरकिरी शब्द है न ? किरकिरी अर्थात् कण। आँख में कण... इसमें हिन्दी में शब्द है। हिन्दी है ? किरकिरी शब्द है न ? कण। आँख में एक जरा सा रजकण ऐसे कहीं से उड़ता आवे, खटक... खटक... खटक... खटक (करे)। आँख को एकदम लाल बना दे। कण उड़कर (आवे)। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दकन्द में राग का भाग आवे, वह कण-खटक-खटक दु:ख वेदन में आता है। आहा..हा.. ! उससे न्यारा का न्यारा (रहता है)। वेदन होने पर भी मेरी चीज़ तो उस वेदन से भिन्न है। आहा..हा.. ! वस्तु अपेक्षा से। आहा..हा.. ! आहा..हा.. ! द्रव्य जो है, वह तो मेरा, यह आनन्द का और राग का वेदन है, उससे मैं भिन्न हूँ। आहा..हा.. !

एक ओर धर्मी जीव उदय और निर्जरा दोनों को जानता है। आता है न ? बन्ध और मोक्ष को जानता। उदय को करे नहीं, निर्जरा को करे नहीं, बन्ध को करे नहीं और मोक्ष को करे नहीं। आहा..हा.. ! ३२० गाथा (समयसार)। आहा..हा.. ! राग को टाले, यह करे

नहीं – ऐसा कहते हैं। यह तो आ गया न सबेरे? राग के त्याग का कर्तापना तो नाममात्र है। आहा..! ज्ञानी को राग होता है, उसे वह जानता है। (राग) जाता है, उसे जानता है। होता है, वह उदयभाव है, उसे जानता है। जाता है, वह निर्जराभाव है, उसे भी जानता है। निर्जरा करता नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें अब।

इसी प्रकार यहाँ (कहते हैं) **साधक न्यारा का न्यारा रहता है**। वेदन की पर्याय होने पर भी, उसकी दृष्टि में ज्ञायकपने का जोर है; इसलिए उस राग से और एक समय की पर्याय से भी मेरा तत्त्व न्यारा है। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त गुण का भण्डार, आहा..हा..! ऐसा जो भगवान दृष्टि में आया, उसे इस वेदन की पर्याय से भी मेरा द्रव्य तो भिन्न है, वह पर्याय में आया नहीं। आहा..हा..! एक ओर कहें तो आनन्द का वेदन है, वह मुझमें है, परन्तु दुःख का वेदन विभाव है, वह मेरा स्वरूप नहीं। वेदन है। आहा..हा..! समझ में आया? द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से वह मेरा स्वरूप नहीं है। आनन्द का वेदन है, वह तो मेरे स्वरूप की स्थिति है। आहा..! ऐसी बातें! अरे!

आँख में किरकिरी नहीं समाती, उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता। आहा..हा..! एक ओर कहा कि विभाव वेदन में आता है, तथापि दृष्टि के द्रव्य की अपेक्षा से वह विभाव उसमें मेरा है, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें! एक ओर कहे वेदन में आता है, एक ओर कहे मेरा नहीं है। द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से। पर्याय में वेदन में आता है, यह पर्यायदृष्टि से। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप! **उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता**। आहा..हा..! ले! भगवान चैतन्यस्वरूप का परिणमन तो आनन्द और शान्ति है। उसके परिणमन वेदन में राग होने पर भी वह मेरा परिणमन-द्रव्यस्वभाव का परिणमन नहीं है। अरे! आहा..हा..! एकान्त खींचे कि वेदन नहीं, वह भी मिथ्या है और एकान्त खींचे कि विभाव मेरा स्वभाव है, वह भी मिथ्या है। आहा..! द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से विभाव मेरा है, यह झूठ बात है। पर्याय की अपेक्षा से पर्याय में वेदन है, यह बराबर है। आहा..हा..! समझ में आया?

रागरहित पर्याय करके अन्दर में आत्मा का (स्वरूप) प्राप्त न हो, ऐसा तीन काल में नहीं बनता। परन्तु राग की पर्याय वेदन में है, तथापि ज्ञानी को उस राग की वेदन की पर्याय / विभाव मेरे द्रव्यस्वभाव में है, ऐसा नहीं मानता। आहा..हा..! द्रव्यस्वभाव अपेक्षा से मेरा है, ऐसा नहीं मानता, परन्तु पर्याय में वेदन है, वह मुझमें है, (ऐसा मानता है)। ऐसी बातें हैं।

अरे! इसने अनन्त काल में भटकने के भाव किये। आहा..हा..! अन्दर भगवान चैतन्य परमात्मा साक्षात् पर्याय के पास पड़ा है। एक समय की पर्याय जो है वस्तु, उसके पास प्रभु पड़ा है। उसे देखने को, जानने को समय नहीं लिया (समय नहीं निकाला)। आहा..हा..! और देखने को, जानने को समय लिया, तथापि कहता है कि पर्याय में राग का वेदन है, वह मुझमें है, उस पर्याय को मैं वेदता हूँ, पर्याय में; तथापि द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से विभाव मेरी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! गोविन्दरामजी! ऐसा है।

यदि साधक को बाह्य में—प्रशस्त-अप्रशस्त... है? शुभराग और अशुभराग आता है। है? प्रशस्त (राग)—देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति, प्रेमादि का शुभराग आवे, और अशुभ भी हो। साधक अभी चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) है, उसे स्त्री, विषय, कुटुम्ब आदि की ओर के झुकाव का अशुभराग भी आता है। प्रशस्त अर्थात् शुभराग; अप्रशस्त अर्थात् अशुभराग। आहा..हा..! ज्ञानी व्यापार में बैठा हो, तब व्यापार के उस प्रकार के अशुभ परिणाम तो आते हैं। आहा..! समझ में आया? चक्रवर्ती के राज्य में समकिती बैठा है, तब राज्य को कहे ऐसा करो, ऐसा करो। राज्य की व्यवस्था ऐसी चाहिए। आहा..हा..! ऐसा अशुभराग आता है और देव-गुरु-शास्त्र की विनय का, भक्ति का, बहुमान का राग आता है। आहा..! तथापि दृष्टि की अपेक्षा से तो ज्ञायक में वर्तता है। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप!

प्रशस्त-अप्रशस्त राग में—दुःख न लगे... है? आहा..हा..! अरे! यह पुस्तक बाहर निकलने से पहले गुजर गये। यह पुस्तक यदि बाहर... बहुतों को ऐसी विपरीतता हो गयी बेचारों को। दिल्ली में वे जयकुमार और ज्ञानचन्दजी कितने आते बेचारे? विपरीतता हो गयी बेचारों को और ये माने कि हमारी बात बराबर है। क्या हो? ज्ञानी को शुभ-अशुभराग का दुःख होता ही नहीं, ऐसा वे कहते हैं। आहा..हा..! अरे! चौथे, पाँचवें (गुणस्थान में) तो रौद्रध्यान भी होता है, अशुभराग। पुत्र ऐसे २०-२५ वर्ष का युवक हो और मर जाये, उसके कारण नहीं परन्तु अपनी कमजोरी के कारण राग आवे, रोता है।

भरत चक्रवर्ती। भगवान ऐसे जहाँ मोक्ष पधारे, अष्टापद पर्वत पर जाते हैं, वहाँ ऐसे जहाँ देह आत्मारहित देखा। आत्मा में से आँसू की धारा (बहती है)। समकिती, तीन ज्ञान इसी भव में मोक्ष जाना है, प्रभु! परन्तु आहा..हा..! उस ओर जहाँ आया वहाँ, अरे! प्रभु का विरह पड़ा! सूर्य अस्त हो गया!! यह सूर्य तो अस्त हमेशा होता है, परन्तु यह तो चैतन्य

सूर्य भगवान, भरत का चैतन्य सूर्य केवलज्ञानी परमात्मा (रूपी सूर्य) अस्त हुआ। रोते हैं। इन्द्र आता है, इन्द्र-शकेन्द्र ऊपर से (आता है)। इन्द्र कहता है, भरत! यह क्या है तुझे? भगवान ने कहा है और तुझे भी खबर है कि मैं तो इसी भव में मोक्ष जानेवाला हूँ। (भरत कहता है) इन्द्र! खबर है, भाई! परन्तु मुझे यह रागांश आया, इसलिए यह रुदन आया। पाटनीजी! छह खण्ड का स्वामी, जिसके घर में छियानवें हजार रानियाँ, जिसके घर में बहत्तर हजार नगर और छियानवें करोड़ गाँव। उनका स्वामी यहाँ भगवान को देखकर (रोता है)। अरे रे! प्रभु का विरह पड़ा। इस भरत में प्रभु का विरह पड़ा। आहा..हा..! उसके रुदन में यह राग आया। रुदन की क्रिया तो जड़ की है। आहा..हा..! समझ में आया? यह राग का दु:ख वेदन में आवे, तथापि अपने द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से वह मेरी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें।

राग में—दु:ख न लगे और अन्तर में—वीतरागता में—सुख न लगे तो वह अन्तर में क्यों जाये? क्या कहा? शुभ-अशुभराग में यदि दु:ख न लगे और अन्तर में जाने से आनन्द न लगे तो वह अन्तर में जाने का प्रयत्न क्यों करे? आहा..हा..! शुभराग में से हटकर अन्तर में जाऊँ, अशुभराग में से हटकर अन्तर में जाऊँ, मेरे नाथ से मैं अन्दर मिलूँ। आहा..हा..! ऐसा कैसे हो, यदि दु:ख न लगता हो तो? समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बातें गजब यह। इस जगत के मोह ने मार दिया। आहा..! यहाँ तो परमात्मा के स्वरूप की भान दशा हुई, उसे भी ऐसा बहिर्मुखता का रागांश आता है। आहा..हा..! उसे दु:ख न लगे तो वह अन्दर में जाने का प्रयत्न क्यों करे? आहा..हा..! क्या कहा? यदि राग में दु:ख न लगे तो अन्दर में जाने का प्रयत्न क्यों करे? आहा..हा..! उसकी दृष्टि में तो पूरा ज्ञायक वर्तता है और इसलिए राग के परिणमन में दु:ख नहीं लगे तो अन्दर में जाने का, एकाकार होने का प्रयत्न क्यों करे? आहा..हा..! चारित्र की अपेक्षा से बात है न?

कहीं राग के... अब कहते हैं, राग को कहीं क्यों कहा, यह कहते हैं? **'राग आग दहै' ऐसा कहा हो,...** छहढाला में (कहा है)। **'राग आग दाह दहै सदा'** धर्मी जीव को भी जितना राग आवे, उतना दाह-अग्नि है। आहा..हा..! और जितना भगवान शान्तस्वरूप प्रभु, अकषायस्वरूप, वीतरागस्वरूप का आश्रय लेकर जितनी शान्ति आयी है.. आहा..हा..! उतना शान्त सुख है; और राग वह आग / दाह है। आहा..हा..! एक बात।

कहीं प्रशस्त राग को 'विषकुम्भ' कहा हो,... मोक्ष अधिकार। अब यह बात तो

बहुत पढ़ी नहीं थी, उसे यहाँ सुनायी नहीं थी कि मुनि को भी... आहा..हा..! सन्त हैं वीतरागी भाव के भावलिंगी, उन्हें भी शाम-सबेरे प्रतिक्रमण का विकल्प व्यवहार आता है। आहा..हा..! उन्हें भी भगवान के दर्शन करने का विकल्प आता है। भगवान न हो तो जिनमन्दिर में जिनप्रतिमा के दर्शन करने का विकल्प आता है, वह राग दुःखरूप है। आहा..हा..! समझ में आया ? उसे विषकुम्भ कहा है, जहर का घड़ा कहा है। प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. आहा..हा..!

अमृत के सागर के समक्ष यह राग का भाग जहर है। चाहे तो वह शुभराग हो, भगवान की भक्ति का हो, भगवान के स्मरण का हो, पंच महाव्रत का हो... आहा..हा..! या राग तीव्र हुआ, उसकी निन्दा का भाव हो या गुरु के पास उसके पाप का (प्रायश्चित्त करे), उस भूमिका को न शोभे, ऐसे पाप हुए हों, वे गुरु के निकट कहे, वह भी एक शुभभाव है, वह भी विषकुम्भ है। आहा..हा..! अरे रे! ऐसी सूक्ष्म बातें! भाई! इसे समझना पड़ेगा। आहा..हा..! अरे! जन्म-मरण के चक्र में कोई शरण नहीं है, प्रभु! आहा..हा..! वर्णीजी जैसे बेचारे अन्त में बहुत वह हुआ, तब ऐसा बोल गये थे, अरे रे! आत्मा के बिना कोई शरण नहीं। क्या हो ? अन्तर में जाना, इस चीज़ के बिना कोई शरण नहीं है। बाहर में तो अकेला दुःख है। आहा..हा..!

चाहे जिस भाषा में कहा हो, कहीं आग कहा, कहीं जहर कहा, कहीं राग को अग्नि कहा। भगवान अकषायस्वरूप शीतल उपशमरस का कन्द है। उसकी अपेक्षा से राग है, वह अग्नि-दाह (कहा है) और उसकी अपेक्षा से—अमृतस्वरूप भगवान की अपेक्षा से.. वह शुभराग होता है, मुनि को भी आता है। आहा..हा..! अपने से बड़े सन्त हों, वे आते हों, तो सामने जाये, वन्दन करे, ऐसा शुभभाव आता है। आहा..हा..!

तथापि '**विषकुम्भ' कहा हो, चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है कि—विभाव का अंश, वह दुःखरूप है**। बस, इतनी बात। आहा..हा..! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान का अवलम्बन लेकर अतीन्द्रिय आनन्द अंश आया, तो भी जितना भाग परलक्ष्यवाला विभाव होता है, वह दुःखरूप ही है। चौथे गुणस्थान में तीन कषाय का भाव दुःखरूप, पाँचवें में दो का दुःखरूप, छठवें में एक का दुःखरूप (भाव है)। आहा..हा..! **भाव एक ही है कि—विभाव का अंश, वह दुःखरूप है। भले ही उच्च में उच्च शुभभावरूप...** उच्च में उच्च शुभभाव, जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव

विषकुम्भ ही है। ऐसी बातें। तीर्थंकर प्रकृति बँधे न! उससे क्या? वह तो परमाणु बँधे। वह भाव तो जहर है। आहा..हा..! और प्रकृति बँधी, उसे तो विषकुम्भ, विषवृक्ष कहा, विषवृक्ष कहा है। आहा..हा..!

भगवान अमृत का वृक्ष है और जो (एक सौ) अड़तालीस आदि प्रकृति बंधन पड़ी, वह जहर का वृक्ष है। आहा..हा..! इसमें नहीं आता? आठों ही कर्म का भाग, वह दु:ख है। समयसार की गाथा में आता है। आठ कर्म। आहा..हा..! इनका भाव अन्दर जो हुआ, वह दु:खरूप है। यद्यपि अघाति चार कर्म हैं, उनका भाव है, वह दु:खरूप नहीं है परन्तु दु:ख की बेहद दशा... जो आनन्द (गुण) की है, उसमें इतना अव्याबाधपना नहीं, इतना। अव्याबाधपना नहीं, इतना इन चार प्रतिजीवी गुण के अघाति उदय में भी ऐसा है। क्या कहा यह? भगवान को घातिकर्म टूटे परन्तु अघाति अर्थात् स्वयं के कारण प्रतिजीवी गुण की विपरीत पर्याय खड़ी है तो वह दु:खरूप नहीं परन्तु अव्याबाध जो विघ्नरूप निमित्त चाहिए, उस निमित्त का अभाव हुआ नहीं। आहा..हा..!

आठों कर्मों का भाव दु:खरूप कहा है न? भाई! इसका अर्थ इतना कि चार कर्म तो दु:खरूप हैं परन्तु अघाति का दु:खरूप कहा। इतना कि जो आनन्द का नाथ जगा, आनन्ददशा हुई, तथापि उसे संयोग में प्रतिकूलता रही, उतना अव्याबाधपना उसे नहीं है। इतना उसे उदयभाव दु:खरूप है। अर्थात् उदयभाव है, इतना। आहा..हा..! दु:ख नहीं। अब वहाँ तो चार कर्म का पाक दु:ख कहा है परन्तु इस अपेक्षा से। इतना चार का अभाव हुआ नहीं, इसलिए अव्याबाधपना नहीं, उतनी उसमें कचास है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

भले ही उच्च में उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप... यह ऊँचा भाव अर्थात् परसन्मुख के झुकाववाला, चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधा हो, या चाहे तो सूक्ष्म गुणगुणी के भेद का शुभविकल्प उठे, वह अतिसूक्ष्म है। समझ में आया? ऐसा उपदेश अब। इसे ऐसा कि यह लोग ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो... लोगों के आँसू पोंछों, दु:खी को सुख दो, पैसा दो या अनाज दो। आहा..हा..! लोग प्रसन्न हों, लो! आहा..! बाह्य के त्याग देखे, इसलिए मानो कि आहा..हा..! यह तो धर्मी हो गया—ऐसे लोग प्रसन्न करके उसे वन्दन करे और आदर करे।

मुमुक्षु : अज्ञानी वेश को ही देखते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वेश को, बाह्य त्याग को देखते हैं। अन्तर का राग का अभाव क्या है ? वह तो उन्हें खबर नहीं। आहा..हा.. !

भले ही उच्च में उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप.... अन्दर में भेद का (विकल्प उठे), द्रव्य-गुण और पर्याय के भेद का विकल्प उठे। आहा..हा..! वह अतिसूक्ष्म है। यह तो शुभ जो ऐसा (बहिर्लक्ष्य) जाता है, (वह स्थूल शुभराग) और इसमें द्रव्य-गुण तथा पर्याय तीन भेद का विकल्प उठता है, वह अति सूक्ष्म है। वह **प्रवृत्ति हो, तथापि जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है...** आहा..हा..! शुभ-अशुभराग की प्रवृत्ति अथवा सूक्ष्म राग की प्रवृत्ति, उससे निवृत्त नहीं हुआ। आहा..हा.. ! वह भी एक दुःखरूप है। अति सूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो, **जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता...** अन्दर के राग की प्रवृत्ति की बात है, हों ! बाहर की प्रवृत्ति की बात नहीं है।

और जितना निवृत्त होकर स्वरूप में लीन हुआ... भगवान आनन्द के नाथ में दृष्टि करके स्थिर हुआ। आहा..हा.. ! **उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है।** ऐसी बात है, बापू ! आहा..हा.. ! ज्ञायक शान्तस्वभाव, शान्तरस का आश्रय लेकर अन्दर जितना शान्त रहा, उतनी शान्ति, उतना आनन्द। बाकी जितनी प्रवृत्ति का विकल्प उठे, भले स्थूल शुभादि हों या अति सूक्ष्म गुणगुणी के भेद का विकल्प उठे, परन्तु वह प्रवृत्ति तो दुःखरूप है। यह धन्धे की प्रवृत्ति की बात यहाँ नहीं है, वह तो कर नहीं सकता, इसलिए प्रश्न कहाँ ? यह तुम्हारे टाईल्स-बाईल्स के व्यापार को नहीं कर सकता, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहा..हा.. ! वहाँ तुम्हारे 'ठाणा' में कमरे में उतारा था न ? आहा..हा.. ! वह नहीं। वह प्रवृत्ति तो जीव कर ही नहीं सकता। यह तो इसमें हो सकता है, उसके राग की प्रवृत्ति की बात है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! यह गुण-गुणी के भेद का या यह द्रव्य, गुण और पर्याय है, ऐसा जो भेदरूप विकल्प, वह भी एक प्रवृत्ति है। इसलिए उसे तो नियमसार में अनावश्यक कहा है-वह आवश्यक नहीं है। आहा..हा.. ! आवश्यक तो उससे निवृत्त होकर अन्दर में रमना, वह आवश्यक है। आहा..हा.. !

जितना निवृत्त होकर स्वरूप में लीन हुआ, उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है। आहा..हा.. ! लो ! आज तो इस एक भाग (बोल) में (समय) गया। भाई ने कहा था कल, वह मैंने पढ़ा था सुमेरुमल। बुद्धिवाला व्यक्ति है। पढ़ा है, बात ख्याल में है। मैंने कहा, यह बराबर कल आयेगा, परन्तु वे कुछ बोले नहीं की मुझे कल जाना है। यहाँ सब आये थे। अन्त में बैठे थे। बहुत करके ले गये हैं। ले गये ? यह रिकॉर्डिंग।

मुमुक्षु : २४ प्रवचन।

पूज्य गुरुदेवश्री : २४ प्रवचन। यहाँ रहे इतने। कहते थे, वहाँ सुनाऊँगा। बापू! यह तो अमृत के सागर की बातें हैं, नाथ! आहा..हा..! वह अमृत सागर जितना उछले, उतना आनन्द और जितना राग में अटके, उतना जहर। आहा..हा..! धन्धे का राग, वह तो पाप और जहर, तीव्र जहर है, परन्तु देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, वह जहर, परन्तु द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का विकल्प, वह सूक्ष्म जहर है। आहा..हा..! (स्वरूप में लीनता), इतना स्वरूपानन्द... लो! आहा..हा..! २९६ ले लो थोड़ा सा।

द्रव्य तो सूक्ष्म है, उसे पकड़ने के लिये सूक्ष्म उपयोग कर। पाताल कुएँ की भाँति द्रव्य में गहराई तक उतर जा तो अन्तर से विभूति प्रगट होगी। द्रव्य आश्चर्यकारी है ॥२९६॥

द्रव्य तो सूक्ष्म है,... भगवान चैतन्यद्रव्य जो है, वह अरूपी और अमूर्त और सूक्ष्म है। **उसे पकड़ने के लिये सूक्ष्म उपयोग कर।** जिस परिणाम से पकड़ में आवे, उस उपयोग को सूक्ष्म उपयोग कहते हैं। जिस परिणाम से प्रभु पकड़ में आवे, उस परिणाम को यहाँ सूक्ष्म उपयोग कहते हैं। आहा..हा..! और जिस परिणाम से पकड़ में नहीं आता, उसे स्थूल उपयोग कहते हैं। आहा..हा..!

पाताल कुएँ की भाँति द्रव्य में गहराई तक उतर जा... एक समय की पर्याय से भी ध्रुव अन्दर है, ऊपर नहीं। पर्याय के अन्दर में है। आहा..हा..! **पाताल कुएँ की भाँति द्रव्य में गहराई तक उतर जा तो अन्तर से विभूति प्रगट होगी।** जैसे पाताल कुआँ फटे और पानी की धारा बहे। आहा..हा..! उसी प्रकार गहरे ध्रुव को पकड़, तुझे आनन्द की धारा बहेगी, पर्याय में विभूति प्रगट होगी। आहा..हा..! जो स्वभावरूप विभूति है, उसे एकाग्रता से पकड़ने पर... आहा..हा..! विभूति प्रगट होगी। **द्रव्य आश्चर्यकारी है।** प्रभु! तेरा द्रव्य आश्चर्यकारी है। आहा..हा..! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

असोज शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनाङ्क ०६-१०-१९७८
वचनामृत-२९७ से २९९ प्रवचन-१११

तेरा कार्य तो तत्त्वानुसारी परिणमन करना है। जड़ के कार्य तेरे नहीं हैं। चेतन के कार्य चेतन होते हैं। वैभाविक कार्य भी परमार्थ से तेरे नहीं हैं। जीवन में ऐसा ही घुट जाना चाहिए कि जड़ और विभाव, वे पर हैं, मैं वह नहीं हूँ ॥२९७॥

२९७ बोल है न? **तेरा कार्य तो तत्त्वानुसारी परिणमन करना है**। आहा..हा..! यदि तुझे हित करना हो, धर्म करना हो और भव का अन्त लाना हो तो तेरा कार्य यह है। आहा..हा..! तत्त्वानुसारी (अर्थात्) ज्ञायकस्वरूप, आनन्दस्वरूप, पूर्ण ईश्वर परम प्रभु-स्वरूप, परमेश्वरस्वरूप को अनुसरण करके परिणमन करना, वह तेरा कार्य है। धर्मी का धर्म यह है। आहा..हा..! सादी भाषा है। पुण्य और पाप के विकारी भाव तो अनादि से प्राप्त हुए हैं, वह संसार है, दुःख है, परिभ्रमण का कारण है।

अब यदि तुझे धर्मकार्य करना हो तो उसे पहले ज्ञायकभाव कौन है, विकार क्या है, उसका भेदज्ञान करके और तत्त्व के अनुसार दशा होना... आहा..हा..! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्रमणता, वह तत्त्व के अनुसार होनेवाली दशा है। तेरा कार्य तो-धर्मी का कार्य-धर्म करना हो, उसका कार्य। आहा..हा..! ऐसा है। तत्त्व-अनुसारी—ज्ञायकभाव जो चैतन्यस्वरूप, उसे अनुसरण कर परिणमन करना, वह कार्य है। आहा..हा...!

जड़ के कार्य तेरे नहीं हैं। शरीर, वाणी, मन, पैसा, लक्ष्मी, धन्धा या पर आत्मायें, उनका कार्य कुछ तेरा नहीं है। आहा..हा..! इस धन्धे के या परद्रव्य के (कार्य), यह शरीर की हिलने-चलने की क्रिया, वाणी का काम, वह सब कहीं आत्मा का नहीं है। आहा..! वह तो परद्रव्य के कार्य हैं। तदुपरान्त **चेतन के कार्य चेतन होते हैं**। आहा..हा..! **जड़ के**

कार्य तेरे नहीं हैं। अर्थात् परद्रव्य के कार्य तेरे नहीं हैं। आहा..हा..! वाणी का होना, देह का हिलना, वे सब कार्य तो जड़ के, पर के हैं। आत्मा के वे कार्य नहीं हैं।

मुमुक्षु : खाना-पीना वह काम?

पूज्य गुरुदेवश्री : खाने-पीने की क्रिया, वह जड़ की जड़ में है। कौन खाये, कौन पीये? आहा..हा..! यहाँ तो खाने-पीने की क्रिया के काल में पर की ओर का अनुसरण करके जो विकार होता है, वह भी विभाव है, वह भी चैतन्य का कार्य नहीं है। आहा..हा..! ऐसा कठिन काम है। कहो, प्रवीणभाई! इसमें ऐसी प्रवीणता करनी पड़ेगी। आहा..हा..! भगवान चैतन्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप को अनुसरण करके ज्ञान का परिणमन करना पड़ेगा। आहा..हा..! पर को अनुसरण करके जो कुछ पुण्य और पाप के विकार्य होते हैं, वे तो विकारी भाव हैं; आत्मा का कार्य नहीं। वह विभावभाव है। पर के कार्य तो तेरे नहीं, दुकान पर बैठकर, यह सब धन्धा ऐसा करें और पैसा-पैसा करें और ऐसा (करें), वे सब तेरे कार्य नहीं हैं।

मुमुक्षु : करोड़ों रुपये प्राप्त किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये-बुपये कौन प्राप्त करे और छोड़े कौन? आहा..हा..!

यदि तेरे हित का कार्य करना हो, परमपदार्थ, परमार्थ प्रभु को प्राप्त करना हो; पुण्य और पाप तथा मिथ्यात्वभाव की प्राप्ति तो अनादि से की है। वह तो भटकने का रास्ता है। आहा..! चौरासी लाख की योनि में उत्पत्ति के वे सब पंथ हैं। आहा..हा..! तुझे तेरा कार्य करना हो तो... आहा..हा..! भगवान पूर्णानन्द का नाथ आनन्दस्वरूप से भरपूर प्रभु... आहा..हा..! ज्ञानस्वरूप से भरपूर, शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. अकषाय स्वभाव से भरपूर भगवान है। आहा..हा..! उसे अनुसरण कर चैतन्य का परिणमन होना, वह तेरा कार्य है। आहा..हा..! अब ऐसी बातें। बड़ा विवाद। परद्रव्य का कर नहीं सके तो फिर तुम यह मन्दिर क्यों बनाते हो? उपदेश क्यों करते हो? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आप उपदेश देते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दे, प्रभु! सुन तो सही, भाई! आहा..हा..! यह जड़ की परिणति जड़ के काल में होती है, भाई! तुझसे नहीं। उस काल में जो विकल्प आया है वह.. आहा..हा..! वह भी विभाव का कार्य है, प्रभु! तेरा नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें!

अरे! भगवान परमानन्दस्वरूप प्रभु को अनुसरण कर कार्य हो, वह तेरा कार्य है। कहो, छोटाभाई! आहा..हा..! यह होंठ हिले, हाथ हिले, वाणी की क्रिया हो, वह सब जड़ के कार्य हैं, भाई! तेरे अस्तित्व से उसमें (जड़ में) वे कार्य होते हैं, ऐसा नहीं है। उसके अस्तित्व से वे कार्य उसके होते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : सब गड़बड़ करते हों, तब शान्ति रखो – ऐसा तो कहना न.....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन शान्ति रखे? विकल्प उठा, वह कार्य विभाव है। अरे! भगवान! बापू! कठिन काम है, भाई! अपूर्व काम है, कठोर शब्द नहीं... अपूर्व बात है, भाई! आहा..हा..!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा दिव्यध्वनि द्वारा ऐसे कहते थे, वह यह वाणी यहाँ आयी है। आहा..हा..! पर को अनुसरण करके पर के कार्य तो तेरे नहीं, परन्तु पर को अनुसरण करके होनेवाले विभावभाव, वे भगवान चैतन्यस्वरूप ज्ञातादृष्टास्वरूप का वह विभाव कार्य नहीं है। शरीर, वाणी, मन की क्रिया, वह तेरा कार्य तो नहीं, परन्तु अन्दर व्यवहाररत्नत्रय का राग हो, विकार हो, वह भी तेरा कार्य नहीं। आहा..हा..!

प्रत्याख्यान की व्याख्या तो बहुत सरस आ गयी है। चारित्र किसे कहना, प्रत्याख्यान (किसे कहना).. आहा..हा..! यहाँ तो प्रत्याख्यान से पहले भी तेरा कार्य क्या है? नवरंगभाई! ऐसा है, प्रभु! अन्दर आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु को अनुसरण करके शुद्ध-शुद्ध चैतन्य का परिणमन होना, वह तेरा कार्य है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, प्रभु! लोगों को ऐसा लगे, लोग फिर मजाक करते हैं, यदि पर के कार्य नहीं करे (ऐसा कहे) और वापस मन्दिर बनावे। पूरे काठियावाड़ में गाँव-गाँव में करोड़ों रुपये खर्च करके मन्दिर बनावे। यहाँ करोड़ों रुपये खर्च करके यह सब हुआ। भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! यह सब कार्य के काल में जड़ के कार्य (होते) हैं, भाई!

मुमुक्षु : जड़ के कार्य हो भले, परन्तु आपका प्रभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं है, प्रभाव-फ्रभाव की बात ही नहीं है। आहा..हा..! भव्यसागर (एक वर्तमान मुनि) लिखते हैं, इसलिए तुम यह पढ़ो। तीन पत्र हैं, व्याख्यान के बाद। ऐसा (लिखा है) कि इन बहिन के वचनामृत की लोगों को बहुत माँग है, क्योंकि आनन्द ऋषि स्थानकवासी वहाँ है, ऐसा लगता है। इसलिए लोग बहुत आवे न? और यह नग्न मुनि इसलिए बहुत लोग दर्शन करने आवे।

मुमुक्षु : ये सब वापस वहाँ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं, आते हैं। जालना में है। (लोग मेरे पास) आते हैं परन्तु मुझमें वह गुण नहीं, ऐसा बेचारे ने लिखा है। नग्न देखे न और ये सब वस्त्रसहितवाले एक थे और माँगते हैं, बहिन के वचनामृत हमको दो। आहा..हा..! परन्तु अभी पार्सल आया नहीं है। चार सौ भेजे हैं न? तो भी दूसरे दो सौ मँगाये हैं, ऐसा उसमें लिखा है। चन्दुभाई ने पढ़ा था। प्राय: चार सौ के उपरान्त दो सौ मँगाये हैं। आहा..हा..! कहो, जालना में एक भव्यसागर, बीस वर्ष की दीक्षा, दिगम्बर। आहा..! वह ऐसा कहते हैं कि आहा..! यह वस्तु! हम मुनि नहीं हैं। आहा..हा..! क्योंकि ये सब कार्य जो हैं शरीर के, त्याग के और बाहर के, वे सब जड़ के कार्य हैं और अन्दर में शुभ-अशुभविभाव (होता है), वह तो कृत्रिम एक समय की विकार अवस्था है। आहा..हा..! भगवान ज्ञानानन्द चैतन्यस्वरूप प्रभु, ज्ञातादृष्टा के विकारी / विभाव कार्य, वे प्रतिकूल हैं, वह इसका कार्य नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

चेतन के कार्य चेतन होते हैं। जड़ के सामने निषेध करके चैतन्य भगवान का कार्य तो जानना-देखना, वह उसका कार्य है। चेतन के कार्य चेतन होते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वे सब चेतन के कार्य हैं क्योंकि चेतन की जाति के कार्य हैं। आहा..हा..! **चेतन के कार्य चेतन होते हैं। वैभाविक कार्य भी...** जड़ के कार्य नहीं, इसलिए दूसरे कार्य; वैभाविक कार्य भी (ऐसा कहा)। आहा..हा..! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव भी चेतन के कार्य नहीं हैं। लोगों को यह कठिन पड़ता है। बापू! बात तो यह है, प्रभु! आहा..हा..! जन्म-मरणरहित का पंथ तो यह है। बाकी तो अनन्त काल से किया (करता) है। आहा..हा..! अशुभभाव छोड़कर बहुत अभ्यास हुआ, उसे छोड़कर शुभभाव में आवे, परन्तु वह शुभ-अशुभभाव विकृत / विभाव, स्वभाव से विरुद्ध भाव, वह ज्ञातास्वभाव का कार्य कैसे होगा? आहा..हा..!

वैभाविक कार्य भी... 'भी' शब्द क्यों रखा? वे जड़ के कार्य तो तेरे नहीं, तदुपरान्त **वैभाविक कार्य भी परमार्थ से तेरे नहीं हैं।** अर्थात् क्या? पर्याय में उनका परिणमन है, इसलिए इसके हैं, परन्तु करनेयोग्य हैं, ऐसे परमार्थ से वे कार्य नहीं हैं। आहा..हा..!

धर्मी जीव को शुभाशुभभाव आवे, उनका परिणमन हो, इस अपेक्षा से कर्ता कहा जाता है, परन्तु वस्तुरूप से उस दृष्टि से देखने पर वे स्वभाव के कार्य नहीं हैं। आहा..हा..!

ऐसा है। यह हमारे शान्तिभाई का लड़का आया है। जवान है, प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। प्रत्याख्यान की व्याख्या (सुनी वहाँ) आहा..! लो, कहो, शान्तिभाई! तुम्हारा लड़का कहता था कि आहा..! ऐसी प्रत्याख्यान की व्याख्या!

मुमुक्षु : सुनने को मिली नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिली नहीं, बापू! आहा..हा..! भाई! आहा..हा..! राग को, विभावभाव को पृथक् जानकर ज्ञानस्वभाव को अनुसरण करके चारित्र का परिणाम होना... आहा..हा..! वीतरागभाव को अनुसरण करके वीतरागी दशा होना, वह प्रत्याख्यान है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..! ऐसी बातें, बापू! बहुत कठिन, भाई! यह तो अपूर्व बातें हैं, भाई! आहा..हा..! ये **वैभाविक कार्य भी परमार्थ से तेरे नहीं हैं।** अर्थात् व्यवहार से पर्याय में परिणमन है, परन्तु परमार्थ से वे कार्य आत्मा के स्वभाव के नहीं हैं। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..! भगवान पूर्णानन्द का नाथ पर्याय के समीप में पड़ा है न, उसे अनुसरण करके कार्य कर। आहा..हा..! इसके अतिरिक्त जड़ के कार्य तेरे नहीं हैं और वैभाविक कार्य भी परमार्थ से तेरे नहीं हैं। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

जीवन में ऐसा ही घुट जाना चाहिए... जीवन में ऐसा घुट जाना चाहिए कि पर के कार्य मेरे नहीं हैं, परन्तु वैभाविक कार्य परमार्थ से मेरे नहीं हैं; मेरा तो चैतन्य अनुसारी जो कार्य है, वह मेरा कार्य है। आहा..हा..! ऐसी अपूर्व बात है, पूर्व में कभी नहीं की। आहा..हा..! **जीवन में ऐसा ही घुट जाना चाहिए कि जड़ और विभाव, वे पर हैं,...** आहा..हा..! पर आत्मा है, उसकी बात नहीं ली है। आहा..हा..! जड़ और विभाव। चैतन्य के सामने जड़ और स्वभाव के सामने विभाव (लिया है)। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! जालना में यह सब माँग हो गयी, कहते हैं। अभी आये नहीं, मिले नहीं, ऐसा लिखा है। तो भी दो सौ पुस्तक मँगाते हैं। प्राय: नयी मँगाते हैं। पढ़ना। मध्यस्थ लोग हो और पूर्व का आग्रह हो उसे छोड़ने के लिये तैयार हो तो उसे यह समझना एकदम सरल पड़ता है परन्तु पूर्व का आग्रह मानी हुई बात हो और यह पढ़ने जाये तो उसे जँचे नहीं। आहा..हा..!

चरणानुयोग में भगवान ने कहा है कि व्रत पालना, व्रत करना। परन्तु वह पालने का अर्थ? मोक्षमार्गप्रकाशक में भाई ने एक दृष्टान्त दिया है न? कि जो कन्दमूल आदि

दोषवाली वस्तु को न खाये, परन्तु हरितकाय प्रत्येक को खाये, तथापि उसे वह धर्म नहीं मानता। इसी प्रकार मुनि या सम्यग्दृष्टि मुनि सावद्ययोग का त्याग करे। सावद्ययोग अर्थात् पाप के योग का त्याग करे और पुण्य के योग का त्याग कैसे हो वहाँ? क्योंकि वह तो स्वरूप में जब स्थिर हो, तब पुण्य के योग का त्याग होता है परन्तु सम्यग्दर्शन और ज्ञान तथा चारित्र में शुभ का; सावद्ययोग का त्याग और शुभयोग आवे, उसे पाले, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, परन्तु उसे मोक्षमार्ग न माने। ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार में आता है। आहा..हा..! कन्दमूल आदि जो अनन्तकाय है, उसे बहुत दोषवाली जानकर छोड़ता है और प्रत्येक वनस्पति है, उसे खाना नहीं छूटता परन्तु फिर भी खाने का भाव है, वह धर्म नहीं है। इसी प्रकार सावद्ययोग का त्याग है, वहाँ शुभयोग होता है, परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है। आहा..हा..! इतनी शर्तें। आहा..हा..!

जड़ और विभाव, वे पर हैं; मैं वह नहीं हूँ। आहा..हा..! क्योंकि नवतत्त्व है, उनमें अजीवतत्त्व है, वह तो पर है और ज्ञायक तो वह है नहीं, तथा पुण्य-पाप का तत्त्व भी ज्ञायकतत्त्व हो तो ज्ञायक तो भिन्न तत्त्व है। समझ में आया? आहा..हा..! इसीलिए ज्ञायकतत्त्व जो है, उसका यह पुण्य-पाप कार्य उसका नहीं है। आहा..हा..! ऐसा जँचना और यह बात! आहा..हा..! जो विभाव और जड़ है, वह पर है। आहा..हा..! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव विभाव पर है। मेरे स्वभाव का वह परिणमन नहीं है। स्वभाव से विरुद्ध का है। आहा..हा..! इसलिए वह कार्य मेरा नहीं है। आहा..हा..! २९७ (बोल पूरा हुआ)।

ज्ञानी जीव निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाये, तब भी स्वयं नहीं पलटता; विभाव के चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता। बाहर के प्रतिकूल संयोग से ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती; श्रद्धा में फेर नहीं पड़ता। पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है॥२९८॥

२९८, **ज्ञानी जीव...** ज्ञानी शब्द कहने पर कोई कहे कि ज्ञानी हो, वह भले ऐसा हो, परन्तु धर्मी को तो यह सब होता है। राग का करना और... ज्ञानी शब्द प्रयोग करते धर्मी शब्द है। जिसे आत्मज्ञान हुआ है, विभावभाव से भिन्न; जड़ से तो भिन्न है, वह तो स्थूल

बात है, परन्तु पर्याय में होनेवाले विभावभाव से भी भिन्न-अधिक-पृथक् भासित हुआ है। आहा..हा.. ! ऐसे जीव को यहाँ धर्मी कहो या ज्ञानी कहो। ऐसा नहीं कि ज्ञानी अर्थात् बहुत ज्ञान हो, उसकी यह बात है और धर्मी की दूसरी बात है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

ज्ञानी शब्द क्यों प्रयोग किया है ? कि ज्ञानस्वरूप प्रभु है, उसका ज्ञान हुआ, इसलिए ज्ञानी। अर्थात् धर्मी का ज्ञान हुआ है, इसलिए धर्मी। धर्मी जो चीज़ है, उसका जो ज्ञान और धर्मदशा हुई, वह धर्म। वह जीव का कार्य है। बड़ी पाँच-पाँच, दस-दस हजार की सभा हो और उसमें यह बात कहनी पड़े उसे, भाई ! यह तो सुननेवाले थोड़े होते हैं, विरला सुने कोई। आहा..हा.. !'विरला जाने तत्त्व को, विरला जाने कोई.... ' आहा..हा.. ! विरला श्रद्धा करे और विरला यह श्रद्धा देखो, आहा..हा.. ! विरला सुने कोई, ऐसा वहाँ (योगसार में) कहा है। एकदम रूखी बात है और वीतरागस्वभाव से भरपूर भाव है, अनादि से राग के रस के रसिया हैं, उन्हें आत्मा के रस की बातें कठिन पड़ती है। वस्तु तो यह है, भाई ! अशुभभाव छोड़कर शुभभाव में आया, उसका भी जिसे राग का रस है, वह भी मिथ्यादृष्टि दु:ख के पंथ में-संसार के परिभ्रमण के पंथ में है, प्रभु ! आहा..हा.. !

मुमुक्षु : अज्ञानी को तो अशुभ के बाद शुभ ही आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभ आवे, शुभ आवे परन्तु वह संसार है-विकार है। आहा..हा.. ! परन्तु स्वभाव देखा नहीं, इसलिए उसे विभाव मेरा कर्तव्य है, ऐसा मानकर वहाँ रुक गया है। भगवान यह ज्ञायकस्वरूप चैतन्य, उस ओर की झाँकी भी नहीं करता। अव्यक्तरूप से यह चीज़ कोई क्या है यह ? जिसकी पर्याय को अन्दर में जाने से महान... महान... महान गम्भीर लगे। आहा..हा.. ! वह चीज़ क्या है ? क्या चीज़ है ? आहा..हा.. ! यह तो पढ़ा होगा, अजितभाई ! यह पढ़ा है न ? नैरोबी से आये हैं, नैरोबी न ? बहुत प्रेमवाले हैं, बहुत पैसेवाले हैं। ६०-७० लाख। धूल-धूल। ये करोड़पति रहे, ये करोड़पति रहे। पति जड़ के ? आहा..हा.. ! भाई ! उस जड़ का पति तो तू नहीं, परन्तु विभाव का पति तू नहीं, प्रभु ! आहा..हा.. ! एक ओर धर्मी को शुभभाव का परिणमन आवे, इससे वह कर्ता और भोक्ता है, ऐसा भी कहा जाता है, परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखने पर... आहा..हा.. ! कहते हैं कि वह कार्य उसका नहीं है, ऐसा जानना। ऐसा ! दो धारी तलवार। आहा..हा.. !

भाई ! अनन्त काल हुआ, बापू ! तेरा दु:ख ऐसा वेदन किया, प्रभु ! उस दु:ख को

देखकर देखनेवाले को आँसू की धारा बह निकले। आहा..हा..! यह कहा नहीं था? (संवत्) १९७२-७३ का वर्ष होगा। राणपुर से नाग्नेश जा रहे थे। दो कोस है। रास्ते में एक ऊँट पड़ा ऊँट, ऊँट था। जवान ऊँट बाड़ के पास पड़ा हुआ, थोड़ा घास, थोड़ा होगा। मुझे खबर नहीं कि ऐसा ऊँट यहाँ क्यों पड़ा है? कि इसका पैर टूट है। पैर ऐसा होता है न? गिर गया। अब वह चल नहीं सकता, अब क्या होगा? यहीं का यहीं सूखकर मर जायेगा। आहा..हा..! उस समय कहा... आहा..हा..! यह देखो न, यह जगत, आहा..हा..! जवान ऊँट, हों! छोटी उम्र। ऐसे दिखाव तो ऐसा था, परन्तु पैर सड़ गया था। हो गया। वह चल सके नहीं, इसलिए काम कर सके नहीं तो उसे रखे कौन? क्योंकि जहाँ बैठा है, वहाँ से चल नहीं सकता। आहा..हा..! तब कहे, यह थोड़ा घास डाला होगा, वह खायेगा, बाकी सूखकर तो मर जायेगा। बाद में तो घास भी नहीं डाले। कौन डाले जंगल में? पहला है, अभी ताजा है; इसलिए थोड़ा पड़ा है। आहा..हा..! और इस जंगल में अकेला, रात्रि में सर्प, बिच्छु चारों ओर घूमते हैं। आहा..हा..! हो गया, वहीं की वहीं देह सूख गयी। आहा..हा..! उसके दुःख का क्या कहना? इससे तो अनन्तगुना दुःख नरक के दस हजार वर्ष की स्थिति में है, प्रभु! आहा..हा..! भाई! तूने तेरे दुःखड़े भी नहीं जाने, प्रभु! आहा..हा..!

उस दुःख से मुक्त होना हो और आनन्द का, आनन्द का नाथ भगवान है, उसे प्राप्त करना हो... आहा..हा..! तो उसे स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य है, उसे अनुसरण कर परिणमन करना पड़ेगा। आहा..हा..! जितना कार्य पर का है और विभाव का, परन्तु तेरा कार्य नहीं है। आहा..हा..! वैसे एक ओर कहे कि विभाव का कर्ता जीव है। समकिती भी (कर्ता है)। वह परिणमन की अपेक्षा से है। वह परिणमता है न? परिणमे वह कर्ता, इतनी अपेक्षा से (बात है)। परन्तु आत्मा के स्वभाव की दृष्टि से देखें तो कार्य स्वभाव का है, ऐसा नहीं। आहा..हा..! किसका उत्साह करना? भाई! किसके हर्ष का उत्साह लेना? नाथ! तू कहाँ है? आहा..हा..! यह चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, इसे अनुसरण कर कार्य हो, वह तेरा कार्य है, बाकी सब व्यर्थ है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह सब संसार ही है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने का धन्धा। शुभभाव भी संसार। यहाँ कहा न? मोक्षमार्ग (द्वार, समयसार नाटक)। जगपंथ। आहा..हा..! मुनि को भी। मिथ्यादृष्टि का शुभभाव तो अपना माने, वह तो मिथ्यात्व का महापाप का संसार है, अनन्त संसार है। आहा..हा..!

जिसे शुभभाव मेरा है, ऐसे अनन्त गुण के स्वभाव के साथ जिसने विभाव के मैल का एकत्व माना है, वह तो मिथ्यात्व में अनन्त संसार है। आहा..हा..! उस मिथ्यात्व के गर्भ में नरक और निगोद के भव करने की ताकत है। आहा..हा..! उस मिथ्यात्व में नरक और निगोद पैदा होगा। आहा..हा..!

आहा..हा..! तुझे तेरा कार्य करना हो तो... आहा..हा..! भगवान चैतन्य ज्ञायक का रसकन्द प्रभु है, उसके सन्मुख अनुसरणकर कार्य होना, वह तेरा कार्य है और वह धर्मकार्य है। आहा..हा..! अब यह सब धन्धा-पानी करना और कहते हैं कि यह तेरा कार्य नहीं। आहा..हा..! भाई! यह तेरा है नहीं। तेरा तत्त्व है, वह पर के कार्य में जाये? और ज्ञायकतत्त्व है, वह विभाव के कार्य में जाये? आहा..हा..! अकेला स्वभाव का पिण्ड प्रभु, ज्ञानरस, आनन्दरस, शान्तरस, स्वच्छरस, प्रभु रस – ऐसा पूर्ण आनन्द का नाथ भगवान है, वह राग के रस में कैसे जाये? आहा..हा..!

ऐसी बात, इसलिए रूखी लगे। क्या हो? भाई! आहा..हा..! अरे! भाई तो कहते थे, दीपचन्दजी। अभी हम देखते हैं तो आगम के अनुसार श्रद्धा भी जगत के प्राणी में, सम्प्रदाय में दिखायी नहीं देती। ऐसा २०० वर्ष पहले कहते हैं। आहा..हा..! यदि उनके सामने यह बात करें तो वे सुनते नहीं। तुम्हारा एकान्त है, (ऐसा कहते हैं), इसलिए अब मैं लिख जाता हूँ कि मार्ग यह है, बाकी दूसरा मार्ग माने, वह वस्तु नहीं है। अरे! बात तो सत्य है। २०० वर्ष पहले (पण्डित दीपचन्दजी का यह कथन है)। उसकी अपेक्षा अभी हल्का काल... आहा..हा..! यह तो पुण्य साथ में है न जरा... आहा..हा..! सुनते हैं और उन्हें कुछ ऐसा (भी लगता है) कि बात तो कुछ दूसरी है, ऐसा लोगों को लगता है। देखो न! दिगम्बर भव्यसागर जैसा, बीस वर्ष की दीक्षा, आशुकवि ऐसे गीत बनावे ऐसे शीघ्र, हों! तथापि... आहा..हा..! यह बात कोई अलग है, भाई! इसे नरमायी करनी पड़ेगी। इसे बड़ा मान (कि) साधु हैं... आहा..हा..! यह अभिमान छोड़ना पड़ेगा, प्रभु! आहा..हा..! यह जड़ के और विभाव के कार्य, पर के हैं, मेरे नहीं। मेरा तो चैतन्य भगवान को अनुसरण करके परिणमन हो, वह मेरा कार्य है। आहा..हा..!

ज्ञानी जीव निःशंक तो इतना होता है... आहा..! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य की जहाँ अन्दर में दृष्टि हुई... आहा..हा..! वह **निःशंक तो इतना होता है कि सारा ब्रह्माण्ड उलट जाये...** आहा..हा..! द्रव्य का पलटना होगा? तो द्रव्य की प्रतीति और

अनुभव हुआ, उसका पलटना कैसे होगा? भले पूरा ब्रह्माण्ड बदल जाये। आहा..हा..! पूरी दुनिया का पुकार हो कि नहीं, यह मिथ्या है, यह मिथ्या है। आहा..हा..! **सारा ब्रह्माण्ड उलट जाये तब भी स्वयं नहीं पलटता;...** सत् का जहाँ अनुभव हुआ, प्रतीति हुई, ज्ञान हुआ, वह बदले किस प्रकार? जगत के सामने चाहे जितनी बातें करे। आहा..हा..!

विभाव के चाहे जितने उदय आयें... आहा..हा..! धर्मी को शुभ-अशुभभाव भी अन्दर आये, तथापि वह उलझता नहीं है। निःशंकरूप से मेरी चीज़ तो शुद्ध, पवित्र है। आहा..हा..! श्रीमद् ने कहा न? श्रीमद् ने। आहा..हा..! व्यापार-धन्धे में थे। ऐसा कहा, २६वें वर्ष में है। ऐसी उपाधि आती है कि धड़ पर सिर न रहे। आहा..हा..! प्रवीणभाई! श्रीमद् राजचन्द्र, जवाहरात का व्यापार था न? ऐसी उपाधि आवे कि धड़ पर सिर (न रहे)। सिर घूम जाये। आहा..हा..! राग आवे ऐसा कि यह छोड़ने से ही छुटकारा है, ऐसा हो परन्तु छूटता नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? यहाँ है? पुस्तक नहीं न? है... है..। २६वाँ वर्ष है। आया, देखो!

मगसर शुक्ल ६ को यहाँ आना हुआ था। तब से इस दिवसपर्यन्त में बहुत प्रकार का उपाधियोग वेदन करने का बना है। देखा? आहा..हा..! ***और यदि भगवत् कृपा न हो...*** अर्थात् स्वरूप की। ***तो इस काल में इसके उपाधियोग में सिर धड़ पर रहना कठिन हो, ऐसी उपाधि के योग में...*** (रहना होता है)। आहा..हा..! ***ऐसा होते-होते बहुत बार देखा है और जिसने आत्मस्वरूप जाना है, ऐसे पुरुष को और इस संसार को मिलना भी आवे नहीं।*** दोनों को कहीं मेल नहीं खाता। आहा..हा..! ***ऐसा अधिक निश्चय हुआ है। ज्ञानी पुरुष भी अत्यन्त निश्चल उपयोग से वर्तते-वर्तते क्वचित भी मन्द परिणाम पा जाते हैं...*** आहा..हा..! राग के शुभभाव में आकर मन्द हो जाये। दृष्टि में हो नहीं। आहा..हा..! ऐसी इस संसार की रचना है। आहा..हा..!

यद्यपि आत्मस्वरूप सम्बन्धी बोध का तो नाश नहीं होता, तथापि आत्मस्वरूप के बोध के विशेष परिणाम के प्रति विशेष निर्मलता चाहिये, उसके प्रति एक प्रकार का आवरण होनेरूप उपाधि योग दिखता है। पूरी लम्बी बात है। आहा..हा..! क्योंकि स्त्री, पुत्र, व्यापार-धन्धा और उसमें ज्ञातारूप से रहते। आहा..हा..! बहुत कठिन, अपूर्व है, ऐसा कहते हैं।

यहाँ कहते हैं, **विभाव के चाहे जितने उदय आयें, तथापि चलित नहीं होता।** कोई

विषय की वासना का कठोर भाव भी आवे... आहा..हा.. ! तथापि स्वरूप से चलित नहीं होता। आहा..हा.. ! जो ज्ञातारूप से जाना है, उसे ज्ञाता में से हटना नहीं होता। आहा..हा.. ! श्रेणिक राजा लो ! आहा..हा.. ! क्षायिक समकिती, समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। उनके पुत्र ने जेल में डाल दिया। आहा..हा.. ! उसे जब खबर पड़ी कि मेरे पिता ने तो मुझे छोटी उम्र में मेरी सेवा की थी, मेरी माँ ने मुझे डाल दिया था। मुर्गे ने चोंच भरी, इन्होंने (पिता ने घाव को) चूस लिया। ऐसी सम्हाल की थी। अरे रे! मैंने क्या किया यह ? आहा..हा.. !

मुमुक्षु : लड़का पिता को जेल में डाल दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : डाला न ! कैद में डाला न, क्योंकि उसकी स्थिति में स्वयं को राज्य करने का प्रसंग नहीं बनता था और यह कब मरेगा, इसका मेल नहीं था। इतने-इतने वर्ष हुए और यह राज करता है और अब अपने इनके राजकुमार, राज्य कब हाथ में आना मुश्किल पड़े।

मुमुक्षु : तो जेल में डाल दे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जेल में डाला। डाला वह कैसा ? ताला बन्द करके। आहा..हा.. ! जो तीर्थंकर का जीव है। आहा..हा.. ! वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होनेवाले हैं, वहाँ से निकलकर सीधे तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहा..हा.. ! इन ठगारे लड़कों ने अन्दर मार डाला और जहाँ छुड़ाने जाता है.... बन्द किया था। निकाल दो। उसे (श्रेणिक) को भ्रम हो गया, समकिती थे, परन्तु यह मारने आता है, ऐसा हो गया। आहा..हा.. ! उन्हें देह छोड़ने का भाव आया, तथापि उसे स्वभाव में से विरुद्ध नहीं। स्वभाव की दृष्टि में उसे जरा भी दोष नहीं। आहा..हा.. ! वे तो राजा थे, उत्कृष्ट हीरा (हीरे की अँगूठी हाथ में पहनते) थे। हीरा सहित चूस लिया, देह छूट गयी। वह आता है, ऐसा देखता है, वहाँ अर र... ! अरे रे... ! मैं छुड़ाने आया और यह हुआ ! रोवे... रोवे... रोवे... रोवे... उसकी माँ के पास गया। माता ! मैंने बहुत भूल की। भाई ! आहा..हा.. ! अब उस जेल में मुर्दा पड़ा। राजा बड़ा, जिसे हजारों राजा चँवर ढोलते थे। उस जेल में देह छूटी, भाई ! आहा..हा.. !

जन्मते किसी ने जाना नहीं और मरते समय कोई रोनेवाला नहीं। आहा..हा.. ! श्री कृष्ण जन्मे, बाहर (किसी ने) जाना नहीं। गोकुल में ले गये, ग्वाल में। आहा..हा.. ! मरते

समय कौशाम्बी वन में, आहा..हा..! 'तरसे तरफड़े त्रिकमो' त्रिकमो – तीन खण्ड का स्वामी। प्यास लगी। आहा..हा..! जिसकी आठ-आठ हजार देव सेवा करते थे, उन्हें कोई पानी पिलानेवाला नहीं रहा। बलदेव पानी लेने जाते हैं। बर्तन नहीं मिलता, कुछ नहीं मिलता, बड़ के बड़े पान में तिनके डालकर बर्तन (दोना) बनाया, जहाँ पानी लाते हैं, वहाँ यहाँ देह छूट जाता है। आहा..हा..! जरतकुमार का बाण लगता है, भगवान ने कहा था कि यह श्रीकृष्ण, जरतकुमार के बाण से मरेंगे। उनका भाई (जरतकुमार) बारह-बारह वर्ष से वन में रहता था, परन्तु नेमिनाथ के वचन पलटते नहीं। आहा..हा..! यह द्वारिका नगरी, सोने के गढ़ और रत्न के कंगूरे। रानियाँ ऐसे, आहा..हा..! रानियाँ जहाँ ऐसे छोटी उम्र, वे ऐसे अग्नि में सुलगे, देखे। आहा..हा..! इस भाव से जरा, विभावभाव आवे, परन्तु स्वरूप से चलित न हो। आहा..हा..! यह तो क्या दशा!

ऐसा उदय आवे, **तथापि चलित नहीं होता**। जानपने का जो अनुभव और दृष्टि है, वह चलित न हो। आहा..हा..! चाहे जितने विभावभाव आवें। आहा..हा..! मेरे स्वरूप से तो विरुद्ध है। इसलिए वे विरुद्धभाव मेरी चीज़ नहीं है, ऐसी निःशंकता समकिती को जाती नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें! और अज्ञानी का लड़का मर जाये, तो रोवे नहीं। चूड़ा में था। चूड़ा में, छोटाभाई को खबर न हो, बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९६९ के वर्ष की बात है। चूड़ा में एक सौभागभाई थे, डॉक्टर थे। वैसे वैरागी व्यक्ति। दृष्टि मिथ्या स्थानकवासी। जवान लड़का मर गया और मैं गया, उससे पहले यह बात वहाँ हो गयी थी। वह कहे कि लड़का मर गया। लोगों से कहलवाया कोई भी आवे, वह रोवे नहीं। उसके देह की स्थिति पूरी हुई है। जवान लड़का, हों! रोना नहीं। यह होने के काल में होता है, तथापि दृष्टि मिथ्यात्व है। यह खबर नहीं। (संवत्) १९६९ की बात है। १९७० में दीक्षा ली थी, इससे पहले मैं वहाँ आया। है न वह नीचे? क्या कहलाता है? सब्जी मार्केट और ऊपर कमरा नहीं बाजार में? वहाँ गुलाबचन्दजी थे और मैं वहाँ आया था। १९६९ की बात है, १९७० से पहले की बात है। ६५ वर्ष पहले की बात है। आहा..हा..! वे सौभागभाई ऐसे हैं कि जवान लड़का मरा तो भी रोये नहीं। इससे कहीं क्या वे धर्मी हैं? आहा..हा..! अरे! ऐसी स्थिति में विभाव आवे और रुदन भी आवे, तथापि उसके सम्यग्दर्शन को जरा भी दोष नहीं है। आहा..हा..! वह चारित्रदोष है। दूसरे गुण का दोष, वह सम्यग्दर्शन को दोष करे तो कभी निर्दोष रह सकता ही नहीं। आहा..हा..!

श्रीमद् ने भी कहा है एक बार। हे काम! हे मान! आता है न? तू हट जा, तू मेरा स्वरूप नहीं है, तू मुझे हैरान न कर। आहा..हा..! श्रीमद् के पीछे के लेखों में ऐसा आता है, भाई! हे काम! हे मान! बाद के लेखन में। उसमें आया है। बहुत सब पहले से पढ़ा है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं **विभाव के चाहे जितने उदय आयें तथापि चलित नहीं होता। बाहर के प्रतिकूल संयोग से...** देहादि की परिणति में रोग.. रोग.. (हो), सड़ा हुआ शरीर आदि सभी संयोग प्रतिकूल हों। आहा..हा..! तो भी **ज्ञायकपरिणति नहीं बदलती;...** आहा..हा..! जाननेवाले का ज्ञान परिणमन है, वह नहीं पलटता। आहा..हा..! निःशंक है, निर्भय है। आहा..हा..! **श्रद्धा में फेर नहीं पड़ता।** अन्दर शुद्धस्वरूप चैतन्य की जानकर प्रतीति हुई है, वह नहीं बदलती। आहा..हा..! **पश्चात् क्रमशः चारित्र बढ़ता जाता है।** अन्दर में स्थिरता का अंश बढ़ते-बढ़ते चारित्र हो जाता है। आहा..हा..! यह २९८ (बोल पूरा हुआ)।

वस्तु स्वतःसिद्ध है। उसका स्वभाव उसके अनुकूल होता है, प्रतिकूल नहीं। स्वतःसिद्ध आत्मवस्तु का दर्शनज्ञानरूप स्वभाव उसे अनुकूल है, राग-द्वेषरूप विभाव प्रतिकूल है॥२९९॥

२९९। **वस्तु स्वतःसिद्ध है।** भगवान आत्मा स्वतः अपने से-स्वयं से है। उसका कोई कर्ता नहीं है, किसी से हुआ नहीं है, वह स्वतः सिद्ध सत् है, प्रभु! आहा..हा..! **वस्तु स्वतःसिद्ध है। उसका स्वभाव उसके अनुकूल होता है,...** क्या कहते हैं? वस्तु स्वतः सिद्ध है, उसका अन्तर स्वभाव अनुकूल होता है। आनन्द, शान्ति, वीतरागता इत्यादि का स्वभाव अनुकूल होता है। वस्तु है, वह स्वतःसिद्ध है, इसलिए उसका स्वभाव उसके अनुकूल होता है। विकार और दुःखरूप उसके स्वभाव में भाव नहीं होते। आहा..हा..!

वस्तु स्वतःसिद्ध है। उसका स्वभाव उसके अनुकूल होता है, प्रतिकूल नहीं। स्वभाव से विरुद्ध जो विभाव, वह उसका स्वभाव नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! **स्वतःसिद्ध आत्मवस्तु का दर्शनज्ञानरूप स्वभाव...** आहा..हा..! भगवान आत्मपदार्थ वस्तु का जानना-देखना स्वभाव, वह उसे अनुकूल हो... जानना-देखना, वह स्वभाव के

अनुकूल है। आहा..हा..! क्योंकि उसका स्वभाव है, वह स्वभाव वह उसे अनुकूल होता है। द्रव्य का स्वभाव है, वह द्रव्य के अनुकूल होता है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा उपदेश अब। मार्ग ऐसा है, बापू!

कहते हैं, भाई! यह वस्तु है न? वस्तु है, उसका स्वभाव तो अनुकूल होता है, विपरीत नहीं होता। उसका ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव, वह उसका अनुकूल स्वभाव है। आहा..हा..! **दर्शनज्ञानरूप स्वभाव उसे अनुकूल है, राग-द्वेषरूप विभाव प्रतिकूल है।** आहा..हा..! पर्याय में जो राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प, चाहे तो व्यवहार -रत्नत्रय का राग हो, वह स्वभाव से प्रतिकूल है। जानना, देखना, आनन्द जिसका स्वभाव है, वह वस्तु के अनुकूल है और पुण्य-पाप के भाव, वे वस्तु के स्वभाव से वस्तु को प्रतिकूल है। आहा..हा..! क्या कहा?

जो स्वत:सिद्ध पदार्थ प्रभु, उसका जो जानना, देखना, आनन्द, वह उसका अनुकूल स्वभाव हो और उसमें पुण्य तथा पाप के विभाव हैं, वे प्रतिकूल हैं, वे उसके स्वभाव में नहीं होते। आहा..हा..! समझ में आया? यह संक्षिप्त शब्द है परन्तु वस्तु, वस्तु है। स्वत:सिद्ध है और उसका स्वभाव—स्वभाववान का स्वभाव, स्वभाववान को अनुकूल होता है। आहा..हा..! जानना, देखना, आनन्द आदि और उसमें जो विभाव राग-द्वेष (होते हैं), वे प्रतिकूल हैं, वह विभाव प्रतिकूल है। इसलिए उसकी-स्वभाव की जाति नहीं है। वह द्रव्य के स्वभाव की जाति नहीं है। स्वभाव है, वह अनुकूल होता है। उससे प्रतिकूल है, (वह) उसकी जाति नहीं है। आहा..हा..! ऐसा जानकर विकार से हटकर और स्वभाव का अनुसरण करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

असोज शुक्ल ६, शनिवार, दिनाङ्क ०७-१०-१९७८
वचनामृत-३०० से ३०३ प्रवचन-११२

परिभ्रमण करते अनन्त काल बीत गया। उस अनन्त काल में जीव ने 'आत्मा का करना है' ऐसी भावना तो की परन्तु तत्त्वरुचि और तत्त्वमंथन नहीं किया। रुचने में तो एक आत्मा ही रुचे ऐसा जीवन बना लेना चाहिए॥३००॥

३०० बोल आया। २९९ हो गये। **परिभ्रमण करते अनन्त काल बीत गया।** इस चौरासी लाख अवतार में, अनन्त-अनन्त काल से परिभ्रमण करता आता है। अनन्त-अनन्त भव किये। इससे पहले अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... (भव किये)। **परिभ्रमण करते अनन्त काल बीत गया। उस अनन्त काल में जीव ने 'आत्मा का करना है' ऐसी भावना तो की...** भावना अर्थात् विकल्प। आहा..हा..! **परन्तु तत्त्वरुचि और तत्त्वमंथन नहीं किया।** भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, आनन्द और ज्ञानस्वरूप तत्त्व की रुचि और उसकी ओर का मंथन नहीं किया। लोगों को यह कठिन पड़ता है। ऐसा कि यह व्रत पालना, दया, दान, भक्ति, साधुपने की क्रियायें—ये सब साधन हैं, इनसे आत्मा प्राप्त न हो, तब तो एकान्त है - ऐसा (वे) कहते हैं। आहा..हा..!

भाई! तूने व्रत और तप के शुभभाव भी अनन्त बार किये हैं। अनन्त बार में अनन्त बार स्वर्ग गया। आहा..! अनन्त काल में मनुष्य के भव जो किये, उसके अनन्त किये। उससे असंख्यगुने अनन्त तो नारकी के किये। भाई! नीचे नरकगति है, सात नरक हैं। उनके भव; मनुष्य के अनन्त किये अनन्त काल में; उससे भी असंख्यगुने अनन्त (भव) तो नरक में किये। भूल गया। कुछ खबर नहीं होती। आहा..हा..! भूल गया, इसलिए नहीं थे - ऐसा कौन कहे?

माता के उदर से जन्मा; इसी भव में छह महीने और बारह महीने में क्या हुआ ? है याद ? नहीं याद है, इसलिए नहीं था – ऐसा कौन कहे ? आहा..हा.. ! अनन्त-अनन्त काल में इसने मनुष्य के भव अनन्त किये, इसे याद नहीं। याद नहीं, इसलिए नहीं थे – ऐसा कैसे कहे ? आहा..हा.. ! उससे अनन्त असंख्यगुने अनन्त नरकयोनि है। आहा..हा.. ! जिसके दस हजार वर्ष की नारकी की स्थिति। वहाँ अनन्त बार गया। प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि वहाँ के एक क्षण के दु:ख की बात करोड़ भव और करोड़ जीभ से नहीं कही जा सकती, प्रभु ! ऐसे तूने अनन्त काल में नारकी के दु:खों का वेदन किया है। तू भूल गया, बाहर की यह जरा-सी सामग्री देखकर (भूल गया)। आहा..हा.. !

यहाँ तो दूसरा कहना है कि अनन्त मनुष्य, असंख्यगुने नरक के भव किये हैं, उसकी अपेक्षा स्वर्ग के असंख्यगुने अनन्त किये। कहो, और स्वर्ग में गया होगा, वह शुभभाव से गया होगा या अशुभ से ? स्वर्ग में भी नरक के भवों से (असंख्यगुने अनन्त भव किये)। एक बार नरक और असंख्य बार स्वर्ग, एक बार नरक और असंख्य बार स्वर्ग—ऐसे अनन्त बार नरक और असंख्यगुने अनन्त बार स्वर्ग। अनन्त काल परिभ्रमण करते हुए व्यतीत हुआ, प्रभु ! तुझे खबर नहीं; तो यह स्वर्ग में गया, वह कहाँ (तक गया) ? नौवें ग्रैवेयक तक गया। तो इसने शुभभाव नहीं किये ? शुभभाव के बिना वहाँ जाता है ? आहा..हा.. ! पंच महाव्रत के शुभभाव अनन्त बार किये, आहा.. ! उनसे भव मिला। परिभ्रमण करते हुए अनन्त इसके (स्वर्ग के) भव किये, वे शुभभाव से किये, प्रभु ! वह शुभभाव भी कोई धर्म नहीं है। आहा..हा.. ! यह लोगों को अभी कठिन पड़ता है, परन्तु ऐसे शुभभाव तो, भगवन्त ! तूने अनन्त बार किये न, प्रभु !

मुमुक्षु : सुनने का.....

पूज्य गुरुदेवश्री : भारी कठिन काम। यहाँ की विरुद्ध बातें, जहाँ दूसरे कहें, वहाँ जय... जय... जय... बस, यह मार्ग, यह मार्ग – ऐसा कहे। आहा..हा.. ! अरे ! भगवान ! क्या हो ? भाई ! परिभ्रमण करते-करते अनन्त बार स्वर्ग के भव किये; इससे अनन्तगुना भव तिर्यंच-निगोदादि के किये। लहसुन और प्याज, नीम और पीपल के भव अनन्तगुने किये। आहा..हा.. ! भाई ! तुझे खबर नहीं। आदि रहित काल, जहाँ आदि है ? इतने काल से यह भटक रहा है। इसे तत्त्व की खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं कि ऐसा साधु हुआ। इसे भाव भी हुआ कि मैं आत्मा का करूँ, परन्तु

यह विकल्प किया; किन्तु आत्मा अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, सच्चिदाननद ध्रुव स्वभाव आत्मा का है; उसकी सन्मुखता, उसके सन्मुख होकर तत्त्वमंथन, रुचि नहीं की, प्रभु! आहा..हा..! इन लोगों को ऐसा है कि यह शुभभाव करते-करते भक्ति, व्रत, तप, पूजा सब करता है, इससे (कल्याण होना) नहीं मानें, वे एकान्ती हैं। 'सोनगढ़ी' एकान्त ही हैं— ऐसा (वे) कहते हैं। प्रभु! तू कहे, भाई! आहा..हा..! लोगों को ऐसे रास्ते चढ़ा दिया है न, पूजा करो, भक्ति करो और दान करो और यह करो, व्रत पालो, अपवास करो, बापू! यह सब क्रियायें शुभराग हैं, भाई! यह तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! उस राग से संसार नहीं मिटेगा। वह स्वयं संसार है, उससे कैसे मिटेगा? प्रभु! आहा..हा..! राग स्वयं संसार है, उससे संसार-परिभ्रमण कैसे मिटेगा? आहा..हा..!

यह यहाँ (कहते हैं), तत्त्वरुचि—ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु की रुचि और उसका मंथन कभी किया नहीं। कहो, ...भाई! सत्य होगा यह? वह सब किया, अपने तो करोड़ों रुपये इकट्ठे किये न, यह किया, धूल की और यह किया... आहा..हा..! इससे तो साधु अनन्त बार हुआ, भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि नौवाँ ग्रैवेयक—ऊँचे में ऊँचा मिथ्यादृष्टि जाये, ऐसी एक गति है। समकिती (तो) जाता है, परन्तु मिथ्यादृष्टि (भी जाता है)। उसमें अनन्त पुद्‌गलपरावर्तन किये, ऐसा शास्त्र में लेख है। अनन्त पुद्‌गलपरावर्तन अर्थात्? एक पुद्‌गलपरावर्तन के अनन्त भाग में अनन्त भव होते हैं। ऐसे-ऐसे अनन्तगुने, अनन्तगुने नौवें ग्रैवेयक (गया), भाई! वह शुभभाव, उससे स्वर्ग मिला, परन्तु तत्त्वदृष्टि नहीं। आत्मज्ञान नहीं, इसलिए परिभ्रमण (हुआ)। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फिर पीछो पटक्यो'-नीचे। आहा..हा..! ज्ञानस्वभाव भगवान प्रज्ञाब्रह्म आत्मा। यह प्रज्ञास्वरूप, ज्ञानस्वरूप—उसके तत्त्व की रुचि नहीं की। इसे यह आत्मा पोषाण में नहीं आया - पोषाया नहीं। पुण्य के परिणाम इसे पोषाये। आहा..हा..!

तत्त्वरुचि और तत्त्वमंथन नहीं किया। रुचने में तो एक आत्मा ही रुचे... आहा..हा..! व्यापारी को माल पोषाये, वह तीन रुपये मण मिलता हो और साढ़े तीन में बिकता हो तो माल पोषाये। परन्तु तीन रुपये मिलता है और ढाई में बिकता हो, वह पोषाना कहलायेगा? आहा..हा..! इसी प्रकार यह भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु आत्मा का पोषाण इसे नहीं हुआ। आहा..हा..! जो पोषाण करने की वस्तु है, उसका पोषाण नहीं हुआ, राग का पोषाण हुआ। आहा..हा..! क्रिया के दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह राग पोषाण में आया। आहा..हा..!

एक आत्मा ही रुचे, ऐसा जीवन बना लेना चाहिए। आहा..हा.. ! जीवन में पुण्य के भाव, पाप के भाव आवें, हों, परन्तु वे पोषाते नहीं, वे भले नहीं लगते। ऐसी बातें अब ! आहा..हा.. ! एक भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन (पोषाये)। नव तत्त्व में एक आत्मा, वह पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन सच्चिदानन्द प्रभु, जीवन में एक उसका ही पोषाण करना चाहिए। आहा..हा.. ! इसके अतिरिक्त पुण्य-पाप के भाव आवें, परन्तु खटक लगे, यह दुःख है, परन्तु मुझसे सहन नहीं होता, इसलिए अन्दर में यह भाव आवे, परन्तु पोषाण तो आत्मा का एक का होना चाहिए। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

जीव राग और ज्ञान की एकता में उलझ गया है। निज अस्तित्व को पकड़े तो उलझन निकल जाये। 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा अस्तित्व लक्ष में आना चाहिए। 'ज्ञायक के अतिरिक्त अन्य सब पर है' ऐसा उसमें आ जाता है ॥३०१ ॥

३०१। **जीव...** भगवान आत्मा ज्ञानानन्द और राग, इनकी **एकता में उलझ गया है।** अन्दर ग्रन्थि-गाँठ पड़ गयी है। सूत की गाँठ पड़ती है न, गाँठ ? आहा..हा.. ! उसका सुलझना धीरज से हो सकता है। यहाँ पहले हमारे बनियों में रिवाज था। बनियों में रिवाज था। विवाह करे तो एक सूत का डोरा उलझा हुआ बनावे। तुम्हारे होगा या नहीं, यह खबर नहीं है, परन्तु हमारे है। उलझन करे और फिर वर को दे। दूल्हा होवे उसे। ऐसा कहे कि ऐसे विवाह के उत्साह में आया है तो यह उलझना निकालने की इसमें धीरज है या नहीं ? ऐसा था। अभी तो अब सब...

अभी तो चार बजे विवाह और साढ़े चार बजे बारात चली जाये। पहले तो नौ-नौ टाइम। सात टाइम तो थे ही। परन्तु उसमें कोई वापस अन्त में करे, क्या कहलाता है ? प्रीतिभोज। तो नौ टाइम करते थे। हमारे उमराला की सब बात है। अरे ! वहाँ श्रीमाली ब्राह्मण है, श्रीमाली ब्राह्मण। आहा..हा.. ! श्रीमाली ब्राह्मण होवे न, वह एक विवाह का एक-एक महीना रहे, ऐसा था। ऐसी फुरसत। एक दिन यह माँडनेवाला जिमावे, एक दिन विवाह करनेवाला जिमावे। ऐसे महीनों रहे। अभी तो चार बजे विवाह और शाम तक हो गया, लो जाओ। फुरसत कहाँ है ? अजितभाई ! आहा..हा.. !

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! जीव, राग और ज्ञान की एकता में.. प्रभु तो प्रज्ञा ब्रह्म चैतन्य

ज्ञायकस्वरूप है, आत्मा तो जानन स्वभाव प्रभु है। यह ज्ञानस्वरूपी और राग, दो की एकता में उलझ गया है। आहा.. ! जैन दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ, तो भी वह ज्ञान और राग में उलझ गया है। आहा..हा.. ! अर्थात् ? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द ज्ञानस्वरूप प्रज्ञाब्रह्म, उसमें यह राग का जो विकल्प है, वह उसे एकरूप मानकर उलझ गया है। वे दोनों एक नहीं हैं। आहा..हा.. ! दो के बीच में सन्धि है, दरार है। अरे ! यह कहाँ अब इसे बेचारे को, इस जगत की होली सुलग कर पड़ा है। आहा..हा.. ! उसे यह कब फुरसत है कि यह क्या है ? आहा..हा.. ! यहाँ तो त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने कहा है, वह बहिन की वाणी में यह तो अनुभव में से आया है। समझ में आया ? इसकी मजाक करते हैं। अरे ! प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! जीव अर्थात् आत्मा, जीव और आत्मा भिन्न नहीं है, जीव कहो या आत्मा कहो। आत्मा राग और ज्ञान अर्थात् आत्मा ज्ञानस्वरूप, इनकी एकता में उलझ गया है। आहा..हा.. ! यह अनादि से इनकी एकता में पड़ा है। आहा..हा.. ! **निज अस्तित्व को पकड़े...** वस्तु है भगवान सिद्ध, निज अपना अस्तित्व, मौजूदगी, अस्ति, ऐसे भगवान आत्मा, ऐसे **अस्तित्व को पकड़े तो उलझन निकल जाये।** आहा..हा.. ! ऐसी बात है। साधारण मनुष्यों को बेचारों को सुनने को भी नहीं मिलता। अरे ! भटककर मर गया है अनन्त काल (से)। और देह छूटेगा, इसलिए जायेगा फिर कहीं भटकने अनजान क्षेत्र में, अनजान काल में। आहा..हा.. ! भाई !

कहते हैं, राग / विभाव और स्वभाव; स्वभाव चैतन्य कायमी और राग विभाव कृत्रिम क्षणिक, दो की एकता में उलझ गया है यह। आहा..हा.. ! इस राग से भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसा पकड़ने को निवृत्त नहीं हुआ। करना यह है, बाकी सब ठीक है। आहा..हा.. ! **निज अस्तित्व को पकड़े...** विकार / राग है, वह तो क्षणिक विकृत दशा, दुःखरूप है और निज अस्तित्व है, वह आनन्दरूप, ज्ञानरूप है। ज्ञान और आनन्दरूप निज अपना अस्तित्व है, उसे यदि पकड़े तो राग की एकता की उलझन टूट जाये, यह बात है, तो इसके भव का अन्त आवे, नहीं तो क्रियाकाण्ड करके मर जाये। आहा..हा.. ! क्लेश करो तो करो परन्तु उसमें आत्मा हाथ नहीं आयेगा—निर्जरा अधिकार में ऐसा आता है न ? आहा..हा.. ! अरे रे ! प्रभु ! इस बात को अभी एकान्त कहकर मजाक करते हैं। प्रभु ! क्या करे ? भाई ! आहा..हा.. !

राग आवे, ज्ञानी को भी राग तो आवे, पाप का राग आवे, परन्तु उसमें प्रीति और

सुखबुद्धि नहीं है। आहा..हा.. ! उसमें सुख नहीं और उसमें सुख नहीं, इसलिए सुखबुद्धि नहीं। सुख तो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ प्रभु में सुख-आनन्द है, ऐसी दृष्टि होना, उसे राग की एकता की उलझन टूट जाती है। पवन निकली है, आँधी है। आहा..हा.. ! क्या करना कहते हैं उसमें ?

'मैं ज्ञायक हूँ'... जाननहार.. जाननहार.. जाननहार.. जाननहार.. भगवान, वह मैं हूँ। वह अपनी अस्ति का स्वरूप है। स्वयं प्रभु सत् कायम रहनेवाला ज्ञानानन्द, ज्ञान और आनन्द, वह मैं हूँ। आहा..हा.. ! अब ऐसी बात! अन्य तो पूजा करो, भक्ति करो, दान करो,.. उसने आठ लाख खर्च किये, बारह लाख (खर्च किये)। यह उनके भाई ने ढाई लाख दिये। प्रवीणभाई और सबने इकट्ठे होकर... हों! लिखा है न ? ...भाई और समस्त परिवार। पचास हजार का प्लाट बनाना है न ? दस-दस हजार के एक, पाँच हजार लेना और दस हजार का देना। तीन महीने प्रयोग करना। अब उसमें कोई धर्म है ? यह ढाई लाख दिये उसमें कोई धर्म है ?

मुमुक्षु : पैसा दे कौन और ले कौन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा जड़ है, वह मैं देता हूँ, मेरे हैं, यह मान्यता ही भ्रम है। जड़ को आत्मा का ? आहा..हा.. ! और मैं खर्च करता हूँ, देता हूँ। किसे ? बापू! कौन दे ? भाई! जड़ की दशा तू दे सकता है ? इसमें कदाचित् राग मन्द किया हो तो शुभभाव है, पुण्य है, बन्धन का कार्य है। शुभभाव संसार है। कठिन बातें! आहा..हा.. ! ऐसे तो अरबों रुपये के दान अनन्त बार दिये। उससे क्या हुआ ? उससे क्या ? आया न, १४३-१४२ (गाथा समयसार)। मैं एक पूर्णानन्द का नाथ अबद्धस्पृष्ट मुक्त हूँ, ऐसा जो विकल्प उठे, उससे क्या ? वह राग है। आहा..हा.. ! मैं एक ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, परम ब्रह्मस्वरूप हूँ, शुद्ध आनन्दकन्द हूँ, अभेद हूँ - ऐसा एक विकल्प अर्थात् रागवृत्ति उत्पन्न हो, वह भी बन्ध का कारण है। आहा..हा.. !

'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा अस्तित्व लक्ष में आना चाहिए। चैतन्यस्वभाव वस्तु, वह ज्ञायक अकेला ज्ञानस्वभाव है, ऐसा अन्तर में ख्याल में आना चाहिए। आहा..हा.. ! है ? बहुत संक्षिप्त शब्दों में बहुत भरा है। **'ज्ञायक के अतिरिक्त अन्य सब पर है'...** जाननस्वभाव, ज्ञायकभाव के अतिरिक्त जितने पुण्य-पाप के विकल्प उठें, शरीर, वाणी, मन, कुटुम्ब,

कबीला वह सब पर है। वह आत्मा का नहीं और आत्मा में नहीं। आहा..हा..! यहाँ तो मेरा पुत्र और मेरे पुत्र की बहू, वह ऐसा लायी। तेरह में से पाँच लाख ले आयी। गहने इतनी लायी और, ओहो..हो..! क्या है यह? प्रभु! वह जड़ है, पर है। शरीर पर है, लक्ष्मी जड़ है, उसका आत्मा तुझसे पर है। आहा..हा..!

ज्ञायकस्वरूप चैतन्य ज्योति जाननस्वभावरूपी चन्द्र, वह मैं हूँ। बाकी सब दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठे, वह भी राग और पर है। वह मेरा नहीं, मेरा नहीं। अरे! ऐसा! यह विवाद उठते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, अपवास करना, आमबेल करनी, वर्षीतप करना, छह परवी ब्रह्मचर्य पालना, छह परवी कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन नहीं करना, भाई! यह सब बातें तो शुभराग की क्रिया की है। भाई! यह कहीं आत्मा की चीज़ नहीं है। आहा..हा..!

आत्मा '**ज्ञायक के अतिरिक्त अन्य सब पर है' ऐसा उसमें आ जाता है।** आहा..हा..! यह व्रत और तप और भक्ति का जो भाव... यह मैं ज्ञायक हूँ, उससे वह सब पर है, ऐसा है। तब इसे सम्यग्दर्शन हो, तब इसे भव का अन्त आवे; नहीं तो भव का अन्त नहीं आयेगा, प्रभु! आहा..हा..! गाजते हैं, नहीं? एकदम बहुत गर्मी थी। आहा..हा..! यह वर्षा सच्ची है। आहा..हा..! कहाँ गये हसमुखभाई? हसमुखभाई आये हैं न? नहीं आये?

मुमुक्षु : बाहर गये हीराभाई के साथ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा, ठीक। यह तो उनकी लड़की ने माँगा था कि भाई हमें अमृतधारा दो, हमारे सगे-सम्बन्धियों को बाँटना है। उनका लड़का। उसने माँगी थी। दी थी? दी थी। पन्द्रह-बीस होगी, यह खबर नहीं। उसमें से ले लो कहा। ऐसे लड़कों को बाँटे ऐसे दुकान-धन्धा छोड़ दिया है, पाँच लाख रुपये भाईयों ने दिये। दुकान का धन्धा छोड़ दिया। पाँच लाख लेकर अब बैठता है, उसमें महीने में पाँच हजार रुपये ब्याज आता है। वह भी इसी प्रकार से किसी शास्त्र के बाँटने में, किन्हीं लड़कों को देने में कुछ। पाँच हजार, माँ-बाप को किराये के एक हजार, ऐसे पाँच हजार खर्च कर डालता है, ऐसे भाई साथ में गया है, उसके? साथ में सही। हीराभाई के साथ आया था। राजू नहीं आया? वह नहीं आया होगा, उसका लड़का। आहा..हा..!

बहिन की अमृतधारा पुस्तक है न? वह उसने माँगा कि मुझे सगे-सम्बन्धियों को

देना है। ले जाओ न भाई, कहा। हमेशा वह पच्चीस-तीस रुपये का, चालीस रुपये का लड़कों के लिये बाँटने के लिये लाता है। प्रतिदिन यह तीन-चार दिन से, कल, परसों। कल लाया था, आज लाया। अभी रविवार है। अब कल तो यह है या नहीं। आहा..हा..! यह ३०१।

धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे एक ज्ञायकभाव ही रुचता है। उसे पुण्य और पाप के भाव भी नहीं रुचते। आते हैं, होते हैं (परन्तु) रुचते नहीं। अब यह वस्तु आयी! ऐसी सुनने को मिले नहीं, वह माने कब? क्या हो? आहा..हा..!

ज्ञानी को संसार का कुछ नहीं चाहिए; वे संसार से भयभीत हैं। वे संसार से विमुख होकर मोक्ष के मार्ग पर चल रहे हैं। स्वभाव में सुभट हैं, अन्तर से निर्भय हैं, किसी से डरते नहीं हैं। किसी उपसर्ग का भय नहीं है। मुझमें किसी का प्रवेश नहीं है—ऐसे निर्भय हैं। विभाव को तो काले नाग की भाँति छोड़ दिया है॥३०२॥

३०२, **ज्ञानी को संसार का कुछ नहीं चाहिए;...**

मुमुक्षु : संसार अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहा जाता है न! आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, इसके अतिरिक्त ज्ञानी को राग, पुण्य-पाप परिणाम, उसके फलरूप से यह सामग्री, वह कुछ भी उसे नहीं चाहिए। आहा..हा..! समकिती ज्ञानी को, चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियाँ (होती हैं), परन्तु अन्दर में वह कोई चाहिए नहीं। मेरी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! तथापि वापस छियानवे हजार स्त्रियाँ, बापू! वह तो बाह्य हो, राग हो, संयोग हो, परन्तु उसे रुचता नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

ज्ञानी को... अर्थात् धर्मी को। धर्मी को अर्थात्? आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान के परिणमनवाले को। आहा..हा..! **कुछ नहीं चाहिए;...** राग के शुभ विकल्प से लेकर सभी चीज़ें (कुछ नहीं चाहिए)। आहा..हा..! तथापि छह खण्ड का राज साधने के लिये चक्रवर्ती तीर्थंकर जाते हैं, परन्तु उनके अन्दर में-रुचि में वह चाहिए नहीं।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि में.. राग है न ? राग है, परन्तु उसे रुचि में नहीं है। आहा..हा.. ! वह तो अखण्ड द्रव्य को साधता है, ऐसा लिखा भाई ने। निहालभाई ने। द्रव्यदृष्टि प्रकाश है। प्रवीणभाई पढ़ा या नहीं पढ़ा ? कौन जाने। ...भाई पढ़ते थे। सोगानी निहालभाई है न ?

वे संसार से भयभीत हैं। धर्मी को राग और परवस्तु नहीं चाहिए, उससे तो भयभीत है। आहा..हा.. ! परिभ्रमण से भयभीत है। अरे रे ! चार गति के अवतार से डरता है। धर्मी चार गति के अवतार से डरता है। मुझे भव न हो।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को भय नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : भय नहीं होता परन्तु यह पर का भय नहीं होता। अन्दर निर्भय है, वह तो निःशंकरूप से स्वरूप की अपेक्षा की बात है, परन्तु यह तो इस योगसार में नहीं आया ? भव भय से डर चित। दो बार आया है। इस परिभ्रमण करने के भाव से डरता है। आहा.. ! देह छूटकर कैसा अवतार आयेगा ? यह आँधी उड़ी, आँधी। (गुजराती में) वन्टोलिया कहते हैं न ? बबुला। उसमें तिनका फिरे, वह उड़कर कहाँ जायेगा ? आहा..हा.. !

इसी प्रकार जिसे राग की एकता का मिथ्यात्वभाव (खड़ा है)... आहा..हा.. ! वह मिथ्यात्वभाव में उड़ा हुआ, गया हुआ कहाँ जाकर पड़ेगा ? भाई ! आहा..हा.. ! समझ में आया ? यहाँ तो बात आयी है। लोग प्रसन्न हों और रंजन हों, ऐसी यह बात यहाँ नहीं है, आहा.. ! लोग ऐसे प्रसन्न हों। ऐसा होगा और तुम ऐसा करो तो तुम्हें पैसा मिलेगा, भक्तामर जपो तो बहुत... पैसा मिलेगा, तुम्हें पुत्र न हो तो पुत्र मिलेगा और तुम व्रत-तप को करो तो तुम्हें मोक्ष मिलेगा। इसमें प्रसन्न होते हैं। अरे ! क्या करता है ? भाई ! आहा..हा.. !

ज्ञानी को संसार का कुछ नहीं चाहिए; वे संसार से भयभीत हैं। राग के भाव से परिभ्रमण होगा, उससे भयभीत हैं। **वे मोक्ष के मार्ग पर चल रहे हैं।** ज्ञानस्वभाव भगवान की दृष्टि, ज्ञान और रमणता में चलते हैं। भले थोड़े अंश रमणता हो, आहा..हा.. ! इस ज्ञानस्वभाव भगवान की रुचि और स्थिरता में वे चलते हैं, वह मोक्षमार्ग है। **वे संसार से विमुख होकर...** राग के, पुण्य के भाव से लेकर पूरा संसार, उसे पीठ दी है (अर्थात् उससे विमुख हो गये हैं) । आहा..हा.. ! उससे जिनकी दृष्टि फिर गयी है। आहा..हा.. ! पीठ दी है। जैसे बाँह दे न ? ऐसे। आहा..हा.. ! **वे संसार से विमुख होकर...** तुम्हारे हिन्दी में पीठ को क्या कहते हैं ? पीठ हिन्दी ?

मुमुक्षु : संसार को पीठ दिखा दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। आत्मा के सन्मुख हो गया है और इससे (संसार से) विमुख हो गया है। आहा..हा..! कहो ...भाई! यह तुम्हारे पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाते हो, उसमें भी धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। वहाँ वाँचन चलता है, नैरोबी। नैरोबी रहते हैं। अफ्रीका में इन लोगों ने अभी चैत्र शुक्ल ग्यारह को खात-मुहूर्त किया न? पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाना है। दिगम्बर मन्दिर, पन्द्रह लाख, नैरोबी। दो हजार वर्ष में बना नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो देश में तो अनन्त बार हो। वहाँ देश है न वह? और इसकी ओर का देश है न? वह... उस ओर, उसमें तो हो, यह तो अभी... आहा..हा..! वहाँ पन्द्रह लाख में ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारह, भीम ग्यारस को इन लोगों ने मुहूर्त किया है।

मुमुक्षु : धर्म होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म की बात (नहीं)। इसके लिये तो (यह बात) यहाँ होती है। वह भाव शुभ है और भगवान के दर्शन करना, वह भी शुभभाव है।

मुमुक्षु : परन्तु करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे अवश्य, परन्तु वह रुचे नहीं, पोसाये नहीं, तथापि आये बिना रहे नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें! समकिती ज्ञानी को भी, अन्तर में स्थिर न रह सके, इसलिए अशुभ से बचने को शुभभाव आता है। आता है, तथापि वह धर्म नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? अशुभभाव आवे, वह भी तो अधर्म है। आहा..हा..! शुभभाव थोड़ा अधर्म, वह (अशुभभाव) विशेष अधर्म। आहा..हा..!

स्वभाव में सुभट हैं,... धर्मी तो स्वभाव के लिये पराक्रमी है। भगवान ज्ञानानन्द प्रभु में अन्दर में जाने में दृष्टि है, वह पराक्रमी है। आहा..हा..! बहुत सादी भाषा और अन्तर की वस्तु है। ऐसा है, भाई! **स्वभाव में सुभट हैं, अन्तर से निर्भय हैं,...** है न? (पहले) (संसार से) भयभीत कहा, परन्तु अन्दर से वस्तु में तो निर्भय है। आहा..हा..! नि:शंक और निर्भय है। आहा..हा..! मेरा प्रभु शुद्ध चैतन्यघन, उसमें नि:शंक है और इसलिए वे निर्भय हैं। आहा..हा..! समझ में आया? अब ऐसी बातें! यह तो किस प्रकार का यह उपदेश है? आहा..हा..! मार्ग का यह उपदेश है, बापू! आहा..हा..!

कहते हैं कि प्रभु! धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा आनन्दकन्द ज्ञायकस्वरूप रुचता है, उसे पुण्य और पाप के भाव भी नहीं रुचते, तो उसके फलरूप से यह धूल मिली, लक्ष्मी मिले दो-पाँच करोड़, वह धर्मी को नहीं रुचती और (जिसे) रुचे, उसे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कहते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : परन्तु रुचि को... कहाँ डाल देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : डाल कौन दे? रखे कौन? वह तो उसके काल में आवे और उसके काल में रहे और उसके काल में जाये। उसमें आत्मा उसे रखे और आत्मा उसे प्राप्त करे और आत्मा उसे प्रयोग करे, यह बात हराम है। अज्ञानी को यह बात ही कहाँ... अनादि काल से मूढ़ जीव ऐसे के ऐसे संसार के परिभ्रमण में पड़े हैं। भटकते राम। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी नित्यानन्द प्रभु अविनाशी प्रभु है। उसका इसे-ज्ञानी को-धर्मी को भान होता है। इसलिए धर्मी उसमें सुभट है। उसका रक्षण, उसकी दृष्टि और उसमें स्थिर होना, इसमें वे सुभट हैं। आहा..हा..! बाहर का रक्षण करना कि यह स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धूल का रक्षण वह तीन काल-तीन लोक में आत्मा कर नहीं सकता। समझ में आया? ऐसी बातें अब! पूरे दिन कमाना, कारखाना चलाना... ऐई! रतिभाई! इस करोड़पति को बड़े कारखाने हैं। घीया-घीया। यह भी हमारे बड़े हैं न सब। इन्हें सब अलग-अलग प्रकार के धन्धे, भाई! यह तो दृष्टान्त है परन्तु यह धन्धे आदि की क्रियायें समकिती को रुचती नहीं है, कहते हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : चक्रवर्ती छह खण्ड का राज चलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छह खण्ड का राज चलाता नहीं, जानता है कि यह मेरा नहीं है, तथापि उसमें पड़ा दिखता है, यह दुनिया नहीं देख सकती। आहा..हा..! जवान माता चालीस वर्ष की हो और बीस वर्ष का जवान बालक हो, ऐसा शरीर का रोगादि हो और गोद में बैठे। आहा..हा..! तथापि वह बालक ऐसा नहीं मानता कि यह मैं किसी स्त्री की गोद में बैठा हूँ, मेरी माता है। आहा..हा..! मेरी जननी है। बीस वर्ष का युवक... हमारे ...भाई को रखते थे-गोदी में बैठाते थे, भाई! वहाँ हीराभाई के मकान में आते थे न, पश्चात् वे बड़े हुए परन्तु बात यह जानते हैं कि यह तो मेरे पिता हैं। मैं इनकी गोद में बैठा हूँ। उसे ऐसा नहीं होता दुःख मुझे लगता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहा..हा.. ! चैतन्य की गोद में बैठा अन्दर, उसे कोई चीज़ मेरी है, ऐसा वह नहीं मानता। आहा..हा.. ! समकिती वासुदेव, बलदेव को तो बड़े स्फटिक के, स्फटिक के महल होते हैं। स्फटिक के महल। रामचन्द्रजी आत्मज्ञानी धर्मात्मा को महल (होते हैं)। यह नहीं, ये मेरे नहीं... आहा..हा.. ! मेरा है, वह मुझमें है। मुझसे पृथक् है, वह मेरा नहीं है। आहा..हा.. ! (ऐसा वे मानते थे)।

अन्तर से निर्भय हैं, किसी से डरते नहीं हैं। प्रतिकूलता के ढ़ेर आवें तो धर्मी अपने स्वभाव में शुद्ध चैतन्य की नि:शंकता में पड़ा है, उसे किसी का डर नहीं कि इतनी निन्दा होगी, इतना यह होगा। उसके घर में रही। आहा..हा.. ! **किसी से डरते नहीं हैं। किसी उपसर्ग का भय नहीं है।** ऐसा कोई अकस्मात् उपसर्ग आवे, प्रतिकूलता आवे, कोई जहर दे दे, कोई सिंह आ जाये, बाघ आ जाये, कोई सर्प ऐसे जंगल में बैठे हों और सर्प आकर काटे, उसका भय नहीं है। आहा..हा.. ! **किसी से डरते नहीं हैं। किसी उपसर्ग का भय नहीं है।** आहा..हा.. ! **मुझमें किसी का प्रवेश नहीं है...** क्यों (भय) नहीं ? कि मुझमें किसी का प्रवेश नहीं। जितनी चीज़ बाहर है, वह चाहे जो हो, शरीर की अवस्था भी सड़ी हुई हो जाये। आहा.. ! सनतकुमार चक्रवर्ती दीक्षित हुए, कुष्ठ (हुआ) अंगुलियाँ सड़ गयीं। मुझमें कुछ नहीं। मुझमें इसकी सड़ान प्रवेश नहीं करती, तथा मैं उसमें प्रवेश नहीं करता। आहा..हा.. ! **मुझमें किसी का प्रवेश नहीं है—ऐसे निर्भय हैं।** आहा..हा.. !

विभाव को तो काले नाग की भाँति छोड़ दिया है। आहा..हा.. ! पहले आ गया है। सातवें पृष्ठ पर, सातवें पृष्ठ पर। आहा..हा.. ! धर्मी उसे कहते हैं, भाई ! तुझे अभी धर्म क्या है... आहा..हा.. ! ज्ञानानन्द प्रभु, जिसे अन्तर में परिणमन, रुचि और आश्रय लिया, उसे जगत के किसी पदार्थ का भय नहीं है और उसे जो विभाव आता है, आता है... आहा..हा.. ! आज तो यह देखा, भाई ! श्रीमद् में आता है न ? श्रीमद् में आता है, हे काम ! हे मान ! हे उतावल ! अब बन्द हो। उसमें पीछे आता है। आहा..हा.. ! हे संग उदय ! यह संगों का उदय-सम्बन्ध बना, हे शिथिलता ! आहा..हा.. ! अब तुम बन्द होओ। (श्रीमद् राजचन्द्र ग्रन्थ में) पीछे हाथ नोंद है न ? उसमें आता है। ज्ञानी है, समकिती है, हजारों-लाखों का जवाहरात का धन्धा है परन्तु अन्दर में राग देखकर ऐसा होता है, अरे रे ! यह ! हे काम ! हे मान ! हे उतावल ! हे संग-उदय ! अब बन्द होओ। आहा..हा.. ! है इसमें। अभी निकाला था। देखो ! अपने भाई ने बड़ी पुस्तक में से देखने को निकाला था। आहा..हा.. !

विभाव को तो काले नाग की भाँति छोड़ दिया है। आहा.. ! दृष्टि में से छोड़ा है, हों ! अस्थिरता है। आहा..हा.. ! परन्तु दृष्टि में से तो छोड़ दिया है, वह विभाव मैं नहीं। वह तो नुकसानकर्ता है। मेरी शान्ति को, मेरी आनन्द धारा को वह विभाव / राग चाहे तो शुभ हो (नुकसानकर्ता है) । आहा..हा.. ! उसे काले नाग की तरह, काला नाग देखे और जैसे भय को प्राप्त हो, वैसे राग से भय पाता है। यह नहीं, यह नहीं, आहा..हा.. ! तथापि छूटता न जानकर आता है, जुड़ता है। आहा..हा.. ! ऐसा स्वरूप होता है। **विभाव को तो...** तब वे लोग कहते हैं कि विभाव है, वह स्वभाव का साधन है। अरे ! प्रभु ! तुझे खबर नहीं, भाई ! आहा..हा.. ! हमारा परम्परा मार्ग यह है, उसे इन लोगों ने तोड़ दिया है, ऐसा (वे) कहते हैं। आहा..हा.. !

भाई ! परम्परा अनादि का मार्ग तो राग को एकत्व करके माना है, वह तेरा परम्परा मार्ग है और धर्म का परम्परा मार्ग तो राग से भिन्न पड़कर स्वभाव में आना, वह परम्परा मार्ग है। उस विभाव से धर्म और आत्मा को लाभ हो... आहा..हा.. ! यह परम्परा जैनधर्म वीतराग तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव का यह मार्ग नहीं है। आहा..हा.. !

विभाव को तो... है न पहला ? सातवें पृष्ठ पर आ गया है। सात है, देखो, पहली लाईन, १९, **ज्ञानी के अभिप्राय में राग है, वह जहर है, काला साँप है।** आहा..हा.. ! अब यहाँ वे लोग तो यह कहते हैं कि शुभराग है, वह धर्म का कारण है। अरे ! प्रभु ! भाई ! तुझे दृष्टि की खबर नहीं है। आहा.. ! तुझे तेरी दया की खबर नहीं है। भाई ! आहा.. ! (राग) हो परन्तु वह जहर है, वह शुभराग भक्ति, स्मरण आदि परमेश्वर का स्मरण, वह सब शुभराग है, वृत्ति का उत्थान है, वह राग जहर है, वह काला नाग है। आहा..हा.. ! है न ? आ गया न यह। इसमें लिखा है, ऐसा आया। **अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं,...** आसक्ति है। **राग है, परन्तु अभिप्राय में काला...** राग है, तथापि **अभिप्राय में काला साँप लगता है।** है न ? **ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं- न्यारे हैं।** है न १९वाँ ? यह ३०२ (बोल पूरा हुआ।)

सम्यग्दृष्टि को अखण्ड तत्त्व का आश्रय है, अखण्ड पर से दृष्टि छूट जाये तो साधकपना ही न रहे। दृष्टि तो अन्तर में है। चारित्र में अपूर्णता है। वह बाहर खड़ा दिखायी दे परन्तु दृष्टि तो स्व में ही है ॥३०३॥

३०३, **सम्यग्दृष्टि को अखण्ड तत्त्व का आश्रय है,...** आहा..हा..! वस्तु भगवान अखण्डानन्द नित्यानन्द प्रभु की पलटती पर्याय का भी जिसे आश्रय नहीं। सम्यग्दृष्टि अर्थात् धर्मी जीव की शुरुआतवाले को भी, धर्म की पहली सीढ़ी का पहला सोपान। आहा..हा..! ऐसे सम्यग्दृष्टि को भी **अखण्ड तत्त्व का आश्रय है,...** पूर्ण वस्तु जो अखण्ड है, उसका आश्रय है। निमित्त का नहीं, राग का नहीं, पर्याय का नहीं। आहा..हा..! ऐसा है।

अखण्ड तत्त्व का आश्रय है, अखण्ड पर से दृष्टि छूट जाये... वस्तु जो है द्रव्यस्वभाव वस्तु, उसकी दृष्टि, उसका आश्रय और यदि आश्रय छूट जाये... आहा..हा..! **तो साधकपना ही न रहे।** त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, ध्रुवभाव नित्यानन्द प्रभु का आश्रय छूट जाये तो पर्याय का आश्रय हो तो साधकपना छूट जाये। आहा..हा..! वस्तु अखण्ड वस्तु है, सामान्य चैतन्यध्रुव नित्य प्रभु का आश्रय यदि छूट जाये तो पर का आश्रय हो, वहाँ वह साधकपना नहीं रहता। आहा..हा..! ऐसा! तथापि उसे भक्ति, व्रत, तप के भाव आवें। समझ में आया? परन्तु दृष्टि स्वभाव के साधक पर पड़ी है, यह उसे नुकसान नहीं करते। आहा..हा..! साधकपना नहीं मिट सकता। आहा..हा..! समझ में आया?

अखण्ड पर से दृष्टि छूट जाये तो साधकपना ही न रहे। दृष्टि तो अन्तर में है। लाख-करोड़ चाहे जिस प्रकार के विकल्प आवे, तथापि दृष्टि तो ध्रुव पर है। आहा..हा..! ध्रुव नित्य प्रभु पर दृष्टि है। चारित्र में अपूर्णता है, स्थिरता में अधूराश है। आहा..हा..! ज्ञानी को राग आता है, अशुभराग भी होता है। छूटे नहीं तो शुभराग भी आ जाता है। उसमें से हटता नहीं हो... आहा..हा..! और उसी-उसी के विकल्प रहा करते हों तो वह छोड़ नहीं सकता। आहा..हा..! **दृष्टि तो अन्तर में है। चारित्र में अपूर्णता है।** धर्मी जीव को-साधक जीव को, अन्तर वस्तु भगवान पूर्णानन्द के नाथ की दृष्टि होने पर भी पर्याय में चारित्र की अपूर्णता है। आंशिक स्थिर हुआ, उतना चारित्र है। आहा..हा..! **वह बाहर खड़ा दिखायी दे...** आहा..हा..! राग आवे और उसके वर्तन में भी दिखायी दे, परन्तु दृष्टि तो स्व में है। आहा..हा..! अब ऐसी बातें! यह कहाँ... सुनना कठिन पड़ता है। यह मिलती नहीं। आहा..हा..! इसका वह अभ्यास है न दूसरा? और दूसरे से प्रसन्न-प्रसन्न हुआ है ऐसा। व्रत पालो, भक्ति करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा। इसलिए यह बात ऐसी (कठोर) लगे। वस्तु तो यह है, सत्य तो यह है। समझ में आया? आहा..हा..!

वह बाहर खड़ा दिखायी दे... राग में और राग के आचरण में दिखायी दे। आहा..हा..! परन्तु दृष्टि तो स्वचैतन्यमूर्ति भगवान का परिणमन जो दृष्टि हुई है, उस दृष्टि से हटता नहीं। आहा..हा..! अब ऐसी बातें। अज्ञानी राग न करे, विषय का, वासना का, भोग का त्याग हो, तथापि उसके राग में एकत्वबुद्धि है, उसकी दृष्टि राग पर है। आहा..हा..! वह भले शरीर से ब्रह्मचर्य पाले तो भी उसकी दृष्टि राग पर है कि मैं यह पालता हूँ और यह मैं करता हूँ। स्वभाव पर दृष्टि नहीं है। आहा..हा..! स्वभाव की दृष्टि होने से बाहर राग में खड़ा दिखायी, राग में आवे। **परन्तु दृष्टि तो स्व में ही है।** आहा..हा..! यह विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

यदि मनुष्य अवतार प्राप्त करके भी....

यदि मनुष्य अवतार प्राप्त करके भी आत्मा की पहिचान नहीं की तो इस अवतार की कोई विशेषता नहीं है। जिस प्रकार कच्चा चना कड़वा लगता है और उसे बो दिया जाए तो उगता है परन्तु उसे सेक दें तो मिठास आती है और वह फिर से उगता नहीं है। इसी प्रकार आत्मा, अज्ञानभाव से दु:खी है और नये-नये भव धारण कर रहा है परन्तु आत्मा की सच्ची पहचान करने से उसे सुख प्रगट होता है और फिर से भव धारण नहीं करना पड़ता।

यह आत्मा, आबाल-गोपाल सबको ख्याल में आ सके — ऐसा है। आत्मा, मोक्षसुख का देनेवाला है - ऐसे आत्मा को अनुभव से जाना जा सकता है किन्तु महान् विद्वान् भी वाणी से उसका सम्पूर्ण वर्णन नहीं कर सकते। वह ज्ञान में आता है किन्तु वाणी में नहीं आता। जिस प्रकार घी खाने पर उसके स्वाद का ज्ञान होता है परन्तु वाणी में वह सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता; इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप ज्ञान में ज्ञात होता है परन्तु वाणी में नहीं कहा जा सकता। जब आत्मा को जाननेवाला ज्ञानी भी उसे वाणी से सम्पूर्णरूप से कहने में समर्थ नहीं है, तब अज्ञानी तो उसे कह ही कैसे सकता है?

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-७-८

असोज शुक्ल ७, रविवार, दिनाङ्क ०८-१०-१९७८
वचनामृत-३०४ से ३०६ प्रवचन-११३

भगवान की प्रतिमा देखकर ऐसा लगे कि अहा! भगवान कैसे स्थिर हो गये हैं! कैसे समा गये हैं! चैतन्य का प्रतिबिम्ब है! तू ऐसा ही है! जैसे भगवान पवित्र हैं, वैसा ही तू पवित्र है, निष्क्रिय है, निर्विकल्प है। चैतन्य के सामने सब कुछ पानी भरता है॥३०४॥

वचनामृत ३०४। **भगवान की प्रतिमा देखकर...** सर्वज्ञ-वीतराग, स्वभाव का जैसा स्वरूप है, वैसा परमात्मा को प्रगट हो गया है। सर्वज्ञ-वीतराग की मूर्ति देखकर कहते हैं, **अहा! भगवान कैसे स्थिर हो गये हैं!** अन्तर आनन्द में और ज्ञान में स्थिर हो गये हैं। पूर्णाननद का नाथ, प्रभु! अन्तर में पूर्णरीति से स्थिर हो गये हैं। **कैसे समा गये हैं!** अन्तर में समा गये, आनन्दकन्द में प्रभु। शान्त दिखते हैं न! **चैतन्य का प्रतिबिम्ब है!** इस चैतन्य का प्रतिबिम्ब, भगवान की मूर्ति ऐसे चैतन्यबिम्ब मानो। आत्मस्वभाव, जिनबिम्ब यह जिनबिम्ब है। यह आत्मा जिनबिम्ब है, वैसा वह जिनबिम्ब ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! जिन चैतन्यस्वरूप 'जिन सो हि है आत्मा, अन्य सो हि है कर्म।' जिन, सो ही आत्मा। उस जिनस्वरूप ही भगवान की प्रतिमा दिखती है। वीतराग शान्त मानो स्थिर हो गये हों। वह चैतन्यप्रतिमा है।

तू ऐसा ही है! कैसे बैठे? अन्तर आनन्द का नाथ प्रभु, शुद्ध चैतन्यघन जिनबिम्ब आत्मा ऐसा ही यह है। अरे! ऐसी बात! आहा..हा..! है? **तू ऐसा ही है! जैसे भगवान पवित्र हैं,...** पूर्ण परमात्मदशा प्राप्त पवित्र है। है? **वैसा ही तू पवित्र है,...** अन्तर स्वरूप, आत्मा का आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य पवित्र है। उसकी वर्तमान पर्याय में, अवस्था में रागादि दिखायी दें, परन्तु वे चीज़ / वस्तु में नहीं है। वस्तु सच्चिदानन्द प्रभु जिनबिम्ब है,

वह **निष्क्रिय है,...** जैसे वह हिलती नहीं, वैसे तू निष्क्रिय / राग की क्रियारहित चीज़ है। आहा..हा.. ! ऐसी बात कैसे जँचे ? राग की जो क्रिया है, चाहे तो दया, दान (की क्रिया हो), उस क्रिया से रहित भगवान तो निष्क्रिय है। चिद्घन आनन्दकन्द (है)। आहा..हा.. ! **निर्विकल्प है।** जिसमें विकल्प का भेद नहीं। अखण्ड आनन्द का दल प्रभु ! **निर्विकल्प है।**

चैतन्य के सामने सब कुछ पानी भरता है। भगवान चैतन्यस्वरूप अनन्त चैतन्य रत्नाकर प्रभु में अनन्त चैतन्य के शक्ति के गुण भरे हैं। ऐसा जो चैतन्यस्वरूप, उसके पास पर्याय और राग तो कोई गिनती में नहीं है, कहते हैं। पानी भरे। आहा ! अरे ! कैसे जँचे ? महाप्रभु चैतन्य अन्दर है, चैतन्य महाप्रभु ! आहा..हा.. ! आगे सिंह का दृष्टान्त देंगे।

मुमुक्षु : वैष्णव की बैठक को महाप्रभु की बैठक कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बैठक है। कोई कर्ता-बर्ता नहीं। स्वयंसिद्ध वस्तु का कर्ता कौन होगा ? और स्वयंसिद्ध वस्तु में अपूर्णता कैसे होगी ? आहा..हा.. ! स्वयंसिद्ध चैतन्य भगवान प्रभु में अशुद्धता कैसे होगी ? वह तो पूर्णानन्द प्रभु अन्दर है। एक समय की वर्तमान जो अवस्था, उसके समीप में प्रभु पूर्णानन्द निष्क्रिय प्रभु है, निर्विकल्प प्रभु है। स्वयं, हों ! उसके समक्ष तो कहते हैं, गिनती (क्या) ? इसकी एक समय की अवस्था और दया, दान, रागादि तो पानी भरते हैं (अर्थात्) उनकी कोई कीमत नहीं है। आहा..हा.. ! ऐसी बात है।

अनादि का अभ्यास नहीं न ? शरीर पर नजर है कि शरीर मैं हूँ। ऐसे आगे जाने पर अन्दर पुण्य-पाप के भाव हों, वह मैं। उनमें प्रभु चैतन्यस्वरूप है, उसे भूल गया। आहा..हा.. ! यह पर्याय जो है, भले निर्मल हो; जो मलिन पर्याय / अवस्था है, उसमें पुण्य-पाप की बात तो क्या करना ? परन्तु निर्मल पर्याय / वर्तमान अवस्था है, वह भी वस्तु में ऊपर तैरती है; वस्तु में प्रविष्ट नहीं हुई है। आहा..हा.. ! ऐसी बात है, भाई ! शरीर, मन, वाणी तो इसके - प्रभु आत्मा में है ही नहीं। इसी प्रकार पुण्य-पाप, शुभाशुभभाव, राग, वह भी आत्मा में है नहीं, परन्तु आत्मा में, वर्तमान पर्याय है, वह भी उसमें नहीं। अरे ! यह पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्दर है। यह कैसे जँचे ? जरा अनुकूलता मिले, वह प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये, जहाँ प्रतिकूलता हो, वहाँ खेदखिन्न हो जाए; उसे यह भगवान पूर्णानन्द है, वह कैसे जँचे ? आहा..हा.. !

निर्विकल्प, निष्क्रिय अखण्ड आत्मस्वरूप अन्दर है। पर्याय का-समय का भेद

खण्ड-खण्ड, वह भी इसके स्वरूप में नहीं। आहा..हा..! जो प्रभु सकल निरावरण, अखण्ड, एक, अविनाशी अविनश्वर, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय - वर्तमान ज्ञान की दशा में प्रत्यक्षरूप से भासित हो, ऐसी वह चीज़ है। आहा..हा..! अविनश्वर, आहा! शुद्धस्वभावभाव -लक्षण, शुद्ध पारिणामिकभावलक्षण सहजस्वभावलक्षण, यह परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। अब यह बात इसे कैसे जँचे? भाई! और इस प्रकार का अभ्यास नहीं। अभी तो कथन शैली बदल गयी। उपदेश भी दूसरे प्रकार का सब उल्टा हो गया। आहा..!

इसकी जाति के अन्दर क्या चीज़ है? वस्तु है न? तो इस शरीर से तो भिन्न, परन्तु एक समय की इसकी पर्याय चलती है - हलचल / परिणमन (होता है)... आहा..हा..! वह भी वास्तव में सक्रिय है। उससे भिन्न (स्वभाव) निष्क्रिय है। इसका स्वभाव पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड एकस्वरूप प्रभु अन्दर है। उसके समक्ष दूसरी किसी चीज़ की कीमत नहीं है, ऐसा कहते हैं। पानी भरे अर्थात् (कीमत नहीं है)। चार हुए। आहा..हा..!

भाषा संक्षिप्त है, भाव बहुत गम्भीर है। आहा..हा..! भाषा तो भाषा है। उसमें वाच्य जो वस्तु है, वह कहीं भाषा में नहीं आती। भाषा तो उस वाच्य को समझाने में निमित्त है। आहा..हा..! पूर्णानन्द प्रभु, पूर्णइदं। वह वस्तु पूर्ण है, परन्तु कैसे जँचे? एक समय की पर्याय में, अवस्था में अनादि से घोंट रहा है। आहा..हा..! परन्तु उस एक समय की दशा के समक्ष अन्दर, अन्दर में प्रभु पूर्णानन्द का नाथ आत्मा विराजता है, उसकी इसे खबर नहीं। उस चीज़ के समक्ष किसी चीज़ की कीमत नहीं है, कहते हैं। यह ३०४ (बोल पूरा हुआ)।

तू अपने को देख; जैसा तू है, वैसा ही तू प्रगट होगा। तू महान देवाधिदेव है; उसकी प्रगटता के लिये उग्र पुरुषार्थ एवं सूक्ष्म उपयोग कर॥३०५॥

३०५, **तू अपने को देख;...** तू जो देखनेवाला है, वह देखता है पर को। यह शरीर है और यह राग है और यह है, यह है। इस देखनेवाले को देखने की चीज़ में अनादि से पर के प्रति लक्ष्य गया है, उस देखनेवाले को तू अन्दर में देख - ऐसी बातें हैं! देखनेवाला जो भगवान अन्दर आत्मा, यह है, शरीर है और यह है, और यह है, और यह है - ऐसा जो ज्ञान की दशा में यह है... यह है... यह ज्ञात होता है परन्तु उस जाननेवाले की पर्याय को

अन्दर जाने तो वह अन्दर ज्ञात होता है। आहा..हा.. ! अब ऐसी बातें। कोई भी चीज़ जानने में यदि ज्ञान न हो तो वह जाने किसे ? और उस जाननेवाले की पर्याय इसे जाने... इसे जाने... इसे जाने, ऐसा कहना, वह तो पर के ऊपर का लक्ष्य व्यवहार है। उस जाननेवाले को अन्दर देख। चैतन्यबिम्ब भगवान पूर्णानन्द प्रभु आत्मतत्त्व जिसे कहते हैं, वह पूर्णानन्द प्रभु... आहा..हा.. ! विराजता है, उसे देख।

तू अपने को देख;... तू पर को देखता है, इस देखनेवाले को तू देख। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं। जो वर्तमान ज्ञान की दशा पर को देखती है, वह जिसे देखती है, वह उसके स्वरूप में नहीं है, तो उस देखनेवाले के स्वरूप में क्या है ? आहा..हा.. ! देखनेवाले की दशा, देखनेवाला जो त्रिकाली ज्ञायक है, उसे देख न ! अरे..रे ! अन्य में भी ऐसा कहा जाता है

नयन ने आलसे रे मैं निरख्या न नयने हरि,
मारी नयन ने आलसे रे मैं निरख्या न नयने हरि।

हरि-भगवान आत्मा। जो राग, द्वेष और अज्ञान को हरे और वीतरागता प्रगट करे, वह आत्मा हरि है। आहा..हा.. ! उसे नयन से आलस्य से, देखनेवाले की दृष्टि में आलस के कारण पर को देखने में रुक गया परन्तु नयन में, यह निधान है, उसे नहीं देखा। आहा..हा.. ! शास्त्र पढ़कर भी जाना, परन्तु वह शास्त्र जाना, परन्तु जाननेवाले को नहीं जाना, ऐसी बातें हैं, भाई ! बहुत सूक्ष्म है। जिसके ऊपर वर्तमान दशा तैरती है, उस दशा के द्वारा त्रिकाल देखनेवाले को देख न ! आहा..हा.. ! ज्ञायकस्वरूप सहज त्रिकाली स्वभाव-स्वरूप को देख। ऐसी बात है। **भूदत्थमस्सिदो** यह शब्द है। आहा..हा.. ! त्रिकाली ज्ञायक प्रभु का आश्रय ले। आश्रय ले अर्थात् उसे तू देख। आहा..हा.. !

जैसा तू है... जैसा तू अन्दर में है, ऐसा ही तू निर्मलानन्द प्रभु अन्दर है, उसकी दशा में सब बिगाड़ हुआ है। यह पुण्य और पाप, राग और द्वेष विकल्प, परन्तु अन्दर तो जैसा तू निर्विकल्प है, वैसा ही तू अभी है। आहा..हा.. ! यह तो मुद्दे की रकम की बात है, भाई ! आहा..हा.. ! **वैसा ही तू प्रगट होगा। जैसा तू है, वैसा ही तू प्रगट होगा।** यह क्या कहा ? पूर्णानन्द, पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्त, पूर्ण वीतरागस्वरूप जैसा तू है। तू उसे देख, तो पर्याय में, जैसा है, वैसा तुझे प्रगट होगा। ऐसी बात है। यह लोगों को एकान्त लगता है, निश्चय.. निश्चय.. बापू ! मार्ग तो यह है, भाई ! महाचैतन्य प्रभु को देख तो तुझे प्रगट जैसा है, वैसा पर्याय में दशा में प्रगट होगा, तुझे ज्ञात होगा। अब ऐसी बातें ! ऐसा क्या

करना ? यह सब पूरे दिन यह धन्धा-पानी में रुके। निवृत्त हो तो भक्ति और पूजा, दया और व्रत में रुके, परन्तु वह तो परचीज़ है।

यह राग या शरीर या भगवान की प्रतिमा, उसे जो जानता है और यह.. यह.. यह.. जो जाननेवाले की पर्याय है, वह जाननेवाले को जाने। उसकी पर्याय उसे (पर को) जानती है, यह उसे (स्व को) जाने। ऐसा है। अपूर्व बात है, बापू! इसने अनन्त-अनन्त काल के परिभ्रमण में एक समय भी (यह) किया नहीं और यदि यह करे तो इसे परिभ्रमण रहे नहीं। आहा..हा..!

तू अपने को देख; जैसा तू है वैसा ही तू प्रगट होगा। आहा..! स्वभाव जैसा है, उसे देखने पर, उसका आश्रय करके लीन होने पर, जैसा तू है, वैसा ही तू दशा में प्रगट होगा। आहा..हा..! सर्वज्ञस्वभावी भगवान परमस्वरूप को देखते... देखते... देखते... देखते... देखते... स्थिर होते... आहा..हा..! तेरी दशा में भी उसी प्रकार सर्वज्ञपर्याय प्रगट होगी। आहा..हा..! ऐसा है। यह आत्मविद्या की बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : करनेयोग्य यह एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, भाई!

जो भगवान अन्दर पूर्ण वस्तु है या नहीं ? तत्त्व है न ? तत्त्व है, वह पूर्णइदं – वस्तु पूर्ण है। आहा..हा..! वह पूर्ण जो है, उसकी पर्याय पर को देखती है, वह पर्याय इसे देखे, तू अपने को देख। तेरी पर्याय में वस्तु को ज्ञेय बनाकर उसे देख। आहा..हा..! अरे! ऐसी बातें हैं। यह किस प्रकार का ऐसा धर्म ? बापू! आत्मज्ञान का धर्म यह है। बाकी सब बातें करके हैरान हो-होकर अनन्त काल से मर गये, भाई! आहा..हा..!

जहाँ पूर्ण निर्विकल्प वस्तु पड़ी है। आहा..हा..! वस्तु जो आत्मा है, वह तो निरावरण त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल निर्दोष है, त्रिकाल पूर्ण है, त्रिकाल पवित्रता का खजाना है, उसमें अपवित्रता का अंश या अपूर्णता का अंश, वह अन्दर में नहीं है। आहा..हा..! अपूर्णता का अंश या पूर्णता का अंश, वह अन्दर में नहीं है। आहा..हा..! परन्तु उस चीज़ को देखने पर और देखते-देखते स्थिर होने पर, जिस प्रकार से शक्ति और स्वभाव का स्वरूप भगवान आत्मा का है, उस प्रकार से ही तुझे पर्याय में भगवान प्रगट होगा। शक्ति है, उसकी व्यक्तता होगी। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

जैसे छोटी पीपर चौंसठ पहरी चरपराहट से भरपूर है। भले कद से छोटी, रंग में काली है। चरपराहट की कणी ही वर्तमान दशा में अल्प (होने) पर भी उसकी शक्ति और उसका स्वभाव जो है, चौंसठ पहरी घोंटे तब प्रगट होता है। चौंसठ पहरी अर्थात् पूर्ण। पूर्ण अर्थात् सोलह आने, अर्थात् चौंसठ पैसा। आहा..हा..! उस चरपराहट को घोंटने पर पर्याय में पूर्ण चौंसठ पहरी होती है, वह कहाँ से आयी ? वह चौंसठ पहरी अर्थात् पूर्ण स्वरूप ही वह है। भगवान जैसे वह चौंसठ पहरी चरपराहट से भरा हुआ तत्त्व है, उस प्रकार यह आत्मा चौंसठ अर्थात् पूर्ण आनन्द और ज्ञान से भरपूर पदार्थ है। आहा..हा..! पीपर का दृष्टान्त जँचता है। आहा..हा..! ...भाई तो कहते कि समझ में आये ऐसा है, समझ में आये ऐसा है। समझ में आया, ऐसा कहते थे। समझ में आया। बराबर समझ में आया। आहा..हा..!

अरे रे! दुनिया की चतुराई की बातें छोड़ प्रभु! आहा..हा..! और वर्तमान पर्याय जो आत्मा की दशा है, वह जिसकी है, उसे देखता नहीं और जिसकी नहीं उसे देखने में रुक गया है। आहा..हा..! यह तो क्या कहते हैं ? समझ में आया ? भगवान आत्मा पूर्णइदं - सहजानन्द प्रभु वस्तु से पूर्ण अन्दर विराजमान है। आहा..हा..! कौन ? तू। वह पूर्ण-पूर्णस्वरूप है, प्रभु! वस्तु है, वह वस्तु है। वस्तु है, वह अपूर्ण नहीं होती। वस्तु है, वह अशुद्ध नहीं होती। वस्तु है, उसे आवरण नहीं होता। वस्तु है, वह अल्प ज्ञानदशारूप नहीं होती। आहा..हा..! वह वस्तु भगवान-आत्मतत्त्व अन्दर विराजमान है, वह पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता ऐसा अन्दर तत्त्व प्रभु तेरा तत्त्व वह है। आहा..हा..! प्रभु! तू तुझे भूल गया है, भाई! आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! यह देह है, वह तो मिट्टी की है। धूल, जड़ की धूल। वह तो आत्मा है नहीं और आत्मा में है नहीं। आहा..हा..! इसी प्रकार कोई दया, दान, काम, क्रोध के विकल्प होते हैं, वे तो विकार हैं, प्रभु! वे कोई तुझमें नहीं हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : यह बात लोगों को रुचती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो ? भाई! दया, दान, व्रतादि के भाव, वह राग है। वह कहीं आत्मा नहीं है। आहा..हा..! यहाँ तो वह तो नहीं परन्तु अल्पज्ञ पर्यायरूप से भी आत्मा नहीं है। आहा..हा..! जो अल्पज्ञ पर्याय त्रिकाल को देखती है, वह आत्मा नहीं है। वह तो व्यवहार अंश, खण्ड-खण्ड भाग है। आहा..हा..! त्रिकाली वस्तु का सत्त्व, सत् पूर्ण वस्तु भगवान परमात्मस्वरूप विराजता है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..!

जैसे चौंसठ पहरी चरपराहट से भरपूर छोटी पीपर का तत्त्व है। आहा..हा..! कद छोटा, तथापि उस वस्तु में चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है; उसी प्रकार आत्मा, शरीरप्रमाण उसका कद होने पर भी, उसके स्वभाव में तो पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द आदि पूर्ण वीतराग, पूर्ण स्वभाव भरे हैं। आहा..हा..! उसे एक बार देख, प्रभु! सिंह होकर गर्जना कर कि मैं एक समय में त्रिकाल को जाननेवाला, वह मैं हूँ। ३०९ बोल में सिंह का दृष्टान्त आयेगा। आहा..हा..!

तू महान देवाधिदेव है;... आहा..! देवाधिदेव, देव का देव, बड़े स्वर्ग के देव, उनका भी प्रभु देवाधिदेव है यह तो। आहा..हा..! (संवत्) १९६३ के वर्ष में, सत्रह वर्ष की उम्र में दुकान पर यह प्रसंग आया था। रामलीला देखने गये थे। रामलीला है न? सीता, राम और लक्ष्मण की बड़ी रामलीला। वह हमारी दुकान के पीछे थी। यह तो १९६३ की बात है। संवत् १९६३ (अर्थात् आज से) ७१ वर्ष पहले। उस रामलीला में थे, वे बेचारे वैराग्य की बातें करते। इतनी वैराग्य की बात की मानो हू ब हू राम, लक्ष्मण और सीता। उस गाँव के मन्दिर का बाबा था, उसने उनकी पूजा की और उसमें से धुन चढ़ गयी मुझे अन्दर में... 'शिव रमणी रमनार तू, तू ही देवनोदेव।' यह शब्द आया पहला। ऐसी कड़ी तो छह थी परन्तु यह कड़ी इतनी याद रह गयी। 'तू शिवरमणीय रमनार' अनाकुल आनन्द की परिणति का रमनेवाला, तू ही देव का देव। आहा..हा..! तब तो कुछ खबर भी नहीं थी कि इसमें यह क्या आया। आहा..हा..! यह देवाधिदेव कहा न? आहा..हा..! प्रभु! तू शिव अर्थात् मोक्ष की आनन्द की परिणति रमनेवाला नाथ! और तू देवाधिदेव है न, प्रभु! पर्याय में ऐसा और वस्तु में ऐसा। क्या कहा, समझ में आया? आहा..हा..! यह अन्दर से आया था।

दो दुकान से सब गये थे विवाह में। (कुँवरजीभाई की) बहिन का विवाह था। १९६३ में। मैं और मेरा एक नौकर हम दो थे। यह छह कड़ी आकर लिख ली थी। दुकान में सलवट वाली बही थी न? कागज.. कागज.. (उसमें लिख ली थी)। वह बही वहीं की वहीं पड़ी रही। दीक्षा ली, तब साथ में कुछ नहीं लिया जाता। फिर भाई को कहा, भाई! मेरी कॉपी वहीं की वहीं रह गयी है या होगी? परन्तु वहाँ बड़ा तालाब है, बड़ा तालाब। वह पानी इतना आया कि दुकान में घुस गया और वह कॉपी गल गयी। भाई ने ऐसा कहा। कॉपी गल गयी है। मैंने कहा, उसमें मेरा गायन रह गया है। साथ में नहीं लिया था। गल

गयी थी। मेरे भाई थे न, बड़े भाई खुशालभाई। आहा..हा..! बड़ा तालाब है। बहुत वर्षा आयी और दुकान की ऊँचाई इतनी नीचे, इसलिए पानी ऐसे अन्दर आ गया। मैं वहाँ था, तब पानी आता था, परन्तु मकान के नीचे तक। उसमें यह लेख (कविता) था।

प्रभु! तू कौन है? शिवरमणी रमनार। फिर पर्याय-फर्याय की तब कहाँ खबर थी? तू तो पूर्णानन्द केवलज्ञान की दशा को रमनेवाला और तेरा स्वरूप... आहा..हा..! तू देवाधिदेव है, भाई! आहा..हा..! ऐसा है जरा! समझ में आया? ऐसा आया था। फिर दूसरी ग्यारह कड़ी रह गयी। डबलवाली छह कड़ी थी, उसमें से इतनी कड़ी याद रह गयी। आहा..हा..!

वह कहते हैं न यह, **तू महान देवाधिदेव है;...** प्रभु! आहा..हा..! परन्तु सम्प्रदाय में तो यह बात मिलती नहीं। यह करो और यह करो और यह करो। क्रियाकाण्ड में उलझ गये हैं। आहा..हा..! अन्तर में से जब आया कि आहा..हा..! चीज़ तो कोई देवाधिदेव है! पूर्णानन्द का नाथ... आहा..हा..! यह तो शिवरमणी रमनार। यह स्त्री नहीं। विकार की पर्याय में रमे वह आत्मा नहीं। आहा..हा..! कठिन बात, भाई!

देवाधिदेव है; उसकी प्रगटता के लिये... ऐसा तेरा स्वरूप है, उसे प्रगट करने के लिये, पर्याय में प्रगट करने के लिये **उग्र पुरुषार्थ एवं सूक्ष्म उपयोग कर**। उग्र पुरुषार्थ। आहा..हा..! जिस पुरुषार्थ की तीव्रता से आत्मा पकड़ में आये, ऐसा पुरुषार्थ कर। आहा..हा..! जो तीव्र वीर्य... आहा..हा..! और ज्ञान सूक्ष्म, तीव्र वीर्य और ज्ञान सूक्ष्म, उससे ज्ञात होगा, ऐसा कर। आहा..हा..! उसकी प्रगटता के लिये भगवान शक्तिस्वभावरूप परमात्मस्वरूप तत्त्व, भगवान तत्त्व है ऐसा, परन्तु उसे प्रगट करने के लिये उग्र पुरुषार्थ (कर)। पुरुषार्थ नाम का प्रभु आत्मा में एक गुण है, उसे पर्याय में तीव्र पुरुषार्थ द्वारा... आहा..हा..! कि जो पुरुषार्थ द्रव्य को पकड़े। आहा..हा..! वस्तु जो भगवान शक्तिस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु है, उसे जो पुरुषार्थ पकड़े, उसे तीव्र पुरुषार्थ कहा जाता है। आहा..हा..! यह दया, दान, और व्रतादि का पुरुषार्थ, वह तो नपुंसक वीर्य है। आहा..हा..! समझ में आया? जैसे नपुंसक को प्रजा नहीं होती; इसी प्रकार शुभभाव नपुंसक है, उसमें धर्म-प्रजा नहीं होती। आहा..हा..! वह तीव्र पुरुषार्थ जिसकी—स्वरूप की रचना करे... आहा..हा..! वीर्य गुण ऐसा लिया है न? भगवान आत्मा में पुरुषार्थ नाम का गुण है। यह वीर्य रेत है, यह पुत्र, लड़का हो, वह तो धूल-मिट्टी है।

अन्दर आत्मा में एक वीर्य नाम का, पुरुषार्थ नाम का शक्तिरूप से, स्वभावरूप से,

अनन्तरूप से वीर्य है, उस वीर्य को पर्याय में... आहा..हा..! उग्र पुरुषार्थ द्वारा स्वरूप की रचना करे, ऐसे वीर्य द्वारा अन्दर स्वरूप तो देख। आहा..हा..! और उसके उपयोग में अर्थात् ज्ञान-दर्शन के जानने का उपयोग, तीव्र पुरुषार्थ और ज्ञान-उपयोग सूक्ष्म, एक साथ में है। समझ में आया? आहा..हा..! शास्त्र को जानना-फानना, वह तो सब बाहर रह गया है, वह कोई आत्म चीज़ नहीं है। भाई! आहा..हा..!

पूर्ण आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु को पकड़ने के लिये, उसे जानने के लिये तीव्र पुरुषार्थ चाहिए। आहा..हा..! और उसमें ज्ञान और दर्शन जो जानने-देखने का उपयोग है, वह सूक्ष्म चाहिए क्योंकि वस्तु सूक्ष्म है। अरूपी तो है परन्तु सूक्ष्म है। अनन्त-अनन्त गुण की संख्या का पार नहीं, तथापि उन सब गुणों का रूप बहुत सूक्ष्म। आहा..हा..! वर्तमान ज्ञान का जानने का जो उपयोग / व्यापार है, उसे सूक्ष्म कर। उस सूक्ष्म को पकड़नेयोग्य उपयोग को कर - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अब ऐसी बातें, इसलिए लोगों को ऐसा लगे कि सोनगढ़ ने तो व्यवहार का नाश कर डाला। आहा..हा..! अरे! सुन न, प्रभु! रागादि की क्रिया तो व्यवहार है, प्रभु! वह तेरा स्वरूप नहीं, वह तेरे स्वरूप में नहीं और उस राग की क्रिया से तुझे आत्मा का लाभ हो, वह है नहीं। आहा..हा..!

तीव्र पुरुषार्थ और उपयोग सूक्ष्म। दोनों साथ में। वीर्य सूक्ष्म हुआ परन्तु उसे तीव्र कहा। जो वीर्य अन्दर को पकड़ सके, वह वीर्य सूक्ष्म है, परन्तु उस वीर्य को तीव्र कहा और जो ज्ञान उपयोग है, उसे (स्वरूप को) पकड़े, उसे सूक्ष्म कहा। जो सच्चिदानन्द प्रभु चैतन्य प्रकाश का नूर आत्मा, चैतन्य प्रकाश के नूर के तेज का पूर, उसे पकड़ने के लिये, उसे जानने के लिये, प्रभु! तीव्र पुरुषार्थ चाहिए, भाई! आहा..हा..! जो सन्मुख हो, वह वीर्य तीव्र है, जो वीर्य अन्तरसन्मुख हो, वह तीव्र है और जो ज्ञान की पर्याय अन्दर सन्मुख हो, वह सूक्ष्म है। आहा..हा..! अब ऐसी बातें अच्छी न लगे और बाहर के रस में पड़े हैं। आहा..हा..! और दया, दान, व्रत आदि पुण्य के रस में पड़े, वे भी विकार के रस में पड़े हैं, वे आत्मा के रस में नहीं हैं। आहा..हा..! ऐसी बातें!

जो ज्ञान की वर्तमान दशा पर को जानने में रुकी है, वह स्थूल है। परन्तु जो दशा सूक्ष्म हो अर्थात् कि उस पूर्णानन्द के नाथ को पकड़ सके, उस उपयोग को सूक्ष्म कहते हैं। वह सूक्ष्म कर और ज्ञात हो, ऐसी साथ में बात की है। कैसे करना? कैसे करना कि जो स्थूल है, पर को जानने में जो ज्ञान का उपयोग स्थूल है, उसे स्वसन्मुख करने के लिये

सूक्ष्म कर। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, बापू! अनादि वस्तुस्वरूप की स्थिति ऐसी है, भाई! तुझे खबर नहीं। लोग कुछ का कुछ धर्म के नाम से विकार और राग और धमाल... धमाल... धमाल... आहा..हा..! उस धमाल की क्रिया से तो आत्मा को बन्ध होता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पर का कुछ नहीं किया जा सकता, यह मानना बहुत कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किया जा सकता नहीं तो यह भी इनकार करते हैं। परन्तु किया जा सकता नहीं तो फिर तुमने यह उपदेश (क्यों दिया) ? और मन्दिर क्यों बनाये ? अरे! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! कौन बनावे मन्दिर और कौन बनावे भाषा? यह भाषा तो जड़ है। आहा..हा..! यह भगवान आत्मा की नहीं। भगवान में से नहीं आती। यह तो जड़ वचन -वर्गणा है। वचनवर्गणा अर्थात्? भाषा होने के योग्य परमाणु में पिण्ड पड़े हैं, उनमें से भाषा की वर्गणा आती है। प्रभु चैतन्यस्वरूप में तो वह है नहीं। आहा..हा..!

उग्र पुरुषार्थ एवं सूक्ष्म उपयोग कर। तीव्र-उग्र पुरुषार्थ कर, इसका अर्थ हुआ न? और सूक्ष्म उपयोग कर, यह साधन। ३०५ (बोल पूरा हुआ)। ३०६, जागता जीव इसमें आता है।

रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाये तो कार्य होता ही है। अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है, उसे छोड़। जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता। जागता जीव विद्यमान है, वह कहाँ जायेगा? अवश्य प्राप्त होगा ही ॥३०६॥

रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाये... आहा..हा..! जैसे तानाबाना वस्त्र में एकाकार हो जाते हैं। आहा..हा..! ऐसी बातें! इसी प्रकार भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वस्तु की रुचि का पोषण, उसकी रुचि का पोषण। वह जीव को पोषाता है। आहा..हा..! और **तत्त्व का मंथन...** यह वस्तु है ज्ञायक चैतन्य, इसका मंथन। जैसे पीपर चौंसठ पहरी घोंटते हैं, इसलिए चौंसठ पहरी पर्याय बाहर आती है। इसी प्रकार इस तत्त्व का घोंटन, पूर्ण स्वरूप का घोंटन। घोंटते-घोंटते उसकी पर्याय में पूर्ण

स्वरूप बाहर आता है। आहा..हा..! कोई दया, दान और व्रत-भक्ति करते-करते यह बाहर आता है, ऐसा नहीं है। वह तो विकार है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। लोगों को कठोर लगती है। वे चित्रभानु आये हैं, कहते हैं। पालीताणा। पालीताणा में श्वेताम्बर साधु नहीं था? अमेरिका में गया है न? वर्षों बाद आता है यहाँ। गत वर्ष भी आया था। मैंने तो सुना है। भाई, कान्तिभाई नहीं? फोटोग्राफर? उनका लड़का कहता था कि बहिन की पुस्तक मेरे हाथ में थी, तो कहे यह मुझे दो। ऐसा सुना था, तो यह तो भाई इनकार करते हैं।

मुमुक्षु : फोटोग्राफर ने कहा कि वहाँ मिली थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिली थी? वहाँ मिली थी? परन्तु यह धीरुभाई अभी यहाँ भावनगर आये थे। उनके भाई के घर में उतरे होंगे, चालीस लोग। साथ में होवे न, उन्होंने उनसे कहा था कि मैंने पढ़ा नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ी नहीं परन्तु मिली थी या नहीं, ऐसे क्यों नहीं कहा? कि मिली है परन्तु पढ़ी नहीं, ऐसा कहना है न? क्योंकि हमारे जीतूभाई ने निर्णय किया था, पूछा था न? वे लड़के हैं न? कान्तिभाई हैं न? फोटोग्राफी (करते हैं)। मोटे नहीं थे? पालीताणा। उनके पुत्र को पूछा था कि मैंने उसे दिया था। यहाँ भाई मिले तो मैंने उन्हें बताया तो कि मैंने पढ़ा नहीं। यह उसे जँचता नहीं, यह वस्तु, बापू! बाहर की प्रसिद्धि और हो.. हा.. हो.. हा.. आहा..हा..! यह तो अन्दर की प्रसिद्धि-आत्मख्याति करनी हो, उसकी बात है। आहा..हा..!

रुचि का पोषण रुचना, सुहाना, जँचना चाहिए। आहा..हा..! गोठ रुचती है न? ऐसे भगवान आत्मा अन्दर रुचना चाहिए। हिस्सेदार सभी भाई एकत्रित होकर भाईबंधु गोठ (सामूहिक भोजन) खाते हैं न? गोठ, वह गोठ रुचती है इसलिए। नाश्ता करने इकट्ठे हों। आहा..हा..! प्रभु! तेरी गोठ के लिये वहाँ अन्दर जा। आहा..हा..! उसकी रुचि कर, उसकी रुचि। उसे पोषाण में ला। यही मुझे पोसाता है; बाकी कोई चीज़ पोसाती नहीं। आहा..हा..!

रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ... भगवान आनन्दकन्द प्रभु चैतन्यस्वभाव का समुद्र / सागर परमात्मा... आहा..हा..! इसके साथ एकाकार हो जाये। आहा..हा..! रुचि और मंथन। रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन। आहा..हा..! तत्त्व जो

है, उसकी रुचि, उसका पोषण और तत्त्व का घोलन। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ऐसा जो **मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाये तो कार्य होता ही है...** तो कार्य होता ही है। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कार्य होता ही है। ऐसी बातें! वे तो ऐसा कहते हैं कि परन्तु इसका साधन (क्या) ? ऐसा कहते हैं। परन्तु यह साधन नहीं ? भगवान चैतन्य भगवान अन्दर विराजता है, उसके अन्दर जाना और तीव्र पुरुषार्थ करना, सूक्ष्म उपयोग करना, वह साधन नहीं। आहा..हा..!

अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है... अनादि का अभ्यास। शुभ-अशुभ जो राग हो, वह वृत्ति उठती है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, यह वृत्ति पाप की है और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भगवान का नाम स्मरण, यह पुण्यवृत्ति है, दोनों विभाववृत्ति है। वृत्ति का उत्थान होता है, प्रभु में यह नहीं है। आहा..हा..! अनादि के अभ्यास से उस विभाव में प्रेम लगा है, प्रेम लगा है वहाँ। इसलिए तुझे भगवानस्वरूप का प्रेम अनादि से छूट गया है। आहा..हा..! **उसे छोड़।** प्रेम लगा है, उसे छोड़। शुभ-अशुभराग के प्रेम में, व्यभिचार में गया है, उसे छोड़ दे। आहा..हा..!

जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता... पोषाण में भगवान पूर्णानन्द का नाथ जहाँ पोसााता है, उसे दूसरे कोई रागादि नहीं पोसाते। आहा..हा..! राग आता है परन्तु उसे दु:ख लगता है, पोसाता नहीं, यह ठीक नहीं। आहा..हा..! गजब बात, भाई! समाज में ऐसी बातें रखना! परन्तु यह बात ही परम सत्य यही है। आहा..हा..! समाज अन्दर आत्मा है या नहीं ? आहा..हा..! पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण वीतरागता, पूर्ण आनन्द और पूर्ण सच्चिदानन्द ज्ञान आदि पूर्ण स्वरूप है या नहीं अन्दर ? आहा..हा..! एक आत्मा कहो या सब समाज के कहो, सब आत्मा तो वही अन्दर पूर्ण प्रभु है। आहा..हा..!

जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता... जिसे ज्ञान और आनन्दस्वरूप प्रभु रुचि में रुचता है, रुचि में रुचता है, उसे दूसरी कोई रुचि नहीं रुचती। आहा..हा..! और (जिसे) आत्मा पोसाता है, **उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता।** क्या कहा यह ? जिसे भगवान पूर्ण स्वरूप आत्मा पोसाता है, रुचता है, सुहाता है। अहा..हा..! उसे दूसरा पोसाता नहीं। रागादि आवें परन्तु वह रुचि में आता नहीं। आहा..हा..! अभी तो ऐसी बात कम हो गयी है। अरे रे! दुनिया में बाहर की बातें सब लगायी है। धर्म के बात पर भगवान की भक्ति करो और पूजा करो और यह मन्दिर बनाओ, और यात्रायें करो, बापू! यह सब

राग की क्रिया है, भाई ! तुझे खबर नहीं। यह तो वृत्ति का उत्थान है। यह वृत्ति है, वह स्वरूप नहीं है। आहा..हा.. !

और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता। क्या कहा ? जिसे भगवान पूर्ण आनन्द पोसाता है, रुचि में पोसाता है... आहा..हा.. ! और ... आहा..हा.. ! दूसरा नहीं पोसाता... भगवान पोसाता है, दूसरा नहीं पोसाता, उसे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता। वह आत्मा प्रगट हुए बिना नहीं रहता। आहा..हा.. ! गजब बातें हैं ऐसी। ऐसा धर्म ! बहुत सूक्ष्म, भाई ! वस्तु तो ऐसी है, भाई ! इसने बाहर से मान लिया है, इससे कहीं इसे कुछ आत्मा प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. !

प्रभु की भक्ति करें तो आत्मा का ज्ञान हो, यह बात एकदम खोटी है। राम.. राम.. राम.. राम.. राम.. राम.. राम.. राम.. राम.. मराम.. ऐसा हो जाये अन्दर से। यह राम के विकल्प हैं, वह विकार हैं। वीतराग.. वीतराग.. जिनेश्वरदेव वह भी एक विकल्प / राग है, बापू ! तुझे खबर नहीं। आहा..हा.. ! वह राग जिसे पोसाता नहीं, और जिसे भगवान आत्मा पोसाता है, उसे आत्मा अप्राप्त / गुप्त नहीं रहता। उसे पर्याय में प्रगट हुए बिना नहीं रहता। आहा..हा.. ! ऐसा है।

जागता जीव विद्यमान है, वह कहाँ जायेगा ? है ? अन्दर जागृत चैतन्यस्वरूप प्रकाश की मूर्ति, चैतन्य के प्रकाश की मूर्ति जागृत-जागृत जीव है, विद्यमान है अर्थात् ध्रुव है। चैतन्य ज्योति जागता जीव ध्रुव है, वह कहाँ जाये ? आहा..हा.. ! यह सब शब्द 'अध्यात्म पीयूष' में डाले हैं। नहीं ? ऊपर पहले रखा है। दिया है न ? भाई ! उसमें दिया है। आहा..हा.. ! जागता ज्ञायक-ज्ञायक चैतन्य बिम्ब प्रभु, प्रज्ञा ब्रह्म। आहा..हा.. ! वह प्रज्ञा-ज्ञानस्वरूप जागती चीज़ है। वह जागता जीव विद्यमान है, ध्रुव है। वह कहाँ जाये ? वह पर्याय में आवे ? राग में आवे ? आहा..हा.. ! ऐसा जिसे अन्दर में भान हो, वह **अवश्य प्राप्त होगा ही।** ध्रुव जागता जीव अन्दर है। ऐसी जिसे अन्तर्दृष्टि हो, उसे अवश्य प्राप्त होता ही है। आहा..हा.. ! उसके जन्म-मरण मिट ही जाते हैं। आहा..हा.. ! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

असोज शुक्ल ८, सोमवार, दिनाङ्क ०९-१०-१९७८
वचनामृत-३०६ से ३०९ प्रवचन-११४

वचनामृत। ३०६ वाँ बोल है, फिर से। ३०६ बोल। सूक्ष्म है भाई! यह तो तत्त्व की बात है। ३०६ बोल अन्तिम शब्द। **जागता जीव विद्यमान है, वह कहाँ जायेगा? जागता जीव विद्यमान है,...** क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है, प्रभु! जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो, धर्म की पहली सीढ़ी (प्राप्त करना हो) तो कहते हैं कि प्रभु! जो अन्दर आत्मा है, वह जागता जीव विद्यमान है न! यह शरीर-वाणी-मन से तो पर है, परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम शुभाशुभ होते हैं, उनसे पर है। उसकी एक समय की अवस्था है, उससे जागता जीव ध्रुव तो पर्याय से भिन्न विद्यमान है न! आहा..हा..! क्या कहते हैं?

ज्ञायक तत्त्व, चैतन्य तत्त्व, चैतन्य प्रकाश के नूर का पूर, भगवान जागृत ज्योति विद्यमान है न! विद्यमान है अर्थात् ध्रुव है न! विद्यमान के अन्दर यह है। आहा..हा..! तू अन्तर एक समय की पर्याय में पर्याय से देख कि यह जागता जीव विद्यमान है। देखनेवाली है, वह ज्ञान की वर्तमान पर्याय है, परन्तु पर्याय की खबर (नहीं होती), द्रव्य की खबर (नहीं होती), बापू! कठिन बातें हैं, बापू! वीतराग का मार्ग... आहा..हा..! जो वर्तमान ज्ञान की पर्याय है, वह पुण्य-पाप के राग से भिन्न है और वह पर्याय, जागता जीव अन्दर है, उसे देखती है। आहा..हा..! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : नींदवाला जीव कैसा कहलाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नींद है ही नहीं। वह त्रिकाली जागती ज्योति भगवान चैतन्य प्रकाश का नूर है। अरे! इसे कहाँ खबर है कि वस्तु अन्दर क्या है? जिनेश्वर त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, भाई! प्रभु! तू आत्मा अन्दर जागती ज्योति चैतन्य रस का कन्द है न! आहा..हा..! जागता अर्थात् कभी नींद नहीं लेता। उसे कभी निद्रा नहीं है। आहा..! उसके स्वभाव में कभी अशुद्धता नहीं है, उसके स्वभाव में कभी अपूर्णता नहीं है, उसके

त्रिकाली जागती ज्योति को कभी आवरण नहीं है। आहा..हा..! कठिन बात, भाई! वीतरागमार्ग को समझना, वह बहुत अलौकिक बातें हैं। यह क्रियाकाण्ड किये—यह दया पालन की, व्रत किये और भक्ति (की), वह तो सब शुभराग की क्रियायें हैं। वह कहीं धर्म नहीं और धर्म का कारण भी नहीं।

मुमुक्षु : यह करते-करते होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करते-करते, जहर पीते-पीते कस्तूरी की डकार आवे, ऐसा है। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे तो यह राग करते-करते धर्म हो। आहा..हा..! लोगों को खबर नहीं, बापू! मार्ग की खबर नहीं। आहा..हा..! यह (शरीर) तो मिट्टी-धूल है, इससे तो प्रभु भिन्न है परन्तु आठ कर्म के रजकण हैं, उनसे तो भगवान अन्दर भिन्न है और अन्दर पुण्य तथा पाप के विकल्प होते हैं, वह तो विकृत विकारी विभावदशा है। वह कहीं आत्मा में नहीं और आत्मा उसमें नहीं। आहा..हा..! उसे—विभाव को जाननेवाली वर्तमान ज्ञान अवस्था है, उस ज्ञान अवस्था में पूरा द्रव्य नहीं है। पूरा तत्त्व जो आत्मतत्त्व है, वह एक अंश में तत्त्व नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें लोगों को बिना सिर-पैर की बातें लगती हैं। क्या हो? भाई! आहा..हा..!

कहते हैं कि एक समय की जो ज्ञान की पर्याय है न, अभी प्रगट, उस पर्याय में पूरा द्रव्य नहीं आया। द्रव्य जो वस्तु है, वह तो जागती ज्योति चैतन्यमूर्ति ध्रुव कायम विद्यमान है। कहो, पाटनीजी! ऐसी बात है, भाई! क्या हो? भाषा तो बहुत संक्षिप्त है परन्तु जागृत ज्ञायकस्वरूप ध्रुव है, त्रिकाल है, त्रिकाल है। वह जागृत ज्योति प्रभु विद्यमान है न! अर्थात्? ध्रुव है न! अर्थात्? वह अविनाशी तत्त्व है न! आहा..हा..! वह तत्त्व तो परिणमता ही नहीं। परिणमती है, वह पर्याय है। आहा..हा..! अब ऐसी बातें कठिन पड़ती है। क्या हो? यह जागता ज्ञायकस्वभाव, जाननस्वभाव का पिण्ड प्रभु खड़ा है न, ऐसा ध्रुव है न! प्रभु! वहाँ नजर कर। आहा..हा..! तुझे भगवान आत्मा हाथ में आयेगा, तब तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। ऐसी बात है।

जागता जीव विद्यमान है,... हिन्दी में लेना है। **वह कहाँ जायेगा?** आहा..हा..! ध्रुवस्वरूप जागृत ज्ञायकस्वरूप, वह कहाँ जायेगा? क्या वह राग में आयेगा? कहीं शरीर में आयेगा? क्या एक समय की उसकी पर्याय में आयेगा? आहा..हा..! जागता जीव ध्रुव है न! आहा..हा..! उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्... समझ में आया? आहा..हा..! यह अन्तिम

शब्द की बातें हैं न ? शान्तिभाई के लड़के ने माँगा था। यह बात। आहा.. ! यहाँ तो परमात्मा की वाणी है, वह यह है। आहा..हा.. ! अन्तिम शब्द है न ? जागता जीव, ज्ञायक जीव, जाननेवाला जीव, ज्ञाता जीव, दृष्टा जीव, आहा..हा.. ! वह ध्रुव है न, वह कहाँ जायेगा ? ध्रुव कहाँ जायेगा ? ध्रुव कहाँ पलटन पर्याय में आयेगा ? ध्रुव कहाँ शरीर में आयेगा ? आहा..हा.. ! ध्रुव कहाँ दया, दान के राग में, विकल्प में आयेगा ? ध्रुव तो विद्यमान है, ध्रुव त्रिकाल है। आहा..हा.. !

जागता जीव विद्यमान है, वह कहाँ जायेगा ? अवश्य प्राप्त होगा ही। यदि वहाँ ध्रुव है, वहाँ नजर करे तो तुझे प्राप्त होगा, प्रभु ! आहा..हा.. ! कठिन काम। ऐसी बातें हैं। (समयसार की) ११वीं गाथा में कहा है न ? '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' वह यह शब्द है। भूतार्थ त्रिकाली भगवान ज्ञायकस्वरूप ध्रुव, उत्पाद-व्यय की पर्याय है, उससे भी भिन्न है। दया, दान के राग के विकल्प से तो भिन्न है परन्तु उस समय की पर्याय है, उतनी पर्याय में वह नहीं है, उससे भिन्न वस्तु है। आहा.. ! वह जागती ज्योति ध्रुव है, वह कहाँ जायेगा ? किसमें आयेगा ? किसमें समायेगा ? आहा..हा.. ! कहाँ जायेगा ? ध्रुव है, वहाँ नजर कर, अवश्य तुझे ध्रुव की प्राप्ति होगी, भाई ! आहा..हा.. ! तेरे सम्यग्दर्शन में ध्रुव पर नजर करे, तब इसे सम्यग्दर्शन होगा। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : ध्रुव तो यहाँ तारा में दिखायी दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ध्रुव (नहीं)। उस ध्रुव को क्या कहना है ? उस ध्रुव के लक्ष्य से तो जहाज चलते हैं, इस ध्रुव के लक्ष्य से तो सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है, प्रभु ! क्या हो ? भाई ! अभी तो ऐसी गड़बड़ उठी है न ?

मुमुक्षु : कैसी गड़बड़ उठी है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस राग से धर्म होता है और दया, दान से धर्म होता है और व्रत पालो तो धर्म होता है और अपवास करो तो धर्म होता है (ऐसी सब गड़बड़ चली है)। यह तो सब राग की क्रिया है, प्रभु ! तुझे खबर नहीं है। यह तो वृत्ति का उत्थान है। इसमें स्वरूप कहाँ है ? आहा..हा.. !

भव्यसागर के दो पत्र आये थे। वह फिर से पढ़ेगा, भाई ! बहुत प्रसन्नता बताता है। वह पार्सल भेजा है न यहाँ से ? चार सौ का पहुँच गया और मुफ्त भेजा, इसलिए तो बहुत प्रसन्न हुआ। ओहो..हो.. ! और वहाँ जालना में स्थानकवासी साधु का चातुर्मास है, आनन्द

ऋषि, स्थानकवासी का आचार्य है और उसे लोग बेंगलोर, हैदराबाद, वहाँ हम गये थे न ? लोग बहुत आते थे। वे लोग बहुत आते हैं अर्थात् कि मेरे पास दर्शन करने आते हैं। स्थानकवासी के साधु के पास जाते हैं, इसलिए वह दिगम्बर दिखाये न ? आते हैं और मेरे पास आकर... बेचारे ने ऐसा तो उसमें लिखा था कि मुझमें कुछ गुण तो है नहीं, परन्तु वे आते हैं, वे सब चम्पाबेन की पुस्तक माँगते हैं। बाहर प्रसिद्ध हो गयी। वहाँ तेरापंथी ही है, वहाँ स्थानकवासी के तेरापंथी हैं न वे ? तुलसी, उसका भी पंथ है, दिगम्बर है, श्वेताम्बर है, स्थानकवासी है। ऐसे उसने जो यह बहिन की पुस्तकों का प्रचार किया, वह माँग करता है। क्या है यह ? अरे! भाई! यह वस्तु है, वह तत्त्व की वस्तु है। आहा..हा..! प्रथम सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, उसकी रीति और पद्धति क्या ? वह है यह ? आहा..हा..!

चारित्र तो बाद में (होता है), सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में रमणता करे, उसे चारित्र कहते हैं। चारित्र कोई यह देह की क्रिया, नग्न और पाँच महाव्रत के परिणाम वह तो सब राग है, वह कहीं चारित्र नहीं है। आहा..हा..! चरना, वह तो (अलौकिक बातें हैं)।

पहली जागृत ज्योति, चैतन्य के तेज से भरपूर भगवान ध्रुव है न, अवश्य प्राप्त होगा। प्रभु! तू वहाँ जा, नजर कर, तुझे प्राप्त होगा। आहा..हा..! तेरी नजर में राग और द्वेष, पुण्य और पाप तथा शरीर आदि पर ऊपर तेरी नजर है, वह प्रभु! नजर बदल। आहा..हा..! उस ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। पर्याय का, हों! उस स्व-परप्रकाशक में स्व को प्रकाशित नहीं करता और अकेले पर को प्रकाशित करता है कि राग है और पुण्य है और शरीर है और स्त्री है और सब छह द्रव्य हैं, वह तो परप्रकाशक हुआ। वह ज्ञान की पर्याय मिथ्या हुई। आहा..हा..! वह ज्ञान की पर्याय जिसकी-ध्रुव की है, उसे नजर में करे, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। अब ऐसी बातें हैं। तब तो चौथा गुणस्थान अभी, हों! पाँचवाँ जो यह श्रावक-वाबक कहलाते हैं... अभी के वे तो सब समझने जैसे हैं। आहा..हा..! बापू! मार्ग अलग है, भाई! आहा..हा..!

नित्यानन्द का नाथ प्रभु, अविनाशी वस्तु अन्दर पड़ी है न! आहा..हा..! ध्रुव है न ? नित्य है न ? अखण्ड है न ? एकरूप है न ? सामान्य है न ? यह सब उसके विशेषण हैं, प्रभु! आहा..हा..! सूक्ष्म बात, भाई! यह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की पद्धति कौन सी, यह बात है। ऐसे मान बैठे कि हम देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन। यह सब मिथ्या बात है। ऐसा तो अनन्त बार किया, वह कोई वस्तु नहीं।

चैतन्यस्वभावी भगवान आत्मा जागती ज्योति-जागृतस्वभाव से भरपूर भगवान है। वह ज्ञान के स्वभाव से भरपूर समुद्र / सागर है। वह है न, है न, उसे नजर में ले, तुझे अवश्य प्राप्त होगा। उस पर्याय को, ध्रुव है, उसके सन्मुख कर। पर्याय है, वह अनादि से ध्रुव से विमुख है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय है, अनादि से स्वस्वरूप से विमुख है। वह इस राग को किया और दया पालन की और भक्ति की, इसके परिणाम को वह जाने। आहा..हा..! इसमें कितना भरा है! परन्तु वह ज्ञान की पर्याय, ध्रुवस्वरूप है, विद्यमान है, नित्यानन्द है, उसे यदि नजर करे तो पर्याय में ध्रुवपने की प्राप्ति (होवे)। ध्रुव, पर्याय में आवे नहीं, परन्तु पर्याय में ध्रुव का जितना सामर्थ्य है, उतना उसके ज्ञान में-प्रतीति में आ जाये। यह तो किस प्रकार का धर्म! भाई! जैनधर्म तो यह दया पालना और व्रत करना, अपवास करना और कन्दमूल न खाना... ऐई! झांझरी! अरे! भगवान बापू! वह तो...

मुमुक्षु : भगवान के दर्शन करना, पूजा करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूजा करना, मन्दिर में दर्शन करना, भाई! यह सब बातें शुभभाव की हैं, प्रभु!

मुमुक्षु : रथयात्रा निकालना...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रथयात्रा-पथयात्रा सब रथयात्रा... आहा..हा..! इन लोगों में तो मन्दिरमार्गी में यह कि सिद्धचक्र की पूजा करो, यह करो और दहन करो। इन सब क्रियाओं में राग है, बापू! आहा..हा..! यह राग है, वह धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : .....परसन्मुखता का भाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो परसन्मुख भाव है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा! यह इतने का अर्थ होता है अभी तो यह, हों! भाषा सादी है न!

जागता जीव ध्रुव है। विद्यमान है अर्थात् ध्रुव। नित्य जागति ज्योति प्रभु आत्मा नित्य वस्तु है। वह कहाँ जायेगा? ध्रुव है, वह नित्य है, वह कहाँ जायेगा। आहा..हा..! जैसे नित्य वज्र का बिम्ब हो... आहा..हा..! वैसे ज्ञान का जागृतस्वरूप का बिम्ब प्रभु है। अरे! परन्तु अभी कभी विचार भी नहीं किया होगा। आहा..हा..!

अवश्य प्राप्त होगा ही। है ध्रुवरूप से, उस ध्रुव की-प्राप्त की प्राप्ति होगी ही। है, उसे दृष्टि में लेने पर... आहा..हा..! उसकी ज्ञान की पर्याय में है, उसे पर्याय में जानने पर

अवश्य प्राप्त होगा। आहा..हा..! अरे! ऐसी बात है। ऐसा धर्म होगा? भाई! यह तो वस्तु है, बापू! क्या करे? आहा..! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान प्रभु विराजते हैं। भरतक्षेत्र में उनका विरह पड़ा और लोगों ने अपनी कल्पना से धर्म का स्वरूप दिया। भाई! तीन लोक के नाथ सीमन्धर प्रभु महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। वहाँ से आयी हुई यह वाणी है। आहा..हा..! यह उसका इतने का अर्थ हुआ। बीस मिनिट हुए, अब ३०७, बाद का ३०७।

तत्त्व का उपदेश असिधारा समान है; तदनुसार परिणमित होने पर मोह भाग जाता है॥३०७॥

तत्त्व का उपदेश असिधारा समान है;... क्या कहते हैं? चैतन्यतत्त्व जो ज्ञायकस्वरूप भगवान, उसका उपदेश तलवार की धार समान है। आहा..हा..! तत्त्व का उपदेश ज्ञायकस्वरूप भगवान, वह पुण्य-पाप के तत्त्व से भी भिन्न है। अजीव—यह शरीर, वाणी, कर्म, मिट्टी से भिन्न। आहा..हा..! ऐसा जो तत्त्व ज्ञायक प्रभु है, उसका उपदेश असिधारा समान है, जगत को सहन होना कठिन (पड़ता है)।

तदनुसार परिणमित होने पर... परन्तु तदनुसार (अर्थात्) जो ज्ञायकस्वरूप है, उसके अनुसार होने पर... आहा..हा..! कर्म के निमित्त के अनुसार होने से अनादि से संसार हुआ है। यहाँ भगवान ज्ञायकस्वरूप है, उसका उपदेश किया है। अब उसको अनुसरण करके... आहा..हा..! **परिणमित होने पर मोह भाग जाता है।** क्या कहते हैं? यह ज्ञायकस्वरूप भगवान नित्यानन्द प्रभु अविनाशी है। वह तत्त्व उत्पन्न हुआ नहीं या किसी ईश्वर से उत्पन्न हो, ऐसा है? तथा नाश को प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! पर्याय उत्पन्न हो और नाश हो। वस्तु है, वह उत्पन्न हो और नाश हो, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! ओहो..हो..!

तत्त्व का उपदेश असिधारा समान है;... तलवार की धार समान सूक्ष्म है, कहते हैं। **तदनुसार परिणमित होने पर...** उस ज्ञायक ध्रुव जागती ज्योति को अनुसरण कर होने पर, **मोह भाग जाता है।** आहा..हा..! भगवान चैतन्यस्वरूपी प्रभु को अनुसरण करके परिणमित होने पर, मोह अर्थात् राग की एकता और राग वहाँ खड़ा नहीं रहता, टूट जाता

है। आहा..हा..! ऐसा है। है? अर्थात् भूतार्थ ज्ञायकस्वरूप त्रिकाली को अनुसरण करके होने पर दशा में दिशा स्वसन्मुख झुककर, उसका अनुसरण होने पर... आहा..हा..! मोह जो पर को अनुसरण करके होता है, वह नहीं रहता। मिथ्यात्व का व्यय होता है। ज्ञायकभाव का अनुसरण करके सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! क्योंकि प्रभु ने उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् कहा है। प्रत्येक तत्त्व नयी अवस्था से उत्पन्न होता है, पूर्व अवस्था से नाश होता है, ध्रुवरूप से कायम रहता है। प्रत्येक परमाणु, आत्मा, प्रत्येक वस्तु।

कहते हैं कि यह भगवान ज्ञायकस्वरूप जो ध्रुव है, उसकी उत्पाद-व्यय की वर्तमान जो पर्याय है, उसे अनुसरण करके होने पर... आहा..हा..! उस ज्ञायकस्वभाव को अनुसरण करके सम्यग्दर्शन होने पर, मिथ्या मोह का नाश हो जाता है। आहा..हा..! उस मिथ्यात्व के नाश का यह उपाय है। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! आहा..! ३०७ बोल (पूरा) हुआ।

द्रव्य-गुण-पर्याय में सारे ब्रह्माण्ड का तत्त्व आ जाता है। 'प्रत्येक द्रव्य अपने गुणों में रहकर स्वतन्त्ररूप से अपनी पर्यायरूप परिणमित होता है', 'पर्याय, द्रव्य को पहुँचती है; द्रव्य, पर्याय को पहुँचता है'—ऐसी-ऐसी सूक्ष्मता को यथार्थरूप से लक्ष्य में लेने पर मोह कहाँ खड़ा रहेगा?॥३०८॥

३०८, **द्रव्य-गुण-पर्याय में सारे ब्रह्माण्ड का तत्त्व आ जाता है।** क्या कहते हैं? भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। छह वस्तु है, भगवान ने देखी है। उसमें द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसके गुण अर्थात् स्व-शक्ति और पर्याय अर्थात् अवस्था। आहा..हा..! उसकी भी खबर नहीं होती। द्रव्य, गुण और पर्याय क्या? यह जैन के एक के शून्य की बातें है यह तो अभी। द्रव्य अर्थात् वस्तु और गुण अर्थात् उसकी शक्ति-स्वभाव और पर्याय अर्थात् उसकी अवस्था। समझ में आया?

जैसे स्वर्ण की साँकल-चेन है, उस पूरी चीज़ को द्रव्य कहें और उसमें पीलापन, चिकनापन, वजन जो सोने में है, उसे गुण कहें और उसकी जो पर्याय है, कड़ी-कड़ी आदि होती है न? उसे पर्याय कहें। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य... भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव केवलज्ञानी प्रभु ने छह द्रव्य देखे हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त

परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय और एक आकाश - ऐसे छह (द्रव्य) भगवान ने देखे हैं। आहा..हा..! वे प्रत्येक द्रव्य, वस्तुरूप से द्रव्य है। यह अंगुली कहीं एक चीज़ नहीं है। यह अंगुली बहुत रजकणों का पिण्ड / स्कन्ध है। उसका एक रजकण है, वह परमाणु है।

'**प्रत्येक द्रव्य अपने गुणों में रहकर...**' प्रत्येक पदार्थ अपनी शक्ति के सत्व के स्वभाव में रहकर '**स्वतन्त्ररूप से अपनी पर्यायरूप परिणमित होता है**',... आहा..हा..! प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा; भगवान ने कहा है कि जो वस्तु है, वह द्रव्यरूप से है, वह द्रव्यरूप से वस्तु अपने गुणों में रहकर; आत्मा वस्तु है, वह ज्ञान, दर्शन, आनन्द (आदि) गुणों में रहकर, आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। कभी सुनी न हो, नये लोगों को ऐसा लगता है, बापू! मार्ग तो ऐसा सूक्ष्म है, भाई! अभी तो कुचल डाला है। वीतराग त्रिलोक के नाथ ने जो वस्तु कही, (वह) लोगों को सुनने को मिलती नहीं तो अन्दर में पहुँच कैसे सकते हैं? आहा..हा..! क्या कहते हैं?

प्रत्येक पदार्थ, द्रव्य अर्थात् वस्तु। **अपने गुणों में रहकर...** जैसे परमाणु है, उसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श के गुणों में रहकर; आत्मा है, वह ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुणों में रहकर। आहा..हा..! **स्वतन्त्ररूप से...** पर की अपेक्षा रखे बिना **स्वतन्त्ररूप से अपनी पर्यायरूप परिणमित होता है...** स्वयं, पोतानी अर्थात् स्वयं। स्वयं **पर्यायरूप परिणमित होता है...** आहा..हा..! भगवान आत्मा द्रव्य-वस्तु है, उसमें ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुणों में रहकर, वर्तमान की अवस्था, पर्याय, हालत स्वतन्त्ररूप से... आहा..हा..! अपनी पर्याय से (परिणमता है), पर की पर्याय से परिणमता नहीं। आहा..हा..! अपने गुणों में रहकर, अपनी पर्याय से (परिणमता है)। आहा..हा..! ऐसा है। पोतानी अर्थात् हिन्दी में स्वयं। स्वयं गुण में रहकर, भगवान आत्मा अपने ज्ञान-दर्शनगुण में रहकर अपनी वर्तमान दशा की पर्याय को, अपनी पर्याय को प्राप्त करता है। आहा..हा..! कहो, अजितभाई! अब समझ में आता है या नहीं यह? तुम्हारे यहाँ तो कक्षा ही चलती है। नैरोबी में, वहाँ तो हमेशा वाँचन चलता है। नैरोबी अफ्रीका। यहाँ का वाँचन वहाँ हमेशा चलता है। पच्चीस-तीस वर्ष से महाजन लोग (वाँचते हैं)। बहुत चलता है और अभी ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारह को पन्द्रह लाख का मन्दिर करने को, पन्द्रह लाख का मन्दिर करने को वास्तु किया है। क्या कहलाता है वह? खातमुहूर्त। अफ्रीका, वहाँ साठ घर हैं। श्वेताम्बर थे परन्तु सब

दिगम्बर हो गये हैं और सब बड़ी पार्टियाँ हैं। यह बड़ी पार्टी है वहाँ... भाई! साठ-सत्तर लाख रुपये हैं इसके पास हैं। ऐसे तो वहाँ बहुत हैं। यह अभी पन्द्रह लाख का, ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारह अफ्रीका में-नैरोबी में, क्या कहलाता है? खातमुहूर्त किया है। मन्दिर होने में लगभग डेढ़ वर्ष लगेगा। आहा..हा..! वहाँ तो यह वाँचन चलता है। प्लेन में भगवान की प्रतिमा ले गये हैं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : प्लेन में पहले प्रतिमा ले गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ले गये हैं। वहाँ चलता है न, यहाँ के शास्त्र का वाँचन चलता है।

यहाँ कहते हैं, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक तत्त्व अपने गुणोंरूपी स्वभाव में रहकर, अपने शक्तिरूपी गुणों में रहकर वह द्रव्य स्वतन्त्ररूप से अपनी पर्याय को प्राप्त करता है। आहा..हा..! उस पर्याय को प्राप्त करने के लिये निमित्त और पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा कहते हैं। स्वतन्त्ररूप से अपनी अवस्था को प्राप्त करता है।

यह देखो परमाणु यह, यह परमाणु है, मिट्टी है न यह? यह कोई एक चीज़ नहीं है, टुकड़े करते-करते अन्तिम पॉईन्ट रहे तो उसे परमाणु कहते हैं। एक-एक परमाणु, ऐसे अनन्त परमाणु हैं। देखो! यह वर्तमान यह पूर्ण पर्यायरूप से उत्पन्न है। ऐसे-ऐसे चलता है तो पूर्व की पर्याय का व्यय होता है और यह पर्याय उत्पन्न होती है और द्रव्य परमाणु ध्रुव है। वह द्रव्य परमाणु, उसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श में कायम गुण में रहकर, अपने गुण में रहकर इस पर्याय का पलटना स्वतन्त्ररूप से करता है। आत्मा उसे हिलावे, इसलिए हिलता है, ऐसा नहीं है। यह क्या कहा?

अपने गुण में रहकर वह परमाणु जो है, वह मिट्टी का, इसका रजकण जो है एक-एक; यह तो स्कन्ध है बड़ा मिट्टी पिण्ड है, इसका एक-एक रजकण पॉईन्ट अर्थात् अन्तिम टुकड़ा, उस एक पॉईन्ट में अनन्त गुण हैं। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श में। उस अनन्त गुण में वह रजकण परमाणु रहकर वर्तमान अवस्था का ऐसे गति होना या इस पर्यायरूप, खूनरूप परिणमना, वह स्वतन्त्ररूप से परिणमता है। आहा..हा..! समझ में आया? यह तो सिद्धान्तों की बातें हैं, बापू! तत्त्व की वास्तविक वस्तु अभी तो सब गुम हो गयी है। आहा..हा..! और जिन्दगी चली जाती है।

मुमुक्षु : अभी सजीवन हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बिजली की चमकवत् आयुष्य चला जा रहा है, भाई! समय–समय की स्थिति चली जा रही है। यह चमक कब पूरी हो जायेगी? उससे पहले यदि आत्मा का नहीं किया तो भटक मरेगा चार गति में। आहा..हा..! ये संयोग, मनुष्यपने की अवस्था मिली, वह संयोग ही चला जाता है। आहा..हा..! बिजली की चमक जैसी अवस्था मिली है, यह चमक बन्द हो जायेगी, बापू! आहा..हा..! देह की स्थिति पूरी हो जायेगी। यह तो मिट्टी, जड़ है। तू पृथक् पड़ जाएगा; तेरा क्या होगा, वहाँ तुझे खबर नहीं। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, **प्रत्येक द्रव्य...** अर्थात् वस्तु अपने गुणों में रहकर, अपनी शक्तिरूप से **गुणों में रहकर स्वतन्त्ररूप से...** पर की अपेक्षा रखे बिना **अपनी पर्यायरूप...** अपनी दशारूप परिणमे अर्थात् होता है। आहा..हा..! **पर्याय, द्रव्य को...** जरा सूक्ष्म बात है अब। आत्मा की पर्याय, ज्ञान की पर्याय आदि वह **पर्याय, द्रव्य को पहुँचती है,...** द्रव्य के आश्रय से है। वर्तमान पर्याय, द्रव्य अर्थात् वस्तु को पहुँचती है। ऐसा जहाँ अन्दर विचार मन्थन चले... आहा..हा..! आत्मा की ज्ञानपर्याय वर्तमान, उस द्रव्य को प्राप्त होती है और द्रव्य स्वयं वस्तु, पर्याय को प्राप्त होता है। आहा..हा..! ऐसा जहाँ अन्दर मन्थन चले, वहाँ मोह कहाँ खड़ा रहेगा? आहा..! क्या कहा? किस प्रकार से? कि पर्याय अर्थात् ज्ञान की दशा, वह द्रव्य को पहुँचती है, द्रव्य के लक्ष्य से हुई है और द्रव्य, पर्याय को पहुँचता है। यह आत्मा स्वयं ज्ञान की पर्याय को पहुँचता है, प्राप्त उसके कारण होता है। आहा..हा..! यह शरीर, वाणी, मन छोड़ दो एक ओर, वह तो पर जड़ है। यहाँ तो पर्याय, द्रव्य की निर्मलरूप से परिणमती है। आहा..हा..! वह '**पर्याय, द्रव्य को पहुँचती है; द्रव्य, पर्याय को पहुँचता है**'... ऐसा जहाँ अन्दर मन्थन चले, आहा..हा..!

जानने की जो दशा है न? वह अवस्था, वह पर्याय है। यह अवस्था, वह पर्याय, द्रव्य को पहुँचती है अर्थात् द्रव्य के लक्ष्य से होती है अथवा द्रव्य में से होती है। आहा..हा..! और वह द्रव्य है, वह पर्याय को पहुँचता है। सूक्ष्म है, प्रभु! आहा..हा..! यह जहाँ अन्दर में मन्थन चले कि यह पर्याय जो ज्ञान का अंश वर्तमान प्रगट है, वह द्रव्य को पहुँचता है। द्रव्य में से आयी है और द्रव्य स्वयं पर्याय को पहुँचता है। आहा..हा..! जो ज्ञान की पर्याय वर्तमान है... जानती है न? यह शरीर है, यह राग है आदि जानती है न? वह

जानने की पर्याय द्रव्य की है, अर्थात् द्रव्य को पहुँचती है, द्रव्य के आश्रय से हुई है। आहा..हा.. ! और वह द्रव्य वर्तमान पर्याय को प्राप्त करता है। ऐसा जहाँ अन्दर में मन्थन चले वहाँ मोह कैसे रहे ? अरे रे ! क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : ऐसा मन्थन तो परसन्मुखता छूटे, तब होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह सन्मुखता की ही बात है, स्वसन्मुखता की यह बात है। वहाँ द्रव्य लिया न कि यह द्रव्य, पर्याय है, यह पर्याय उसे पहुँचती है, वहाँ पर की बात तो रही नहीं। जो यह पर्याय है, वह द्रव्य को पहुँचे, वह तो यहाँ अन्दर रह गया और यह द्रव्य है तथा यह पर्याय है, यह तो अन्दर ही अन्दर बात हुई। पर के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहा..हा.. !

यह चैन, चैन होती है न ? उसकी जो पर्याय होती है न ? कड़ी आदि। वह पर्याय है, वह वास्तव में उस द्रव्य की है, उसके द्रव्य की है, किसी की नहीं और यह चैन द्रव्य है, वह पर्याय में प्राप्त होता है। वह कहीं दूसरी पर्याय से, दूसरे से पर्याय प्राप्त होती है, ऐसा नहीं है। वह द्रव्य स्वयं पर्याय को प्राप्त करता है, ऐसी बातें हैं, बापू ! समझ में आये उतना समझना, प्रभु ! यह तो वीतराग का गहन मार्ग है।

मुमुक्षु : सब समझना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब समझने से ही छुटकारा है, बापू ! इसके बिना तेरे जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। अनन्त काल से अवतार कर-करके मर गया है, भाई ! अनन्त अवतार किये। चींटी के, कौवे के, कुत्ते के, नरक के, स्वर्ग के, मनुष्य के, निगोद के जीव, प्रभु कहते हैं, लहसुन और प्याज के एक टुकड़े में असंख्य तो शरीर; अनन्त जीव एक-एक शरीर में, एक श्वास में अठारह भव करते हैं। आहा..हा.. ! ऐसे-ऐसे अनन्त बार अठारह (अठारह) भव किये, भाई ! तुझे खबर नहीं, आहा..हा.. ! खबर नहीं, इसलिए नहीं थे, ऐसा कैसे कहा जाये ? भाई ! आहा..हा.. !

ऐसे अनन्त भव को मिटाने के लिये जिसमें भव और भव का भाव नहीं है, ऐसे द्रव्य का लक्ष्य करके द्रव्य परिणमे और उस पर्याय को द्रव्य प्राप्त हो। आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह ज्ञान की पर्याय है, वह ज्ञानगुण और द्रव्य से हुई है और वह पर्याय उसे पहुँचती है अर्थात् उसके लक्ष्य में जाती है और वह द्रव्य है, वह पर्याय को पहुँचता है। इस

प्रकार पर्याय, द्रव्य को पहुँचती है; द्रव्य, पर्याय को पहुँचता है, ऐसी पर से पृथक् से इस प्रकार जब धारा चले। आहा..हा..! ऐसा है, भगवान!

ऐसी-ऐसी सूक्ष्मता को यथार्थरूप से... आहा..! ऐसी-ऐसी सूक्ष्मता को। अपने में द्रव्य की पर्याय जो है, वह द्रव्य को पहुँचे, वहाँ उसका लक्ष्य जाये और वह द्रव्य, पर्याय को पहुँचे, ऐसा जहाँ लक्ष्य जाये। आहा..हा..! **यथार्थरूप से लक्ष्य में लेने पर मोह कहाँ खड़ा रहेगा?** आहा..हा..! सूक्ष्म बात तो है परन्तु... मोह अर्थात् मिथ्यात्वभाव। राग मेरा है और शरीर मेरा है और राग से धर्म होता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। इसकी वर्तमान पर्याय को अन्दर में द्रव्य को पहुँचे और द्रव्य, पर्याय को पहुँचे, ऐसी सूक्ष्मता के भाव में... आहा..हा..! **सूक्ष्मता को यथार्थरूप से लक्ष्य में लेने पर...** वहाँ मिथ्यात्व कैसे रहेगा?

मुमुक्षु : यथार्थपने का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यथार्थरूप से। पर्याय है, वह द्रव्य को पहुँचती है; द्रव्य, पर्याय को पहुँचता है यथार्थरूप से। ऐसे के ऐसे धारणा में ले ले, ऐसा नहीं। आहा..हा..! ज्ञान की पर्याय, द्रव्य-गुणस्वरूप भगवान आत्मा को पहुँचती है अर्थात् उसके लक्ष्य में जाती है, उसके लक्ष्य से होती है और द्रव्य है, वह ज्ञान की पर्याय को पहुँचता है। वह तो उसी का उसी में रहा। यह विचारधारा द्रव्य और पर्याय के अभेद में रही। आहा..हा..! सूक्ष्म उपयोग करने पर... यह पर्याय है, वह लक्ष्य में कब आती है? सूक्ष्म उपयोग करने पर। आहा..हा..! यह पर्याय है, वह द्रव्य को पहुँचती है। पर्याय लक्ष्य में ली, वहाँ सूक्ष्म उपयोग हुआ। समझ में आया?

ऐसा मार्ग! त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का मार्ग तो अभी अजब-गजब का है। परन्तु लोगों को सुनने को मिलता नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है, बापू! आहा..! मनुष्य का भव (बिजली की) चमक जैसा मिला, वह चला जाता है, भाई! वह पूरा हो जायेगा, प्रभु! आहा..हा..! यदि इसमें इस आत्मा का कुछ नहीं किया, वह किस समय में कब करेगा? प्रभु! आहा..!

यहाँ तो ऐसा कहा कि परद्रव्य और परगुण के विचार छोड़कर और स्वद्रव्य की पर्याय जो अवस्था है, वह इस द्रव्य की है अर्थात् द्रव्य को पहुँचती है, इसका अर्थ यह और वह पर्याय है, उसे वह द्रव्य-वस्तु है, वह उसे पहुँचता है, प्राप्त करता है। आहा..हा..!

ऐसी जहाँ सूक्ष्म धारा बहे... आहा..हा.. ! वहाँ मोह-मिथ्यात्व कैसे रह सकेगा ? आहा..हा.. ! सूक्ष्म बातें हैं, प्रभु ! आहा..हा.. !

यह शरीर, वाणी, मन तो यह सब पर, जड़ है, मिट्टी है। इसके साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह तो परचीज़ है। इसकी पर्याय भी वास्तव में तो इस शरीर की पर्याय है, वह पर्याय इसके परमाणुओं से हुई है और वह द्रव्य इस पर्याय को पहुँचता है। आत्मा ने राग किया, इसलिए यह हिला, बिल्कुल हराम है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं। धीर के काम हैं, बापू ! आहा.. !

अन्तर भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकस्वभाव का पिण्ड प्रभु है। उसकी वर्तमान ज्ञानदशा, वह उससे हुई है अर्थात् उसे पहुँचती है। इतनी सूक्ष्म उपयोग, भाई ! और वह द्रव्य ज्ञायक, उस पर्याय को प्राप्त करता है, उसे पहुँचता है। आहा..हा.. ! ऐसा अन्दर में जहाँ पर्याय और द्रव्य तथा द्रव्य और पर्याय, इतना विचार में (रुके), आहा..हा.. ! विकल्परहित विचार यह तो है, हों ! आहा..हा.. ! सूक्ष्म बातें, प्रभु का मार्ग बहुत (सूक्ष्म है)। आहा..हा.. !

ऐसी-ऐसी सूक्ष्मता को यथार्थरूप से लक्ष्य में... यथार्थरूप से ख्याल में लेने पर। ऐसी की ऐसी धारणा कर ली है, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। धारणा में तो यह पर्याय इसे पहुँचती है और द्रव्य इसे पहुँचता है, ऐसी धारणा तो अनन्त बार की है परन्तु उस पर्याय को प्राप्त हुआ नहीं। आहा..हा.. ! धारणा का ज्ञान इसे ख्याल में तो आया है कि यह द्रव्य इस पर्याय को पहुँचे; पर्याय, वह द्रव्य को पहुँचे। यह तो धारणा के ज्ञान में आया है। उसके अनुभव में आया नहीं। आहा..हा.. ! यह क्या कहा ?

शास्त्र पढ़ा, उसमें यह आया नहीं ? यह बात (नहीं आयी) ? कि पर्याय, द्रव्य से होती है और द्रव्य, पर्याय को पहुँचता है। यह शास्त्र में पठन किया, तब इसने याद नहीं किया ? यह नहीं, परन्तु अन्दर में वह पर्याय, द्रव्य को पहुँचे और द्रव्य, पर्याय को पहुँचे, ऐसा अन्दर में यथार्थरूप से ख्याल में लेना। आहा..हा.. ! इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। ऐसी बातें हैं।

अर्थात् क्या कहा ? कि वर्तमान पर्याय जो रागरहित है, वह पर्याय... राग है, वह तो पर के निमित्त के लक्ष्य से होता है, परन्तु यहाँ तो स्व के लक्ष्य से हुई पर्याय, वह ज्ञान

पर्याय... आहा..हा..! वह द्रव्य के लक्ष्य से (हुई) है, उसे द्रव्य का आश्रय है और द्रव्य जो वस्तु है, वह उसकी पर्याय स्वयं की जो ज्ञान है, श्रद्धा है, उसे प्राप्त होता है। इतना जहाँ सूक्ष्म उपयोग काम करे, वहाँ मोह टिक नहीं सकता। आहा..! यह किस प्रकार की... ऐसा लगता है। नये लोगों को ऐसा लगता है। यह वीतराग का मार्ग ऐसा होगा? उनके मार्ग में छह काय की दया पालना, यह पूजा करना, मन्दिर बनाना, भक्ति करना, व्रत करना, ऐसा तो हमने सुना है; यह और कहाँ से नया निकाला? नया नहीं, प्रभु! आहा..हा..! यह अन्तर के मार्ग की रीति, भाई! भिन्न प्रकार की है। आहा..! बहुत सादी भाषा में... ३०८ (बोल पूरा हुआ)।

बकरियों की टोली में रहनेवाला पराक्रमी सिंह का बच्चा अपने को बकरी का बच्चा मान ले, परन्तु सिंह को देखने पर और उसकी गर्जना सुनने पर 'मैं तो इस जैसा सिंह हूँ' ऐसा समझ जाता है और सिंहरूप से पराक्रम प्रगट करता हैय उसी प्रकार पर और विभाव के बीच रहनेवाले इस जीव ने अपने को पर एवं विभावरूप मान लिया है, परन्तु जीव का मूलस्वरूप बतलानेवाली गुरु की वाणी सुनने पर वह जाग उठता है—'मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा समझ जाता है और ज्ञायकरूप परिणमित हो जाता है॥३०९॥

३०९ **बकरियों की टोली में रहनेवाला पराक्रमी सिंह का बच्चा...** है? बकरियों के, भेड़ के टोले में पराक्रमी सिंह का बच्चा साथ आ गया। **अपने को बकरी का बच्चा मान ले, परन्तु सिंह को देखने पर...** वह बच्चा जहाँ सिंह को देखता है **'और उसकी गर्जना सुनने पर...'** सिंह गर्जना करे, वहाँ सुनने पर उसे (ऐसा होता है)... ओहो..! है? **'मैं तो इस जैसा सिंह हूँ'...** आहा..हा..! **'बकरियों की टोली में रहनेवाला पराक्रमी सिंह का बच्चा,...' 'पराक्रमी सिंह का बच्चा अपने को बकरी का बच्चा मान ले, परन्तु सिंह को देखने पर...'** सिंह का शरीर, सिंह की गर्जना। ओहो..! यह है, वैसा मैं सिंह हूँ। यह गर्जना करता है, वह मैं सुन सकता हूँ, बकरियाँ नहीं सुनतीं। सिंह की गर्जना सुनने पर बकरियाँ चिल्लाहट मचाकर भाग जाती हैं। आहा..हा..! **'सिंहरूप से पराक्रम प्रगट करता है,...' 'मैं तो इस जैसा सिंह हूँ' ऐसा समझ जाता है और सिंहरूप से पराक्रम प्रगट करता है,...'** सिंह हूँ। अब बकरियों के टोले में नहीं रह सकता। मैं तो जंगल का,

वन का सिंह हूँ, वन का राजा। आहा..हा.. ! मुझे मेरी खबर नहीं थी। यह सिंह आया तो खबर पड़ी की ओहो.. ! यह तो इसकी जाति और मेरा शरीर एक जाति है, गर्जना करता है परन्तु मुझे दु:ख नहीं लगता, मैं डरता नहीं। आहा..हा.. ! **ऐसा समझ जाता है और सिंहरूप से पराक्रम प्रगट करता है, उसी प्रकार...** यह दृष्टान्त हुआ।

पर और विभाव के बीच रहनेवाले... पर अर्थात् शरीर, वाणी, कर्म और विभाव अर्थात् पुण्य-पाप के भाव। ये सब बकरी के टोले में हैं। आहा..हा.. ! पर और विभाव दोनों। पर अर्थात् शरीर, कर्म, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब ये सब पर और विभाव—पुण्य-पाप के भाव, यह विभाव, विकार। इसके मध्य रहे हुए उस जीव को। **इस जीव ने अपने को पर एवं विभावरूप मान लिया है,...** अपने को पर और विभाव; शरीर मैं हूँ, स्त्री मैं हूँ, मेरा परिवार है, मेरा पुत्र है, मेरी स्त्री है, यह शरीर मेरा है, राग मेरा है। अन्दर राग होता है न ? पुण्य-पाप का भाव, उस राग के **बीच रहनेवाले इस जीव ने अपने को पर एवं विभावरूप मान लिया है,...** आहा..हा.. ! वह बकरियों के झुण्ड में खड़ा है। आहा..हा.. ! सबके साथ राग करता है। यह राग करता है, देखो न ! यह धन्धा करे, अमुक करता है, मैं भी करता हूँ। आहा..हा.. !

पर एवं विभावरूप मान लिया है, परन्तु जीव का मूलस्वरूप बतलानेवाली गुरु की वाणी सुनने पर... भगवान और गुरु की वाणी सुने कि तू तो तीन लोक का नाथ भगवत्स्वरूप है, प्रभु ! आहा..हा.. ! इस विभाव में रहा हुआ, तथापि तू तो आनन्द का नाथ है, यह विभाव तेरा स्वरूप नहीं है। आहा..हा.. ! पुण्य-पाप, दया, दान, व्रतादि परिणाम वह तेरा स्वरूप नहीं है। आहा..हा.. ! भारी कठिन। **पर एवं विभावरूप मान लिया है, परन्तु जीव का मूलस्वरूप बतलानेवाली... मूलस्वरूप बतलानेवाली गुरु की वाणी..** इसका अर्थ यह है कि गुरु और वीतराग परमात्मा और उनका सिद्धान्त, इसके मूलस्वरूप को बताती है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? आहा..हा.. !

मुमुक्षु : मूल सिद्धान्त अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल शास्त्र जो है परमागम, वीतराग की वाणी निकली, वह भी ऐसा कहता है कि तेरा त्रिकाली ध्रुवतत्त्व भिन्न है। गुरु भी ऐसा कहते हैं, देव-सर्वज्ञ की वाणी में यह आया है। आहा.. ! भिन्न है, प्रभु ! इस विभाव और पर से तू भिन्न है। विभाव और पर तूने अपने माने हैं, वह वस्तु तेरी नहीं है। आहा..हा.. ! **जीव का मूलस्वरूप**

बतलानेवाली गुरु की वाणी... अर्थात् गुरु आये उनकी वाणी अर्थात् आगम आये। वह वीतराग की वाणी गुरु कहते हैं। यह अपने पहले आ गया है, समयसार में (आ गया है)। **वह जाग उठता है...** उसे सुनता है। उसे वाणी में कहा, परमात्मा ने त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी को सन्तों ने, धर्मात्मा मुनियों ने वाणी में कहा, प्रभु! तू पूर्ण स्वरूप है, तेरा (स्वरूप) भिन्न है। विभाव के साथ तूने एकत्व माना है, ऐसा नहीं। पर के साथ, पर मेरे ऐसा माना है - ऐसा नहीं। आहा..हा..! अन्दर चैतन्यज्योति का मूलस्वरूप राग और पर से अत्यन्त भिन्न है, ऐसी गर्जना वीतराग की, वाणी की सुनकर। सिंह गर्जना करता है न ऐसे! आहा..हा..!

'मैं तो ज्ञायक हूँ'... मैं जाननेवाला हूँ, जागती ज्योत हूँ। **ऐसा समझ जाता है और ज्ञायकरूप परिणमित हो जाता है।** ज्ञायक जाननेवाला वह मैं हूँ, ऐसा अनुभव करने पर ज्ञायकरूप से परिणमित हो जाता है, इसका नाम धर्म है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आत्मा को जानना ही मनुष्यभव का कर्तव्य है

आत्मस्वभाव महिमावन्त है, वह मोक्षसुख का प्रदाता है; वह स्वानुभव से ज्ञात होता है किन्तु वाणी के विस्तार से ज्ञात नहीं होता। ऐसे आत्मस्वभाव को जाननेवाले लाखों-करोड़ों जीवों में कोई विरले ही होते हैं। ऐसा आत्मा जयवन्त वर्तता है और आत्मा को जाननेवाले भी सदा होते हैं। यद्यपि आत्मा को जाननेवाले विरले ही होते हैं परन्तु उनका विरह कभी नहीं होता। पूर्व काल में आत्मा को जाननेवाले थे, वर्तमान में हैं और भविष्य में भी होंगे।

ऐसे आत्मा को जानने से मुक्ति प्रगट होती है और संसार में परिभ्रमणरूप जन्म-मरण का अभाव होता है। इसलिए आत्मा को जानना ही मनुष्यभव का कर्तव्य है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, सम्यग्दर्शन, भाग-2, पृष्ठ 27-30

असोज शुक्ल ९, मंगलवार, दिनाङ्क १०-१०-१९७८
वचनामृत-३१० से ३११ प्रवचन-११५

चैतन्यलोक अद्भुत है। उसमें ऋद्धि की न्यूनता नहीं है। रमणीयता से भरे हुए इस चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता। ज्ञान की ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समय में इस निज ऋद्धि को तथा अन्य सबको जान ले। वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है; श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है। अन्तर में रहकर सब जान लेता है, बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता ॥३१०॥

चैतन्यलोक अद्भुत है। क्या कहते हैं ? यह चैतन्यलोक अद्भुत है। जिसमें अनन्त आनन्द और रमणीय शान्ति आदि गुण भरे हैं। आहा.. ! आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुने चैतन्यलोक में ऐसी शक्तियाँ-गुण भरे हैं। आहा.. ! उसे देख न ! उसका अवलोकन कर न ! आहा..हा.. ! अनन्त लोक है, अनन्त लोक है। आकाश, आकाश लोक है। आकाश में भी अनन्त गुण हैं, वह आकाश लोक है। परमाणु भी जड़ लोक है। एक रजकण, यह तो अनन्त रजकण का पिण्ड दिखता है। प्रभु ! इसका एक पॉईनट है, वह भी अनन्त गुण का अजीव जड़ लोक है। 'लोकयन्ते इति लोक'—जिसमें अनन्त गुण जानने में आते हैं। इसलिए वह जड़ परमाणु भी (जड़ का लोक है)। यह गजब बातें, बापू ! यह सर्वज्ञ के सिवाय कहीं (हैं नहीं)। आहा..हा.. !

चौदह ब्रह्माण्ड लोक है। उसमें तो अनन्त द्रव्य हैं; इसलिए उसे लोक कहने में आया और खाली भाग को अलोक कहा। वहाँ 'लोकयन्ते...' दूसरे द्रव्य नहीं, एक आकाश का पूरा द्रव्य भी नहीं, एक भाग है। आहा..हा.. ! इसलिए उसे अलोक (कहा)। 'लोकयन्ते' - यह लोक वहाँ नहीं आया। आहा..हा.. ! क्योंकि उसमें - अलोक में एक

भी पूरा द्रव्य नहीं है। आहा..हा..! इस लोक में पूर्ण लोक, एक-एक द्रव्य पूर्ण अनन्त गुण से लोक भरा हुआ है। एक-एक परमाणु... भाई! क्या कहते हैं यह? आहा..हा..! ऐसे रजकण तो यह दल के दल भरे हैं न! एक परमाणु अजीव लोक है, क्योंकि उसमें आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुने गुण हैं; इसलिए वह अजीव जड़ लोक है।

आकाश भी, जिसके प्रदेशों से अनन्तगुने गुण उसमें है, इससे वह आकाश लोक है। आहा..हा..! भगवान चैतन्यलोक है। आहा..हा..! जिसमें आकाश के प्रदेश से भी अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. रमणीय आनन्द और शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता... आहा..हा..! ऐसे अनन्त गुणों से भरपूर प्रभु चैतन्यलोक है। आहा..हा..! **चैतन्यलोक अद्‌भुत है।** आहा..हा..! इसकी विशेष बात बाद में कहेंगे। दूसरे लोक की अपेक्षा इसमें विशेषता क्या है (यह कहेंगे)।

उसमें ऋद्धि की न्यूनता नहीं है। भगवान चैतन्यलोक की सम्पदा और ऋद्धि में कमी नहीं है। आहा..हा..! जिसके अनन्त.. अनन्त गुण, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रभुता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त ईश्वरता, अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त कार्यशक्ति, अनन्त कर्ताशक्ति—ऐसी अनन्त शक्तियों की उसमें न्यूनता नहीं है। आहा..हा..! जिन शक्तियों में यह अन्तिम शक्ति है – ऐसा नहीं है अन्दर में। आहा..हा..! असंख्य प्रदेश हैं, इसलिए चैतन्यलोक क्षेत्र से मर्यादित है, परन्तु उसकी स्वभाव की शक्ति से अद्‌भुत अचिन्त्य मर्यादारहित शक्तियाँ अन्दर है। आहा..हा..!

उसमें ऋद्धि की न्यूनता.. हीनता, कमी नहीं है। आहा..हा..! भगवान चैतन्यलोक अन्दर... आहा..हा..! जिसकी ऋद्धि की कमी नहीं, आहा..हा..! एक-एक गुण अनन्त-अनन्त सम्पदा और शक्ति से भरपूर है। आहा..हा..! एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त गुण का रूप है। आहा..हा..! ऐसे अनन्त गुणों की कमी नहीं है, कमी नहीं है, न्यूनता नहीं। वे तो अपार.. अपार.. अपार... अपार.. उन गुणों की संख्या को ऐसे गिनने पर अन्दर अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. और अनन्त का यह अन्तिम अन्त, अन्तिम अनन्त भी नहीं तो फिर अन्तिम अनन्त का अन्तिम भाग (तो कहाँ से होगा)? आहा..हा..! गजब बात, बापू! ऐसा चैतन्यलोक, आहा..हा..! उसमें ऋद्धि की न्यूनता नहीं। एक बात।

रमणीयता से भरे हुए इस चैतन्यलोक में से... आहा..हा..! जिसमें रमणीयता है।

अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रि शान्ति, अनन्त प्रभुता। आहा..हा..! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन की अन्तर रमणीयता है, उसे अन्तर में देखने से बाहर आना वहाँ रुचता नहीं, ऐसी यह चीज़ है। आहा..हा..! है? तीसरा बोल हुआ।

चैतन्यलोक अद्‌भुत है। उसमें ऋद्धि की न्यूनता नहीं है। आहा..हा..! उसकी सम्पदा, गुण की सम्पदा अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... सम्पदा। आहा..हा..! उसमें कहीं कमी नहीं, हीनता नहीं, न्यूनता नहीं। आहा..हा..! ऐसा भगवान आत्मा चैतन्यलोक। **रमणीयता से भरे हुए...** वह तो रमणीय गुण, रमणीय। ज्ञान-दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, ऐसी शक्तियों से, रमणीय शक्ति से भरपूर चैतन्य लोक है। आहा..हा..! जड़ लोक है परन्तु वहाँ रमणीयता का लोक नहीं है। परमाणु भी जड़ लोक है, वह भी अद्‌भुत है। उसकी जड़ की शक्ति की अपेक्षा से (अद्‌भुत है) और उसके गुण भी अन्यून हैं, न्यूनतारहित है। आहा..हा..! परन्तु उसके गुण में रमणीयता नहीं है। भगवान आत्मा... आहा..हा..! अद्‌भुत है, ऋद्धि की कमी नहीं, आहा..हा..! और रमणीयता से भरपूर भगवान चैतन्यलोक है। इन तीन शब्दों में तो बहुत कहा, भाई! आहा..हा..!

बाहर आना नहीं सुहाता। ऐसे भगवान आत्मा में जहाँ दृष्टि पड़ती है और उसकी रमणीयता जहाँ निहारता है, उसमें धर्मी को वहाँ से बाहर निकलना सुहाता नहीं। आहा..हा..! जैसे बड़ा बगीचा हो लाखों वृक्ष का और फल फले हुए (हों), उसकी सुगन्ध में अन्दर गया हो (तो उसे) निकलना रुचता नहीं है। आहा..! यह तो लाख और करोड़ और अरब इतने वृक्ष होते हैं। यहाँ तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण के वृक्ष भरे हैं। उस प्रत्येक गुण में अनन्त रमणता है। आहा..हा..! क्योंकि आनन्द की रमणता है तो ज्ञान में भी आनन्द का रूप है, वहाँ वह रमणता है। आहा..हा..! अस्तित्व नाम के गुण में भी आनन्द का रूप है। आहा..हा..! अरे! भगवान ऐसा! तूने सुना नहीं, प्रभु! आहा..हा..!

एक-एक गुण में अनन्त-अनन्त आनन्द की रूपता भरी है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अनन्त शान्त.. अनन्त शान्त.. वह एक-एक गुण, अनन्त गुण में शान्ति का रूप है। आहा..हा..! ऐसी रमणीयता से भरपूर इस चैतन्यलोक में से-प्रभु चैतन्यलोक में से। आहा..हा..! पर्याय जहाँ वहाँ जाती है, तब बाहर निकलना रुचता नहीं, ऐसी वह चीज़ है, कहते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात है। यह आत्मलोक, चैतन्यलोक सहजात्मस्वरूप लोक। आहा..हा..!

अब उसकी ताकत की बात करते हैं, एक-एक गुण की (ताकत)। आहा..हा..! **ज्ञान की ऐसी शक्ति है...** ज्ञान उसका स्वभाव है, शक्ति है, गुण है। पर्याय की बात तो क्या करना फिर, परन्तु यहाँ तो गुण की शक्ति इतनी है, एक गुण की **कि जीव एक ही समय में...** आहा..हा..! नियमसार में आता है न? उपयोग लक्षण त्रिकाल। वह त्रिकाल ज्ञान जो वस्तु है... आहा..हा..! उस ज्ञान में एक समय में... आहा..हा..! अनन्त जड़ लोक, अरे! एक आकाश अनन्त गुण का लोक; एक धर्मास्तिकाय अनन्त गुण का, एक धर्मास्तिकाय लोक; एक अधर्मास्तिकाय अनन्त गुण का लोक; ऐसे कालाणु, ऐसे असंख्य कालाणु, एक कालाणु... आहा..हा..! अनन्त गुण का लोक, ऐसे असंख्य कालाणु हैं; एक परमाणु में अनन्त गुण का लोक, ऐसे अनन्त परमाणु लोक; एक आत्मा में अनन्त गुण का लोक, ऐसे अनन्त आत्मा में अनन्त गुण का लोक। आहा..हा..! वह एक ही समय में... आहा..हा..! छोटे से छोटे काल में उसकी शक्ति (ऐसी है)। आहा..हा..!

इस निज ऋद्धि को... निज ऋद्धि को। अपनी न्यूनतारहित जो ऋद्धि है, उसे भी जानने की शक्ति है। आहा..हा..! **तथा अन्य सबको जान ले,..** ऐसी उसकी शक्ति है। आहा..! सब हैं, इसलिए जानता है, ऐसा भी नहीं है। उसकी शक्ति ही स्व-पर प्रकाश की इतनी है। आहा..हा..! ऐसा प्रभु चैतन्यलोक से भरपूर भगवान (विराजता है)। आहा..हा..! तुझे दूसरा माहात्म्य क्यों आता है? कहते हैं। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त शान्ति (भरी हुई है)। आहा..हा..! निरंजनस्वरूप, जिसमें अंजन अर्थात् मैल नहीं है और जिसमें निर्मलानन्द भगवान अनन्त लोक शक्ति भरी है, उसमें का एक गुण। आहा..हा..! जिसकी शक्ति... **जीव एक ही समय में...** उसका स्वरूप ही जहाँ ज्ञानस्वरूप ही शक्ति है, उसे लोकालोक की स्वऋद्धि और पर की अनन्त-अनन्त ऋद्धिवाला एक-एक द्रव्य, ऐसे अनन्त द्रव्य को अपनी ज्ञान के एक समय के अस्तित्व में अथवा शक्ति में, अस्तित्व में जानने की ताकत है। अनन्तरूप होने की ताकत नहीं, पर के अनन्तरूप होने की ताकत नहीं, परन्तु पर को स्व में रहकर और (पर को) स्पर्श किये बिना (जानने की शक्ति है)। आहा..हा..! अरे! ऐसा प्रभु! वह पामर होकर ढूँढ़ता है। आहा..हा..!

इस निज ऋद्धि को... अर्थात् स्व को **तथा अन्य सबको...** अनन्त-अनन्त पदार्थ। आहा..हा..! एक-एक रजकण... देखो! यहाँ इस स्कन्ध के स्कन्ध सब भरे हैं। उसका

एक-एक रजकण अनन्त गुण की ऋद्धि से जड़ लोक है। आहा..हा..! उस सब जड़ लोक को, धर्मास्तिक लोक, आकाश लोक, काल लोक, आहा..! अधर्मास्ति लोक, परमाणु लोक और दूसरे सब अनन्त आत्मा, एक-एक आत्मा अनन्त लोक। आहा..हा..! उन्हें काल के छोटे से छोटे भाव में, सबको जानने की शक्तिवाला तत्त्व है। अरे! ऐसी बात कहाँ जँचे! बापू! आहा..हा..!

सबको जान ले। वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है;... आहा..हा..! भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, अपने क्षेत्र में रहता हुआ, परक्षेत्र को स्पर्श किये बिना... आहा..हा..! पर के द्रव्य को और पर के भाव को स्पर्श किये बिना अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। आहा..हा..! ऐसा भगवान है, भाई! तुझे वह क्यों नहीं पोसाता? भाई! तुझे दूसरा क्यों पोसाता है? कहते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा आत्मा है, उसका पोसाण तुझे नहीं होता, उसकी रुचि का पोसाण नहीं होता और दूसरी (चीज़ों का) तुझे पोसाण (होता है), पुण्य-पाप के भाव जो अल्प... सबेरे कहा था न? यह मोह भ्रमकूप है वह तो, उस कुएँ की हदवाला है विकार। आहा..हा..! भगवान का स्वभाव है तो बेहद अनन्त है और इसमें (विकार में) सीमा है। बहिन के वचन आते हैं न? विभाव में सीमा है, मर्यादा है; इसलिए वहाँ से विमुख हो सकता है और भगवान अमर्यादित है। उसकी दृष्टि में गया, वह वहाँ से अब विमुख नहीं हो सकता। यहाँ तो यह बात है। आहा..हा..! ऐसा उपदेश अब, आहा..हा..!

सबको जानें, एक बात। **वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है;...** अपने भाव में, क्षेत्र में रहकर वह जानता है। अनन्त परमाणु लोक, अनन्त आत्मलोक, धर्मास्ति आदि सब लोक हैं। आहा..हा..! उन्हें अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। **श्रम पड़े बिना,...** जानता है, इतना सब जानते हुए इसे श्रम पड़े, ऐसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। यह तो इसका स्वभाव ही ऐसा है। आहा..हा..! अर्थात् कि विकल्प हो तो यह जानता है, ऐसा नहीं है। आहा..! इस निर्विकल्पदशा से ही यह जानता है, श्रम पड़े बिना, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अरे रे! ऐसा आत्मा कहाँ... ? कहो, गोविन्दरामजी! यह राम है, आत्माराम। आहा..हा..! इसे यह बाहर की इज्जत और कीर्ति चाहिए है, मार डाला इसे। आहा..हा..! दुनिया बड़ा कहे और माने। क्या है? बापू! तेरी महिमा का पार नहीं न, प्रभु! उस महिमा की ऋद्धि जिसे अन्दर में रुचि... आहा..हा..! उसे पर की ऋद्धि और पर की सम्पदा की उसे इच्छा नहीं होती। आहा..हा..! बात ऐसी है जरा।

निवास करता हुआ जानता है; श्रम पड़े बिना,... अर्थात्? अनन्त-अनन्त पदार्थों को भगवान आत्मा ज्ञान में जाने तो विकल्प हो तो जाने, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! अलौकिक बातें हैं, बापू! इसका एक-एक गुण अनन्त गुण की ऋद्धि न्यूनता नहीं। प्रभु आत्मा में अनन्त गुण की ऋद्धि की न्यूनता नहीं है। उसमें एक गुण इतना है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! भगवान आत्मा में एक ज्ञान नाम का गुण-शक्ति है। प्रभु आत्मा में उसकी पूर्णता भरी है। वह लोकालोक को जानने में पर को स्पर्श करके जाने या पर में जाकर जाने, ऐसा नहीं है तथा विकल्प हो तो जाने तो वह तो खेद है। यह तो खेद बिना जानता है। आहा..हा..! ऐसा भगवान आत्मा (स्वयं है)।

अरे! इसे कहाँ कौन आत्मा है, इसकी खबर नहीं होती। मैं कौन कितना कहाँ हूँ, (इसकी) खबर नहीं होती और इसे धर्म हो जाये, धूल में भी कहीं धर्म नहीं है। आहा..हा..! यह भक्ति करे और यात्रायें करे और दया पाले तथा व्रत-तप करे, (वह) सब राग की क्रिया है, वहाँ कहीं आत्मा नहीं है। आहा..हा..! इधरवाले गये लगते हैं। ईडरवाले। पटेल, थे पटेल। गये?

मुमुक्षु : सबेरे व्याख्यान उतारकर गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्होंने बहिन का वचनामृत माँगा था। मैंने कहा, दोपहर को रहोगे तो दूँगा। पटेल थे। 'भीलोडा' गाँव है न? गुजरात। वे आदिसागर क्षुल्लक थे, नहीं? वह पटेल है। श्रीमद् में जानेवाला। ईडर (जानेवाला), परन्तु जब यहाँ आया न? मुझे ख्याल था कि भक्ति है, वह राग है। वह उसने लिख लिया, ख्याल है। वहाँ तो ऐसा कहा जाता है न कि भक्ति करो.. भक्ति करो.. भक्ति करो... अरे! प्रभु! परन्तु किसकी भक्ति? तीन लोक के नाथ की भक्ति करे, वह भी विकल्प और राग है। वह कर्म—भावक का भाव है; वह चैतन्य का भाव नहीं है। तब उसने लिख लिया, क्योंकि वहाँ तो सब ऐसा चले न! भक्ति करो, गुरु की भक्ति करो। मेरा ख्याल था। उसने सबेरे माँगा था। कहा, होगा। अनजान व्यक्ति कभी आया नहीं था, पहले पहले आया था। ईडर जाता हूँ, कहा। यह बात वहाँ गयी है। बहिन के वचनामृत मुझे चाहिए है, ऐसा बोला था। एकदम अनजान व्यक्ति पहले पहले (आया हुआ)। कहा, रहोगे (तो दूँगा)। रिकॉर्डिंग ले गया ऐसा न? कितने पैसे हुए? वह घर की ले आया होगा। ठीक। आहा..हा..! अभी का अलौकिक है। ऐसी बात है, प्रभु!

तीन लोक का नाथ आनन्द से भरपूर प्रभु, तुझे वह आकर्षित नहीं लगता और इन सब चीज़ों में तुझे आकर्षण लगता है, यह तुझे क्या होता है ? आहा..हा.. ! ऐसे अनन्त लोक, अनन्त गुण से भरपूर चैतन्यलोक, वह तुझे आकर्षित नहीं लगता और ये जगत की चीज़ें कुछ ठीक देखे, वहाँ आकर्षित हो जाता है। प्रभु ! यह तुझे क्या होता है ? आहा..हा.. ! **अन्य सबको जान ले। वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है; श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है। अन्तर में रहकर....** भगवान आत्मा का ज्ञानस्वभाव प्रभु का, वह अन्दर रहकर सब जानता है; बाहर जाकर जानता है, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! ऐसी वस्तु। आहा..हा.. !

अन्तर में रहकर सब जान लेता है,... आहा..हा.. ! अरे ! श्रुतज्ञान की पर्याय में ऐसी ताकत है, गुण की ताकत तो है ही ! आहा..हा.. ! परन्तु समय की, ज्ञान की-श्रुतज्ञान की पर्याय की इतनी ताकत है कि स्वयं अपने में रहकर अनन्त-अनन्त परमाणु के जड़ लोक, अनन्त गुण से भरपूर जड़ लोक, अनन्त गुण से भरपूर दूसरे चैतन्यलोक, उन सबको अपने में रहकर जानता है, ऐसा इसका स्वरूप है। आहा..हा.. ! यह तो धीर का काम है, भाई ! यह कहीं धर्म ऐसा नहीं है कि यह कर डाला, यह बाहर से। दान किये और भक्ति की और यात्रा की, व्रत पाले और उपवास किया, इसलिए हो गया धर्म। वहाँ धूल भी नहीं है। आहा..हा.. ! प्रभु ! अनन्त लोक का स्वामी नाथ अन्दर (विराजता है)।

मुमुक्षु : लोग ऐसा कहते हैं कि व्रत....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे ! कहे भाई ! कहे। बेचारे क्या करें ? यह पुरुषार्थ विशेष है या वह पुरुषार्थ विशेष है ? व्रत का विकल्प है, वह पुरुषार्थ तो नपुंसक साधारण पुरुषार्थ है। आहा..हा.. ! भगवान आत्मा अनन्त गुण की राशि भरपूर, उसे अवलोकन करने जाये, वह पुरुषार्थ कितना है ! प्रभु ! आहा..हा.. ! भाई ! तुझे खबर नहीं है, तेरी चीज़ तूने सुनी नहीं है। आहा..हा.. ! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा यह कहते थे, वह यह बात है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

जान लेता है,... प्रभु ! एक वस्तु, एक आत्मा, तथापि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्तगुने कर डालो, उतने तो उसमें गुण हैं और उसमें एक-एक ज्ञान का गुण इतनी शक्तिवाला तो उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उपयोग, दर्शन, उसका वीर्य, उन सबमें ताकत इतनी अधिक है, ऐसा कहते हैं। आहा.. ! समझ में आया ?

आहा..हा..! ऐसा लगे यह तो क्या कहते हैं, कहते हैं? यह तो धर्म की (बात होगी)? बापू! तू कौन कितना प्रभु है, यह उसकी व्याख्या है। तूने एक समय की पर्याय जितना माना और राग करे, उसे राग का करनेवाला (माना)। जीव किसे कहें? त्रस। हिले-चले, उसे त्रस कहते हैं। जीव किसे कहते हैं? कि स्थिर रहे, उसे स्थावर कहते हैं। अरे! सुन न भाई! आहा..! त्रस कहा है न? श्लोक में नहीं आया? क्या कहा? अग्निकाय और वायुकाय गति करते हैं न, ऐसा आता है पंचास्तिकाय में। अग्नि और वायु। आहा..! वे गति करते हैं, इस अपेक्षा से कहा है।

भगवान आत्मा अन्दर में प्रभु आत्मा विराजता है, वह तो अनन्त-अनन्त ऐसे जीव के लोक को एक समय में जानने की शक्तिवाला एक गुण है तो ऐसी गुण की जो श्रद्धा है, ऐसे द्रव्य के गुण की श्रद्धा (हो), उस श्रद्धा में कितनी शक्ति आयी! ऐसे गुण की स्थिरता है, उसमें कितनी शक्ति आयी! ऐसे अनन्त गुण में से एक वीर्य गुण है, उसमें कितनी शक्ति आयी! भाई! अनन्त गुण में एक आनन्द है, वह कितनी शक्तिवाला आनन्द है! अनन्त गुण में एक अस्तित्व गुण है, वह अनन्त शक्ति का ऐसा जो ज्ञान या सबका-अस्तित्व का (ज्ञान करे), उसे अस्तित्व में कितनी शक्ति आयी! आहा..हा..! भाई! इसका तो स्पष्टीकरण होता है। आहा..हा..! देखो! ऐसे वचनामृत किसे नहीं रुचे! आहा..हा..! यह कहीं सम्प्रदाय की चीज़ नहीं, वस्तु की चीज़ है, वस्तु है अन्दर। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ने देखा है, वह यह बात है। आहा..हा..! ३१०, है न?

जान लेता है, बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता। अर्थात् क्या? कि ज्ञानस्वभाव जो भगवान आत्मा का है, वह अपने में रहकर स्व की ऋद्धि को और पर को जानता है, उस पर को जानने के लिये पर में जाना नहीं पड़ता। आहा..हा..! यह वेदान्त का एक प्रश्न था। (संवत्) १९८४ के वर्ष में राणपुर में। एक क्षत्रिय था खत्री, सुनने आता था। सुने न, आवे तो, महाराज! तुम कहते हो कि आत्मा परमाणु को जानता है, तो परमाणु में प्रवेश किये बिना कैसे जानता है? ऐसा प्रश्न उसने किया। १९८४ के वर्ष। नारायणभाई का घर नहीं? नारायणभाई के घर के साथ खत्री का घर था। सुनने तो आवे बेचारा, परन्तु यह बात कहाँ है कहीं? उसने ऐसा कहा कि परमाणु को जाने तो प्रवेश किये बिना कैसे जाने? इसलिए प्रवेश करे तो जाने तो सर्वव्यापक हो गया, ऐसा उसका (कहना था)। बापू! ऐसा नहीं है, भाई! कहा। यह तो १९८४ की बात है, संवत् १९८४। आहा..हा..!

भगवान अपने स्वभाव में रहकर और पर को स्पर्श किये बिना... अरे! पर की अस्तित्वता है, इसलिए पर को जानता है, ऐसा नहीं है। इसके (ज्ञान के) स्व-पर प्रकाशक के सामर्थ्य से पर को जानता है। उसका-परमाणु का अस्तित्व है, इसलिए यहाँ जानता है, ऐसा भी नहीं है। वह तो ज्ञान की शक्ति और पर्याय की शक्ति इतनी स्वत:सिद्ध है, पर के कारण सिद्ध नहीं। आहा..हा..! इसे (ज्ञान को) पर में प्रवेश किये बिना पर को जानने की स्व-परप्रकाशक अपने क्षेत्र में रहकर जानने की शक्ति है। आहा..! ऐसी बातें हैं। आहा..! यह धर्म तो किस प्रकार का होगा? यह तो वीतराग का मार्ग यह होगा? लोग तो कहते हैं कि दया पालना और व्रत करना, भक्ति करना वह जैनधर्म, बापू! वह जैनधर्म नहीं; वह तो राग का धर्म है। आहा..हा..!

जैनधर्म वीतरागस्वरूप अन्दर भरा है, चारित्रस्वभाव कहो या वीतरागस्वभाव कहो या अकषायस्वभाव कहो, वह भी अपरिमित शक्ति से भरा हुआ है। तब ज्ञान भी इतना जानने की शक्तिवाला, उसका रूप भी चारित्र में आता है और चारित्र का रूप ज्ञान में आता है। आहा..हा..! गजब बात है, भाई! अरे रे! सुनने को मिलता नहीं। कहो, निरंजन! समझ में आया या नहीं? यह छोटी उम्र का है परन्तु प्रेम है। बापू! यह तो समझने जैसी बात है, भाई! आहा..हा..! हो संसार, परन्तु वस्तु क्या है, इसका ज्ञान और श्रद्धा तो पहले करो। आहा..हा..! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : उसकी श्रद्धा करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह श्रद्धा करे (अर्थात्) ऐसा कि फिर स्थिरता न हो सके, यह कहना है। अन्दर स्थिरता न हो सके। एक शब्द में आगे कहीं आता है कि चारित्र से छूटता नहीं, श्रद्धा से तो छोड़ सब। है, कहीं है। बहुत बोल आते हैं। कहाँ आया? श्रद्धा से तो छोड़। यह आया ३४९। है? पृष्ठ है ११६, ११६ गुजराती। ११६ पृष्ठ गुजराती, ३४९ नीचे है, देखो! **तू स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़!** आहा..हा..! श्रद्धा में से तो, रागादि पर है, ऐसा छोड़। मेरा नहीं है। आहा..हा..! है भाई! आया? पाटनीजी! आया? अजितभाई! आया? यह ऐसा क्यों कहा? श्रद्धा अपेक्षा से कहा, उसका हेतु यह है कि अभी राग तो छोड़ न सके, वह स्थिरता न हो सके परन्तु श्रद्धा अपेक्षा से तो छोड़ कि रागादि परवस्तु मेरी नहीं है। आहा..हा..! मैं तो अनन्त आनन्द के ज्ञान का धनी हूँ। आहा..हा..! अनन्त गुण का, ऋद्धि का, सम्पदा का प्रभु हूँ, यह श्रद्धा

तो कर। आहा..हा..! वह समकिती तो विवाह भी करे, राग है वह, परन्तु श्रद्धा में अन्दर सब त्याग है। अस्थिरता का त्याग नहीं। आहा..हा..! चक्रवर्ती का छह खण्ड का राज करे। तीर्थंकर प्रभु छह खण्ड के राज में खड़े हैं, श्रद्धा में सब त्याग है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, प्रभु!

मुमुक्षु : प्रवचनसार में चारित्र अधिकार में यह बात आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न। त्याग श्रद्धा अपेक्षा से तो कर। लेख में, लेख में पहले आता है। स्पष्टीकरण किया है, माँगते हैं तब, भाई! ऐसा कि यह और अंगीकार करना और क्या आता है? भाई! श्रद्धा अपेक्षा से तो सब त्याग है। लेख में किया न भाई ने-पण्डित जयचन्दजी ने। है न, खबर है। समझ में आया? प्रवचनसार में लेख है, इस ओर के पृष्ठ पर है, खबर है।

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानस्वभाव प्रभु अनन्त गुण का लोक भरा हुआ, ऐसे चैतन्यलोक को अवलोक तो सही! और अवलोकन से श्रद्धा में तो ले कि मेरा स्वरूप तो यही है। ये रागादि मेरे नहीं हैं, ऐसे श्रद्धा से तो छोड़। फिर स्थिरता द्वारा अस्थिरता को छोड़। समझ में आया? आहा..हा..! तीर्थंकर जैसे भी ८३ लाख पूर्व तक ऋषभदेव भगवान गृहस्थाश्रम में रहे, लो! अस्थिरता को छोड़ नहीं सके। सम्यग्दर्शन में श्रद्धा से सब छूट गया है। समझ में आया? **तू स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके...** रागादि। **तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़! छोड़ने से तेरा कुछ नहीं जायेगा, उल्टा परम पदार्थ-आत्मा-प्राप्त होगा।** श्रद्धा से छोड़ तो आत्मा प्राप्त होगा। आहा..हा..! ऐसी बात है। यह ख्याल में था, कहीं निकला और यहाँ, चिह्न किया है यहाँ, चिह्न। आहा..हा..!

मुझे तो एक विचार ऐसा आया ४३२ है न? ४+३+२=९। पूरा वीतरागभाव है, अफरभाव है, ऐसा विकल्प आया था। कुदरत ही जहाँ सहज हो, उसमें करे कौन? आहा..हा..! ४३२ बोल है। ४+३+२=९। नौ की संख्या है। अजितभाई! बराबर अजितभाई मौके से आये। ऐसी बात है, बापू! आहा..हा..! अनन्त-अनन्त लक्ष्मी के भण्डार से भरपूर प्रभु, इसे (जड़)। लक्ष्मी का प्रेम क्यों? कहते हैं। आहा..हा..! धूल का प्रेम क्यों? क्योंकि लक्ष्मी को जानना, वह अपने स्वभाव के कारण जानने का इसका स्वभाव है। जानने का स्वभाव (सही) परन्तु मेरे रूप से मानना, ऐसा कोई इसका स्वभाव नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? शिवलालभाई! ऐसी बातें हैं। किसकी बातें हैं यह सब? बापू! तेरे घर

में ऐसा माल पड़ा है, हों! आहा..हा..! भाई! तुझे माल की खबर नहीं। आहा..हा..!

तेरा आत्मा चैतन्यलोक अद्भुत है। आहा..हा..! अचिन्त्य ऋद्धि से पूर्ण भरपूर, न्यूनतारहित.. आहा..हा..! और उसमें पूर्ण एक-एक गुण की (शक्ति) ज्ञान की शक्ति, अपने में रहकर, अपने सामर्थ्य से, अपनी पर्याय में स्व-पर का जानना करे, ऐसा उसका स्वरूप है। आहा..हा..! उसे स्व-पर जानने में पर की अपेक्षा नहीं है। आहा..हा..! ऐसा जिसका स्व-पर जानने के स्वभाव का निरपेक्ष स्वभाव-भाव है, प्रभु! आहा..हा..! ऐसा जिसे जँचे, उसे सुखबुद्धि उड़ जाये, विषय में-संसार में उसकी सुखबुद्धि उड़ जाये। भले आसक्ति रहे, आसक्ति का / अस्थिरता का त्याग न हो परन्तु सुखबुद्धि उड़ जाये।

मुमुक्षु : श्रद्धा में....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में यह सुख है, यह बात उड़ जाये। सुख तो भगवान आत्मा में है। आहा..हा..! समझ में आया? मोती भरे हैं, भाई ने अभी नहीं कहा? सन्तोषकुमार! गाया उसमें। बहिनश्री के वचनामृत में मोती भरे हैं। आहा..! लो! एक बोल हुआ। ३१०, लगभग ४२ मिनिट हुए। ऐसी चीज़ आ गयी। आहा..हा..!....

वस्तु तो अनादि-अनन्त है। जो पलटता नहीं है—बदलता नहीं है, उस पर दृष्टि करे, उसका ध्यान करे, वह अपनी विभूति का अनुभव करता है। बाह्य के अर्थात् विभाव के आनन्द-सुखाभास के साथ, बाहर की किसी वस्तु के साथ उसका मेल नहीं है। जो जानता है, उसे अनुभव में आता है। उसे किसी की उपमा लागू नहीं होती॥३११॥

अब, ३११। **वस्तु तो अनादि-अनन्त है।** भगवान आत्मा वस्तु है क्योंकि जिसमें अनन्त गुण बसें, रहे हैं। अपार.. अपार.. अपार.. अपार.. अपार.. अपार.. अपार.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. इन गुण में जो गुण बसे हैं, उसमें, इसलिए प्रभु आत्मा को वस्तु कहते हैं और यह वस्तु है, वह अनादि-अनन्त है। यह वस्तु है, इसकी आदि नहीं; है, उसका अन्त नहीं। है, उसे आदि क्या और अन्त क्या? आहा..हा..! वस्तु भगवान आत्मा, जिसमें अनन्त गुण बसे हुए-रहे हुए हैं, वह वस्तु अनादि-अनन्त है। यह पर्याय पलटती है, वह अलग वस्तु। अभी यह तो वस्तुरूप है, अनादि-अनन्त ध्रुव है। आहा..!

जो पलटता नहीं है... ध्रुव क्या पलटे ? वस्तु पलटकर कहाँ जाये ? आहा..हा.. ! कल आया था न ? निरंजन, भाई ने पूछा था कि थोड़ा अधिक (स्पष्टीकरण) करो। कल आया था। शान्तिभाई ! जागता जीव विद्यमान है वह। भाई ने पूछा था। जागता जीव प्रभु अन्दर विद्यमान है न ! आहा..हा.. ! वह कहाँ जाये ? यहाँ यह कहते हैं कि जो बदलता नहीं अर्थात् ध्रुव है, वह जाये कहाँ ? पर्याय में आवे ? आहा..हा.. ! जगत के भाग्य से बाहर आ गयी है यह। अभी तो आगे क्या होता है इसका परिणाम, देखो ! धीरे.. धीरे.. धीरे..। आहा..हा.. !

वस्तु है, वह तो अनादि-अनन्त है, प्रभु ! है, उसकी आदि क्या ? है, उसका अन्त क्या ? है, वह है अनादि से। आहा..हा.. ! वह बदलता नहीं। ध्रुव है, वह बदलता नहीं, ध्रुव तो सदृशरूप कायम रहता है। **पलटता नहीं है...** ध्रुव तो बदलता नहीं। उसकी पर्याय एक समय में बदले, वह अलग बात है; वस्तु बदलती नहीं, वस्तु तो ऐसी की ऐसी है। आहा..हा.. ! वास्तव में तो पर्याय बदलती है, उसमें भी ध्रुव नहीं आता; ध्रुव तो ध्रुवरूप रहता है। पर्याय से ध्रुव भिन्न ही है।

द्रव्य में पर्याय नहीं, पर्याय में द्रव्य नहीं। दोनों वस्तु है न ? आहा..हा.. ! यह न्याय-लॉजिक के अर्थ में भी आता है। धर्मी और धर्म दो भिन्न तत्त्व है। धर्मी ऐसा द्रव्य और उसका धर्म अर्थात् गुण, वह दूसरी चीज़ है। अपेक्षा न्याय आप्तमीमांसा में है न, सब है, भाई ! यहाँ तो अभी लोगों को, पर का कर सके ऐसी बात सिद्ध करनी है। अरे प्रभु ! क्या करता है तू ? भाई ! वह जो सामने चीज़ है, उसे करना क्या ? और उसकी पर्याय है, वह बदलती दशा है, उसे करना क्या ? दूसरा क्या करे उसे ? आहा.. ! दूसरे द्रव्यों का ध्रुवपना है, उसमें क्या करे ? और पलटता कार्य है, उसमें दूसरा क्या करे ? आहा..हा.. ! इसे स्व-पर को जानने की शक्तिवाला भगवान आत्मा है। आहा..हा.. ! पर का कुछ कर सकता नहीं, परन्तु पर को पररूप जाने बिना रहता नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? ऐसा उपदेश ! यह तो क्या होगा वह ? नहीं तो यह व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो, साधु को आहार-पानी दो (ऐसी भी सब बातें चलती हैं) साधु किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : सम्प्रदाय के साधु, वे साधु....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय के... बापू ! वे बेचारे... क्या हो ? भाई ! विपरीत मान्यता

में रहेगा, उसका फल बापू! क्या है ? भाई! हितोपदेश— भगवान का तो हित का उपदेश है। हितपना प्रगट हुआ नहीं और हितपना माने। आहा..हा..! आनन्द का नाथ अन्दर पर्याय में उछला नहीं। प्रचुर आनन्द का वेदन आवे, प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आवे, उसका नाम मुनिपना है। आहा..हा..! नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम, वे कहीं मुनिपना नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें! आहा..हा..!

उस पर दृष्टि करे,... किस पर ? जो अनादि-अनन्त ध्रुववस्तु है, प्रभु! जो बदलता नहीं जो पलटता नहीं, उस पर दृष्टि करे, ध्रुव पर दृष्टि करे तो इसे सम्यग्दर्शन हो। आहा..हा..! ऐसी बात है। अभी सम्यग्दर्शन अर्थात् प्रथम धर्म की शुरुआत। चारित्र और व्रत-फ्रत तो कहीं रह गये, बापू! वे तो कहीं... आहा..हा..! **दृष्टि करे, उसका ध्यान करे,...** ध्रुव का ध्यान करे। ध्रुव को ध्येय में लेकर ध्यान करे। ध्रुव को उपादेय मानकर वहाँ ध्यान करे। वर्तमान ध्यान की पर्याय में ध्रुव को विषय करे। आहा..हा..! अब ऐसी भाषा और यह वस्तु। लोग लाखों लोग हो..हा.. हो..हा.. मानो यह धर्म किया और यह किया! बापू! यह जिन्दगी चली जा रही है, प्रभु! जैसे बिजली की चमक आयी, वैसे इस मनुष्य का आयुष्य बिजली की चमकार जैसा थोड़ा है। २५-५०-१०० वर्ष, वह कहाँ एक चमक जैसा है न! आहा..हा..! वह चमक पूरी होगी, प्रभु! परन्तु तेरी चीज़ को यदि तूने नहीं जाना और नहीं पहिचाना तो हो गया, समाप्त है। आहा..हा..! समाप्त अर्थात् अब जन्म-मरण में जायेगा, भटकेगा। आहा..हा..! भव, देह छूटा तो अन्यत्र कहीं जाकर भटकेगा। कौआ, कुत्ता, निगोद का भव कर-करके (भटकेगा), प्रभु! आहा..हा..!

उसका ध्यान करे, वह अपनी विभूति का अनुभव करता है। यह क्या कहा ? ध्रुव चीज़ जो है, नित्य प्रभु है, उसकी दृष्टि करे, उसका ध्यान करे, वह अपनी विभूति का अनुभव करे। उस आत्मा में अनन्त आनन्द और शान्ति है, उसकी दृष्टि और ध्यान करे तो उस विभूति का अनुभव पर्याय में आता है। अनन्त आनन्द का अनुभव पर्याय में आता है। आहा..हा..! इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है, बाकी सब बातें हैं। आहा..हा..! समझ में आया ?

अन्दर विभूति का अनुभव हो, ऐसा कहा न ? जिसे स्वीकार किया है, वह चीज़ यह, यह.. स्वीकार किया है तो उस शक्ति की पर्याय में प्रगटता अंश आता है। आहा..हा..! अनन्त-अनन्त गुण की ध्रुवता का जिस दृष्टि से स्वीकार किया अथवा उसका ध्येय

बनाकर ध्यान किया, उसकी पर्याय में अनन्त आनन्द आदि पर्याय का उसे अनुभव होता है, वह पर्याय है। ध्रुव का ध्यान करने से जो पर्याय प्रगटे, अनुभूति, वह अनुभव, उसका नाम धर्म है। आहा..हा..! धर्मी ऐसा जो भगवान आत्मा, अनन्त धर्म का धारक है, उसका ध्यान करने से पर्याय में जो अनुभूति होती है, वह विभूति का धर्म है, वह स्व विभूति का प्रगट (पना) है। आहा..हा..!

बाह्य के अर्थात् विभाव के आनन्द-सुखाभास के साथ,... आहा..हा..! कल्पन माने कि इन्द्रियों में सुख है और भोग में सुख है और कीर्ति में सुख है, यह पैसा धूल, पाँच, दो-पाँच करोड़ मिले और सुखी हैं।

मुमुक्षु : इसके बिना सब्जी कहाँ आती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब्जी उसके बिना ही आती है। सब्जी आवे तो आनेवाले परमाणु आयेंगे इसके पास। खानेवाले का नाम, परमाणु पर (लिखा हुआ है), नहीं आता? खानेवाले का नाम दाने-दाने पर है – इसका अर्थ क्या? जो खाने के रजकण आनेवाले हैं, वे आनेवाले हैं, वे आनेवाले हैं, इसके प्रयत्न से नहीं आयेंगे। कहो। आहा..हा..!

बाह्य के अर्थात् विभाव के आनन्द-सुखाभास के साथ, बाहर की किसी वस्तु के साथ उसका मेल नहीं है। आहा..! क्या कहा यह? कि जो ध्रुव वस्तु भगवान आत्मा अनादि-अनन्त नित्य है, उसका ध्यान करने पर जो पर्याय में आनन्द की विभूति प्रगट हो, उसका दुनिया के साथ कहीं मेल नहीं है, दुनिया की किसी चीज़ के साथ उसका मेल नहीं है। आहा..! कि यह अरबोंपति है, इसलिए सुखी है, बड़ा राजा करोड़ की आमदनीवाला (है, इसलिए सुखी है)। धूल भी नहीं वहाँ, सब दुःखी प्राणी हैं बेचारे, बड़े भिखारी हैं। कहा था न, दरबार आये तब कहा था। भावनगर दरबार। करोड़ का तालुका। दरबार व्याख्यान में आये थे। कहा, भिखारी है। एक महीने में लाख माँगे (वह छोटा) भिखारी, पाँच लाख माँगे वह बड़ा भिखारी है, भिखारी, भिखारी है, राँका। आहा..हा..! यह तो जिसे आत्मऋद्धि का ध्यान करके जो दशा प्रगट हुई, वह बादशाह है, वह सुखी है, उसे जगत के सुखाभास के साथ मेल नहीं है। आहा..हा..!

बाहर की किसी वस्तु के साथ उसका मेल नहीं है। जो जानता है, उसे अनुभव में आता है। जो भगवान अनन्त गुण का ध्रुव, उसे जो ज्ञेय बनाकर जाने, आहा..हा..! उसे

अनुभव में आता है। उसे वह वस्तु पर्याय में आनन्द का अनुभव आता है। आहा..हा..! द्रव्य और गुण तो ध्रुव हैं, उनका ध्यान करे, वह पर्याय और ध्यान करे ध्येय को बनाकर, तो उस पर्याय में उसका अनुभव आनन्द का, शान्ति का, स्वच्छता का, ईश्वरता का, वह सब पर्याय में आनन्द का अनुभव आता है। आहा..हा..! वह अनुभव आवे, उसे धर्म कहा जाता है। बाकी सब व्यर्थ है। समझ में आया?

अनुभव चिन्तामणी रत्न, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप॥

(समयसार नाटक)

ऐसी बात है। आहा..हा..! **उसे किसी की उपमा लागू नहीं होती।** अनुभव को किसी की उपमा (लागू नहीं पड़ती)। किसी उपमा कहना? आहा..हा..! जिसे अनन्त गुण का धनी प्रभु, चैतन्य लोक को जिसने जाना, अन्दर ध्येय बनाकर (जाना), उसे जो पर्याय में आनन्द आया, उसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती कि राजा के सुख से अधिक सुख है। परन्तु उसकी जाति ही नहीं है, वहाँ अधिकता की उपमा किसे देना? आहा..हा..! **उसे किसी की उपमा लागू नहीं होती।** आहा..हा..! दो बोल भी अलौकिक आये। यह नवमीं का दिन है, नौ है न? आहा..हा..!

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

शुद्धात्मा की रुचि के अपूर्वभाव से समयसार का श्रवण करना

कोई जीव भले ही भगवान की सभा में दिव्यध्वनि सुनता हो परन्तु यदि अन्तर में व्यवहार के पक्ष का आशय रखे तो उसने वास्तव में शुद्धात्मा का ग्रहण नहीं किया है, उसके लिये तो वह विकथा का ही श्रवण है। मात्र आत्मा के शब्द कान में पड़ना, वह कहीं शुद्धात्मा का श्रवण नहीं है परन्तु श्रवण, परिचय और अनुभव - इन तीनों की एकता अर्थात् जैसा शुद्धात्मा सुना है, वैसा ही परिचय में-रुचि में लेकर उसका अनुभव करे, इसी का नाम शुद्धात्मा का श्रवण है। जीव ने पूर्व में ऐसा श्रवण कभी नहीं किया है; इसलिए अब तू शुद्धात्मा की रुचि के अपूर्वभाव से इस समयसार का श्रवण करना - ऐसा आचार्यदेव कहते हैं।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-१३

असोज शुक्ल १०, बुधवार, दिनाङ्क ११-१०-१९७८
वचनामृत-३१२ से ३१४ प्रवचन-११६

अनादि काल से एकत्वपरिणमन में सब एकमेक हो रहा है, उसमें से 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' इस प्रकार भिन्न होना है। गोसलिया के दृष्टान्त की भाँति जीव विभाव में मिल गया है। जिस प्रकार गोसलिया ने अपनी कलाई में बँधा हुआ डोरा देखकर अपने को भिन्न पहिचान लिया, उसी प्रकार 'ज्ञानडोरा' की ओर यथार्थ लक्ष्य करके 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ' इस प्रकार अपने को भिन्न पहिचान लेना है।।३१२।।

वचनामृत ३१२। हिन्दी चलता है, आज हिन्दी (मुमुक्षु) आये हैं।

अनादि काल से एकत्वपरिणमन में सब एकमेक हो रहा है,... क्या कहते हैं? कि भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें जो पुण्य-पाप के रागादिभाव और शरीरादि, सब मानो एक हों - ऐसा अनादि काल से अज्ञानी ने माना है। आहा..हा..! अन्दर आत्मा चैतन्यद्रव्य ज्ञायकस्वरूप को दया-दान के, पुण्य-पाप के भाव और वह राग, वह मैं हूँ; शरीर, वह मैं हूँ - ऐसा पर के साथ एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव अनादि से कर रहा है। आहा..हा..! **उसमें से 'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ'...** मैं आत्मा तो ज्ञान-जाननस्वभावमात्र हूँ। राग भी नहीं, शरीर भी नहीं, कर्म भी नहीं। मेरी चीज़ में ये नहीं और उन चीज़ों में मैं नहीं। आहा..हा..! ऐसा भेदज्ञान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। आहा..हा..! **'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ'...** जानन.. जानन.. जानन.. जाननहार ज्ञातादृष्टा वह चीज़ मैं हूँ। बाकी राग चाहे तो दया, दान, भक्ति आदि का हो, वह राग भी मेरी चीज़ में नहीं है। उससे मुझे लाभ हो, ऐसा नहीं है। उससे लाभ माने तो (उसे) अपनी चीज़ माने। आहा..हा..! और शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, (ऐसा माने) तो शरीर को अपना माना। शरीर तो पर-जड़ है। आहा..हा..!

आज तो सबेरे आया था। मन, वचन और काया, वे तो पर हैं। आहा..हा..! शरीर की पर्याय जड़ की, राग की पर्याय विकारी। मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूपी मैं हूँ। ऐसे राग से और शरीर से भिन्न करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। ऐसा है, भाई! आहा..हा..! **इस प्रकार भिन्न होना है**। इस प्रकार से भिन्न करना है। आहा..हा..! इतनी धीरज चाहिए, भाई! आहा..हा..! वहाँ उतावल काम नहीं आती। वहाँ राग के वेग में चढ़ना, यह वहाँ काम नहीं आता। आहा..हा..! आत्मा ज्ञानस्वरूप जाननस्वभाव, वह मेरी चीज़ है और रागादि, शरीरादि सब परचीज़ है। ऐसे शरीरादि से और शुभ-अशुभरागादि से भिन्न अपना ज्ञानस्वरूप है, ऐसा निर्णय करके अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञान है न आत्मा का? मिथ्यात्व टलने पर, स्वरूप का भान होने पर दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों साथ होते हैं। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसी प्रतीति; मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, उसका ज्ञान और ज्ञान में आंशिक स्थिर होता है, उसका नाम स्वरूपाचरण (चारित्र) है। कलश-टीका में कहा है कि भाई! तुम्हें मिथ्यात्व मिटे, वहाँ तीनों साथ हो गये, ऐसा कैसे मानते हो? कलश-टीका में ऐसा आता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:। वह मार्ग मिथ्यात्व के नाश से, राग और शरीर मैं हूँ, ऐसी बुद्धि के नाश से इसे तीनों प्रगट होते हैं। है? आहा..हा..! भले पूर्ण चारित्र न हो परन्तु चारित्र साथ में प्रगट होता है। मैं ज्ञानस्वरूप पूर्ण ज्ञायकस्वभाव, वह मैं हूँ, ऐसे ज्ञान में ज्ञायक को ज्ञेय बनाकर जानना, वह ज्ञान; उसमें प्रतीति करना, वह दर्शन और ज्ञान तथा दर्शन अन्दर में जरा स्थिर होता है न? राग में जैसे स्थिर होता है, तो राग से भिन्न ज्ञायकस्वभाव में ज्ञान, प्रतीति करके थोड़ा स्थिर होता है, तो उसमें तीनों हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों हैं। चौथे गुणस्थान में तीनों कहे गये हैं। अपेक्षा से है न? स्वरूप की आंशिक स्थिरता है न? आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, भेदज्ञान करना हो तो उसे क्या करना? आहा..हा..! कि मैं तो ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ, आहा..हा..! और रागादि होते हैं—दया, दान, व्रत भक्ति आदि के परिणाम तो राग हैं, वे कोई मेरी चीज़ नहीं हैं। आहा..हा..! अरे! जगत को कहाँ जाना? अनादि काल से भटकता अज्ञानी, उसने राग और शरीर और आत्मा तीनों एक ही हैं, ऐसा माना है। वही मिथ्यात्वभाव, भ्रमभाव, अज्ञानभाव, संसार के परिभ्रमण का बीज

है। आहा..हा..! जिसे भगवान आत्मा ज्ञान, जानन.. जानन.. जानन.. जाननस्वभाव चैतन्य, वह मैं। यह राग की क्रिया रागादि है, वह मैं नहीं। मैं नहीं, इस अपेक्षा से समझाना है परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, वहाँ राग मैं नहीं, ऐसा साथ में आ जाता है। आहा..हा..! अब ऐसा मार्ग। लोगों ने बाहर से कुछ यात्रा की, व्रत पालन किये, अपवास किये, भगवान की भक्ति (की), मन्दिर (बनाये उसमें) हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। उसमें पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं है। आहा..हा..! कठोर बात, भाई!

भगवान अन्दर चैतन्यरस से भरपूर, आनन्दरस से (पूर्ण भरा हुआ है।) चैतन्यलोक... कल आया था न? अन्दर चैतन्यलोक भगवान, जिसमें अनन्त गुण भरे हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी अनन्त-अनन्त गुण की शक्ति, गुणरूप भगवान (आत्मा), वह चैतन्यलोक है। उस चैतन्यलोक को अन्दर में राग और राग की क्रिया तथा देह की क्रिया से भिन्न अवलोकन करने का नाम सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। बाकी सब व्यर्थ है। यह भक्ति करे, यात्रा करे, यह राग मेरा है और मुझे इससे लाभ होगा, यह मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व में परिभ्रमण करेगा। आहा..हा..! यह आया न?

इस प्रकार भिन्न होना है। एक बार दृष्टान्त दिया था न? श्रीमद् ने दिया था न? कोई गोसलिया होगा। उसे कुछ खबर नहीं रही कि मैं गोसलिया हूँ। पश्चात् उसे डोरा बाँध दिया। उसकी माँ ने। बहुत लोगों के अन्दर घुसा। 'कच्छ' की बात है। बहुत लोगों में घुसा, इसलिए भूल गया कि मैं वह गोसलिया हूँ या यह हूँ? परन्तु उसने जहाँ डोरा देखा कि यह डोरा तो मुझे है, मैं तो भिन्न हूँ, पृथक् हूँ। इन सबमें लोगों में एकमेक मैं नहीं हूँ। आहा..हा..! मैं यह नहीं हूँ। आहा..हा..! यह तो दृष्टान्त हुआ। श्रीमद् राजचन्द्र दृष्टान्त देते थे।

ये देहादि परमाणु, वह तो मिट्टी धूल है। जड़ है, जड़। वह तो मैं नहीं, परन्तु अन्दर में पुण्य के-पाप के, दया-दान के, काम-क्रोध के भाव होते हैं, वह भी मेरी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! यहाँ तो अभी स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, पैसा और बंगला.. नटुभाई! ये मेरे (ऐसा अज्ञानी मानता है)। भाई!

मुमुक्षु : तो किसके हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके हैं - जड़ के / पर के हैं। इसके कब थे? स्त्री, पुत्र, वह

तो पर का आत्मा और पर शरीर, पर जड़ है। वे तेरे कहाँ से हुए? मूर्ख मानता है कि वे मेरे हैं। आहा..हा..! ऐसे पर को अपना मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। जगत का महामूर्ख है।

मुमुक्षु : तो छोटा मूर्ख कौन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग को अपना माने, वह (छोटा मूर्ख है)। यह तो पर को अपना माने, जो भिन्न चीज़ है, उसे और इसे कोई सम्बन्ध नहीं है, वह स्त्री का आत्मा और स्त्री का शरीर, उसे और आत्मा को कोई सम्बन्ध है? उसमें आत्मा का अभाव है। आहा..हा..! वह परस्त्री, कुटुम्ब परिवार आदि, अरे! इसके बंगले, मकान और इज्जत आदि, पैसा। पैसा, धूल लो न यह। पैसा धूल है, वह तो जड़ है। मूढ़ कहता है कि मेरे पैसे हैं, मूर्ख है। आहा..हा..! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप उस पैसे से तो भिन्न चीज़ है। आहा..हा..! लक्ष्मीपति कहते हैं न? लक्ष्मी का पति, जड़ का पति। आहा..हा..! उद्योगपति। इसने बहुत उद्योग करके धूल के उद्योग का पति, जड़ के रोग के उद्यम का पति। नरेन्द्र, नरपति। राजा, नर का / मनुष्य का पति, (ऐसा माननेवाले) जड़ हैं। आहा..हा..! भाई! कठिन काम।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर नौ तत्त्व में ऐसा फरमाते हैं। शरीर, वाणी, कर्म, इज्जत, वह तो अजीवतत्त्व भिन्न है। यह अन्दर में शरीर और कर्म है, वह भी अजीव भिन्न है और अन्दर में दया, दान, काम, क्रोध आदि राग के विकल्प उठते हैं, वह पुण्य और पापतत्त्व का भाव, वह तो भगवान आत्मा से भिन्न है। नौ तत्त्व है या नहीं? तो नौ तत्त्व में शरीर आदि तो अजीवतत्त्व है, पैसा धूल। और अन्दर पाप के परिणाम—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना, वह तो पापतत्त्व है। वह आत्मतत्त्व है? आहा..हा..!

मुमुक्षु : आत्मतत्त्व की पर्याय तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी पर्याय ही नहीं। इसकी पर्याय तो निर्मल होती है। विकृत पर्याय, वह तो अपने आ गया न, भावक का भाव है। कर्म जो भावक है, उससे अन्दर भाव्य अर्थात् विकारी दशा उत्पन्न होती है। स्वभावभाव नहीं। अपना स्वभावभाव नहीं। कठोर बात है, भाई! जगत अनादि से भटक रहा है, परिभ्रमण कर रहा है। आहा..हा..! इसे कुछ भान नहीं। बड़े अरबोंपति, करोड़ोंपति मूढ़ जीव... आहा..हा..! यह परचीज़ मेरी है और मैं राजा हूँ, मैं पैसे का सेठ हूँ। वह बड़ा मूर्ख, मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : आप भले मूरख कहो परन्तु गाँव में....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया पागल है तो महिमा करती है। पागल की महिमा करती है। आहा..हा..! सेठ साहिब.. सेठ साहिब.. करती है। वह पागल सेठ साहब कहते हैं। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! मनुष्य का ऐसा अवसर मिला और बिजली की चमकवत् यह मनुष्य का अवतार चला जायेगा, भाई! यह तो थोड़ा काल रहनेवाला है। इसमें यह चैतन्यमूर्ति मैं हूँ। राग, दया, दान के विकल्प हैं, वे भी मैं नहीं। आहा..हा..! ऐसा भेदज्ञान कर तो प्रभु! तेरा उद्धार होगा। नहीं तो नरक और निगोद के परिभ्रमण करके मर गया, बापू! आहा..हा..! इतने दुःख में परिभ्रमण किया कि जिसके दुःख सुनते हुए, देखते हुए रुदन आता है। भाई! तूने ऐसे दुःख सहन किये हैं, प्रभु! भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था, ऐसा कौन कहे? आहा..हा..! अभी तो प्रभु! एक बार अवसर मिला है अब। आहा..हा..!

ये पुण्य और पाप के भाव हों। दया, दान, व्रत आदि के विकल्प राग हों, वह भी मेरी चीज़ नहीं; वह तो विकृतभाव है। वह पुण्यतत्त्व है; वह जीवतत्त्व नहीं। आहा..हा..! यह तो सादी भाषा में पकड़ में आये ऐसा है। अरे रे! इसने अनादि-अनन्त काल में कहीं दरकार नहीं की। मूढ़ होकर अनन्त बार मनुष्य हुआ। अनन्त बार नारकी हुआ, अनन्त बार पशु-ढोर हुआ, अनन्त बार स्वर्ग में (देव) हुआ। एकेन्द्रिय नीम के जीव... आहा..हा..! अनन्त बार उसमें गया है, भाई! तुझे खबर नहीं है। पर को अपना मानकर मिथ्यात्व के कारण चार गति में रुलता है, भटकता है। आहा..हा..! एक बार प्रभु! एक बार भिन्न तो देख, तेरी चीज़ अन्दर ज्ञानस्वरूपी, प्रभु है। यह राग और शरीर की क्रिया से भिन्न चीज़ अन्दर वर्तती है। आहा..हा..! आया?

गोसलिया के दृष्टान्त की भाँति जीव विभाव में मिल गया है। भगवान आत्मा, यह पुण्य और पाप के भाव—चाहे तो दया का भाव, चाहे तो यात्रा का भाव, चाहे तो शास्त्र श्रवण का भाव, चाहे तो भगवान तीन लोक के नाथ की भक्ति का भाव (हो)। वह सब राग है। अरे रे! कैसे जँचे? उस राग से तेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। ऐसा भगवान ने वहाँ ज्ञान का डोरा बाँधा है। चार गति में अनादि से भटकता (था)। अब भगवान ने ज्ञान का डोरा बाँधा कि बापू! ज्ञान वह तू है। यह राग और यह (जड़) तू नहीं है। अरे! इसे कब निवृत्ति?

पाप के धन्धे के कारण निवृत्त कहाँ है ? आहा..हा.. ! यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव की पुकार है, वह यह वाणी है। आहा..हा.. !

जिस प्रकार गोसलिया ने अपनी कलाई में बँधा हुआ डोरा... कलाई अर्थात् ? हाथ न ? कांडु - कांडु (कलाई का गुजराती शब्द) अपनी कलाई में डोरा बाँधा था। इसलिए २५-५०-२००-२०० लोगों में घुस गया। भूल जाता था। मैं वह यहाँ हूँ या मैं वह इकट्ठा हूँ ? उसने डोरे के सामने देखा, ओह! ये तो गोसलिया तो भिन्न है। इस प्रकार **अपने को भिन्न पहिचान लिया, उसी प्रकार 'ज्ञानडोरा' की ओर यथार्थ लक्ष्य करके...** भगवान ने ऐसा कहा कि प्रभु ! तू तो ज्ञान जाननस्वरूप है न ? राग को जाने, शरीर को जाने, अपने को जाने, वह ज्ञानशरीर, ज्ञानस्वरूप तू है। आहा..हा.. ! ऐसा ज्ञानडोरा बाँध लिया, तो सबमें मिलने पर भी मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। अरे ! कब इसे जँचे ? आहा..हा.. ! साधु नाम धरावे और पंच महाव्रत के राग की क्रिया, वह मेरी है, ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसी सूक्ष्म बात है, बापू !

अन्दर भगवान चैतन्यलोक ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव से भरपूर आत्मा, उसे राग और पर से भिन्न करके और आत्मा चैतन्य ज्ञानस्वरूप है, ऐसा अनुभव करने का नाम सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी कहने में आती है। आहा..हा.. ! ऐसी जवाबदारी। निवृत्त कहाँ है ? पूरे दिन पाप—यह धन्धा किया, यह धन्धा किया और उसमें दो-पाँच-दस लाख मिले। दस लाख मिले, बीस के पच्चीस करोड़। करोड़-दो करोड़, अब तो अभी पैसा बहुत बढ़ गया है। करोड़ मिले और दो करोड़ मिले। क्या मिला ? धूल, वह तो जड़ मिट्टी है। मिट्टी तुझे मिले ? चैतन्य में मिट्टी आ जाती है ? आहा..हा.. ! अनादि से पर को मेरा मानकर, मूढ़ चौरासी के अवतार में परिभ्रमण करता है। उसकी इसे खबर भी नहीं कि यह मैं क्या करता हूँ और क्या मानता हूँ ?

मुमुक्षु : पैसेवाले तो पैसा न कमावे, उसे मूढ़ कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी मूढ़ तो जगत है। आहा..हा.. ! नारकी के जीव को एक पाई (पैसा) भी नहीं है, अनाज का कण भी नहीं है। आहा..हा.. ! तथापि अन्दर समकिती अभी श्रेणिक राजा। श्रेणिक राजा तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहा..हा.. ! वे श्रेणिक राजा अभी पहले नरक में हैं परन्तु उसमें मैं तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। आहा..हा.. ! यह नारकी का संयोग, वह मेरी चीज़ नहीं, शरीर मेरा नहीं, अन्दर राग उत्पन्न होता है, वह भी मैं नहीं।

आहा..हा..! वे नरक में रहे होने पर भी उन्हें आत्मज्ञान है। आहा..हा..! आहा..हा..!

वास्तव में तो भगवान आत्मा ज्ञातादृष्टास्वरूप प्रभु है, ऐसा जिसने अन्तर में राग से और शरीर से भिन्न जाना, वह तो आत्मा, आत्मा में ही है। किसी भी गति में जाये परन्तु वह आत्मा, आत्मा में है। आहा..हा..! समझ में आया? मार्ग दूसरा, भाई! आहा..हा..! जगत को बेचारे को यह सुनने को नहीं मिलता। बेचारे अर्थात् सब भिखारी, बेचारे रंक। यह करोड़पति और अरबोंपति भिखारी हैं। अपनी लक्ष्मी की खबर नहीं। धूल की लक्ष्मी के माँगण (भिखारी)। एई! दरबार को कहा था न यहाँ!

मुमुक्षु : जिसने पैसे का रस चखा हो, उसे खबर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी कहता था। अभी भाई नहीं आये? ठीक नहीं है। मलूपचन्दभाई का लड़का। मलूपचन्दभाई के पास २५-३०-४० हजार थे। अब उस लड़के के पास पाँच करोड़ है। मुम्बई है न? पूनमचन्द, पाँच करोड़। बड़ा लड़का स्वीटजरलैण्ड है। उसके पास चार करोड़ हैं। एक बार बात निकलने पर अहमदाबाद में बात निकली थी। तब वह ऐसा बोल गया, बापूजी ने कहाँ पैसे का रस चखा है? अर्थात् इतने पैसे कहाँ थे? पाँच करोड़। है न मुम्बई अभी? पूनमचन्द मलूपचन्द, मुम्बई में बड़े मकान-महल बनावे। बहुत पैसा कमाता है, लाखों की आमदनी है - धूल (है)। मूढ़ है। उसके पिता के पास ऐसा बोल गया था। हम बैठे थे। बापूजी ने पैसे का रस कहाँ चखा है? अर्थात् कि इतने पैसे कहाँ थे? हमें तो इतने पैसे मिले, इसलिए हमें पैसे का रस चढ़ गया है। आहा..हा..! मूढ़। यहाँ आता है। आहा..हा..! ऐसा बोला था। क्योंकि उसके पिताजी के पास थोड़े-बहुत पैसे थे। तीस-चालीस हजार। इतने होंगे। उसकी अपेक्षा इसके पास अधिक थे। ...भाई के पास अस्सी हजार थे।

यह तो साठ-सत्तर वर्ष पहले की बात है। सब (खबर है)। यहाँ तो ८९ वर्ष हुए। ६५ वर्ष तो दीक्षा लिये हुए हैं। सबको बहुतों को देखा और जाना है। आहा..हा..! वह कहे मुझे अस्सी हजार की पूँजी, वह कहे मुझे तीस-चालीस हजार की पूँजी, तीसरा कहे मुझे करोड़ की पूँजी। धूल भी पूँजी नहीं, सुन न। जड़ की चीज़ तेरी कहाँ से आ गयी? प्रभु! यह तूने क्या किया? यह तेरा सन्निपात है।

यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव की वाणी में यह आया है, वह यहाँ कहा है। **'ज्ञानडोरा' की ओर यथार्थ लक्ष्य करके...** आहा..हा..! यह जानन.. जानन.. जानन.. जानन.. की

ओर देख। यह मैं हूँ। राग और शरीरादि मैं नहीं। आहा..हा..! इसे वास्तविक आत्मा की प्रतीति और अनुभव हुआ। नटुभाई! ये सब वकील। रामजीभाई बड़े वकील थे।

मुमुक्षु : खोटे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटे। पाँच घण्टे के दो सौ रुपये लेते थे। ३५ वर्ष पहले, हों! कोर्ट में जाते थे, पाँच घण्टे के दो सौ। वह मूर्खता से भरपूर ज्ञान था, कुज्ञान था। यह स्वयं कहते हैं न! ए नटुभाई! ये बड़े वकील रहे, पालीताणा में। आहा..हा..! धूल भी नहीं, प्रभु! तू कौन है? क्या है? आहा..हा..! तेरी तुझे खबर नहीं, प्रभु! तेरी प्रभुता तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप में तेरी प्रभुता है। राग और पर की प्रभुता मानता है, प्रभु! वह तो मूढ़ जीव है। आहा..हा..! दुनिया के चतुर चाहे जो कहलाते हों, भगवान तो उन्हें मूर्ख कहते हैं।

मुमुक्षु : जीव में मूढ़रूप से परिणमने की ताकत ही कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़रूप से परिणमता है न! अज्ञानरूप से वह परिणमता है। शरीर मेरा, (ऐसा मानता है परन्तु) यह शरीर उसका होता नहीं परन्तु शरीर मेरा, ऐसे भाव से वह परिणमता है। राग उसका होता नहीं, परन्तु राग मेरा, ऐसे परिणमता है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, प्रभु! कठिन बातें हैं। दुनिया से अलग जाति है। तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। महावीर परमात्मा आदि तो मोक्ष पधारे। यह तो (सीमन्धरादि परमात्मा तो) महाविदेह में अरिहन्त पद में विराजमान हैं। आहा..! वहाँ भगवान यह कहते हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

'मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ'.... चैतन्य दीपक, चैतन्य सूर्य, जानन की जलहल ज्योति प्रभु, वह मैं हूँ। आहा..हा..! रागादि विकल्प और शरीरादि जड़, वे सब पर हैं। मेरे नहीं हैं। आहा..हा..! **इस प्रकार अपने को भिन्न पहिचान लेना है।** इस प्रकार से अपने को पर से भिन्न पहिचान लेना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान। सोपान कहते हैं न? यह सोपान है, भाई! क्या हो? आहा..हा..! व्रत बहुत किये, उपवास बहुत किये, भक्ति की, पाँच-पच्चीस लाख दान किये, मन्दिर बनाये; इसलिए धर्म हुआ, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं है।

मुमुक्षु : अभी तो अपने बहुत मन्दिर बनानेवाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनावे तो बनावे। कौन बनाता है? यह हमारे अजितभाई रहे। नैरोबी में पन्द्रह लाख का बनानेवाले हैं। मुहूर्त हो गया है। ये सब पैसेवाले हैं। वहाँ साठ

घर हैं, साठ घर श्वेताम्बर के हैं, सब दिगम्बर हो गये हैं। यहाँ का वाँचन २५-३० वर्ष से चलता है। ढाई लाख का मन्दिर तो है। पन्द्रह लाख का इस ज्येष्ठ शुक्ल एकम को। पन्द्रह लाख का मन्दिर बनाने को वहाँ खात-मुहूर्त किया। उसमें दो लाख दो हजार तो भाई ने दिये हैं, इन रामजीभाई का भानेज। ये बैठे हैं, इनके भानेज ने दो लाख दो हजार दिये हैं परन्तु यहाँ तो स्पष्ट बात की है कि इन सबमें भाव शुभ हो तो पुण्य है। उसमें धर्म है, उसमें कुछ दम नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : दम न हो तो पैसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा कहाँ इसके बाप के थे? वे तो जड़ हैं, अजीव हैं, धूल है, ए.. अजितभाई! ये सब गृहस्थ व्यक्ति हैं। साठ-सत्तर लाख रुपये हैं। इनके काका हैं, उनके पास साठ-सत्तर लाख हैं। बाकी दूसरे आठ व्यक्ति करोड़पति हैं। नैरोबी, अफ्रीका में साठ घर हैं। यहाँ का वाँचन चलता है। यहाँ के टेपरिकॉर्ड गये हैं। समयसार के पाँच हजार टेपरिकॉर्ड यहाँ से गये हैं। भगवान की प्रतिमा प्लेन में वहाँ ले गये हैं, परन्तु वह सब शुभभाव है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : धर्मानुराग तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मानुराग का अर्थ भी राग। वह विकार है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात, बापू! अनन्त काल में इसने किया नहीं। इसने भगवान आत्मा को राग और पर की क्रिया से भिन्न पहिचान ले, प्रभु! तो तेरी चीज़ का तुझे अनुभव होगा, तो तेरा कल्याण होगा। आहा..हा..! बाकी तो धूल-धाणी और वा-पानी है। ३१२ (बोल पूरा हुआ)।

मार्ग में चलते हुए यदि कोई सज्जन साथी हो तो मार्ग सरलता से कटता है। पंच परमेष्ठी सर्वोत्कृष्ट साथी हैं। इस काल में हमें गुरुदेव उत्तम साथी मिले हैं। साथी भले हो, परन्तु मार्ग पर चलकर ध्येय तक पहुँचना तो अपने को ही है॥३१३॥

३१३। **मार्ग में चलते हुए यदि कोई सज्जन साथी हो तो मार्ग सरलता से कटता है।** कोई सज्जन पुरुष मार्ग में साथ में हो... ऐसे **पंच परमेष्ठी...** पंच परमेष्ठी—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। महाभगवन्तस्वरूप पाँच। आहा..हा..! ये **पंच परमेष्ठी**

सर्वोत्कृष्ट साथी हैं। निमित्त। निमित्तरूप से हैं। चलना तो स्वयं से है। भगवानरूप से वहाँ पाँच निमित्त हैं। आहा..हा..! उन भगवान का लक्ष्य करके, भगवान की भक्ति करना, वह भी राग है। आहा..हा..!

यहाँ तो पंच परमेष्ठी... तीन लोक के नाथ अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। ये आचार्य, उपाध्याय, साधु भगवतस्वरूप अन्दर है। आनन्द के अनुभवी। आहा..हा..! अरिहन्त और सिद्ध तो पूर्ण आनन्द के अनुभवी, परन्तु आचार्य और उपाध्याय, जैन के साधु उन्हें कहते हैं कि जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ हो, उन्हें यहाँ आचार्य, उपाध्याय, साधु कहते हैं। आहा..हा..! **पंच परमेष्ठी...** अपने स्वरूप के साधनकाल में साथ में निमित्त हैं। आहा..हा..! है ? आहा..हा..!

पंच परमेष्ठी सर्वोत्कृष्ट साथी हैं। इस काल में हमें गुरुदेव उत्तम साथी मिले हैं। यहाँ बहिन का विनय है। **साथी भले हो,...** साथ में भले हो। **परन्तु मार्ग पर चलकर ध्येय तक पहुँचना तो अपने को ही है।** पंच परमेष्ठी या गुरु इसके ध्येय में कुछ चलाते नहीं हैं। आहा..हा..! अच्छा साथी हो, परन्तु चलना तो स्वयं को है न ? कि वे चले, वे इसे चला दें ?

मुमुक्षु : .....कन्धा पकड़े....

पूज्य गुरुदेवश्री : कन्धा पकड़े तो भी वह स्वयं अन्दर चलता है। अपनी गति अन्दर ऐसी है, इसलिए चलता है। अरे! भाई! बहुत कठिन काम। अरे रे! अनन्त काल से दुःखी अज्ञानी मूढ़ है। इसकी मूढ़ता क्या है, वह यहाँ प्रभु बताते हैं। आहा..हा..! भाई! तू उलझ गया, प्रभु! तेरी चीज़ नहीं और पर की चीज़ मेरी, उसमें तुझे मूर्च्छा हो गयी, प्रभु! आहा..हा..! उस मूर्च्छा को मिटाना हो तो, प्रभु! एक बार पंच परमेष्ठी को साथ में ले और अन्दर में राग से तेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा अन्दर मार्ग में चल। आहा..हा..!

परन्तु मार्ग पर चलकर ध्येय तक पहुँचना तो अपने को ही है। ध्येय क्या ? वर्तमान ज्ञान की पर्याय में ध्येय को त्रिकाली भगवान आत्मा स्वयं का है। भगवान ध्येय नहीं। आहा..हा..! अब ऐसी बातें। कहाँ बेचारे जगत के प्राणी मूढ़ होकर अनादि से घूमते हैं। उन्हें यह बात कान में पड़ना मुश्किल पड़ती है। आहा..हा..! यहाँ परमात्मा निजस्थिति का वर्णन (करते हुए) कहते हैं कि ध्येय भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दकन्द है। द्रव्यस्वभाव,

वस्तुस्वभाव, परमात्मस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, वह धर्मी का ध्येय है। धर्मी जीव का वह ध्येय है। धर्मी जीव का ध्येय पर्याय नहीं है, गुणभेद ध्येय नहीं है; ध्येय त्रिकाली वस्तु है। आहा..हा..! ऐसा क्या होगा ? ऐसा यह कैसा उपदेश ? भाई ! हम तो यह उपदेश सुनते थे कि दया पालना, व्रत करना, अपवास करना।

मुमुक्षु : दया पालने की....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी कैसी दया ? बापू ! तुझे खबर (नहीं)। तेरी दया की यहाँ तो बात है। पर की दया का भाव तो राग है। उस राग में तो आत्मा की शान्ति लुटती है। तुझे खबर नहीं है। आहा..हा..! बहुत अन्तर परन्तु यह तो पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहा..हा..! भाई ! तेरी दया तो उसे कहते हैं कि मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप से पूर्णानन्द हूँ, ऐसे आत्मा को ध्येय बनाकर श्रद्धा करने का नाम स्व की दया है। जैसा है, वैसा दृष्टि में लिया, उसका नाम दया है। ऐई ! नटुभाई ! इस वकालात में कोई ऐसा आता नहीं होगा, लो ! आहा..हा..!

मुमुक्षु : वकालात नहीं करना तो करना क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस आत्मा का करना। वकालात करे वह तो राग है, वह तो धूल है। भले हजार-हजार का (वेतन) महीने में मिले तो वह धूल है। उसमें है क्या ? आहा..हा..! पाप बाँधता है। मैं वकालात करता हूँ, मुझे इतने पैसे मिलते हैं, मैं होशियार हूँ, मूढ़ है। ऐई ! नटुभाई ! इनके पिता भी वकील थे, ...धूल में भी कुछ नहीं थे, सब खबर है न ! 'बावरा' में से फिर 'पालीताणा' आये। आहा..हा..! दस-दस हजार रुपये दिन का लेनेवाले वकील हैं। वह भी पर्याय में मूढ़ है। आहा..हा..! वकालात में वाणी की, वह वाणी मेरी है, (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है।

मुमुक्षु : उतने सब लोगों को समझाया...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसे समझाया ? धूल में। समझाया था कहाँ ? राग किया था। रामजीभाई कहे, इन सबके केस मैंने जिताये। राग किया था, राग। धूल में भी कुछ नहीं किया था। ऐसी बात है। वकील बड़े एल.एल.बी. हुए, डॉक्टर बड़े, एम.ए. हुए। कैसे ? (श्रोता - एम.बी.बी.एस.) धूल में भी नहीं। मूढ़ है। आत्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और पर की चतुराई में चले गये, वे मूढ़ जीव हैं। मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकने

के पाप करते हैं। आहा..हा..! दुनिया चतुर कहे। पाँच लाख कमाये, दस लाख कमाये। आहा..हा..! बहुत भाग्यवान लगता है, (ऐसा) कहे।

मुमुक्षु : मुम्बई के सेठ तो करोड़ों-करोड़ों...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत आमदनी करते हैं। बहुत कहा न। वह तुम्हारा सेठ नहीं? सुमनभाई का। इनका लड़का जिसमें नौकर है न रामजीभाई का? मुम्बई, आठ हजार का वेतन है। छह हजार का परन्तु वह मकान ऐसा होकर आठ हजार। महीने में आठ हजार, इनके लड़के का अभी वेतन है। मुम्बई, इसका सेठ है। उसे एक वर्ष की साढ़े तीन करोड़ की आमदनी है। जामनगर का श्वेताम्बर जैन गृहस्थ है। यहाँ आया था, वहाँ भी मिला था। साढ़े तीन करोड़ की एक वर्ष की आमदनी है, उसमें इनका लड़का नौकर है। आठ हजार का वेतन है। अभी उसे (सेठ को) अधिक करना है। साढ़े तीन करोड़ की आमदनी, हों! राजा से बड़ी आमदनी। बड़ा कारखाना... आहा..हा..! मानों कि हम बड़े सेठ।

मुमुक्षु : कारखाना तो नया वापी में डाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : डालनेवाले हैं न, सुना है। साढ़े तीन करोड़ की आमदनी से अधिक करना है। ऐसे के ऐसे। आहा..हा..! पाप के पोटले बाँधनेवाले हैं। अरे रे! ऐसी बातें।

मुमुक्षु : भविष्य में....

पूज्य गुरुदेवश्री : भविष्य में नहीं, अभी बाँधता है। उसे भान कहाँ है? ऐसा कहते हैं, भविष्य में उसका फल दिखेगा। अभी ही दिखता है उसे। राग की क्रिया में एकाकार दु:खी प्राणी है। उसकी खबर नहीं। आहा..हा..! सन्निपातिया होता है न? सन्निपात। वह दाँत निकालता है (हँसता है), सुखी है? सन्निपात। वात, पित्त और कफ - तीनों बिगड़ जाये, विशेष हो जाये, तब सन्निपात होता है। सन्निपात। तीन का मेल। तीन का मेल हो गया। सन्निपात। दाँत निकालता है। साथवाले कहते हैं अरे रे! हमने नजर से देखा है, सब सुना, लड़के को शैय्या थी, ३३ वर्ष का युवक था। सन्निपात हुआ था। और दाँत निकाले, और आठ-आठ लोगों से पकड़ा रहे नहीं। लोगों को लगा अरे रे... अब प्रात:काल नहीं निकालेगा। सबेरा नहीं निकालेगा, देह छूट जायेगी। देह छूट गयी। 'लींमड़ा' है। लींमड़ा है न यहाँ? वहाँ (की बात है)। यह बड़त वर्ष पहले की बात है। ४०-५० वर्ष पहले की बात है। आहा..हा..! जैसे वह सन्निपातिया दाँत निकालता है (तो) वह सुखी है?

इसी प्रकार यह अज्ञानी पाँच-पच्चीस-पचास लाख इकट्ठे हों, स्त्री-पुत्र अच्छे हों, प्रसन्न होता है, वह सन्निपाति जैसा पागल है। भगवान ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! जिनेश्वरदेव की वाणी में यह आया है। आहा..हा..! त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी की दिव्यध्वनि में यह आया है, वह यह बात है। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! दुनिया से अलग प्रकार है। आहा..हा..! अब विशेष कहते हैं।

खण्ड-खण्डरूप ज्ञान का उपयोग भी परवशता है। परवश, सो दुःखी और स्ववश, सो सुखी है। शुद्ध शाश्वत चैतन्यतत्त्व के आश्रयरूप स्ववशता से शाश्वत सुख प्रगट होता है॥३१४॥

३१४, सूक्ष्म बात है, बापू! प्रभु! तीन लोक के नाथ की बातें हैं, ये बातें बहुत सूक्ष्म हैं। जिनेश्वरदेव परमेश्वर की वाणी, वही यह वाणी है। आहा..हा..! **खण्ड-खण्डरूप ज्ञान का उपयोग भी परवशता है।** आहा..हा..! क्या? राग तो परवशता है ही। शरीर मेरा, वह भी परवशपना है ही। परवश-दुःखी। आहा..हा..! परन्तु आत्मा की पर्याय में खण्ड-खण्ड ज्ञान है, वह भी परवशपना है और वह दुःखी है। आहा..हा..! यह क्या कहा? कि आत्मा जो है, वह अखण्ड ज्ञान की मूर्ति प्रभु है। आहा..हा..! उसकी पर्याय में / अवस्था में खण्ड-खण्ड ज्ञान भावेन्द्रिय है न? भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलाती है। अपने (समयसार) ३१ गाथा में गया है। आहा..हा..!

राग तो एक ओर रहो; शरीर, वाणी और पैसा-धूल तो कहीं रहे, परन्तु भगवान आत्मा अखण्ड ज्ञान की मूर्ति प्रभु है, उसमें भावेन्द्रिय वर्तमान पर्याय में एक-एक इन्द्रिय भाव, एक-एक विषय को जानती है, वह खण्ड-खण्ड ज्ञान को जानती है। वह खण्ड-खण्ड ज्ञान भी परवशता और दुःखी है। आहा..हा..! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : गरीब हो, वह दुःखी, यह दुःखी कहाँ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भिखारी में भिखारी गरीब है। आहा..हा..!

खण्ड-खण्ड ज्ञान को अपना मानता है, वह महागरीब भिखारी प्राणी है। ईश्वरभाई! ऐसी बातें हैं। यह तो भाग्यशाली को कान में पड़े, ऐसी बात है, बापू! क्या कहें? सबको, पूरे जगत को देखा है। पूरा हिन्दुस्तान देखा है। दस-दस हजार मील तीन बार घूमे हैं। अरे रे! बापू! यह मार्ग कोई अलग है, भाई! आहा..हा..!

यहाँ तो वहाँ तक कहा कि राग है, वह तो दुःख है। शरीर मेरा माने, वह दुःख है, वह परवशपना है परन्तु अपना ज्ञानस्वरूप भगवान, उसकी पर्याय में खण्ड-खण्ड ज्ञान जो है, इन्द्रियज्ञान—खण्ड-खण्ड ज्ञान, वह इन्द्रियज्ञान। आहा..हा..! यह खण्ड-खण्ड ज्ञान है, वह परवशपना है। आहा..हा..! सूक्ष्म है, भाई! कहो, यह तुम्हारा वकालात का ज्ञान जो पर्याय का खण्ड-खण्ड ज्ञान है, वह दुःखी है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो अनुभवे उसे खबर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे सब खबर नहीं है। आहा..हा..!

यहाँ तो वस्तु का स्वरूप भगवान आत्मा अखण्ड ज्ञायकमूर्ति प्रभु है। उसकी जिसे दृष्टि नहीं और वर्तमान पर्याय में खण्ड-खण्ड भावेन्द्रिय का ज्ञान है, वह खण्ड-खण्ड ज्ञान मैं हूँ, वह परवशता है, वह दुःखी प्राणी है, मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! ऐसे विशेषण। कहो, नटुभाई! खण्ड-खण्ड ज्ञान, ऐसी भाषा ली है, हों! आहा..हा..! जरा सूक्ष्म विषय है, प्रभु!

यह आत्मा जो अन्दर है, वह ज्ञायकस्वभाव अखण्ड स्वरूप प्रभु है। उसमें राग तो उसका नहीं; कर्म, शरीर तो उसका नहीं परन्तु पर्याय में खण्ड-खण्ड ज्ञान है, वह भी उसका नहीं। भावेन्द्रिय उसकी नहीं, ऐसा कहते हैं। यह जड़ेन्द्रिय तो पर मिट्टी, धूल है, परन्तु भावेन्द्रिय जो है और भावमन (वह भी पर है)। आहा..हा..! ऐसी बातें! यह तो क्या होगा? अरे रे! कहाँ है बेचारा? बात कहीं मिले नहीं। यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि अन्दर भावेन्द्रिय है न? जो ज्ञान की पर्याय एक-एक विषय को जानती है, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय खण्ड-खण्ड है, वह भी परवशता है, वह भी पराधीनता है, वह भी दुःखी है। आहा..हा..! लक्ष्मीवाला मानना, पैसावाला मानना, वह दुःखी है। रागवाला अपने को मानना, वह दुःखी है।

मुमुक्षु : पैसारहित दुःखी है या सुखी?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसारहित दुःखी पैसे के कारण नहीं है, पैसे के बिना दुःखी, वह पैसे के कारण दुःखी है – ऐसा नहीं है। मैं पैसेवाला नहीं, मैं निर्धन हूँ – ऐसी दृष्टि से दुःखी है। अभी एक जीव यहाँ आया था। पाटनीजी ने नहीं सुना होगा 'मन्दसौर' से एक जीव आया था। मैं तीर्थंकर हूँ, सुना है? नहीं सुना? यहाँ आया था। एक महीने पालीताणा रहा। फिर यहाँ आया (और कहने लगा) मैं तीर्थंकर हूँ, मैं केवलज्ञानी हूँ, चार घातिकर्म का नाश हुआ है।

मुमुक्षु : भगवान के पास पैसे नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भगवान के पास पैसे नहीं थे तो मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं गरीब हूँ। व्याख्यान में आया, व्याख्यान सुना। अरे रे!

मुमुक्षु : पैर लगा (चरण-वन्दन किये)।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दसौर, हाँ।

मुमुक्षु : पागल.....

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल नहीं परन्तु एक भ्रमणा हो गयी थी। पागल नहीं था। सुने, परन्तु अभिमान हो गया। मानो कि आहा..! अन्दर से भ्रम हो गया। मैंने चार घातिकर्मों का नाश किया है। मैं बताऊँ। मैंने कहा – भ्रमणा लगी है, भाई! पाखण्ड है, तो भी सुने। यहाँ तुम मुझे नहीं मानो, परन्तु अगास श्रीमद् में जाऊँगा तो मानेंगे। आहा..हा..! श्रीमद् में कोई उनके लोग ऐसे पागल नहीं हैं। आहा..हा..! ईश्वरचन्दजी! मन्दसौर, मन्दसौर है न? नाम क्या कहा? उसका नाम चाँदमलजी। व्याख्यान सुना। यहाँ अन्दर आया। मैं तीर्थंकर हूँ, और हमारे जैसे गरीब लोगों के पास पैसा नहीं है। भगवान के पास कहाँ पैसा था? मेरे पास पैसा नहीं है। यहाँ कुछ व्यवस्था कर दो। यह तो पाखण्ड। अरे! कहा, मिथ्यात्व का पागलपन है। वह भी सुने। वापस खड़ा होकर पैर लगे। इस जगत को भ्रमणा है। आहा..!

अभी तो तीव्र मिथ्यादृष्टि है तो कहे मैं तो तीर्थंकर हूँ। अरे रे! क्या करता है? यहाँ आकर वापस। वहाँ पालीताणा रहा था। पहले उसका पत्र आया था। मैं तीर्थंकर हूँ, चार घातिकर्म का नाश किया है और तीर्थंकर को चाहिए ऐसी सब सामग्री तैयार है। आहा..हा..! यहाँ आया तब देखा। अरे रे! प्रभु! मस्तिष्क में अज्ञान की मूढ़ता चढ़ गयी है। वैसे पागल नहीं, हों! पागल नहीं। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं, अपनी पर्याय में भावेन्द्रिय है न? यह (शरीर के चिह्न) तो जड़ इन्द्रियाँ हैं, ये तो पर हैं। यह तो अपने में नहीं, अपनी नहीं, परन्तु भावेन्द्रिय जो ज्ञान की पर्याय एक-एक विषय को जाने, ऐसी जो भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलाती है, वह खण्ड-खण्ड ज्ञान भी परवशपना है। है? वह **परवश, सो दुःखी...** वह दुःखी है। आहा..हा..! अरे! ऐसी व्याख्या! इस भाव से इन्द्रियज्ञान जो होता है, वह एक-एक इन्द्रिय का विषय एक-एक को जाने। श्रोत्र की भावेन्द्रिय शब्द को जाने, घ्राणेन्द्रिय का क्षयोपशमभाव,

वह गन्ध को जाने। ऐसे एक-एक इन्द्रिय का विषय एक-एक को जाने। वह ज्ञान का खण्ड-खण्ड है। उससे भी भगवान भिन्न है। आहा..हा..! यह इन्द्रिय है, इससे भिन्न है। इन्द्रिय से तेरी चीज़ भिन्न है। भिन्न है, पूर्ण है। आहा..हा..! ऐसी बातें अब। बेचारे साधारण लोगों को तो साधु ने इस प्रकार से बेचारे को चढ़ा दिया। अपनी बाहर की नग्न क्रिया, वह साधु। लोग मानें इसलिए ओहो..हो..! तुम बहुत साधु की भक्ति करनेवाले, तुम श्रद्धालु जीव... और ऐसा का ऐसा रखना, ऐसा आशीर्वाद दे। अरे! भगवान! भाई! क्या हो?

यहाँ तो अभी ज्ञान की पर्याय में खण्ड-खण्ड ज्ञान जाने, वह भी मेरी चीज़ है, ऐसा माने, वह परवशता का भाव मिथ्यात्वभाव, दुःखी है। वह दुःखी है। आहा..हा..! इन्द्रियाँ तो जड़ पर हैं। यह शरीर, वाणी, जड़ पर, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, देव-शास्त्र-गुरु पर, वह चीज़ तो पर रह गयी। अब यहाँ तो राग, वह पर। परन्तु अपनी पर्याय में भावेन्द्रिय जो खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाती है, वह भी पर है। उस खण्ड-खण्ड ज्ञान के वश (दुःखी है), यह तुम्हारे वकालात का ज्ञान भी भावेन्द्रिय का खण्ड-खण्ड ज्ञान है, आहा..हा..! वह परवशता है, वह दुःखी है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : शास्त्र का ज्ञान भी परवशता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र का ज्ञान परालम्बी ज्ञान, वह भी बन्ध का कारण है; मोक्ष का कारण नहीं। क्योंकि शास्त्रज्ञान तो अनन्त बार हुआ, तो कहीं अबन्ध परिणाम तो हुए नहीं। आहा..हा..!

यहाँ तो परमात्मा (कहते हैं), अखण्ड ज्ञायकभाव जो वस्तु अखण्ड अभेद है, उसकी दृष्टि करना, वह सम्यक् है। खण्ड-खण्ड ज्ञान, वह मेरा है, ऐसा मानना वह मिथ्यात्व है। आहा..हा..! राग को मेरा मानना, वह तो मिथ्यात्व है, शरीर की क्रिया (अपनी) मानना, वह तो मिथ्यात्व है ही परन्तु खण्ड-खण्ड ज्ञान, वह मेरा है, (ऐसा मानना भी मिथ्यात्व है)। आहा..हा..! मुझे बहुत आता है और इस आने का (बहिरलक्ष्यी क्षयोपशमज्ञान के) चतुराई में चढ़ गये, वे सब (दुःखी हैं)। आहा..हा..!

बहुत सरस बात है। यह ३१ गाथा में आ गया है, द्रव्येन्द्रिय जड़, भावेन्द्रिय भी पर और भगवान देव-गुरु-शास्त्र भी पर, वे सब इन्द्रिय। इन्द्रिय से जीतना अर्थात् उनका लक्ष्य छोड़ना। भावेन्द्रिय का लक्ष्य छोड़ना देव-गुरु-शास्त्र पर लक्ष्य है, वह भी छोड़ना।

आहा..हा.. ! और उनसे भिन्न भगवान पूर्ण शुद्ध द्रव्य भिन्न है, परिपूर्ण है, पृथक् है — ऐसा दृष्टि में अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहा..हा.. ! वह सुखी प्राणी है। समझ में आया ?

परवश, सो दु:खी और स्ववश, सो सुखी है। भगवान ज्ञायकस्वरूप अखण्ड का आश्रय किया, वह सुखी है। खण्ड-खण्ड ज्ञान का आश्रय किया, वह दु:खी है। आहा..हा.. ! **शुद्ध शाश्वत चैतन्यतत्त्व के आश्रयरूप....** शुद्ध शाश्वत चैतन्यतत्त्व के आश्रयरूप **स्ववशता से शाश्वत सुख प्रगट होता है।** इसकी व्याख्या विशेष (आयेगी)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

देखो! यह श्रुतज्ञान की क्रीड़ा का लोकोत्तर आनन्द!

अहा ! सर्वज्ञ की वाणी और सन्तों की वाणी, चैतन्यशक्ति के रहस्य खोलकर आत्मस्वभाव की सन्मुखता कराती है - ऐसी वाणी को पहचान कर उसमें क्रीड़ा करने से, उसका चिन्तन-मनन करने से ज्ञान के विशिष्ट संस्कार द्वारा आनन्द का प्रस्फुटन होता है, आनन्द का फब्बारा फुटता है, आनन्द का झरना झरता है। देखो, यह श्रुतज्ञान की क्रीड़ा का लोकोत्तर आनन्द! अभी जिसे श्रुत का भी निर्णय न हो, वह किसमें क्रीड़ा करेगा ? यहाँ तो जिसने प्राथमिक भूमिका में गमन किया है अर्थात् देव-शास्त्र-गुरु कैसे होते हैं, उसकी कुछ पहचान की है, वह जीव किस प्रकार आगे बढ़कर मोह का क्षय करता है और सम्यक्त्व प्रगट करता है, उसकी बात है।

भगवान ने द्रव्यश्रुत में ऐसी बात की है कि जिसके अभ्यास से आनन्द का फब्बारा फूटे। भगवान आत्मा में आनन्द का सरोवर भरा है, उसकी सन्मुखता के अभ्यास से एकाग्रता द्वारा आनन्द का फब्बारा फूटता है। चैतन्य-सरोवर में से अनुभूति में आनन्द का झरना बहता है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-४०

असोज शुक्ल ११, गुरुवार, दिनाङ्क १२-१०-१९७८
वचनामृत-३१४ से ३१५ प्रवचन-११७

वचनामृत, ३१४ (बोल) थोड़ी एक लाईन बाकी है परन्तु फिर से लेते हैं। यह आत्मा जो है, आत्मा, वह तो अखण्ड शुद्ध चैतन्यघन है। चैतन्यघन है, शुद्ध चैतन्यघन। इसमें जो कुछ यह दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम होते हैं, वह तो राग है, दुःख है, परन्तु जो भावेन्द्रिय है, उनसे खण्ड-खण्ड ज्ञान होता है, वह भी दुःख है। ऐसी सूक्ष्म बात है। शुभराग हो, व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, महाव्रत का राग या शास्त्र के पठन का विकल्प / राग, वह दुःखरूप है; वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है और वह धर्म भी नहीं है। आहा..हा..! इसके अतिरिक्त आत्मा में भावेन्द्रिय जो ज्ञान का उघाड़, एक समय की पर्याय में पर विषय को जानते हुए खण्ड-खण्ड ज्ञान ज्ञात होता है, वह भी... यह है न?

खण्ड-खण्डरूप ज्ञान का उपयोग भी परवशता है। आहा..हा..! अन्दर में जो ज्ञान की पर्याय वर्तमान भावेन्द्रिय द्वारा जो ज्ञात होती है, वह खण्ड-खण्ड ज्ञान है, वह भी परवशपने है; वह आत्मा का स्वरूप नहीं और वह दुःखरूप है। **परवश, सो दुःखी...** आहा..हा..! राग का भाव हो, व्यवहाररत्नत्रय का (भाव हो), वह तो दुःख है, राग है, वह आकुलता है परन्तु अन्दर ज्ञान की पर्याय में अखण्डरूप से जो ज्ञानस्वरूप भगवान में पर्याय में एक-एक विषय को जानने की भावेन्द्रिय से जानना, वह भी खण्ड-खण्ड ज्ञान और दुःखरूप है, वह अज्ञान है। आहा..हा..! राग, व्यवहाररत्नत्रय का राग भी अज्ञान है, अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं है। ऐसी बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म बात है। परन्तु यहाँ खण्ड-खण्ड ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान हो, आहा..हा..! भावेन्द्रिय द्वारा सुनकर भगवान को सुनकर या (शास्त्र को) पढ़कर ज्ञान हुआ, वह ज्ञान भी खण्ड-खण्ड ज्ञान है, आहा..हा..! वह परवश है। **सो दुःखी...** आहा..हा..! ऐसी बात है।

स्ववश, सो सुखी है। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप के आश्रय से, उसके आधीन होकर जो ज्ञान आदि हो, वह सम्यक् है, वह सुखी है। अब यह ऐसी व्याख्या। दुनिया को तो कठिन लगे, ऐसी बात है। **स्ववश, सो सुखी है। शुद्ध शाश्वत चैतन्यतत्त्व...** भगवान ज्ञान और आनन्दस्वरूप शुद्ध और शाश्वत, शुद्ध और शाश्वत नित्य प्रभु चैतन्य तत्त्व नित्यानन्द प्रभु आत्मा, भगवान ने-सर्वज्ञ ने कहा, वह यह आत्मा। वह शुद्ध और शाश्वत, नित्य ऐसे चैतन्यतत्त्व का आश्रय, उसका आश्रय लेने से स्ववशता हो। अरे! ऐसी भाषा। **स्ववशता से शाश्वत सुख प्रगट होता है।** उसमें भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। उस आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है, उसके आश्रय से जो स्ववशपना प्रगट होता है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसके आश्रय से (होते हैं), वह शाश्वत सुख का कारण है। आहा..! **शाश्वत सुख प्रगट होता है।** ऐसी व्याख्या।

आज आया है एक ज्ञानमती है न? नियमसार की तीसरी गाथा 'विपरीत के परिहार के लिये सार शब्द जोड़ा है' इसका अर्थ उसने ऐसा किया है, विपरीत अर्थात् मिथ्यात्व, उसका त्याग और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह समकित। ऐसा अर्थ किया है। अरे! प्रभु! क्या कहो? नियमसार की तीसरी गाथा। ऐसी बात तो बहुत जगह, दो-चार जगह आती है। व्यवहार आवश्यक से प्रतिपक्ष जितने व्यवहार विकल्प उठते हैं, सामायिक और चौबीस (तीर्थंकरों को) वन्दन और भगवान का (नाम स्मरण), वह सब विकल्प राग है, वह तो बंध का कारण है। उससे प्रतिपक्ष आत्मा का स्वभाव शुद्धचैतन्य के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हों, वह निश्चय आवश्यक और वह सुखरूप है। ऐसा है, भाई! बहुत कठिन काम। आहा..! दो, तीन, चार जगह आता है। विशेष आवश्यक से विरुद्ध-उसमें / टीका में आगे आता है। आहा..हा..! प्रतिक्रमण आवे शुरुआत, व्यवहार प्रतिक्रमण से विरुद्ध जो निश्चय है। अब वह तो... अरे! प्रभु! क्या करे? लोगों को अपनी दृष्टि से सिद्धान्त का अर्थ करना है। आहा..! व्यवहार जो दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह सब राग है; राग है, वह दु:ख है, उसे धर्म मानना और उससे धर्म होगा, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा..!

यहाँ यह कहते हैं, स्व शुद्धचैतन्य नित्यानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप जो त्रिकाली वस्तु, शुद्ध और शाश्वत, पवित्र और कायम रहनेवाला नित्य, ऐसा जो चैतन्यतत्त्व, उसके आश्रयरूप। आहा..हा..! उसका जिसने अवलम्बन लिया, वह स्ववश है, वह सुखी है।

अब ऐसी व्याख्या जगत को कठिन पड़ती है। क्या करे? अनन्त काल से (भटक रहा है)।

नियमसार में नहीं आता? भाई! कथनमात्र व्यवहार तो अनन्त बार किया है। यह अब ऐसे अर्थ करे, क्या हो? आहा..हा..! बाह्य का वेश और कुछ व्रत आदि के विकल्प (करे), वह भी नौवें ग्रैवेयक जाये, ऐसे विकल्प भी (अभी) कहाँ है? आहा..हा..! ऐसे शुभराग में धर्म मानना... आहा..हा..! (उसमें तो) मिथ्यात्व का पोषण है, भाई! पर के आश्रय से होनेवाले विकल्प / राग, वह पराधीनता, परवशता वह दुःखरूप, उसे धर्म मानना... आहा..हा..! वह तो मिथ्याश्रद्धा को अधिक पोषण देना है। जहर को पोषण देना है। आहा..हा..! कठिन काम है।

यहाँ तो शुद्ध शाश्वत् प्रभु नित्यानन्द आत्मा के आश्रय से... चैतन्य तत्त्व जो है, शुद्ध है, नित्य है। क्या? चैतन्यतत्त्व, आहा..हा..! उसके **आश्रयरूप स्ववशता से शाश्वत सुख प्रगट होता है।** जो अन्तर में शाश्वत सुख है, उसका आश्रय करने से पर्याय में वह शाश्वत सुख, वह प्रगट पर्याय में होता है। आहा..हा..! और इसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! अभी तो ऐसे झगड़े खड़े हुए हैं। व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्यवहार करो अर्थात् राग करो। व्रत और अपवास, त्याग और भगवान के दर्शन और पूजा (करो), यह तो सब राग है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। यह राग तो अनन्त बार किया है, यह कहीं धर्म नहीं है। आहा..हा..! तथा यह धर्म का कारण भी नहीं है। धर्म का कारण तो त्रिकाली शुद्ध शाश्वत् आत्मतत्त्व, वह धर्म का कारण है। आहा..हा..! ऐसी बात जँचे कैसे? वह यहाँ कहा, संक्षिप्त शब्द में (कहा है)। आहा..हा..! है न? यह बात ३१५ में विशेष कहते हैं।

द्रव्यदृष्टि शुद्ध अंतःतत्त्व का ही अवलम्बन करती है। निर्मल पर्याय भी बहिःतत्त्व है, उसका अवलम्बन द्रव्यदृष्टि में नहीं है॥३१५॥

३१५, **द्रव्यदृष्टि...** द्रव्य अर्थात् वस्तु, भगवान शुद्ध चैतन्यतत्त्व नित्य, उसकी जो दृष्टि होना। आहा..हा..! निमित्त की दृष्टि छोड़कर, राग की क्रिया के परिणाम की दृष्टि छोड़कर, एक समय की पर्याय की दृष्टि छोड़कर, आहा..हा..! द्रव्य जो चैतन्यमूर्ति शाश्वत्

ध्रुव भगवान है, उसकी दृष्टि करना। आहा..हा..! वह **द्रव्यदृष्टि शुद्ध अंतःतत्त्व का...** आहा..हा..! समझ में आया? शुद्ध चैतन्यतत्त्व भगवान आत्मा नित्य प्रभु (की दृष्टि)। आहा..हा..! प्रभु क्या कहते हैं? भाई!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। अनन्त काल में एक सेकेण्ड मात्र भी वस्तु-शुद्ध द्रव्य है - उसकी दृष्टि तूने कभी नहीं की। आहा..हा..! समझ में आया? बाकी तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्रों का ज्ञान... आहा..हा..! इस शास्त्र के ज्ञान को शास्त्र में शब्दज्ञान कहा है, भाई! और नव तत्त्व की श्रद्धा, उसे नव तत्त्व कहा है। वह आत्मतत्त्व नहीं है। आहा..हा..! नव तत्त्व की श्रद्धा, उस श्रद्धा को नव तत्त्व निमित्त हैं, इसलिए उसे नव तत्त्व कहा है। आहा..हा..! और पंच महाव्रत के परिणाम में पहला जो अहिंसाभाव, उसे छहकाय तत्त्व कहा है, क्योंकि छहकाय ऊपर इसके व्रत का लक्ष्य है, इसलिए वह छहकाय है, वह आत्मा नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें कठिन पड़ती है। अरे! इसने कभी (आत्मज्ञान नहीं किया)। बाहर से मानकर बैठा है कि हम कुछ व्रत करते हैं और उपवास करते हैं और भक्ति करते हैं और (उससे हमारा) कल्याण हो जायेगा। आहा..हा..! ऐसा का ऐसा अनन्त काल इसने परिभ्रमण किया है।

वह यहाँ कहते हैं, **द्रव्यदृष्टि...** द्रव्य अर्थात् वस्तु। द्रव्य अर्थात् पैसा नहीं। चैतन्य जो कायम रहनेवाली वस्तु, ...बदलते हैं, वे परिणाम हैं, बदलते हैं वे, परन्तु वह त्रिकाली जो वस्तु है, उसकी जो दृष्टि, वह **शुद्ध अंतःतत्त्व का ही अवलम्बन करती है।** वह सम्यग्दर्शन की दृष्टि-द्रव्यदृष्टि - तो एक शुद्ध अन्तःतत्त्व का ही आश्रय करती है, उसका अवलम्बन करती है। अरे! ऐसी बातें। ऐसी बातें हैं, बापू! आहा..हा..! अभी तो धर्म को नोंच डाला है। राग की क्रिया को धर्म मानना। यहाँ तो खण्ड-खण्ड ज्ञान है, वह अज्ञान है। राग है, वह अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं, चैतन्य नहीं। आहा..हा..!

यहाँ तो शुद्धदृष्टि, द्रव्यदृष्टि, सम्यग्दृष्टि, दृष्टि, द्रव्यदृष्टि, उस शुद्ध तत्त्व को अवलम्बती है। आहा..हा..! भगवान ज्ञायकमूर्ति सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह, हों! अज्ञानी आत्मा.. आत्मा.. करते हैं, वह नहीं। जिनेश्वरदेव ने, सर्वज्ञ प्रभु ने जो नित्य आत्मा देखा है, स्वयं तो अनुभव करके परमात्मा हुए, परन्तु स्वरूप उसका जिनबिम्ब है, ऐसी जो वस्तु, उसकी दृष्टि, वह शुद्ध अन्तर चैतन्यतत्त्व को ही अवलम्बती है। ऐसी बातें अब। प्रभु! क्या करे? मार्ग तो यह है, भाई! आहा..! इसने कभी किया नहीं, अभ्यास नहीं। आहा..हा..! जन्म-

मरण का अन्त लाने का उपाय तो यह है। आहा..हा..! शुद्ध चैतन्यतत्त्व त्रिकाली, उसका दृष्टि अवलम्बन करती है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : भाषा समझ में आये ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा समझ में आये ऐसी है, भाई! क्या हो? यहाँ तो वस्तु है न, वस्तु? वस्तु आत्मा वस्तु है न? और वस्तु है, उसमें अनन्त गुण बसे हुए, रहे हुए हैं न? वह वस्तु है न, त्रिकाली? जैसे द्रव्य त्रिकाली है, वैसे उसके अनन्त गुण, ज्ञान, दर्शन, आनन्द वह त्रिकाली हैं। आहा..हा..! ऐसा शुद्ध चैतन्य अन्त:तत्त्व, उसे सम्यग्दृष्टि अवलम्बता है। ऐसा है, बापू! क्या हो?

मुमुक्षु : भूतार्थ को अवलम्बता है.....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतार्थ को अवलम्बता है कहो या शुद्धदृष्टि को अवलम्बता है कहो, शुद्ध चैतन्यतत्त्व भूतार्थ जो त्रिकाल, वह तो नित्य कहा न? आहा..हा..! जो ज्ञायक चैतन्य प्रभु, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् ऐसी वाणी है, उसमें जो उत्पाद-व्यय होता है, वह तो पर्याय है और ध्रुव है, वह त्रिकाली चीज़ है। नित्य शाश्वत ध्रुव, वह शुद्ध चैतन्यतत्त्व ध्रुव, उसे द्रव्यदृष्टि, सम्यग्दृष्टि अवलम्बती है। आहा..हा..! दृष्टि का लक्ष्य और ध्येय द्रव्य पर जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! वीतरागमार्ग-परमेश्वर का मार्ग सूक्ष्म है, भाई! क्या हो? अभी तो बाहर में सब मनवा दिया है। परमात्मा का मार्ग दूसरा है। यह कहते हैं।

द्रव्यदृष्टि शुद्ध अन्त:तत्त्व ऐसा द्रव्य, उसे (अवलम्बती है)। द्रव्यदृष्टि कहा न? द्रव्य अर्थात् वस्तु। कैसी? कि शुद्ध अन्त: चैतन्यतत्त्व। उसे दृष्टि अवलम्बती है। आहा..हा..! **निर्मल पर्याय भी बहि:तत्त्व है,...** आहा..हा..! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव तो राग हैं, वह तो बहिरतत्त्व-विकारतत्त्व हैं, एक बात। रागी पर्याय जो राग पर्याय है, वह बहिरतत्त्व है परन्तु यहाँ तो निर्मल पर्याय शुद्ध चैतन्यद्रव्य जो ध्रुव, उसके अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, वह पर्याय भी बहिर्तत्त्व है, वस्तु अन्त:तत्त्व है।

मुमुक्षु : निर्मल तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल पर्याय भी बहिर्तत्त्व है। आहा..हा..! उसमें—नियमसार में तो यहाँ तक लिया है कि संवर, निर्जरा, केवलज्ञान, वह भी सब विनाशीक तत्त्व है,

पर्याय है न ? एक समय की पर्याय है, केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है, भाई ! संवर, निर्जरा, सच्चा संवर, हों ! मोक्ष का मार्ग, जो त्रिकाली द्रव्य को अवलम्ब कर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय हुई, वह पर्याय भी एक अंश है, बदलती है; इसलिए नाशवान है और इसीलिए त्रिकाली अन्त:तत्त्व की-ध्रुव की अपेक्षा से वह बहिर्तत्त्व है।

अरे रे ! क्या हो ? ऐसा कहाँ मिले ? ऐसा उपदेश यह वीतराग का उपदेश होगा ? हमने तो कन्दमूल खाना नहीं, दया पालना, व्रत करना, अपवास करना, देवदर्शन करना (यह जैनधर्म समझते थे)। अरे ! भगवान ! यह क्या है ? बापू ! यह तो राग की क्रिया है, भाई ! तुझे खबर नहीं। वह तो बहिर्तत्त्व है। आहा..हा.. ! वह राग की क्रिया तो बहिर्तत्त्व है, उससे धर्म मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। यहाँ तो अन्त:तत्त्व जो कायमी प्रभु, वीतराग जिनेश्वर वीतराग ने देखा वह आत्मा। अज्ञानी आत्मा-आत्मा बहुत अन्यमती वेदान्ती आदि करते हैं, वह नहीं। यहाँ तो परमेश्वर जिनेश्वर त्रिलोकनाथ जिसे आत्मा अनन्त है ध्रुव, (ऐसा कहा, वह आत्मा)। आहा..हा.. !

'प्रभु तुम जाणग रीति सो जग देखता हो लाल' भगवान से प्रार्थना करते हैं। भगवान विराजते हैं, महाविदेह में तीर्थंकररूप से विराजते हैं, अभी समवसरण में (विराजते हैं), हों ! महाविदेह।

प्रभु तुम जाणग रीति सो जग देखता हो लाल
निज सत्ताअे शुद्ध अमने पेखता हो लाल।

हे नाथ ! हे सर्वज्ञ परमात्मा ! आप तीन काल, तीन लोक जानते हो और हमारे अन्दर आत्मा की निज सत्ता शुद्ध और परम ब्रह्मात्मा को आत्मा जानते हो। उसे प्रभु आप आत्मा जानते हो। आहा..हा.. ! 'निज सत्ता से शुद्ध' अपनी सत्ता शुद्ध है, ऐसे भगवान आत्मा को—प्रत्येक आत्मा को देखते हैं। इसी प्रकार यह भगवान देखते हैं, वैसा तू जब अन्दर देखेगा... आहा..हा.. ! वह निज सत्ता अपना अस्तित्व भगवान स्वयं अपने से अस्तित्व, कायमी चीज़... आहा..हा.. ! उसे दृष्टि अवलम्बे, परन्तु जो दृष्टि हुई... आहा..हा.. ! अनित्य, वह नित्य का निर्णय करे। सम्यग्दर्शन आदि पर्याय अनित्य है, (एक) समय की है, वह नित्य का-प्रभु नित्य है, उसका निर्णय करती है। उस द्रव्य के आश्रय से (पर्याय) होती है, तथापि वह पर्याय अनित्य है। एक समय टिकती है, दूसरे समय नहीं। भगवान आत्मा त्रिकाली, त्रिकाल ध्रुव, ध्रुवबिम्ब पड़ा है। आहा..हा.. ! अरे ! ऐसी बात कहाँ है ?

चौरासी के अवतार में, भाई! कर-करके मर गया। भाई! वहाँ नियमसार में तो कहा है, जिसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं, वह कथनमात्र है, कहनेमात्र है, वह कोई वस्तु नहीं। ऐसा अनन्त बार तूने किया है।

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

आहा..हा..! अनन्त बार मुनिपना लिया, दिगम्बर मुनि, पंच महाव्रत (अंगीकार किया) हजारों रानियाँ छोड़कर। आहा..हा..! 'मुनिव्रत धार अनन्त ग्रीवक उपजायो' नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया परन्तु आत्मज्ञान नहीं। आत्मज्ञान अर्थात् पर्याय का ज्ञान नहीं, राग का नहीं, निमित्त का नहीं; त्रिकाल का (ज्ञान)। आहा..हा..! उस 'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' ये पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, वह दुःख है, आस्रव है, दुःख है। आहा..हा..! यह कैसे जँचे? लोगों को लगे, हों! ऐसा कठिन बेचारों को। एकान्त है, एकान्त है, ऐसा कहे। वस्तु की खबर नहीं न, वे कहे, हों! 'जिसमें जितनी बुद्धि है, उतनो दिये बताये, वाको बुरो न मानिये और कहाँ से लाये।' जिसे चीज़ की खबर ही नहीं, वह क्या करे? आहा..!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा। सत्—शाश्वत, चिदानन्द—चिद, ज्ञान और आनन्द, ऐसा जो चैतन्य तत्त्व। आहा..हा..! उसे दृष्टि अवलम्बती है। **निर्मल पर्याय भी बहिःतत्त्व है,...** आहा..हा..! यह संवर-निर्जरा की पर्याय सम्यग्दर्शन हुई, परन्तु वह पर्याय है, वह त्रिकाली अन्तःतत्त्व की अपेक्षा से बहिःतत्त्व है। आहा..हा..! अरे! ऐसा? ऐसा तो बेचारे लोगों को कठिन पड़े, सुना नहीं न। कठिन पड़े, क्या हो? भाई! वीतराग तीन लोक के नाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, भाई! आहा..हा..! तू रंक नहीं है, तू एक राग नहीं है परन्तु तू एक समय की पर्याय जितना भी नहीं है। आहा..हा..!

वह निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय... आहा..हा..! वह वीतरागी पर्याय है। व्यवहाररत्नत्रय की पर्याय तो राग है परन्तु यह तो भगवान चैतन्यद्रव्य त्रिकाली शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन से हुआ मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय है। वह अन्तःतत्त्व जो कायम रहनेवाला (तत्त्व है), उसकी अपेक्षा से वह मोक्ष का मार्ग जो सच्चा निश्चय प्रगट हुआ है, वह भी बहिःतत्त्व है। पाटनीजी! ऐसी बातें हैं।

नियमसार में (शुद्धभाव अधिकार की) पहली गाथा में कहा है कि जीवतत्त्व के

अतिरिक्त जितने तत्त्व हैं—जीव की एक समय की पर्याय, आस्रव, पुण्य-पाप, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष, यह सब पर्यायें हैं, वे नाशवान हैं। अविनाशी तो भगवान त्रिकाली ध्रुव है, वह अविनाशी है। अरे! ऐसी बातें। उसके दो भाग - आत्मा के दो भाग हैं, एक निर्मल पर्याय और एक त्रिकाली अन्त:तत्त्व। आहा..! वह अन्त:तत्त्व जो चिद्‌घन आनन्दकन्द प्रभु, अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त ज्ञान का सागर समुद्र प्रभु अन्दर है, वह अन्त:तत्त्व है। वह कायम रहने की अपेक्षा से अन्त:तत्त्व और उसकी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र हुआ, सच्चा, हों! यह व्रत, तप लेकर हुआ वह चारित्र, चारित्र है ही नहीं। चारित्र तो अन्तर आनन्दकन्द में रमणता, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप नित्य प्रभु में रमणता (हो), वह चारित्र की पर्याय भी बहि:तत्त्व है, अन्तर की अपेक्षा से (बहि:तत्त्व है)। पर की अपेक्षा से अपना तत्त्व है परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से बहि:तत्त्व है। आहा..हा..! अरे! ऐसा स्वरूप, अरे! सुनने को मिले नहीं, वह कब करे और कब (तिरे)? जिन्दगी चली जाती है। आहा..हा..!

निर्मल पर्याय भी... भी क्यों कहा? कि रागादि तो बहि:तत्त्व है ही। यह शरीर, वाणी, मन, देव-गुरु-शास्त्र, वह तो बहि:तत्त्व है ही। समझ में आया? अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, वह तो बहि:तत्त्व है, वह कहीं चैतन्य तत्त्व नहीं है तथा इस राग को जाननेवाली पर्याय और त्रिकाल को जाननेवाली पर्याय, वह पर्याय भी बहि:तत्त्व है, बाहर है। वह पर्याय अन्दर में प्रवेश नहीं करती, वह पर्याय भी ध्रुव के ऊपर, जैसे पानी में तेल होता है, वह तेल ऊपर-ऊपर रहता है, अन्दर प्रविष्ट नहीं होता; वैसे ही भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु में निर्मल पर्याय अन्दर में प्रवेश नहीं करती; इसलिए अन्त:तत्त्व की अपेक्षा से उस पर्याय को बहि:तत्त्व कहा जाता है। आहा..हा..!

मुमुक्षु: प्रवचनसार में तो पर्याय को अन्तर्लीन कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्लीन का अर्थ—स्वरूप-सन्मुख एकाग्रता, परन्तु ध्रुव में घुस गयी है, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म, बापू! आहा..हा..! वीतरागमार्ग परमेश्वर का पन्थ कोई अलौकिक है। वह कहीं है ही नहीं। आहा..हा..!

राग, दया, दान, व्रत आदि का राग तो बहि:तत्त्व है, विकारी पुण्य-पाप शरीर, वाणी, मन, कर्म और देव-गुरु-शास्त्र तथा स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो जीव की अपेक्षा से बहि:तत्त्व है परन्तु यहाँ तो त्रिकाली ज्ञायकभाव के अवलम्बन से जो कुछ निर्मल पर्याय

/ मोक्ष का मार्ग हुआ, उस पर्याय की अवधि एकसमय की और भगवान की—ध्रुव की अवधि त्रिकाली है। इसलिए वह बहि:तत्त्व उसे (पर्याय को) कहा जाता है। अरे रे! ऐसी बातें हैं। धर्म अर्थात् मोक्ष का मार्ग वह बहि:तत्त्व है, और भगवान अन्दर त्रिकाली वस्तु है, वह अन्त:तत्त्व है। ऐसा है, भाई! क्या हो? साधारण प्राणी को तो किसी प्रकार नहीं जँचे, बहुत कठिन लगे। अरे! यह व्रत करना, तप करना, भक्ति, पूजा, दान, वह तो राग है, राग बहि:तत्त्व है।

मुमुक्षु : आगम का व्यवहार सरल लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सरल। कहा न कि वह तो अनादि से अनन्त बार किया है, वह तो राग की क्रिया है, भाई! यह तो अध्यात्म का व्यवहार अर्थात् चैतन्य भगवान जो त्रिकाली भगवान प्रभु जिनस्वरूपी है।

जिन सो ही है आत्मा अन्य सो ही है कर्म
यही वचन से समझ लो जिन प्रवचन का मर्म।

कठिन है, बापू! क्या हो? 'जिन सो ही है आत्मा' वीतरागी स्वरूप, वीतरागी स्वरूपबिम्ब वह त्रिकाल आत्मा। उसके अवलम्बन से जो पर्याय प्रगटी, भले वीतरागी पर्याय प्रगटी, परन्तु वह वीतरागी पर्याय एक समय की मर्यादापूर्वक की है। भगवान अन्दर वस्तु ध्रुव अन्त:तत्त्व त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु है। इस अपेक्षा से निर्मल पर्याय को भी अन्त:तत्त्व से, ध्रुवतत्त्व से पर्याय का एक समय का परिणमन भिन्न तत्त्व गिनने में आया है। आहा..हा..! ऐसी बात है, भाई! क्या हो? पागल जैसा लगे ऐसा है। यह क्या कहते हैं यह तो? बापू! क्या करें? वीतराग तीन लोक के नाथ की तो यह कथनी है। भगवान परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ से आयी हुई यह वाणी है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..ही..! गजब बात है न!

यह शरीर, वाणी, मन, जड़ तो बहि:तत्त्व अर्थात् आत्मा की पर्याय में भी वह तो नहीं है। यह क्या कहा? प्रभु! यह शरीर, वाणी, मन, तो मिट्टी, धूल, जड़ है यह तो। यह तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं है। कर्म अन्दर जड़ है, वे भी आत्मा की पर्याय में भी नहीं है। यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव-गुरु-शास्त्र हैं, वे आत्मा की पर्याय में भी नहीं हैं। अजितभाई! ऐसा काम है। वे रुपये पुण्य के कारण झट मिल गये। यह तो कठिन बात है। अजित है न? हसमुख आया? देरी से आया। हीराभाई आया। सुनने योग्य था। आहा..हा..!

प्रभु! एक बार सुन तो (सही), नाथ! तेरे घर की बात है। आहा..हा..! क्या कहा? देरी हो गयी? आहा..हा..! एक बार सुनो, प्रभु! अन्दर जो तत्त्व है, उसे भगवान आत्मा कहते हैं। जो शाश्वत अन्तःतत्त्व, जो ध्रुव (रहता है), उसे भगवान, भगवान आत्मा कहते हैं। आहा..हा..! भगवान तीन लोक के नाथ परमेश्वर वीतरागदेव वे तीन काल का रहा हुआ तत्त्व अन्तः ध्रुव, वह भगवान स्वरूप है, ऐसा कहते हैं और उसके - तत्त्व के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उस त्रिकाल तत्त्व की अपेक्षा से पर्याय को बहिःतत्त्व कहते हैं। हीराभाई! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहा..हा..!

क्या कहा? प्रभु! तेरी प्रभुता से भरपूर भगवान अन्दर है, उसमें प्रभु (प्रभुत्व) नाम की शक्ति है, भगवान तो ऐसा कहते हैं, ईश्वर नाम की शक्ति है। वह ईश्वर कर्ता, वह नहीं, हों! स्वयं अन्दर ईश्वरस्वरूप है। आहा..हा..! वह तो एक गुण है और एक गुण के कारण दूसरे गुण में रूप है तो सब गुण ईश्वरस्वरूप है। आहा..! और यह आ गया। सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा कहा, वह कुन्दकुन्दाचार्य मुनि भगवान की बात है, उसे आड़तियारूप से प्रसिद्ध करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त संवत् ४९ (में विदेहक्षेत्र में गये थे)।

मुमुक्षु : यहाँ तो बहिनश्री प्रसिद्ध करती हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी तो उनकी वाणी है। वहाँ से आयी हुई है न? सूक्ष्म बात है। आहा..हा..! भगवान कहे या सम्यग्दृष्टि कहे या पंचम गुणस्थानवाला कहे, या छठे गुणस्थानवाला (कहे), सब एक तत्त्व एक सरीखा ही होता है। स्थिरता में अन्तर है, वस्तु तत्त्व में अन्तर नहीं होता। आहा..हा..! क्या कहा? ३१५ आया न?

द्रव्यदृष्टि शुद्ध अंतःतत्त्व का ही.... यह वजन यहाँ है। भगवान आत्मा की सम्यग्दृष्टि जो है, वह सम्यग्दृष्टि, द्रव्यदृष्टि द्रव्य को पकड़ती है, द्रव्य को-त्रिकाल को अवलम्बती है। पर्याय, पर्याय को अवलम्बती नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय, पर्याय को अवलम्बती नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय, उसका विषय पर्याय नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय का विषय त्रिकाली ध्रुव है। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन जो धर्म की पहली सीढ़ी, पहला सोपान... आहा..हा..! वह निर्मल आनन्दसहित की पर्याय है। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय, उसे सम्यग्दर्शन का पर्याय का विषय नहीं है। दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की पर्याय विषय नहीं है परन्तु उस सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु है। आहा..हा..!

'अप्पा सो परमप्पा' आत्मा वह परमात्मस्वरूप ही अन्दर है। आहा..हा..! भारी

कठिन लगे। यहाँ दो बीड़ी पीवे तो मुश्किल से दस्त उतरे, ऐसे अपलक्षण इसे, उसे ऐसा कहना। अब यह जँचे किस प्रकार ? आहा..हा.. ! और पाँच-पचास हजार, दो लाख, पाँच लाख मिले तो मानो कि ओहो..हो.. ! प्रसन्न... प्रसन्न.. (हो जाता है और कहता है कि) आज लापसी बनाओ। ऐसे अपलक्षण। अब उसे आत्मा ऐसा है, यह कैसे जँचे ? आहा..हा.. !

भाई ! तू तो है वह है, बापू ! आनन्द का कन्द है, सच्चिदानन्द है, परम अमृत का पिण्ड है। आहा..हा.. ! उस तत्त्व को अवलम्बन करनेवाली दृष्टि—सम्यग्दृष्टि, वह द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट होती है परन्तु प्रगट हुई पर्याय है, वह त्रिकाली ध्रुव के आश्रय से भले प्रगटी, परन्तु प्रगट हुई पर्याय वह त्रिकाली ध्रुव से भिन्न तत्त्व है; इसलिए उस पर्याय को बहि:तत्त्व कहा जाता है। आहा..हा.. ! हीराभाई ! इसमें तुम्हारे पैसे-वैसे का तो कुछ (काम नहीं)। आहा..हा.. ! पैसा बहुत देते हैं। अस्सी हजार दिये थे, नहीं ? अभी सूत्र में वहाँ। तीस हजार हम वहाँ थे और दिये थे। पच्चीस हजार और दिये थे अभी वहाँ यात्रा गये थे न ? पौन्नूर हिल, वहाँ पच्चीस हजार दिये थे। इनकी ओर से शास्त्र है न ? भावनगर, वीतराग सत्साहित्य (प्रसारक ट्रस्ट) इनकी ओर से है। पैसा बहुत देते हैं, उसमें अस्सी-अस्सी हजार, तीस हजार-तीस हजार (देते हैं) परन्तु यह सब लक्ष्मी का भाव (राग है)। वह पैसा कहीं आत्मा का नहीं है और वह पैसा दिया, उसमें शुभभाव ऐसा होवे तो पुण्य है, धर्म नहीं। करोड़ और अरब रुपये दे तो भी धूल है, धर्म नहीं। आहा..हा.. ! बैंगलोर के भाई आये थे या नहीं ? बैंगलोर, बैंगलोर में पन्द्रह लाख का मन्दिर। बैंगलोर के मुमुक्षु की ओर से हुआ है न ! बारह लाख का तब था, अभी पन्द्रह लाख का किया। मन्दिर देखो तो ऐसा... ! परन्तु बात यह है कि वह तो जड़ की पर्याय जड़ से हुई है, यदि बनानेवाले का भाव शुभ हो तो पुण्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी में गया है कब ? पैसा कहाँ इसका था ? वह तो जड़ का है। पैसा तो जड़ है, पुद्गल है, मिट्टी है, अजीव है। इस जीव के हैं वे पैसे ? अजीव, जीव का है ? यहाँ तो राग जीव का नहीं। अरे ! निर्मल पर्याय भी त्रिकाल तत्त्व की नहीं। ऐसी बातें ! भगवान ! कठिन है, बापू ! यह पाचन-पाचन करना बहुत मुश्किल है, बापू ! हमने तो लाखों करोड़ों लोगों को देखा है न, पूरे हिन्दुस्तान में दस-दस हजार मील तीन बार घूमे हैं। सब देखा है। यह मार्ग कोई अलग प्रकार का है, बापू ! आहा..हा.. !

यहाँ तो कहते हैं, लक्ष्मी तो बहि:तत्त्व है, उसका मालिक तो आत्मा है ही नहीं और राग भी होता है, उसका ज्ञान की अपेक्षा से अपनी पर्याय है, इसलिए मालिक कहा जाता है, परन्तु दृष्टि की अपेक्षा से उसका मालिक यह (आत्मा) नहीं है। आहा..हा..! इसके अतिरिक्त भगवान शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु को दृष्टि का विषय बनाकर जो पर्याय प्रगट हुई, धर्म-सम्यग्दर्शन धर्म, सम्यग्ज्ञान धर्म, उसके अवलम्बन से जो स्थिरता / चारित्र हुआ, वे दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उस निर्विकल्प के आनन्दसहित की दशा हुई, वह पर्याय तत्त्व है। वह त्रिकाली ज्ञायकतत्त्व की अपेक्षा से बहि:तत्त्व है। आहा..हा..! यह शरीर तो मिट्टी है, धूल है। पैसा, मिट्टी-धूल, स्त्री-पुत्र का शरीर धूल, उनका आत्मा भी पर, वह तो इसकी अपेक्षा से तो सब बहि:तत्त्व है, इसमें वे हैं नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : लोकोत्तर अपेक्षा से तो बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागलपन की अपेक्षा से माने इसके, पागल की अपेक्षा से। आहा..हा..! इसके हों तो भिन्न नहीं पड़ें; भिन्न पड़ें, वे इसके नहीं। आहा..हा..! यहाँ तो एक समय की पर्याय भी अनित्य है, नाशवान है; इसलिए त्रिकाली की अपेक्षा से उसे बहि:तत्त्व कहा, प्रभु! आहा..हा..! भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द की खान आत्मा खजाना है। ऐसा जिस दृष्टि ने स्वीकार किया, इसकी पर्याय ने स्वीकार किया और उसमें रमणता का अंश आया, वे तीनों तत्त्व की पर्याय है, वह चैतन्य त्रिकाली की अपेक्षा से उसे बहि:तत्त्व (कहा)। अन्त:तत्त्व त्रिकाली ध्रुव है; पर्याय को बहि:तत्त्व कहा जाता है। आहा..हा..! ऐसा है। पागल कहे ऐसा है। यह तो ऐसी बातें कैसी? प्रभु! सुन, भाई! यह वीतराग का मार्ग बहुत कठिन है, बापू! लोगों को सुनने को मिलता नहीं। आहा..हा..!

यह पैसा, पन्द्रह लाख का मन्दिर अभी बनानेवाले हैं। अफ्रीका में अजितभाई और ये सब हैं न पैसेवाले गृहस्थ! पन्द्रह लाख, ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारह को मुहूर्त हुआ है। नैरोबी, अफ्रीका। दो हजार वर्ष में वहाँ दिगम्बर धर्म नहीं था। (मन्दिर) एक-डेढ़ वर्ष में तैयार होगा, वहाँ आने की प्रार्थना करेंगे। अब क्या होता है (देखेंगे)। अब शरीर को ८९ वर्ष हो गये हैं। अजितभाई! शरीर को ८९ (हुए) नब्बे में एक कम। यह तो दिखाव सुन्दर अच्छा लगता है परन्तु है सब (ऐसा) और भोजन में कुछ दम नहीं होता। चार पतले फुल्के और घी लगाया हुआ। घी नहीं, पकवान पावभर नहीं। शरीर ऐसा पहले से कोमल है न, अब

तो ८९ (हुए)। यह नब्बेवाँ लगेगा, वैशाख शुक्ल दूज। आहा..हा.. ! वह परद्रव्य है, बापू! उसका रहना, न रहना, उसकी गति उससे होती है। आहा..हा.. ! उसकी गति होनी होगी तो होगी। आहा..हा.. ! इस आत्मा को विकल्प आवे कि मैं ऐसे जाऊँ, इसलिए (क्षेत्रान्तर) होता है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। वह तो जड़ की पर्याय है, जिस क्षण में जो पर्याय उत्पन्न हो, उसका जन्म काल है, उत्पत्ति का काल है, उसके कारण वह उत्पन्न होती है। आहा..हा.. !

यहाँ भी सम्यग्दर्शन—सम्यग्ज्ञान, वह त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन से हुआ, वह भी उसकी उत्पत्ति का काल था। अरे! यह कौन (माने) ? क्या कहते हैं यह ? समझ में आया ? धर्म दशा—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, निर्विकल्प आनन्द की दशा, वह भी उसकी उत्पत्ति का काल था, इसलिए हुई; द्रव्य का आश्रय कहने में आता है, अवलम्बन कहने में आता है। आहा..हा.. ! पुरुषार्थ है इसमें, हों! आहा..हा.. ! भगवान त्रिकाल द्रव्यस्वरूप की ओर का झुकाव (होना, इसमें) कितना पुरुषार्थ है! राग की क्रिया के लक्ष्य में से छूटकर पूर्णानन्द का नाथ खजाना-निधान भरा है, उस ओर का झुकाव (होने में) बहुत पुरुषार्थ है, भाई! आहा.. ! उस पुरुषार्थ की पर्याय भी.. आहा..हा.. ! हीराभाई! ठीक आये ये सब समय पर, परन्तु जरा देरी हो गयी। आहा..हा.. ! हसमुखभाई है न ? कहा था आते हैं। मुम्बई में इनकी दुकान चलती है। दो-तीन लाख की आमदनी है, लोहे का व्यापार है। दुकान छोड़ दी, बन्द कर दी। दो भाईयों को सौंप दिया। ४२ वर्ष की उम्र है। दुकान चलती थी, दो-तीन लाख की आमदनी, भाई विरोध करने लगे कि हमारी दुकान तुम्हारी दुकान है। तुम छोड़ (देते हो) ? बापू! मुझे चौथा भाग (दो) परन्तु अब मैं दुकान पर नहीं आनेवाला। पाँच लाख दिये, भाईयों ने। अलग (हो गये)। कुछ करता नहीं। दुकान, धन्धा-बन्धा अब कुछ नहीं। यह पढ़ना और सुनना और शास्त्र (स्वाध्याय करना)। ४२ वर्ष की उम्र है, एक लड़की और लड़का है। इसके अभ्यास के लिये यह निवृत्ति है। आहा..हा.. ! अरे रे! कभी किया नहीं, प्रभु! आहा..हा.. !

यहाँ तो कहते हैं, राग से निवृते वह पर्याय और द्रव्य के अवलम्बन से हो, वह पर्याय भी बहि:तत्त्व है। अरे रे! यह तो कुछ बात! और उस बहि:तत्त्व के आश्रय से शुद्धि बढ़े, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, परन्तु पश्चात् जो शुद्धि-चारित्र की विशेष शुद्धि होना, वह पर्याय के आश्रय से नहीं होती। अन्तर ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से शुद्धि की

वृद्धि (होती है)। त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से शुद्धि की उत्पत्ति, त्रिकाली ज्ञायक की अपेक्षा से शुद्धि का टिकना, त्रिकाली ज्ञायक की अपेक्षा से शुद्धि का बढ़ना (होता है)। अरे! लोग कहाँ का कहाँ करके बैठे हैं अभी। आहा..हा..! समझ में आया? कुछ क्या समझ में आया अर्थात्? पद्धति क्या कही जाती है इतना। समझ जाये, तब तो निहाल हो जाये। आहा..हा..! अरे! भाई! ऐसा अवसर मिला। इन शब्दों-दो लाइनों में बहुत भरा है।

निर्मल पर्याय भी बहि:तत्त्व है,... भी क्यों कहा? कि दूसरे तत्त्व तो बाह्य तत्त्व हैं ही। शरीर, वाणी, मन, कर्म, वह तो बहि:तत्त्व है, वे तो तेरी पर्याय में भी नहीं है, परन्तु तेरी पर्याय में जो निर्मलपर्याय हुई, वह भी बहि:तत्त्व कहने में आती है। त्रिकाली की अपेक्षा से (बहि:तत्त्व) कहने में आती है। आहा..हा..! उपदेश की पराकाष्ठा है। आहा..हा..! ये भगवान के वचन हैं। उस बहि:तत्त्व के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि नहीं होती, बहि:तत्त्व के आश्रय से शुद्धि नहीं टिकती और त्रैकालिक के आश्रय से टिकती है, त्रैकालिक के आश्रय से बढ़ती है और त्रैकालिक के आश्रय से उत्पन्न होती है। ...भाई! ऐसा वहाँ कहाँ है कलकत्ता में? बापू! यह करना है, भाई! ऐसा मनुष्य देह मिला, उसमें जैन कुल में जन्म और ऐसी बात सुनने को मिले, प्रभु! आहा..हा..!

निर्मल पर्याय भी... भी का अर्थ यह। शरीर, कर्म तो आत्मा में है ही नहीं। आत्मा की पर्याय में वे कर्म नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, स्त्री नहीं, कुटुम्ब नहीं, देव-गुरु और शास्त्र नहीं। आत्मा की पर्याय में वे तत्त्व नहीं। इसलिए देव-गुरु और शास्त्र भी आत्मा की पर्याय के तत्त्व की अपेक्षा से बहि:तत्त्व है, परन्तु यहाँ सम्यग्दर्शन की पर्याय स्वद्रव्य के अवलम्बन से हुई, वह पर्याय भी त्रिकाली की अपेक्षा से... यह (त्रिकाली) अन्त:तत्त्व तो उसे (पर्याय को) बहि:तत्त्व कहा जाता है। भेदज्ञान की पराकाष्ठा है, प्रभु! आहा..हा..! यहाँ तो कुछ थोड़ा आवे, कुछ राग की मन्दता हो तो ऐसा मान लेता है कि अब अपन धर्मी हो गये हैं। भाई! जीवन चला जाता है प्रभु! ऐसे तो अनन्त बार पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण लिये, आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया। बापू! ऐसा तो अनन्त बार किया है। वह तो सब राग की क्रिया है, भाई! तुझे खबर नहीं। वह तो बहि:तत्त्व मैल (मलिन) तत्त्व, बहि:तत्त्व मैल तत्त्व है। परन्तु यहाँ भगवान के अवलम्बन से जो निर्मल पर्याय हुई, वह बहि:तत्त्व है, वह निर्मल बहि:तत्त्व है, पहला (रागादि) मलिन बहि:तत्त्व है। आहा..हा..! क्या होगा यह? भाई!

आत्मा में उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, यह तो तत्त्वार्थसूत्र का वचन है। दसलक्षणी पर्व में बहुत चलता है परन्तु मूल तत्त्व की खबर नहीं होती। उसमें यह व्रत करो और इस दसलक्षणी पर्व में यह अपवास करो और इतने इसमें करो, बस! यह तो सब बहि:तत्त्व के राग की बातें हैं, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..!

चैतन्य ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु जो अनादि-अनन्त शुद्धतत्त्व है, उसे यहाँ अन्त:तत्त्व कहते हैं, अन्त:तत्त्व; और उसका अवलम्बन कर जो कुछ मोक्ष का मार्ग—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—जो निर्विकल्प आनन्द की पर्यायसहित (प्रगट हो), उसे भी त्रिकाली आनन्द के अन्त:तत्त्व की अपेक्षा से बहि:तत्त्व कहा गया है। आहा..हा..! कहो, विमलचन्दजी! झाँझरी गये लगते हैं। आहा..हा..! यह क्या होगा ऐसा? इसकी पर्याय, वह बहि:तत्त्व! आहा..हा..!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि जैसे शरीर, वाणी, मन, कर्म, देव-गुरु-शास्त्र बहि:तत्त्व है तो उनके आश्रय से समकित नहीं होगा और राग वह बहि:तत्त्व है, उसके आश्रय से समकित नहीं होगा परन्तु सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, उसके आश्रय से शुद्धि नहीं होगी। आहा..हा..! शुद्धि की उत्पत्ति त्रिकाली के अवलम्बन से (होगी), शुद्धि का टिकना भी त्रिकाली के अवलम्बन से, शुद्धि का बढ़ना भी त्रिकाली के अवलम्बन से (होगा)। समझ में आया? आहा..हा..!

उसका अवलम्बन द्रव्यदृष्टि में नहीं है। सम्यग्दर्शन आदि की पर्याय (हुई) परन्तु द्रव्यदृष्टि में उसका अवलम्बन नहीं है; द्रव्यदृष्टि में द्रव्य का अवलम्बन है। आहा..हा..! यह मार्ग वीतराग का होगा ऐसा? दया पालना, उपवास करना, तपस्या करना, लो 'एक बार वंदे जो कोई' सम्मेदशिखर की यात्रा करे... अरे! प्रभु! बड़ा सम्मेदशिखर प्रभु तू है अन्दर। उसकी यात्रा उसकी पर्याय में प्रगट कर। वह पर्याय भी त्रिकाली की अपेक्षा से बदलता, अवधिवाला और बाह्य (तत्त्व है)। आहा..हा..! ३१५ हुआ न? लो! आज तो एक तत्त्व चला पूरा। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

असोज शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनाङ्क १३-१०-१९७८
वचनामृत-३१६ से ३१८ प्रवचन-११८

अपनी महिमा ही अपने को तारती है। बाहरी भक्ति-महिमा से नहीं परन्तु चैतन्य की परिणति में चैतन्य की निज महिमा से तरा जाता है। चैतन्य की महिमावन्त को भगवान की सच्ची महिमा होती है। अथवा भगवान की महिमा समझना, वह निज चैतन्य-महिमा को समझने में निमित्त होता है॥३१६॥

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है, उसकी अन्दर में महिमा हो तो आत्मा के तिरने का उपाय हाथ आता है। है ? **अपनी महिमा ही...** अन्दर जो दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव आवें, वह शुभभाव है। उसकी महिमा आती है, वह मिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बात है, भाई ! अपना निजस्वरूप नित्यानन्द प्रभु, सहजात्मस्वरूप जो ज्ञायकभाव है, उसकी महिमा आवे तो सम्यग्दर्शन होता है, तो तिरने का उपाय उसे हाथ लगता है। आहा..हा.. ! ऐसी बात है।

बाहरी भक्ति-महिमा से नहीं... भगवान की भक्ति हो या प्रतिमा धारना, विकल्प-राग हो, उसकी महिमा से आत्मा का धर्म नहीं होता। आहा..हा.. ! ऐसी बात है, प्रभु ! बहुत सूक्ष्म बात है। आहा..हा.. ! क्यों ? कि आत्मा ज्ञायकस्वभाव से भरपूर (पदार्थ), वह दया, दान, व्रत, प्रतिमा या भक्ति के विकल्प, वास्तव में तो उनसे मुक्ति-भिन्न है। समझ में आया ? आत्मा चैतन्य ज्ञायकमूर्ति प्रभु शुद्ध ज्ञानघन से पुण्य के परिणाम जो दया, दान, व्रत आदि के विकल्प हैं, वे तो आत्मा के स्वभाव से भिन्न पड़े हैं, भिन्न पड़े हैं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : भिन्न या विरुद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न पड़े हैं, पृथक् पड़े हैं। अपने स्वभाव में है नहीं। आहा..हा.. ! ऐसी बात सूक्ष्म, भाई !

वैसे तो अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया, पंच महाव्रत लिये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, वह तो सब राग की क्रिया है। आहा..हा..! उस राग की क्रिया की महिमा के कारण अपने सम्यग्दर्शनस्वरूप की महिमा नहीं आयी। आहा..हा..! है? **भक्ति-महिमा से...** भगवान की भक्ति, तीर्थंकर त्रिलोकनाथ की प्रतिमा, मूर्ति या साक्षात् भगवान की भक्ति भी राग है। आहा..हा..! उनकी **महिमा से नहीं...** उनकी महिमा से अपना सम्यग्दर्शन-तरण उपाय प्रगटेगा नहीं। ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? जगत कहाँ का कहाँ पड़ा है और वस्तु कहाँ पड़ी है! आहा..हा..!

ज्ञायकस्वरूप चैतन्यदल, शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है, उसकी महिमा न आकर इन भक्ति आदि बाहर परमात्मा की भक्ति या व्रत या अपवास का विकल्प जो राग है, उसकी महिमा से अपनी महिमा नहीं आती। आहा..हा..! ऐसी बात है। लोगों को कठिन लगती है, क्या करे?

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।

अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया, दिगम्बर हुआ, हजारों रानियों का त्याग किया, द्रव्यलिंग नग्न धारण किया, अट्ठाईस मूलगुण महाव्रत आदि पालन किये परन्तु वह तो राग है, प्रभु! प्रभु! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! उस राग की क्रिया से ज्ञायकस्वरूप भगवान भिन्न है, पृथक् पड़ा है। एकत्व नहीं है। एकत्व माना है। आहा..हा..! समझ में आया?

ज्ञायकस्वरूप भगवान प्रभु सच्चिदानन्द सहजात्मस्वरूप ध्रुव चैतन्य की महिमा, उसकी महत्ता, वह राग से भिन्न-अधिक-भिन्न होकर अपनी महिमा जब में जाये, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! ऐसी बात है। **भक्ति-महिमा से नहीं...** भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की साक्षात् समवसरण में भक्ति अनन्त बार की। समवसरण में मणिरत्न के थाल, कल्पवृक्ष के फूल, हीरा के थाल, मणिरत्न के दीपक (से पूजा की)। समवसरण में महाविदेहक्षेत्र में, अनन्त बार जन्मा है और वहाँ समवसरण में अनन्त बार गया है और अनन्त बार वहाँ भगवान की भक्ति से आरती भी उतारी है, परन्तु वह तो शुभराग है। जब तक उसकी महिमा आती है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! ऐसी कठिन बातें, भाई!

अन्तर भगवान शुभराग के, विकल्प के छिलके से भगवान अन्दर भिन्न है। अरे! कैसे जँचे? अन्तर्मुख दृष्टि करने पर, बाह्य विकल्प आदि राग की दृष्टि छोड़कर.. आहा..हा..!

जो उसमें (आत्मा में) नहीं है, उसकी दृष्टि और रुचि छोड़कर अन्तर में ज्ञायक त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु सहजात्मस्वरूप में दृष्टि लगाने से, उसकी महिमा करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! ऐसा है। जगत से बहुत विपरीत, भाई! आहा..हा..!

परन्तु चैतन्य की परिणति में चैतन्य की निज महिमा से तरा जाता है। आहा..हा..! भगवान चैतन्यस्वरूप, चैतन्यलोक आनन्द आदि अनन्त गुण से भरपूर प्रभु है, उस चैतन्य की परिणति, यह भक्ति आदि की जो परिणति है, वह तो राग की परिणति है। आहा..हा..! ऐसा कठिन है, भाई! क्योंकि बहिर्लक्ष्यी वृत्ति है। भक्ति आदि व्रत आदि, तप आदि सब बहिर्लक्ष्यी वृत्ति है। भले शुभराग हो, परन्तु वह बहिर्लक्ष्यी वृत्ति है। आहा..हा..! उसमें चैतन्य की परिणति नहीं है। आहा..हा..!

ज्ञायक भगवान चैतन्य ज्ञानस्वरूप प्रभु की **चैतन्य की परिणति में चैतन्य की निज महिमा से तरा जाता है।** आहा..हा..! भारी कठिन काम। व्यवहार भक्ति आदि का भाव तो राग है, कहते हैं। वह तो इसने अनन्त बार किया है, परन्तु सम्यग्दर्शन हुआ नहीं। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पाया।' यह महाव्रत आदि लिया, प्रतिमा धारण की, वह सब राग है, दुःख है। आहा..हा..! राग से भिन्न भगवान चैतन्यस्वरूप का ज्ञान नहीं किया तो आनन्द नहीं आया, दुःख रहा। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप है। लोगों को कठिन लगे, क्या हो? आहा..! मार्ग तो यह है। तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा की दिव्यध्वनि में यह आया है। समझ में आया?

चैतन्य ज्ञायकस्वरूप भगवान की परिणति... परिणति अर्थात् निर्मल दशा। भक्ति आदि, व्रत आदि का भाव तो मलिन दशा है। आहा..हा..! उस मलिन दशा की आत्मा को महिमा आती है तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! अपना चैतन्य... यह भक्ति आदि, राग आदि विकल्पों से भिन्न प्रभु अन्दर है, क्योंकि भक्ति आदि परिणाम पुण्यतत्त्व है और भगवान आत्मा तो पुण्यतत्त्व से भिन्न ज्ञायकतत्त्व है। आहा..हा..! इसका अर्थ यह है कि चैतन्य लोक भगवान, वह राग से मुक्त ही है क्योंकि (राग) परचीज़ है न! यह बात कैसे जँचे? आहा..हा..! इस राग का जो विकल्प है—बाहर व्रत के, पंच महाव्रत के, प्रतिमा का राग, वह तो सब विकारभाव है। वह सब अपने स्वरूप से भिन्न है। आहा..हा..! उसकी परिणति तो मिथ्यात्व, उसे मानने से धर्म हो, यह तो मिथ्यात्व की परिणति है। परिणति अर्थात् मिथ्यात्व की दशा है। आहा..हा..!

चैतन्य की परिणति में... ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि होने पर, जो ज्ञायक की शुद्धचैतन्य की दशा होती है, उस चैतन्य की निज महिमा से तिरा जाता है। इससे (संसार से) तिरने का उपाय वह है। बहुत कठिन लगे, क्या हो ? आहा..हा.. ! अशुभभाव भी अनन्त बार किये हैं और ऐसे व्रत, तप, भक्ति, छह-छह महीने के अपवास, भगवान की आरती, करोड़ों का दान और करोड़ों मन्दिर बनाये, ऐसे शुभभाव अनन्त बार किये हैं, भाई ! वह चीज़ कोई नयी नहीं है। आहा..हा.. ! उस राग की जिसे महिमा आती है, उसे निर्विकार चैतन्य भगवान की महिमा नहीं है और जिसे चैतन्य निर्विकार की महिमा है, उसे राग की महिमा नहीं आती कि मैंने ऐसा शुभभाव किया,... ऐसा किया। वह महिमा धर्मी को नहीं आती। आहा..हा.. ! ऐसा स्वरूप है। कठिन पड़ता है।

चैतन्य की महिमावन्त को भगवान की सच्ची महिमा होती है। जिसे भगवान ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन ध्रुव की जिसे महिमा है, उसे भगवान की सच्ची महिमा होती है। आहा.. ! बाकी तो भगवान बाहर के ऐसे हैं, अतिशय है, भगवान बोलते नहीं, दिव्यध्वनि है, वह तो परवस्तु है। अन्तर में भगवान ज्ञायकस्वरूप की महिमा से चैतन्य परिणति हुई, उसे ही भगवान की यथार्थ महिमा आती है। ऐसा है, भाई ! है ?

चैतन्य की महिमावन्त को भगवान की सच्ची महिमा होती है। अथवा भगवान की महिमा समझना, वह निज चैतन्य-महिमा को समझने में निमित्त होता है। भगवान सर्वज्ञ वीतराग अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु को समझने से मैं ऐसा हूँ, मैं भी अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु, ज्ञायकस्वरूप अखण्डानन्द नाथ हूँ। ऐसा निमित्त को (भगवान को) देखकर अपने स्वभाव की महिमा आती है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! यह तो अध्यात्म तत्त्व की बात है। आहा..हा.. !

मुनिराज वन्दना-प्रतिक्रमणादि में लाचारी से युक्त होते हैं। केवलज्ञान नहीं होता इसलिए युक्त होना पड़ता है। भूमिकानुसार वह सब आता है परन्तु स्वभाव से विरुद्ध होने के कारण उपाधिरूप लगता है। स्वभाव निष्क्रिय है, उसमें से मुनिराज को बाहर आना नहीं सुहाता। जिसे जो कार्य न रुचे, वह कार्य उसे भाररूप लगता है॥३१७॥

अब विशेष कहते हैं। **मुनिराज...** सच्चे भावलिंगी मुनिराज होते हैं। जिन्हें महाव्रत के परिणाम भी दु:खदायक दिखायी देते हैं। अपने आनन्दस्वरूप की परिणति में आनन्द दिखता है। आहा..हा..! ऐसे **मुनिराज वन्दना-प्रतिक्रमणादि में लाचारी से युक्त होते हैं।** अपने आनन्दस्वरूप ज्ञातादृष्टा और शान्ति में से प्रतिक्रमण, गुरु की वन्दना आदि जो विकल्प है, वह लाचारी से आता है, कमजोरी से आता है। आहा..हा..! **केवलज्ञान नहीं होता, इसलिए युक्त होना पड़ता है।** पूर्ण ज्ञान आनन्दकन्द की दशा पूर्ण नहीं होती तो ऐसा विकल्प बीच में आता है परन्तु सुहाता नहीं। प्रतिक्रमण, सामायिक का विकल्प... आहा..हा..! व्रत का विकल्प, वह सुहाता नहीं। अपने आनन्दस्वरूप की परिणति / दशा में से बाहर आना, वह बोझरूप लगता है। ऐसी बात है, बापू!

मुमुक्षु : बाहर आने का कारण क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कमजोरी। कहा न? लाचारी। पर्याय में कमजोरी से... भगवान स्वरूप आनन्द में से... दृष्टि आनन्द में तो है, परन्तु उसमें स्थिर नहीं होते, तब ऐसा सबेरे-शाम प्रतिक्रमण आदि का विकल्प आता है, वह लाचारी से आता है। आहा..हा..! गजब बात है भाई! बात सुनना कठिन पड़े। आहा..!

मुनिराज को... सच्चे मुनि। सम्यग्दर्शन बिना जो द्रव्यलिंग धारण किया और पंच महाव्रत के परिणाम किये, वे कहीं मुनि नहीं हैं। आहा..हा..! मुनि तो (उसे कहते हैं) जिसे आत्मा का आनन्दस्वरूप ऐसा प्रगट हुआ है कि पर्याय में आनन्द की प्रचुर स्वसंवेदना अतीन्द्रिय आनन्द की प्रचुर वेदना / वेदन, वह जिसे पर्याय में आता है, उसे मुनिराज कहते हैं।

समयसार की पाँचवीं गाथा में है न? मुनि कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारा निज वैभव क्या है? मैं निज वैभव से कहूँगा। कुन्दकुन्दाचार्य भावलिंगी सन्त, संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में थे। भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य, सीमंधर परमात्मा विराजते हैं, वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर समयसार बनाते हैं, तो कहते हैं कि मेरा निज वैभव क्या? प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, वह मेरा निज वैभव है। समझ में आया? आहा..हा..! लड़कों को समझ में आता नहीं, व्यर्थ के बेचारे... यह बात बड़ों को समझना कठिन पड़े। खेल में चढ़ जायें या भागें या बातें करें परस्पर। क्या हो? बापू! यह तो तीन लोक के नाथ की वीतरागी बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : वीतरागी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे शुभराग का उत्साह और महिमा आती है, उसे आत्मा के आनन्द की महिमा नहीं आती। आहा..हा..! और जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसी महिमा आकर पर्याय में धर्मी को अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसे राग आता है, वह दु:खरूप लगता है। यह व्रत का विकल्प, भक्ति आदि का विकल्प आता है परन्तु दु:खरूप लगता है। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप है। कहो, छोटाभाई! ऐसी बातें सूक्ष्म पड़े। यह तो भगवान कहते हैं। भगवान कहते हैं, वह बहिन ने कहा है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..! **भूमिकानुसार वह सब आता है...** छठे गुणस्थान में आनन्द के वेदनवाले सच्चे मुनि को भूमिकाप्रमाण पंच महाव्रत का विकल्प, व्यवहार समिति, गुप्ति का शुभ विकल्प आता है, परन्तु है वह दु:खरूप। आहा..हा..! यह कैसे बैठे? अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द की वीणा बजती हो, भगवान अतीन्द्रिय आनन्द से पूर्ण भरपूर है, उसका अनुभव जहाँ पर्याय में आया, वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द की वीणा बजती है। वहाँ राग आता है, वह दु:खरूप लगता है। आहा..हा..! भूमिकाप्रमाण आता है। सम्यग्दृष्टि अनुभव, पंचम गुणस्थानवाले सत्य आनन्द का अनुभव हो, उसे भी बारह व्रत आदि का भूमिकाप्रमाण विकल्प आता है, परन्तु वह दु:खरूप है। आहा..हा..! यह कैसे जँचे? पूरा उथल-पुथल का मार्ग है। आहा..हा..!

परन्तु स्वभाव से विरुद्ध होने के कारण... भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का धर्मी को वेदन होने से, वह रागादि विकल्प आता है, **स्वभाव से विरुद्ध होने के कारण...** परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव से विरुद्ध हैं। वह राग विरुद्ध है। ओहो..हो..! मैं अपवास करूँ, मैं सामायिक करूँ, यह विकल्प / राग आता है, वह स्वभाव से तो विरुद्ध है। है? **उपाधिरूप लगता है।** धर्मी जीव को वह उपाधिरूप लगता है। आहा..हा..! यह तो कोई गजब! उसे तो लोग धर्म मानते हैं। यह व्रत, तप, अपवास, भक्ति करो, यह धर्म है (ऐसा मानते हैं)। अरे रे! प्रभु! ठगा गया, तू ठगा गया, भाई! आहा..हा..! धर्मी को यह शुभराग दु:खरूप लगता है। भूमिकाप्रमाण आता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, विनय (आता है), परन्तु परद्रव्य का विनयभाव वह तो राग है। आहा..हा..! धर्मी की राग में से सुखबुद्धि उड़ गयी है। सम्यग्दृष्टि धर्मी जिसे कहते हैं, उसे शुभराग आता है, तो सुखबुद्धि उड़ गयी है। दु:ख लगता है। आहा..हा..! ऐसी बात है।

परन्तु **भूमिकानुसार वह सब आता है...** सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में (होवे) परन्तु शुभभाव भक्ति आदि, दान आदि, भगवान की पूजादि का भाव आता है, परन्तु वह भाव दु:खरूप है, उपाधि है। आहा..हा..! उपाधि है तो किसलिए करता है? परन्तु कमजोरी है तो आये बिना रहता नहीं। आहा..हा..! है? **स्वभाव से विरुद्ध होने के कारण...** वह शुभभाव—व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, शास्त्र वांचन का भाव... आहा..हा..! शास्त्र कहने का, उपदेश देने का विकल्प आता है, परन्तु है उपाधि। आहा..हा..! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, ज्ञायकस्वरूप से वह भाव विरुद्ध है। यह बात कठिन पड़ती है, भाई!

जगत ऐसा ही कहता है कि व्यवहार करो, करते-करते हो जायेगा। आहा..हा..! लहसुन खाओ, खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। इसी प्रकार राग की क्रिया भक्ति, पूजा, व्रत, तप करो, इससे कल्याण हो जाएगा। धूल में भी कल्याण नहीं होगा। समझ में नहीं आया? धूल में भी कल्याण नहीं होगा अर्थात् उसे पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं है। आहा..हा..! जिसने उस राग में धर्म माना है, उस मिथ्यादृष्टि को पापानुबन्धी पुण्य होता है। आहा..हा..! ऐसी बातें बहुत कठिन, भाई! अभी सम्प्रदाय में सब उछाह में चढ़े हैं। यह व्रत किये, तप किये, पूजा की, गजरथ निकाला। आहा..हा..! रथयात्रा निकाली। इस व्रत के इतने उपवास किये, तीन किये, चार किये, पाँच (किये)... भाई! यह सब राग की मन्दता हो तो वह शुभ है, धर्म नहीं। भगवान! तेरी चीज़ तो अन्दर विकल्प से रहित निर्विकल्प आनन्दकन्द है। ऐसी दृष्टि करके, ऐसी भूमिका हो तो भी वह विकल्प आवे, वह उपाधिरूप लगता है। अज्ञानी को तो वह उपाधि है, उसकी खबर भी नहीं। वह तो बस यह मेरा धर्म है, (ऐसा मानता है)। आहा..हा..! ऐसा है। क्या हो? परम सत्य तो यह है, भाई! इसे कितनी धीरज चाहिए। आहा..हा..!

स्वभाव निष्क्रिय है... क्या कहते हैं? चैतन्य भगवान का स्वभाव तो राग की क्रिया से रहित है। ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. स्वरूप। वास्तव में तो पर्याय की परिणति से भी रहित है। आहा..हा..! उस राग की क्रिया से तो भिन्न है, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल पर्याय प्रगट हुई, अपूर्व-अनन्त काल में नहीं हुई, ऐसी (प्रगट हुई)। उस परिणति की क्रिया से तो वस्तु निष्क्रिय भिन्न है। यह कल आ गया था। निर्मल पर्याय भी बहि:तत्त्व है। यह ३१५ बोल में आया था। कल आया था न? भाई! आहा..हा..! यह राग—व्रत, तप, भक्ति का राग भिन्न है, विकार है, दु:ख है। वह तो स्वरूप में ही नहीं है, परन्तु सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र की निर्मल वीतरागी स्व के आश्रय से प्रगट हुई पर्याय, वह सक्रिय परिणति है; निष्क्रिय तत्त्व में वह नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

धर्मी की दृष्टि, यह धर्म प्रगट हुआ है, उस पर नहीं है। धर्मी की दृष्टि त्रिकाली ज्ञायक पर है। शाश्वत् टिकती चीज़ नित्यानन्द प्रभु, वहाँ सम्यग्दृष्टि की दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि, सम्यग्दृष्टि की पर्याय पर भी नहीं है। आहा..हा..! अरे! ऐसी बातें हैं, भाई! बहुत कठिन। यह कहीं भगवान का धर्म होगा यह? जिनेश्वरदेव का ऐसा होगा? भाई! जिनवर परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं और वह ऐसा है। आहा..हा..! इन्द्रों के बीच परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। एकावतारी इन्द्र आते हैं। शकेन्द्र एक भवतारी—(एक भव में) मोक्ष है। समकिती है, आत्मज्ञानी है, उनके बीच भगवान तो यह उपदेश करते हैं। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बात है। अरे! यह तो निश्चयाभास हो गया, ऐसा (लोग) कहते हैं। अरे! सुन, भाई! यह सब कहते हैं, वह सब बात ख्याल में है। आहा..हा..!

चैतन्यस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय ईश्वरता से भरपूर प्रभु की दृष्टि होकर अनुभव हुआ, उसका नाम सम्यग्दर्शन है और धर्म की शुरुआत है। इन सम्यग्दृष्टि को और मुनिराज को स्वभाव से विरुद्ध रागादि आते हैं तो उपाधि लगती है। **स्वभाव निष्क्रिय है...** स्वचैतन्य प्रभु का स्वभाव (निष्क्रिय है)। स्व-भाव नित्यानन्द ध्रुव में तो परिणमन भी नहीं है। राग की क्रिया तो नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, क्रिया, पर्याय भी उसमें नहीं है। अरे रे! ऐसा तत्त्व कहाँ (सुनने को मिले)? ऐसी वस्तु है। लोगों को कठिन पड़ता है। बाहर में बेचारे यह यात्रा करूँ, भक्ति करूँ, शत्रुंजय की यात्रा, गिरनार की यात्रा, सम्मेदशिखर की यात्रा (करो)। सब यात्रा तो शुभभाव है। आहा..हा..! यहाँ के दर्शन करे, वह शुभराग है। ऐसी बातें बहुत (कठिन है), भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवर का धर्म कोई अलौकिक है। वह अन्यत्र कहीं नहीं है, आहा..हा..! परन्तु उनके सम्प्रदाय को समझना कठिन पड़े, ऐसा है। आहा..हा..!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह बात है। स्वभाव ज्ञातादृष्टा त्रिकाल स्वभाव, वह तो राग की परिणति से रहित है। **उसमें से मुनिराज को बाहर आना नहीं सुहाता।** क्या कहते हैं? आहा..हा..! आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसमें जिसकी दृष्टि और स्थिरता हुई, उसे बाहर आना सुहाता नहीं है। यह प्रतिक्रमण और व्रतादि का विकल्प आता है, परन्तु सुहाता नहीं है।

मुमुक्षु : विकल्प आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूमिका प्रमाण वह विकल्प आता है परन्तु सुहाता नहीं है। अभी यदि मेरे स्वरूप में स्थिर हो जाऊँ और केवलज्ञान (होता हो तो यह / विकल्प नहीं चाहिए) आहा..हा..! सच्चे सन्त उन्हें कहते हैं... आहा..हा..! कि जिन्हें अन्दर सुख की दशा प्रगट हुई है, अतीन्द्रिय आनन्द का जिन्हें अनुभव है, उन्हें बाह्य व्रतादि, भक्ति का विकल्प आता है। है?

बाहर आना नहीं सुहाता। परन्तु कमजोरी के कारण आना पड़ता है। आहा..हा..! जिसे अन्दर अतीन्द्रिय आनन्दरस मिला, वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया... आहा..हा..! धर्मी को, समकिती को, मुनि को, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। सच्चे मुनि की बात है, हों! यह क्रियाकाण्डी मुनि हैं, वे मुनि ही नहीं हैं। समझ में आया? आहा..हा..! कठिन बातें हैं, भाई! वह शुभराग भूमिकानुसार आता है (परन्तु) सुहाता नहीं है। आता है, सुहाता नहीं है। सुहाता नहीं और आता है। आहा..हा..! ऐसा अपदेश किस जाति का? हम तो भाई, ऐसा सुनते हैं कि व्रत करो, अपवास करो, तप करो, भक्ति करो, रथयात्रा निकालो, गजरथ निकालो, अरे! भगवान! यह तो सब राग की क्रिया का उपदेश है। यह रथयात्रा बाहर की जड़ की क्रिया है, यह तो आत्मा कर नहीं सकता। इसमें भाव आते हैं, वह तो राग है।

बाहर आना नहीं सुहाता। जिसे जो कार्य न रुचे... सम्यग्दृष्टि धर्मी को तो अपना आनन्द रुचता है। वह आनन्द रुचता है, उसके अतिरिक्त राग रुचता नहीं। **वह कार्य उसे भाररूप लगता है।** आहा..हा..! मेरा प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का स्वादिया जो धर्मी है, उसे राग आता है, वह बोझा लगता है। बोझा-भार। (समयसार के) निर्जरा अधिकार में कहा है कि क्लेश है। राग आता है, वह क्लेश है। क्लेश करो तो करो परन्तु आत्मज्ञान बिना वह सब निरर्थक है। आहा..हा..! है?

जिसे जो कार्य न रुचे, वह कार्य उसे भाररूप लगता है। ज्ञान और आनन्द और अनाकुल शान्ति का जिसे भास-अनुभव वेदन हुआ, उसे जो रागभाव आता है, चाहे तो भगवान की भक्ति हो या चाहे कोई व्रत के विकल्प हों, परन्तु वह विकल्प बोझा-भार लगता है। आहा..हा..! सुहाता नहीं परन्तु भूमिकानुसार कमजोरी के कारण आता है, सुहाता नहीं। ऐसी बातें क्या हैं यह! यह मार्ग वीतराग का होगा? वीतराग का मार्ग (तो)

कन्दमूल न खाना, ब्रह्मचर्य पालना, व्रत करना, अपवास करना, भक्ति करना, मन्दिर बनाना ऐसी तो बातें हमने सुनी हैं। भाई! वह सब बातें राग की क्रिया की बात है। समझ में आया? यह तो वीतराग परमेश्वर का मार्ग वीतरागभाव से है। इस रागभाव से धर्म नहीं है। रागभाव में धर्म माने, वह जैनधर्म ही नहीं है, वह वीतराग का धर्म ही नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? यह ३१७ (बोल पूरा हुआ)। संक्षिप्त में बहुत आ गया। आहा..हा..!

धर्मी को, आत्मज्ञानी को विषय-वासना का भाव आता है (परन्तु) सुहाता नहीं है, दु:ख लगता है परन्तु कमजोरी के कारण आता है। आहा..हा..! काला नाग जैसे देखे, वैसे अशुभभाव को काला नाग समान देखते हैं और शुभभाव दु:खरूप लगता है। आहा..हा..! ऐसी बात कैसे जँचे? बाहर की प्रवृत्ति में जुड़कर धर्म माना है। हजारों लाखों लोग... अरे, भाई! बातें सब अलग हैं। आहा..हा..! यह ३१७ (बोला पूरा हुआ)।

जीव अपनी लगन से ज्ञायकपरिणति को प्राप्त करता है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं विभावभाव से भिन्न हूँ, किसी भी पर्याय में अटकनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं अगाध गुणों से भरा हूँ, मैं ध्रुव हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं परमपारिणामिकभाव हूँ— इस तरह, अनेक प्रकार के विचार सम्यक् प्रतीति की लगनवाले आत्मार्थी को आते हैं। परन्तु उनके निमित्त से उत्पन्न होनेवाली सम्यक् प्रतीति का तो एक ही प्रकार होता है। प्रतीति के लिये होनेवाले विचारों के सर्व प्रकारों में 'मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रकार मूलभूत है॥३१८॥

३१८, **जीव अपनी लगन से...** भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यस्वरूप निर्मलानन्द प्रभु, उसकी **लगन से ज्ञायकपरिणति को प्राप्त करता है।** उस ज्ञायकस्वरूप की निर्मल दशा को प्राप्त करता है। राग की लगन नहीं, दया, दान, व्रत के राग की लगन नहीं। आहा..हा..! **जीव अपनी लगन...** निजानन्दस्वरूप प्रभु, वह **अपनी लगन से...** आहा..हा..! **ज्ञायकपरिणति को...** जाननस्वभाव की दशा को, धर्मदशा को प्राप्त करता है। आहा..हा..! भव्यसागर साधु है न? जालना में है। जालना में दिगम्बर साधु। बीस वर्ष की दीक्षा, आशुकवि है। यह पुस्तक पढ़कर... पुस्तक तो अभी आयी है परन्तु पहले यहाँ का साहित्य पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए। ओहो..हो..! २०० वर्ष में ऐसी बात नहीं। स्वामीजी! यह तुमने कहाँ से निकाली?

मुमुक्षु : साधुपना रखा या छोड़ दिया?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर रखा है, परन्तु स्वयं कहते हैं कि मैं साधु नहीं हूँ। बापू! नग्न हुए, वह कोई साधु नहीं, स्वयं कहते हैं। यहाँ तो बहुत—दस पत्र आ गये हैं। अभी परसों दो पत्र आये। चार सौ पुस्तकें मँगायी थी। यहाँ से भेंट में भेजी हैं। तीन सौ दूसरी मँगायी। सबको भेंट देने के लिये। यह चीज़ क्या है? आहा..हा..! यह बहिन की पुस्तक वचनामृत, और जालना में वहाँ स्थानकवासी के एक आचार्य हैं, आनन्द ऋषि स्थानकवासी के। जब उन्हें वन्दन करने आवे। हम हैदराबाद और बेंगलोर गये थे। हैदराबाद में चारों संघवालों ने हमारा स्वागत किया था। स्थानकवासी के तेरापंथी, स्थानकवासी, श्वेताम्बर, दिगम्बर चारों ने स्वागत किया था। जालना में आनन्द ऋषि को वन्दन करने आवे, वे ही वहाँ आते हैं। वे ऐसी पुस्तक माँगते थे। वचनामृत दो, तो देते हैं। परन्तु बीस मिनिट तुम्हें पढ़ना है, ऐसी प्रतिज्ञा लो तो ले जाओ। जालना। वहाँ स्थानकवासी है, श्वेताम्बर है, स्थानकवासी और तेरापंथी है न तुलसी? वह है, और दिगम्बर है। चारों है। आहा..हा..! परन्तु वहाँ इतनी माँग है कि श्वेताम्बर लोग जो स्थानकवासी आते हैं, वे माँगते हैं कि लाओ, यह क्या है? वचनामृत लाओ, तो यहाँ से सात सौ पुस्तकें गयी हैं। अभी चार सौ रखी हैं, तीन सौ अभी पार्सल में होगी। बापू! मार्ग कोई अलग चीज़ है। लोगों को सुनने में आया नहीं और ऐसा का ऐसा गाड़ी हांकी (विपरीतता की)। यह व्रत करो, अपवास करो, तप करो, भक्ति करो, प्रतिमा ले लो। अरे रे! भाई! यह सब राग की क्रिया है, इसे तुम धर्म का मार्ग मानते हो, यह मिथ्यात्व का पोषण है। मिथ्यात्व का पोषण है। आहा..हा..!

वह यहाँ कहते हैं, देखो! **जीव अपनी लगन से...** राग की लगन नहीं। अपना चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव अन्दर भरा है। चैतन्यलोक अनन्त... अनन्त.. अनन्त.. आनन्द आदि अनन्त गुणों का समुद्र भरा है। आहा..हा..! निर्मलानन्द, निर्विकल्प अभेदस्वरूप की **लगन से ज्ञायकपरिणति को प्राप्त करता है।** इस ज्ञायकस्वरूप की दशा, चैतन्य के पूर्णस्वरूप की लगन से वीतरागी परिणति, ज्ञायकपरिणति, रागरहित परिणति प्रगट होती है। अरे रे! यह क्या कहते हैं? भाषा सादी है परन्तु वस्तु तो जो है, वह है, भाई! अभी तो इतना अधिक विरोध है कि जैनधर्म क्या है, उसकी गन्ध भी कहीं नहीं है। आहा..हा..! सम्मेदशिखर की यात्रा करो, गिरनार की यात्रा करो। वह सब राग है, परद्रव्य के लक्ष्य से हुआ शुभराग है। वह कोई धर्म नहीं और राग से मुझे धर्म होगा, वह तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जैनदर्शन को समझता नहीं। जैन से विरुद्ध है, अजैन है। आहा..हा..! ऐसी बात है, प्रभु!

मैं ज्ञायक हूँ,... मैं तो अकेला जानन-देखन ज्ञाता-दृष्टा मैं हूँ। शरीर, वाणी मैं नहीं, उनकी क्रिया मेरी नहीं, अशुभभाव भी मेरा नहीं। यह दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभभाव, वह भी मेरा नहीं। आहा..हा..! और एक समय की पर्याय भी मैं नहीं। मैं तो ज्ञायक हूँ। सम्यग्दर्शन की पर्याय ऐसा निर्णय करती है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में पर्याय में सम्यग्दर्शन, वह ऐसा कहता है, मैं तो ज्ञायक हूँ। मैं सम्यग्दृष्टि हूँ, ऐसा भी नहीं, मैं तो ज्ञायक हूँ। आहा..हा..!

सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्धपारिणामिकभाव, पारिणामिकभाव लक्षण निजपरमात्मद्रव्य वह मैं हूँ। आहा..हा..! भाषा याद रहे नहीं। इसे कितना रटना? ऐसा नहीं, भाई! यह वस्तु जो है, प्रभु! वह मुक्तस्वरूप है, अबद्ध है, राग के सम्बन्ध में वह वस्तु नहीं। द्रव्यवस्तु जो चैतन्यद्रव्य जिसे वस्तु कहते हैं, वह तो मुक्तस्वरूप ही है। अबद्ध कहा है और समयसार के कलश में मुक्त कहा है। (समयसार की) १४-१५वीं गाथा में अबद्धस्पृष्ट है। भगवान आत्मा तो राग के सम्बन्धरहित चीज़ है, अबद्ध है अर्थात् मुक्तस्वरूप ही अन्दर वस्तु है। आहा..हा..! उसकी जिसे लगन लगती है... आहा..हा..! उसे तो **मैं ज्ञायक हूँ,...** आहा..हा..! जानने-देखनेवाला, वह मैं हूँ; रागादि नहीं, पुण्यादि मैं नहीं।

मैं विभावभाव से भिन्न हूँ,... आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि को धर्मी जीव को मान्यता में ऐसा है कि मैं तो ज्ञायकस्वरूप चैतन्य हूँ। यह विभाव अर्थात् जो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प है, वह विभावभाव है। आहा..हा..! उससे तो मैं भिन्न हूँ। आहा..हा..! अब इससे लाभ मानना, (तो) उसे भिन्न कहाँ रहा? दृष्टि ही मिथ्यात्व हो गयी। आहा..हा..! अनन्त काल, अनन्त काल गया, भाई! चौरासी के अवतार करते.. करते... करते... नौवें ग्रैवेयक के अनन्त भव किये। दिगम्बर साधु हुआ, हजारों रानियों का त्याग किया, बालब्रह्मचारी होकर... परन्तु पंच महाव्रत के परिणाम धर्म हैं, ऐसा मानकर वहाँ अटक गया। आहा..हा..!

यहाँ तो कहते हैं कि पंच महाव्रत के विकल्प विभाव हैं तो सम्यग्दृष्टि उस समय में भिन्न हूँ, ऐसा मानता है। उनसे लाभ है, ऐसा तो मानता नहीं है, परन्तु उनसे मैं भिन्न हूँ। आहा..हा..! ऐसी शर्तें हैं, प्रभु! सम्यग्दृष्टि, अभी तो चौथे गुणस्थान में, हों! आहा..हा..! पाँचवाँ गुणस्थान वह तो और ऊँचा कहाँ रह गया। वह तो आगे की दशा है। मुनि का छठवाँ

(गुणस्थान) तो कोई अलौकिक दशा है। परन्तु चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि **मैं ज्ञायक हूँ, मैं विभावभाव से भिन्न हूँ,...** आहा..हा..! कब? अभी। अन्दर विभाव / विकल्प होते हैं, परन्तु उनसे मैं भिन्न हूँ। आहा..हा..!

किसी भी पर्याय में अटकनेवाला मैं नहीं हूँ,... क्या कहते हैं? कि राग में अटकनेवाला तो मैं नहीं, परन्तु निर्मल पर्याय है, उसमें भी मैं अटकनेवाला नहीं हूँ। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, परन्तु पर्याय में अटकनेवाला मैं नहीं हूँ। आहा..हा..! पर्यायबुद्धि नहीं है। आता है न? 'स्वार्थ के साँचे परमार्थ के साँचे चित्त साँचे साँचे वेण कहे, साँचे जिनमति है, काहू के विरोध नाही, पर्यायबुद्धि नाही।' बनारसीदास में आता है। आहा..हा..!

निर्मल पर्याय में भी मैं अटकनेवाला नहीं हूँ। यह तो भाई भी गाते हैं न? रमेश, रमेश, घाटकोपर से, मैं पर्याय में भी अटकने नहीं दूँ, ऐ.. चेतनराजा, पर्याय में भी अटकने नहीं दूँ। आहा..हा..! वह गाता है उसमें। क्या कहलाता है? घाटकोपर मण्डली। आहा..हा..! निमित्त में तो नहीं अटकूँ, राग में तो नहीं अटकूँ परन्तु पर्याय में भी मैं नहीं अटकूँ। आहा..हा..! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म पड़ती है। क्या हो? अपूर्व है न? पूर्व में कभी किया नहीं। मुनिपना अनन्त बार लिया। श्रावक के बारह व्रत अनन्त बार लिये, ग्यारह प्रतिमाएँ अनन्त बार लीं, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना वे सब व्यर्थ निकले। समझ में आया? उसमें संसार फल निकला, आहा..हा..! क्योंकि वह शुभभाव है, वह संसार है, वह जगपंथ है। आहा..हा..! समयसार नाटक में मोक्ष अधिकार में कहा है (कि) मुनि को शुभभाव आते हैं परन्तु वह जगपंथ है। आहा..हा..! उतना संसार पंथ है। उससे रहित जो आत्मा ज्ञायक का अनुभव और दृष्टि, स्थिर हुई, वह शिवपंथ है। आहा..हा..! ऐसी बातें! बात-बात में अन्तर।

किसी भी पर्याय में अटकनेवाला मैं नहीं हूँ,... किसी भी का अर्थ क्या हुआ? कि शुभभाव में तो नहीं परन्तु मेरी शुद्धदशा हुई, उसमें अटकनेवाला मैं नहीं हूँ। मैं तो ज्ञायक हूँ। आहा..हा..! त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु में मैं जानेवाला हूँ, मैं पर्याय में अटकनेवाला नहीं हूँ।

मैं अगाध गुणों से भरा हूँ,... मैं तो अगाध... जैसे समुद्र गम्भीर भरा है। समुद्र तो मर्यादित है। यहाँ तो अगाध गुणी। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, अनन्त शक्ति, अगाध-

गम्भीर शक्ति। अगाध गुण की कोई हद नहीं। आत्मा में इतने गुण हैं कि जिनकी कोई मर्यादा नहीं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त गुना गुणित करो तो भी उसका अन्त नहीं, इतने अन्दर आत्मा में गुण हैं। आहा..हा..! है शरीरप्रमाण क्षेत्र भले भिन्न है, परन्तु उसमें गुण जो हैं, वे तो अनन्त को... अनन्त को.. अनन्त को.. अनन्त गुणा गुणित कर डालो तो भी उनका अन्त नहीं, इतने आत्मा में गुण हैं। अरे रे! है।

मैं अगाध गुणों से भरा हूँ,... अपार-अपार गुण की शक्ति का अनन्त स्वभाव। **अगाध गुणों से भरा हूँ,...** आहा..हा..! ऐसा सम्यग्दृष्टि अपने को ऐसा मानता है। **मैं ध्रुव हूँ,...** देखो! पर्याय नहीं। **मैं ध्रुव हूँ,...** नित्य रहनेवाला है, वह मैं हूँ—यह मानती है पर्याय, परन्तु मानती है कि मैं तो ध्रुव हूँ। आहा..हा..! यह सम्यग्दर्शन की पर्याय मानती है कि मैं ध्रुव हूँ, ऐसा पर्याय मानती है। आहा..हा..! मैं तो त्रिकाली कारणपरमात्मा ही हूँ। अरे! कारणपरमात्मा अर्थात्? जो त्रिकाली शक्तियों का भण्डार भगवान, वह कारणपरमात्मा, वह ध्रुव मैं हूँ। सम्यग्दृष्टि जीव अपने को पर्याय जितना नहीं मानता। मैं तो ध्रुव हूँ (ऐसा मानता है)। आहा..हा..!

(समयसार) ३२० गाथा में आ गया है। जयसेनाचार्य की टीका में (आ गया है)। आहा..हा..! यह अभी कहा न वह। मैं तो त्रिकाल निरावरण। वस्तु को आवरण कैसा? अगाध। यह अगाध शब्द है न? वहाँ अगाध है। उसमें अगाध शब्द है। है? समयसार जयसेनाचार्य की (टीका) ३२० गाथा की टीका। जो सकल निरावरण। मैं तो पूर्ण निरावरण चीज़ हूँ। अखण्ड हूँ। एक... आहा..हा..! एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय... आहा..हा..! अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकपरमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। आहा..हा..! परन्तु (ऐसा) नहीं भाता कि खण्ड ज्ञानरूप मैं हूँ। पर्याय जितना मैं, ऐसी समकिती भावना नहीं करता। आहा..हा..! राग की बात कहाँ रही, वह तो विकल्प है। यहाँ तो निर्मल पर्याय की भी भावना नहीं करता। मैं अखण्ड हूँ। आहा..हा..! यह संस्कृत टीका है, जयसेनाचार्य की समयसार की ३२० गाथा की टीका है, परन्तु लोगों को अभ्यास नहीं है। यह बाहर में निवृत्ति नहीं मिलती। पूरे दिन २२-२३ घण्टे मानो कमाना, स्त्री, पुत्र, सम्हालना और अकेला पाप का धन्धा। निवृत्ति मिले वहाँ घण्टे भर सुनने जाये तो इसे ऐसा (सुनने को) मिलता है (कि) व्रत करो, उपवास करो, भक्ति करो, यह मिलता है। मूल चीज़ तो सुनने

को मिलती नहीं बेचारे को। क्या करे ? आहा..हा.. !

मैं अगाध गुणों से भरा हूँ, मैं ध्रुव हूँ, मैं शुद्ध हूँ,... शुद्ध पवित्र का पिण्ड प्रभु मैं तो हूँ। पर्याय भी नहीं। आहा..हा.. ! **मैं परमपारिणामिकभाव हूँ...** लो, आया। देखा, उसमें आया था न ? परमपारिणामिक सहजस्वभाव त्रिकाल, जिसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा नहीं और निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो त्रिकाली परम स्वभावभाव। परमपारिणामिक स्वभावभाव... आहा..हा.. ! वह मैं हूँ।

इस तरह, अनेक प्रकार के विचार सम्यक् प्रतीति की लगनवाले... सम्यक् प्रतीति के लिये लगनवाले। **आत्मार्थी को आते हैं। परन्तु उनके निमित्त से उत्पन्न होनेवाली सम्यक् प्रतीति का तो एक ही प्रकार होता है।** वस्तु शुद्ध हूँ, ध्रुव हूँ, अनेक प्रकार है, परन्तु शुद्ध ज्ञायक की प्रतीति तो एक प्रकार से ही है। आहा..हा.. ! **एक ही प्रकार होता है। प्रतीति के लिये होनेवाले विचारों के सर्व प्रकारों में 'मैं ज्ञायक हूँ' यह प्रकार मूलभूत है।** (समयसार की) ६वीं गाथा में कहा न। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो'** ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव। ११वीं गाथा में भूतार्थ कहा, ६वीं गाथा में ज्ञायक कहा। अकेला ज्ञायकस्वभाव का पिण्ड प्रभु, वह मैं हूँ। आहा..हा.. ! सम्यग्दृष्टि अपने को ऐसा मानता है और अनुभव करता है। आहा..हा.. ! इसका धर्म और सम्यग्ज्ञान-दर्शन कहने में आता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आत्मज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित दशा

अहा ! आषाढ़ माह की घनघोर मेघ से भरपूर रात हो, जङ्गल में चारों ओर गहन अन्धकार व्याप्त हो परन्तु मुनिराज को अन्दर आत्मा में आत्मज्ञान में, आत्मानुभूति में प्रकाश व्याप्त हो गया है। अहा ! जो चैतन्य की अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें से अर्थात् उनके उग्र अवलम्बन से मुनिराज को प्रकाश का ज्वार आया है। बाहर में भले ही अन्धकार हो परन्तु अन्दर में उन्हें आत्मज्ञान का अनुपम प्रकाश फैल गया है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वचनामृत प्रवचन, भाग ४, पृष्ठ १९५

असोज शुक्ल १३, शनिवार, दिनाङ्क १४-१०-१९७८
वचनामृत-३१९ से ३२१ प्रवचन-११९

विभाव से पृथक् होकर चैतन्यतत्त्व को ग्रहण कर। यही करना है। पर्याय सन्मुख देखकर पर्याय में कुछ नहीं करना है। द्रव्यदृष्टि करने से पर्याय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ ही जायेंगे। कुआँ खोद तो पानी आयेगा ही, लेने नहीं जाना पड़ेगा। चैतन्यपाताल फूटने पर शुद्ध पर्याय का प्रवाह अपने-आप ही चलने लगेगा॥३१९॥

३१९ **विभाव से पृथक् होकर...** अर्थात् परलक्ष्यवाले होते हुए भाव—शुभ-अशुभभाव से **पृथक् होकर चैतन्यतत्त्व को ग्रहण कर**। क्योंकि चैतन्यतत्त्व, वह विभाव से एकत्व है ही नहीं। विभावभाव, चैतन्य ज्ञायकतत्त्व से भिन्न है। आहा..हा..! सूक्ष्म बात है यह। शुभभाव से यह ग्रहण होगा? शुभभाव तो विभाव है, यहाँ आया। आहा..हा..! अरे रे!

मुमुक्षु : पहले में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले में आया, हाँ! आहा..हा..! जिसे विकल्प जो है शुभ... विवाद वहाँ है न। वह शुभ है, वह परलक्ष्यी भाव है। उससे भिन्न ज्ञायक चैतन्यतत्त्व को ग्रहण कर। आहा..हा..! वह मूल वस्तु है। **यही करना है**। लो, यह करना है, भाई! बाकी तो सब बातें हैं। आहा..हा..! 'लाख बात की बात' आता है न, छहढाला में।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जगदंद-फंद, निज आतम ध्याओ॥९॥

(चौथी ढाल)

आत्मा... आहा..हा..! ज्ञायकस्वरूप चैतन्य रसकन्द, आहा..हा..! आगे आयेगा। रसाल है, यह आयेगा, बाद के (बोल में) आयेगा। चैतन्य धरती गुण से भरपूर रसाल है।

अर्थात् हिन्दी में उसे उपजाऊ शब्द प्रयोग किया है। रसाल का अर्थ हिन्दी में उपजाऊ शब्द प्रयोग किया है। बाकी चैतन्य तत्त्व जो ध्रुव स्वभाव, उसे विभाव से भिन्न ग्रहण कर तो तुझे आनन्द होगा। आहा..हा..! उस आनन्द की तो बात अभी है नहीं, आनन्द अभी नहीं होता। शुद्ध उपयोग अभी नहीं होता, (ऐसा लोग मानते हैं)। आनन्द, शुभ उपयोग वह... आहा..हा..!

प्रभु! शुभ उपयोग तो दु:ख है, राग है, आकुलता है, भाई! आहा..हा..! यह तो धीर के काम हैं। शास्त्र पढ़कर भी ऐसा निकाले, आहा..हा..! शास्त्र का भी तात्पर्य तो वीतरागता कहना है। वीतरागता कैसे उत्पन्न हो? कि त्रिकाली चैतन्य को ग्रहण करे, जो शुद्ध उपयोग हो, तब उसे वीतरागता उत्पन्न होती है। सम्यग्दर्शन है, वह वीतराग पर्याय है। वीतराग पर्याय है, वह शुभ उपयोग से प्रगट होगी? आहा..हा..! यह तो ऐसा कि शुभ उपयोग बहुत ऊँचा है, यह व्रत पालते हैं और यह भक्ति-पूजा (करते हैं), शरीर से कितने उपसर्ग और परीषह सहन करते हैं... आहा..हा..! वह ऐसा कहता था, वह आया था न? क्षुल्लक। भाई नहीं आये, चन्दुभाई नहीं आये, उनके पिता को श्वास, श्वास चढ़ा है। खीमचन्दभाई को। आहा..हा..! नहीं आये, कल शाम को प्रार्थना करने आये थे, परन्तु श्वास था। यह पूर्णिमा का दिन है न, जन्मदिन है। चन्दुभाई को, ५५वाँ लगता है, परन्तु अभी उन्हें श्वास चढ़ा है।

यहाँ कहते हैं **विभाव से पृथक् होकर चैतन्यतत्त्व को ग्रहण कर**। आहा..हा..! शरीर, कर्म तो भिन्न है, परन्तु पर्याय में विभाव है, वह बताते हैं। आहा..हा..! इसकी पर्याय में-अस्तित्व में शुभभाव, शुभविकल्प विभाव है। पर, कर्म शरीर तो इसकी पर्याय में भी नहीं, परन्तु इसकी पर्याय में.. वस्तु में नहीं, आत्मतत्त्व में वह शुभभाव / राग / विभाव नहीं, परन्तु इसकी पर्याय में है, इसलिए कहते हैं कि पर्यायदृष्टि छोड़कर... इसका अर्थ यह है। जो शुभराग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का विकल्प (आता है), वह शुभराग, वह विभाव है। आहा..हा..! उसे छोड़कर अर्थात् पर्यायबुद्धि छोड़कर, उसका अर्थ यह है। आहा..हा..! पर्यायदृष्टि, बुद्धि कहो या दृष्टि कहो, आहा..हा..! परदृष्टि की बात यहाँ है नहीं। मात्र इसकी पर्याय / अवस्था में... भगवान प्रभु की दशा में जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का भाव, शुभराग (होता है), वह विभाव है। आहा..हा..! उस **विभाव से पृथक् होकर...** अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर। आहा..हा..! ऐसी बात है।

चैतन्यतत्त्व को ग्रहण कर। चैतन्यतत्त्व। वह तो अचैतन्य है-विभावभाव, वह चैतन्यस्वरूप नहीं। आहा..हा..! वह तो वास्तव में अजीवस्वरूप है। इसलिए चैतन्यतत्त्व जो है.. आहा..हा..! वह भगवान चैतन्यस्वरूप, चैतन्य ब्रह्म, प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप को ग्रहण कर। आहा..हा..! **यही करना है।** करने का धर्मी को हो तो यह करना है, बाकी सब बातें हैं। आहा..हा..! मुद्दे की बात पहले से ली है।

जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो कि जो भव के अन्त का कारण है, उस भव के अन्त का कारण वह सम्यग्दर्शन, विभावभाव को भिन्न करके चैतन्य को जानकर ग्रहण प्रतीति में करे, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का जो राग, वह भी विभाव है। आहा..हा..! उस भाव को भी छोड़कर। आहा..हा..! भारी कठिन बातें। एक तो जहाँ पाप से भी निवृत्ति नहीं, उसे ऐसे शुभभाव से हट जाने पर अन्तर में प्रगट हो, उसकी बात इसे बैठती नहीं। आहा..हा..! शुभभाव, वही निर्जरा का कारण है, संवर का कारण है (ऐसा लोग मानते हैं)। आहा..हा..! अरे प्रभु! क्या करता है? भाई! अरे रे! क्या है? भाई! भगवान चैतन्य वह शुद्ध परमब्रह्म, शुद्ध परमब्रह्म, उसे पकड़ना और ग्रहण करना हो अर्थात् उसे ग्रहण करके प्रतीति करनी हो, उसे विभाव से भिन्न करना पड़ेगा। आहा..हा..!

मुमुक्षु : स्व-सन्मुख में आवे तो ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्व-सन्मुख का अर्थ कि ग्रहण कर, अर्थात् वहाँ जा। जो चैतन्यवस्तु है, परमब्रह्म आनन्द प्रभु है, विभाव को छोड़कर अर्थात् पर्यायबुद्धि छोड़कर, द्रव्यबुद्धि कर। भाषा तो सादी, परन्तु भाव तो बहुत सूक्ष्म है, बापू! आहा..हा..! इसमें वाद-विवाद से कहीं पार पड़े, ऐसा नहीं है। वह कान्तिलाल ऐसा कहता है, ऐसा कि इसमें ऐसा होता है न शुभ उपयोग है, इसलिए ऐसा होता है। आहा..हा..! शुभ उपयोग से वहाँ निर्जरा होती है और शुभ उपयोग से वहाँ समकित पाता है। अनिवृत्तिकरण आदि ये सब शुभ उपयोग है। अरे! भाई! यह तो उसका अभाव करके शुद्धस्वरूप की दृष्टि करे, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहा..! ऐसी बातें हैं परन्तु अब...

यही करना है। आहा..हा..! **पर्याय सन्मुख देखकर...** देखो! यह विभाव है, वह पर्याय में है, इसलिए **पर्याय सन्मुख देखकर पर्याय में कुछ नहीं करना है।** आहा..हा..! वर्तमान पर्याय है, उसके सामने देखकर कुछ पर्याय में करना नहीं है। आहा..हा..!

द्रव्यदृष्टि करने से... बहुत माल आ गया है। आहा..हा..! वह बेचारा साधु, भव्यसागर बीस वर्ष की दीक्षा। तीव्र क्या कहलाता है? आशुकवि। वह ऐसा कहे कि हम मुनि नहीं हैं। आहा..हा..! और यह कहता है शुभभाव से मुनिपना संयम और समकित होता है। अभी शुद्ध उपयोग... शुद्ध उपयोग है, सम्यग्दर्शन होने पर विभाव से भिन्न पड़ने पर शुद्ध उपयोग होता है, वह उसे पकड़ सकता है। शुभभाव से भिन्न होने का अर्थ यह है। विभाव से भिन्न होने पर, शुभभाव से भिन्न होने पर, शुद्ध उपयोग से जीव को ग्रहण कर सकता है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं।

लोगों को यह बात थी नहीं न, इसलिए कठिन लगती है। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! प्रभु! तेरे हित का मार्ग यह है, भाई! आहा..हा..! वह सब अहित होगा, भाई! तुझे दुःख होगा। आहा..हा..! उस शुभभाव से संवर और निर्जरा मानने से, प्रभु! वह तो मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्वभाव में प्रभु! तू वर्तमान दुःखी है, भाई! और इसके परिणामरूप से... अरे! भगवान त्रिलोक के नाथ आनन्दसागर को दुःख भोगना पड़े, भाई! आहा..हा..! यह कौन चाहे? इस विरुद्ध दृष्टिवाले को भी बेचारे को दुःख होगा, ऐसा कौन चाहे? भाई! तुझे वस्तु की, आनन्द की खान प्रभु है, भगवान, वह शुभभाव से हटकर.. पर्यायबुद्धि में कुछ देखकर करना नहीं है।

द्रव्यदृष्टि करने से... द्रव्य अर्थात् ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, सामान्य स्वभाव, एकरूप स्वभाव, निष्क्रिय स्वभाव, परमपारिणामिक निजानन्द प्रभु एकरूप स्वभाव। आहा..हा..! उसकी **द्रव्यदृष्टि करने से पर्याय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ ही जायेंगे।** आहा..हा..! पर्यायदृष्टि करके कुछ करना नहीं। उसमें तो क्या करे? पर्याय तो है। अब आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-नहीं, वे कब हों? कि पर्यायबुद्धि छोड़कर, द्रव्य ज्ञायक चैतन्यमूर्ति भगवान को शुद्ध उपयोग द्वारा पकड़े। आहा..हा..! शुभभाव से तो भिन्न पड़ना है, तब अब रहा कौन भाव? शुद्ध। आहा..हा..! उस शुद्धभाव से चैतन्य को ग्रहण कर। यह करना है, प्रभु! लाख बात की बात, लाख शास्त्र पढ़े परन्तु करना तो यह है। आहा..हा..! कहो, कान्तिभाई! ऐसी बात है, भाई! आहा..हा..!

यह तो परम सत्य है, प्रभु! आहा..हा..! तीन लोक का नाथ अन्दर एक समय की विकृत पर्याय से भिन्न है। आहा..! उसे तो विकृत अवस्था के भाव को लक्ष्य में से छोड़ दे। अर्थात् पर्यायबुद्धि छोड़ दे। आहा..हा..! और चैतन्य ज्ञायकतत्त्व महाप्रभु परमात्मस्वरूप,

परमात्मस्वरूप वस्तु है। परमात्मस्वरूप अर्थात् परमस्वरूप, परमस्वरूप, परमपारिणामिक परमस्वरूप, वह परमात्मस्वरूप। आहा..हा..! स्वभाव ही परमात्मा है। यह शक्ति कहो, स्वभाव कहो या सामर्थ्य कहो। आहा..हा..! परमात्मस्वरूप ही सामर्थ्य में है। आहा..हा..! उसे तू पकड़। आहा..हा..! ऐसी बात है, प्रभु! लोगों को कठिन लगती है, क्या हो? यह बात थी नहीं और लेकर बैठे बाहर से। यह व्रत और संयम लिया और क्रियायें लगायीं। अब इसे साधुपना मनवाना है।

मुमुक्षु : अपना बचाव करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे जँची नहीं, उसे दूसरा जँचा है, क्या करे? उसे वह बात जँची है न। आहा..हा..! क्योंकि वह बात तो सुनी नहीं, उसके विचार में आयी नहीं, शास्त्र में है परन्तु उसने निकाली नहीं। आहा..हा..! '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' ऐसा क्या कहा? पर्यायें—जितने गुणस्थान आदि की हैं, उनसे रहित प्रभु है। आहा..हा..! पर्यायें हैं, वे तो भेद हैं। उनसे ज्ञायक जानन तत्त्वस्वरूप, परमात्मस्वरूप वह भिन्न है, उसे ग्रहण कर। आहा..हा..!

इसके ज्ञान में ऐसा निर्णय तो करे कि करना यह है, तो आगे आयेगा। आहा..हा..! प्रभु! किसी को झूठा सिद्ध करने के लिये (बात) नहीं है, बापू! यह तो मार्ग का स्वरूप ऐसा है, भाई! आहा..हा..! तब वे लोग कितने ही ऐसा कहते हैं कि ये साधु हैं, इन्हें मानते नहीं और साधुपना नहीं होता, ऐसा नहीं होता, ऐसा करके निन्दा करते हैं। अरे! भगवान! यह निन्दा नहीं, प्रभु! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! तेरे आत्मा को दुःख हो, वह बात नहीं है यह। आहा..हा..!

यहाँ तो परमात्मस्वरूप भगवान, वह शुद्ध उपयोग से ग्रहण हो सकेगा। आहा..हा..! क्योंकि वह शुद्धस्वरूप त्रिकाली पवित्र परमात्मस्वरूप है, उसे पवित्र शुद्ध परिणाम से ही ग्रहण-पकड़ा जा सकेगा। आहा..हा..! ज्ञायकभाव को ज्ञान की पर्याय से पकड़ सकते हैं। राग शुभ है, वह कोई ज्ञान की पर्याय नहीं है। आहा..हा..! अरे! चौरासी के अवतार में दुःखी है। घानी में पेल डाले, आहा..हा..! जीवित चमड़ी उतारे, नमक छिड़के, ऐसे दुःख सहन किये हैं, भाई! तूने मिथ्यात्वभाव के कारण (महा दुःख सहन किये हैं)। उस भाव को छोड़ने की बात है, प्रभु! वह भाव नहीं छोड़े और कहे कि हम धर्मी हैं, बापू! तुझे नुकसान होगा, भाई! आहा..हा..!

यहाँ यह कहते हैं। **द्रव्यदृष्टि करने से पर्याय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ ही जायेंगे।** आहा..हा..! **कुआँ खोद तो पानी आयेगा ही,...** कुआँ खोद तो पानी अवश्य आयेगा। **लेने नहीं जाना पड़ेगा।** आहा..हा..! इसी प्रकार **चैतन्यपाताल फूटने पर...** उस विभाव की विकृत अवस्था को लक्ष्य में से छोड़कर और भगवान चैतन्यस्वरूप को लक्ष्य में ले तो जैसे पाताल कुआँ फूटे, आहा..हा..! **चैतन्यपाताल फूटने पर शुद्ध पर्याय का प्रवाह अपने-आप ही चलने लगेगा।** आहा..हा..! कुआँ खोदने पर पानी आयेगा ही, लेने जाना नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार चैतन्यपाताल फूटने पर अर्थात् कि चैतन्यपाताल को दृष्टि में ग्रहण करने से... आहा..हा..! वह चैतन्यपाताल फूटता है अर्थात् शुद्ध पर्याय का प्रवाह-सम्यग्दर्शन-ज्ञान, शान्ति का प्रवाह तुझे आयेगा, प्रभु! भाई! तू शान्तरस से भरपूर, स्थिर शान्त, चारित्रस्वरूप, वीतरागस्वरूप, शान्तस्वरूप वह तू है। चारित्र अर्थात् अकषायभाव अर्थात् वीतरागभाव अर्थात् जिनभाव। तेरा जिनस्वरूप ही तू है। आहा..हा..!

घट-घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन
मत मदिरा के पान सों, मतवाला समझे न।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार तू सुन। तेरा स्वरूप जिनस्वरूप है। रागस्वरूप है, वह तो विकृत भाव है; तेरा स्वरूप है, वह तो जिनस्वरूप है। जिनस्वरूप अर्थात् अकषायस्वरूप है। अकषायस्वरूप अर्थात् शान्तस्वरूप है। शान्तस्वरूप अर्थात् चारित्रस्वरूप है। चारित्र-स्वरूप अर्थात् जिनस्वरूप है। आहा..हा..! यह तो त्रिकाल की बात है, हों! आहा..हा..! उसे ग्रहण करना। इससे इसे चैतन्य में जितनी शक्तियाँ हैं, वे सब पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित होगी। भाई! यह प्रवाह चैतन्य का प्रस्फुटित होगा। ऐसी कठिन बातें।

चैतन्यस्वभाव महा आनन्द और शान्त जिनस्वरूपी प्रभु, उसे यदि तू ग्रहण करे तो जिनस्वरूप में-पाताल में वीतरागता पड़ी है, आनन्द पड़ा है; अन्दर में दर्शन है, शान्ति है, चारित्र है, सम्यग्ज्ञान सब पड़ा है, प्रभु! उसे तू ग्रहण करने पर पर्याय में, प्रवाह में दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पर्याय का प्रवाह आयेगा, प्रभु! वह नहीं आवे, ऐसा नहीं हो सकता। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, ऐसा मार्ग है।

पर्याय को वहाँ ले जा, ऐसा कहते हैं अर्थात् शुद्धोपयोग को वहाँ पकड़कर उसे (द्रव्य को) पकड़। शुद्धोपयोग है पर्याय। आहा..हा..! परन्तु उस पर्याय से द्रव्य को पकड़। तब (कोई) कहता है कि शुद्धोपयोग अभी नहीं होता। प्रभु.. प्रभु.. प्रभु.. भगवन्त।

आहा..हा.. ! क्या हो ? प्रभु ! यह क्या कहना ? अरे भगवान का विरह पड़ा, सच्चे सन्त रहे नहीं। आहा..हा.. ! तथा केवलज्ञान और मन:पर्ययज्ञान या अवधि उत्पन्न हो, वैसी योग्यता रही नहीं। आहा..हा.. ! एक सम्यक् में मतिश्रुतज्ञान की योग्यता रही। अब उसमें यह वाद और विवाद शुरु हुए, प्रभु ! आहा..हा.. !

यहाँ शान्ति का कुँआ है, प्रभु। अकषायस्वभाव का समुद्र। 'शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है' शुद्ध चेतनासिन्धु हमारो रूप है, उसे पकड़। वह शुभभाव से नहीं पकड़ में आता, प्रभु ! क्योंकि उससे विरुद्ध भाव है। शुद्ध भाव से पकड़ में आयेगा क्योंकि शुद्ध है, वह शुद्धस्वभाव से पकड़ में आयेगा। आहा..हा.. !

अरे ! परन्तु ऐसा जहाँ ज्ञान में निर्णय न करे... आहा..हा.. ! अरे बिजली की चमक आयी है, मनुष्य देह एकदम, थोड़ा-थोड़ा करते-करते चली जायेगी और आकर अन्त आ जायेगा, बापू ! एक समय ऐसा आयेगा कि यह ऐसे आह ! (हो जायेगा) क्या हुआ ? छूट गया देह, कहाँ इसकी चीज़ थी। आहा..हा.. ! यह चमक, बिजली की चमक में मोती पिरो ले, भाई ! आहा..हा.. ! ऐसा मनुष्य देह, अरे ! ऐसा क्षयोपशम भी अन्यत्र कहाँ है ? चींटी, मकोड़ा... आहा..हा.. !

भाई ! तू चैतन्य पाताल सिन्धु-सागर है न ! शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. अनन्त शान्ति का सागर प्रभु, उस शुद्ध उपयोग की शान्ति द्वारा उसे पकड़। आहा..हा.. ! उसकी जाति की भात पाड़कर पकड़। राग से, विभाव से नहीं पकड़ में आयेगा, प्रभु ! आहा..हा.. ! यह संयोग तो छूट जायेंगे। आहा..हा.. ! वे बेचारे भाईलालभाई गये न ? पहले आये थे, उनके घर में किसी ने चोरी की, मकान में से थोड़ी ऊपर रात्रि में... बड़ा छिद्र करके अन्दर घुस गया। चार हजार रुपये का ले गया। भाईलालभाई, यह बढ़वाणवाले पहले गये थे, वापस आये थे। मैंने कहा अब ? कि वहाँ जाना पड़ेगा। आहा.. ! ऐसी चीज़। ऊपर होगा नलिया अर्थात् क्या ? नलिया को क्या कहते हैं ? ....लकड़ी का होगा। छिद्र करके रात्रि में तोड़ डाला और अन्दर घुसकर (ले गये)। बड़ा छिद्र किया, चार हजार रुपये का ले गये। आहा..हा.. ! अर..र ! ऐसी चीज़ें। देखो न, जगत को कहाँ है ? अरे रे ! तेरा क्या होगा ? प्रभु ! ऐसी चोरियाँ करे। अरे !

यहाँ तो अब वहाँ जाकर आगे बात की (है), राग मेरा है, वह भी तूने चोरी की है, भाई ! आहा..हा.. ! चोर नहीं आया। मोक्षमार्ग के अधिकार में। अपराधी चोर है, भाई !

आहा..हा..! यह शुभभाव मेरा, मेरा मुझे लाभदायक है। प्रभु! तू गुनहगार है, भाई! आहा..हा..! तुझे तेरा लाभ नहीं उसमें मिलेगा। आहा..हा..! वह अपराध है, आहा..हा..! उसे तो वहाँ जहर कहा है, शुभ उपयोग को (जहर कहा है)। आहा..हा..! भाई! उस शुभ उपयोग का-भाव का, विभाव का लक्ष्य छोड़ दे, वह तेरी चीज़ नहीं है, तुझमें नहीं है, तू उसमें नहीं है। आहा..हा..!

ऐसे शुभभाव के विभाव से हटकर चैतन्यस्वरूप अन्दर शान्त.. शान्त.. शान्त.. ऐसा शान्त सुधारस प्रभु, शान्त सुधारस सिन्धु है। आहा..हा..! उसमें एकाग्र हो। उसको पकड़ का अर्थ (यह है कि) उसमें एकाग्रता (कर)। आहा..हा..! **द्रव्यदृष्टि करने से पर्याय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ ही जायेंगे। कुआँ खोद तो पानी आयेगा ही, लेने नहीं जाना पड़ेगा। चैतन्यपाताल फूटने पर शुद्ध पर्याय का प्रवाह अपने-आप ही चलने लगेगा।** आहा..हा..! चैतन्यपाताल को पकड़ने से, फूटने पर (का यह अर्थ) हुआ। पर्याय में शुद्ध पर्याय का प्रवाह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शान्ति आदि का प्रवाह अपने आप चालू होगा। आहा..हा..! शब्द तो देखो, बहुत संक्षिप्त भाषा और अकेले सिद्धान्त का रहस्य है। आहा..हा..! ३१९ (बोल पूरा हुआ)।

चैतन्य की धरती तो अनन्त गुणरूपी बीज से भरी, उपजाऊ है। इस उपजाऊ धरती को ज्ञान-ध्यानरूपी पानी से सींचने पर वह लहलहा उठेगी॥३२०॥

३२०, **चैतन्य की धरती...** ज्ञायक चैतन्य तत्त्व जो स्वरूप, उसकी धरती अर्थात् उसका स्वभाव। **अनन्त गुणरूपी बीज से भरी, उपजाऊ है।** आहा..हा..! रागरहित चैतन्यतत्त्व वस्तु वह अनन्त गुण से भरपूर रसाल है। हिन्दी में उपजाऊ है अर्थात् वह वस्तु ही ऐसी है कि आनन्द की उपज करनेवाली है, शान्ति को उपजानेवाली वह धरती है। आहा..हा..! समझ में आया? शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. वीतरागता। उस वीतरागता को उपजानेवाली उपजाऊ भूमि है। आहा..हा..! यह ऐसी बातें अब। क्या करना? बाहर में व्रत करो, अपवास करो और यात्रा करो और.. आहा..हा..! हमेशा थोड़ा पढ़ना पाव घण्टे, देवदर्शन करना, यह छह प्रकार का आवश्यक है न! अरे रे! भाई! यह तो शुभभाव की बातें हैं। आहा..हा..!

भगवान तो शुभभाव से भिन्न अनन्त गुण से भरपूर उपजाऊ भूमि है। जैसे चना, गन्ना पके गन्ना, वह जमीन अलग होती है। समझ में आया? आहा..हा..! और कुल्थी पके, कुल्थी है न? क्या कहते हैं? वह अलग चीज़ है, वह जमीन अलग होती है। यह तो भगवान आत्मा की उपजाऊ भूमि, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय सम्यग्दर्शन। आहा..हा..! अतीन्द्रिय शान्ति और स्वच्छता और प्रभुता उसमें भरी हुई है, वह प्रगट होगी। यदि तू उसका आदर कर और गहन एकाग्र हो। आहा..हा..! तो उसकी पर्याय में शुद्धता बढ़ेगी। ऐसी बातें अब। आहा..हा..! ऐसा उपदेश करे, इसलिए उसमें कुछ हाथ आवे नहीं, कहते हैं (कि) मुझे क्या करना? परन्तु यह करना है, बापू! अनन्त जीव ऐसा करके मोक्ष पधारे हैं। आहा..हा..!

यह चैतन्य धरती, चैतन्यभूमि, चैतन्य तत्त्व, आत्मतत्त्व त्रिकाली की धरती अर्थात् वस्तु, अनन्त गुणरूपी बीज की भरी हुई, अनन्त गुण के बीज वहाँ अन्दर पड़े हैं। आहा..हा..! उपजाऊ है। इन सब शक्तियों में शान्ति को उपजानेवाली शक्तियाँ भरी हैं। वीतरागता को उपजानेवाली सब शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसी यह उपजाऊ भूमि है। आहा..हा..!

यह नारियेली होती है न? नारियेली। वह नारियेली जंगल में बहुत होती है। एक वोरा कहते थे। वहाँ जामनगर में व्याख्यान में आते थे, कि हम एक बार जाकर चढ़े। जहाज में थे और जहाज में समुद्र में एक ऐसा पर्वत निकला। क्या कहलाता है वह? लोह चुम्बक, लोह चुम्बक का पर्वत था। उसमें जहाज निकला, खिंच गया। वहाँ भटकना। अब? दो दिन, दो दिन निकालना किस प्रकार? वहाँ नारियेली बहुत भरी हुई, नारियेली। उसमें... गये। अब ऊपर नारियेली में पानी न मिले तो, तो कहे नीचे मटमैला पानी होता है न? उस पानी को डालकर ऊपर चढ़कर खोपरा होता है, खोपरा अन्दर होता है न। आहा..हा..! वह खोपरा खाकर और उसमें पानी-बानी हो वह पीवें। वह खोपरे का पानी। क्या करें? वहाँ अनाज नहीं मिले।

इसी प्रकार यह भगवान उपजाऊ जमीन ऐसी है कि उसमें यदि एकाग्रता कर.. आहा..हा..! तो आनन्द पकेगा। उसमें आनन्द के झरने झरेंगे, ऐसी वह उपजाऊ भूमि है। आहा..हा..! कितना इसे समेटना पड़ेगा। आहा.हा..! **इस उपजाऊ धरती को...** इस उपजाऊ धरती को **ज्ञान-ध्यानरूपी पानी से सींचने पर...** देखा? उसमें पानी डाला, तो ऊपर नारियल के खोपरा होते हैं और अन्दर पानी भरे। बहुत पानी डालें और लोग तो बहुत

थे (सबको) खाना-पीना चाहिए। इतना माल साथ में नहीं था, कितने ही दिन रहना पड़ा। इसी प्रकार यह चैतन्यभूमि / धरती ऐसी हे कि इसे ज्ञान और ध्यान का पानी यदि पिलाये तो अन्दर से शान्ति और आनन्द का पाक पकेगा। आहा..हा..! ऐसी भाषा, ऐसा उपदेश। व्रत करना, भगवान के दर्शन करना, पूजा करना तो समझ में आवे कि हमेशा यह करना, दर्शन करना। आहा..! ब्रह्मचर्य पालना। बापू! ये सब क्रियायें हैं, भाई! वह तो विकल्प है, राग है। उससे भिन्न तेरी चैतन्य धरती, भूमि है। उस वस्तु में से विभाव पके, ऐसी चीज़ नहीं है। विभाव तो पर्याय में पर के लक्ष्य से होते हैं। विभाव पके वह चैतन्यमूर्ति नहीं है। आहा..हा..! वह चैतन्य भरती धरती उपजाऊ है, उसमें से तो आनन्द और ज्ञान पके, ऐसी उपजाऊ भूमि है। आहा..हा..!

पर्याय में जो विभाव होता है, वह कहीं शक्ति और गुण से नहीं होता। ऐसी कोई शक्ति नहीं कि विभाव करे। वह तो पर्यायबुद्धि में पर के लक्ष्य से पुण्य-पाप के भाव होते हैं। उसका पाक कहीं द्रव्य में से नहीं आया। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा उपदेश। अनजाने व्यक्ति को तो लगे (कि) यह क्या कहते हैं यह? यह तो ऐसा उपदेश? भाई! मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! आहा..हा..!

महाप्रभु चैतन्यभूमि में देख, ज्ञानध्यान का पानी पिला। आहा..हा..! उसका ज्ञान कर, उसमें स्थिरता कर, उसमें एकाग्र हो तो अवश्य **वह लहलहा उठेगी**। आहा..हा..! अन्दर लहलहा उठेगी। फसल का फल आयेगा, फसल पकती है अन्दर। नहीं कहते? फसल फलीफूली है। ऐसे पूरा खेत होता है न, और बाजरा, गेहूँ, चना पका हो तो ऐसे, आहा..हा..! इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुण की उपजाऊ भूमि में उसे ज्ञान में एकाग्रता और ध्यान में एकाग्रता हो तो ऐसी दशा में उपज पकेगी। भाई! शान्ति पकेगी, सम्यग्दर्शन पकेगा। आहा..हा..!

लहलहा उठेगी। है? ज्ञान, ध्यानरूप पानी का सिंचन करने से वह लहलहा (उठेगी)। उपजाऊ भूमि उपज में पाक ऐसा आयेगा, उसमें आनन्द का पाक आयेगा। आहा..हा..! शुभराग, उपयोग वह तो आकुलता है, प्रभु! वह आकुलता उत्पन्न करनेवाली कोई भूमि, जमीन आत्मा नहीं है। आत्मा का कोई गुण और कोई शक्ति ऐसी नहीं है कि विभाव उत्पन्न करे। आहा..हा..! वह तो पर्यायदृष्टि से निमित्त के वश होनेवाला विभाव उत्पन्न करता है और यह स्वभाव जो उत्पन्न करना, वह तो उसकी उपजाऊ जमीन ऐसी

है, उसका स्वभाव ऐसा है। आहा..हा..! कि जिसमें से शुद्ध उपयोग, शान्ति, वीतरागता, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, ऐसी पर्यायों का फल आयेगा, तेरी धरती में से इन पर्यायों का पाक आयेगा। आहा..हा..! कहो, अब यह ऐसी बातें। ऐसा मार्ग है, भाई! अरे! अनादि से दु:खी है, इसने तो साधुपना अनन्त बार लिया है, शुभभाव ग्रहण करके (अनन्त बार द्रव्यलिंगी मुनि हुआ है)। आहा..हा..! ऐसा शुभभाव तो अभी है ही नहीं। अब इस शुभभाव में धर्म मानना और संयम मानना, भाई! प्रभु! आहा..हा..! अजैनपने से जैनपना प्रगट होगा? राग है, वह अजैनपना है, उससे वीतरागपना जैनपना प्रगट होगा (ऐसा मानना)। बहुत विरुद्ध है। आहा..हा..! ३२० (बोल पूरा हुआ)।

पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। द्रव्यदृष्टि करने से ही आगे बढ़ा जा सकता है, शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है॥३२१॥

३२१, **पर्याय पर दृष्टि रखने से...** क्या कहते हैं कि वस्तु जो है चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दशा जो वर्तमान अवस्था है, वह पर्याय उत्पाद-व्ययवाली है। यह ध्रुव है भगवान अन्दर। उस **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,...** आहा..हा..! पर्याय में कहाँ वह शक्ति और स्वभाव पड़ा है? एक समय की पर्याय में वह गुण और शक्ति और सत्व कहाँ है? आहा..हा..! बहुत सादी भाषा है, सत्य तो यह है। **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,...** कहो, शुभभाव करने से तो नहीं होता परन्तु पर्याय पर दृष्टि रखने से नहीं होता। वर्तमान निर्मल ज्ञान की पर्याय है, विकास है, उस पर नजर रखने से भी चैतन्य प्रगट नहीं होता। आहा..हा..! यह क्या कहा? कि शुभराग से तो नहीं होता परन्तु ज्ञान में जानपने का विकास हुआ, ग्यारह अंग इत्यादि करोड़ों श्लोकों का ज्ञान (हुआ), उस पर्याय पर दृष्टि रखने से... आहा..हा..! चैतन्य प्रगट नहीं होता, आहा..हा..! पर्याय में शास्त्र का ज्ञान हुआ, शब्दज्ञान (हुआ) तो उसके ऊपर दृष्टि रखने

से चैतन्य प्रगट नहीं होता। आहा..हा..! माने कि मुझे इतना जानपना हुआ और हम दूसरे से चतुर हैं और दूसरे को समझा सकते हैं और दूसरे हमें ज्ञानी कहे, ऐसी हमारी कथनी है और... अरे! प्रभु! सब छोड़ दे न! आहा..हा..!

यहाँ तो यह कहते हैं कि तेरी पर्याय में राग से तो तुझे (नहीं होता), राग पर दृष्टि रखने से तो नहीं होता परन्तु पर्याय में ज्ञान खिला है, शास्त्रज्ञान और व्यवहार की श्रद्धा (हुई), वह सब पर्याय में है, उस पर्याय पर लक्ष्य रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता। क्योंकि उस पर्याय में शक्ति और गुण का सत्व नहीं है। जिसमें हो, उसमें से प्रगट होता है। उसमें कहाँ गुण और सत्व है? आहा..हा..! यह तो मर जाये ऐसी बात है। राग को मार डाले और पर्याय में इतना क्षयोपशम हो, उसे भी मार डाले। आहा..हा..! उस पर दृष्टि जाने से प्रभु चैतन्य प्रगट नहीं होगा। आहा..हा..! आहा..हा..! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : लक्षण में गये बिना लक्ष्य कैसे दिखेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लक्ष्य ही कहाँ है? लक्षण है, वह तो ज्ञान है। ज्ञान कौन सा? यह जाना हुआ ज्ञान वह? वह ज्ञान ही नहीं है। आहा..हा..! शास्त्रज्ञान है, वह शब्द ज्ञान है, वह आत्मज्ञान नहीं है। सूक्ष्म बात, भाई! आहा..हा..! उस ज्ञान की पर्याय में विकास है, उसका लक्ष्य छोड़ दे। वह विकास सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहा..हा..! ऐसा कहते हैं।

पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,... आहा..हा..! पर्याय में शास्त्र का ज्ञान किया, वह तो शब्द का ज्ञान है, शब्दों का / जड़ का ज्ञान है; वह चैतन्य का ज्ञान नहीं है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, प्रभु! कठिन बात, भाई! पढ़े हुए भी धारणा ज्ञान में चढ़ जाते हैं कि हमें आता है, इसलिए पढ़े हैं, बापू! धीर हो, जरा धीर हो, भाई! यह पढ़ना ज्ञान की पर्याय है, वह शब्द की पर्याय है, वह आत्मा की पर्याय नहीं, शब्दज्ञान की पर्याय है। आहा..हा..!

उस **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है।** आहा..हा..! जिसमें ज्ञान का खजाना पड़ा है, प्रभु! अन्दर वस्तु में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ज्ञायकभाव ही पड़ा है, उस पर दृष्टि देने से चैतन्य प्रगट होता है। उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र प्रगट होते हैं। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, भाई! **द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है,...** देखा? आहा..हा..! वस्तु जो है प्रभु आत्मतत्त्व, उसमें तो

अनन्त शक्ति और अनन्त सामर्थ्य भरी है। अनन्त गुणों की सामर्थ्य! और एक-एक गुण में भी अनन्त सामर्थ्य। आहा..हा..! ऐसी द्रव्यदृष्टि करने से चैतन्य प्रगट होता है। क्यों? द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरी है। आहा..हा..!

उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। आहा..हा..! शास्त्र का पठन हुआ और बहक जाये कि यह मुझे आता है। रहने दे भाई! आहा..हा..! इसे समझाना आता नहीं और मुझे कैसा समझाना आता है। भाई! यह सब क्षयोपशम विकार का है, परलक्ष्यी ज्ञान का क्षयोपशम है। आहा..हा..! वह जड़ का ज्ञान है। वास्तव में तो वह ज्ञेयमग्न है; ज्ञानमग्न नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें बहुत सूक्ष्म पड़ती है, परन्तु क्या हो? भाई! मार्ग ऐसा है, बापू! आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह परलक्ष्यी ज्ञान है, वह परज्ञेय है। वह परज्ञेय में निमग्न है, इसे ज्ञान में मग्नपना नहीं आता। ज्ञानस्वरूप भगवान है। आहा..हा..! दूसरे की अपेक्षा मानो हमें कहना आया और हम कैसा कहते हैं, ऐसा जिसे क्षयोपशम का अभिमान है, वह ज्ञेय में निमग्न है, ज्ञान में नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें सुनना कठिन पड़े। यह तो अपूर्व बातें हैं, बापू! आहा..हा..! क्योंकि इसने माना है, उससे दूसरा लगे, परन्तु वस्तु तो यह है। **उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ।** आहा..हा..! वह ज्ञायकभाव, द्रव्यस्वभाव, शुद्धभाव, परमभाव, वहाँ दृष्टि लगा, दृष्टि को वहाँ रोक। आहा..हा..! **निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय शुद्ध दृष्टि का विषय नहीं है।** आहा..हा..! निगोद से लेकर... अरे! सिद्ध तक की परम पर्याय। यह जो ज्ञान परलक्ष्यी है, उसकी तो छोड़ बात। आहा..हा..! परन्तु सिद्धपर्याय है,... निगोद से लेकर सिद्ध की पर्याय है। **कोई भी पर्याय शुद्ध दृष्टि का विषय नहीं है।** आहा..हा..! शुद्ध दृष्टि का विषय तो प्रभु त्रिकाल वस्तु है। उसका विषय पर्याय नहीं है। केवलज्ञान की पर्याय भी दृष्टि का विषय नहीं है। आहा..हा..! दृष्टि का ध्येय ध्रुव के ऊपर है। उसमें अनन्त शक्ति पड़ी है, उसमें उसकी दृष्टि है। पर्याय में तो एक समय की अवस्था में अनन्त कहाँ से आया? अरे! अनन्त अर्थात् पर्याय भले केवलज्ञान हो, सिद्ध की हो परन्तु एक समय की ताकतवाली, भले अनन्त-अनन्त बलशाली है, आहा..हा..! परन्तु वह तो पर्याय का जोर। वस्तु जो भगवान आत्मा दृष्टि का विषय है, वह पर्याय नहीं है। आहा..हा..! ऐसा सब फेरफार करना लोगों को कठिन पड़ता है। इसलिए बेचारे फिर सत्य बात को उड़ाते हैं। उसमें यह लिखा है। कितने ही मानते हैं कि उपयोग शुद्ध हो, उसे

समकित होता है। उसमें तो और उसने ऐसा लिखा, शुद्ध उपयोग पहला, फिर समकित हो, ऐसा लिखा। अरे! भगवान! आहा..हा..!

द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोद के जीव की पर्याय लो या सिद्ध की पर्याय लो, वह कोई दृष्टि का विषय नहीं है। आहा..हा..! पर्याय, वह कोई दृष्टि का विषय नहीं है। दृष्टि का विषय तो त्रिकाली भगवान है। आहा..हा..! है तो दृष्टि पर्याय, परन्तु उसका विषय स्वयं पर्याय नहीं है; उसका विषय त्रिकाल है। आहा..हा..!

साधकदशा भी शुद्ध दृष्टि के विषयभूत... आहा..हा..! अरे! द्रव्य के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, ऐसी जो साधकदशा-मोक्ष का मार्ग, शुद्ध उपयोग की परिणति.. आहा..हा..! वीतरागदशा (प्रगट हुई)... आहा..हा..! वह भी शुद्ध दृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का मार्ग, वह साधकदशा, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है, वह तो पर्याय में है। आहा..हा..! अब यह बात समझना और उसमें पुरुषार्थ अन्दर वस्तु की ओर करना।

साधकदशा भी... सम्यग्दर्शन जो द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से हुआ, द्रव्य के लक्ष्य से-आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, द्रव्य के आश्रय से सम्यग्ज्ञान हुआ, द्रव्य में लीनता होने से चारित्र हुआ, वह **भी शुद्ध दृष्टि के विषयभूत...** वह शुद्ध दृष्टि, सम्यग्दृष्टि का विषय मूल स्वभाव, उसमें वह वस्तु नहीं है। आहा..हा..! ऐसा है। समझ में आया? पर, निमित्त, विभाव, शुभराग आदि वह कोई सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है परन्तु सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की जो पर्याय और शान्ति और आनन्द प्रगट हुआ, वह भी कहीं दृष्टि का विषय नहीं है। दृष्टि की पर्याय प्रगटी, वह दृष्टि का विषय नहीं है। आहा..हा..! अरे रे! इसने अनन्त काल में कुछ नहीं किया। जो करने का किया नहीं और सिरपच्ची करके मर गया। धर्म के बहाने भी यह व्रत किये, और उपवास किये और यात्रायें कीं तथा और यह करके राग में मर गया। उसमें धर्म हो गया। आहा..हा..! यहाँ तो धर्म प्रगट हुआ है, कहते हैं अन्दर में, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगटी है, वह भी दृष्टि का विषय नहीं है। पर्याय है न! त्रिकाल ज्ञायकभाव नित्यानन्द प्रभु स्वभावभाव, ध्रुवभाव, भूतार्थभाव, ज्ञायकभाव, वह दृष्टि का विषय है। उसमें साधकभाव नहीं, वह पर्याय उसमें नहीं। आहा..हा..!

द्रव्यदृष्टि करने से ही आगे बढ़ा जा सकता है,... वस्तु भगवान चैतन्य तत्त्व जिसमें अनन्त गुण का माल पड़ा है, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन आदि आगे बढ़ा जाता है। सम्यग्दर्शन हुआ, परन्तु उसके आश्रय से आगे नहीं बढ़ा जाता, ऐसा कहते हैं। त्रिकाल के आश्रय से आगे बढ़ा जाता है। आहा..हा..! **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है।** आहा..हा..! अकेला ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, उस शुद्ध अखण्ड द्रव्य सामान्य का स्वीकार सम्यग्दर्शन में होता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

एक बार सत्-चरण में समर्पित हो जा।

तू एक बार गुरु चरणों में अर्पित हो जा! पश्चात् गुरु ही तुझे अपने में समा जाने की आज्ञा देंगे। एक बार तो तू सत् की शरण में झुक जा और यही स्वीकार कर कि उसकी हाँ ही हाँ है और ना ही ना! तुझमें सत् की अर्पणता आने के बाद सन्त कहेंगे कि तू परिपूर्ण है, अब तुझे मेरी आवश्यकता नहीं है; तू स्वयं ही अपनी ओर देख - यही आज्ञा है और यही धर्म है।

एक बार सत्-चरण में समर्पित हो जा। सच्चे देव-गुरु के प्रति समर्पित हुए बिना आत्मा का उद्धार नहीं हो सकता, किन्तु यदि उसी का आश्रय मानकर बैठ जाए तो भी पराश्रय होने के कारण आत्मा का उद्धार नहीं होगा। इस प्रकार परमार्थ स्वरूप में तो भगवान आत्मा अकेला ही है परन्तु जब तक वह परमार्थ स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता, तब तक पहले देव-गुरु-शास्त्र को स्वरूप के आँगन में विराजमान करना, यह व्यवहार है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति-पूजा के बिना, केवल निश्चय की बातें करनेवाला शुष्कज्ञानी है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-४५

अासोज शुक्ल १४, रविवार, दिनाङ्क १५-१०-१९७८
वचनामृत-३२२ से ३२३ प्रवचन-१२०

ज्ञानी की दृष्टि अखण्ड चैतन्य में भेद नहीं करती। साथ में रहनेवाला ज्ञान विवेक करता है कि 'यह चैतन्य के भाव हैं, यह पर है'। दृष्टि अखण्ड चैतन्य में भेद करने को खड़ी नहीं रहती। दृष्टि ऐसे परिणाम नहीं करती कि 'इतना तो सही, इतनी कचास तो है'। ज्ञान सभी प्रकार का विवेक करता है ॥३२२॥

वचनामृत ३२२ (बोल)। धर्मी कहो या ज्ञानी कहो; जिसे चैतन्यस्वरूप भगवान अनुभव में-प्रतीति में, अनुभवसहित प्रतीति में आया है, उसे यहाँ ज्ञानी अथवा धर्मी कहते हैं। **ज्ञानी की दृष्टि...** अर्थात् धर्मी की दृष्टि **अखण्ड चैतन्य में भेद नहीं करती।** आहा..हा..! सबेरे आया था, नव तत्त्व भी भेदरूप व्यवहार है; उससे भगवान (आत्मा) भिन्न है। उस नव तत्त्व की पर्याय का भी दृष्टि भेद नहीं करती। आहा..हा..! दृष्टि स्वयं निर्विकल्प है न? इससे वस्तु को निर्विकल्परूप ही मानती है, उसका भेद उसे दिखायी नहीं देता। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म!

मुमुक्षु : परन्तु दृष्टि जानती कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि श्रद्धा करती है, परन्तु साथ में ज्ञान आता है, (यह बात) अभी कहेंगे, आगे कहेंगे। दृष्टि है, वह निर्विकल्प पर्याय है। दृष्टि का विषय है, वह अभेद चैतन्य अखण्ड अभेद, अनन्त चैतन्य रत्नाकर गुण से भरपूर प्रभु एकरूप वस्तु है, वह दृष्टि का विषय है। आहा..हा..! प्रथम सम्यग्दर्शन का विषय वह (अखण्ड स्वभाव) है। क्योंकि स्वयं ज्ञान स्वरूप नहीं, इसलिए भेद जाने नहीं। भेद जाने, वह तो ज्ञान हो गया। आहा..हा..! दृष्टि है, वह अखण्ड परमात्मा चैतन्यकन्द अभेद एकरूप है, उसे दृष्टि

स्वीकार करती है। वह चैतन्य में भेद नहीं करती कि यह गुण है और यह द्रव्य है और यह पर्याय है, ऐसे भेद वह दृष्टि नहीं करती, अर्थात् भेद उसके जानने में नहीं आता। आहा..हा..!

साथ में रहनेवाला ज्ञान... यह आया, देखो! दृष्टि है, वह तो त्रिकाली अभेद को स्वीकार करती है, परन्तु साथ में रहनेवाला ज्ञान होता है, वह **ज्ञान विवेक करता है...** यह विवेक अर्थात् सभी चीज़ को भिन्न-भिन्न है, ऐसा वह जानता है। आहा..हा..! **कि 'यह चैतन्य के भाव हैं,...** ज्ञान, आनन्द, शान्ति इसके (चैतन्य के) भाव हैं। पर्याय में चाहे जितनी हीनता आयी, परन्तु वस्तु को उसके गुण में हीनता कभी नहीं हुई। आहा..हा..! इसलिए जब तक साधक है, उसे हीनदशा है, परन्तु उसे ज्ञान जानता है कि मेरी पर्याय में अभी हीनदशा है। वह द्रव्य को भी जानता है, पर्याय को भी जानता है। है? **ज्ञान विवेक करता है कि 'यह चैतन्य के भाव हैं, यह पर है'।** अन्दर रागादि आवे, साधक है, वह ज्ञान उन्हें जानता है कि यह चैतन्य का स्वभाव अथवा उसकी शुद्धपरिणति; और यह रागादि पर है, ऐसा दृष्टि के साथ में रहनेवाला ज्ञान जानता है। आहा..हा..! ज्ञानपर्याय में अपूर्णता है और अशुद्धता भी है। आहा..हा..! यह ज्ञान जानता है। समझ में आया?

दृष्टि अखण्ड चैतन्य में भेद करने को खड़ी नहीं रहती। आहा..हा..! पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड चैतन्य रत्न का सागर एकरूप वस्तु है, उसकी दृष्टि वहाँ होती है। वह दृष्टि चैतन्य में भेद करने के लिए खड़ी नहीं रहती कि यह गुणी है और यह गुण है और यह पर्याय है। आहा..हा..! क्योंकि दृष्टि अभेद है, निर्विकल्प है। उसमें भेद को जानना, वह दृष्टि में नहीं होता। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। है दृष्टि पर्याय, परन्तु वह त्रिकाल अभेद को जानती है (श्रद्धा करती है।)

मुमुक्षु : किस गुण की?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धागुण की। आहा..! श्रद्धा नाम का परिपूर्ण गुण है। भगवान आत्मा में... जीवत्वशक्ति है न, ४७ (शक्ति)? जीवत्वशक्ति भी पूर्ण है अर्थात् कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता, वह पूर्ण है। ऐसे चितिशक्ति अर्थात् उसका प्रकार—ज्ञान और दर्शन, ऐसी चैतन्यशक्ति, वह भी पूर्ण है। ऐसे दृशिशक्ति भी पूर्ण है, सुख भी पूर्ण है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : पर्याय में या द्रव्य में?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में। पर्याय की बात (नहीं है)। पर्याय मानती है उसे पूर्ण। पर्याय तो जानती है, वह ज्ञान से। दृष्टि का विषय अभेद है। दृष्टि है पर्याय। आहा..हा..! ऐसी चीज़! तुम्हारे वेदान्त में पर्याय को नहीं मानी, वे निश्चयाभासी हैं। पर्याय है, यह दृष्टि, वह पर्याय है। किसकी? वास्तव में तो त्रिकाली श्रद्धागुण है, उसकी। यह दृष्टि त्रिकाल अनन्त गुण को-अभेद को स्वीकार करती है, अकेले श्रद्धागुण को स्वीकारती नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? आहा..हा..!

चैतन्य महाप्रभु जिसमें, आहा..हा..! वीर्यशक्ति भी पूर्ण है। पर्याय में शुभाशुभ परिणाम हो, वह वीर्यशक्ति का कार्य नहीं है। आहा..हा..! वीर्यशक्ति तो पूर्ण है, पुरुषार्थ - अनन्त पुरुषार्थ भगवान में पूर्ण है। उस अनन्त पूर्ण गुण का एकरूप, उसे दृष्टि स्वीकार करती है। आहा..हा..!

आत्मा में यह कर्ता नाम का गुण है। यह छह कारकों का लक्ष्य आया। वीर्य, प्रभुत्व। प्रभुत्व नाम का गुण है, वह भी पूर्ण है। ईश्वर नाम का गुण है, वह पूर्ण है और उन अनन्त गुण में ईश्वर (गुण) का रूप है, वह भी पूर्ण है। आहा..हा..! ऐसा कर्ता नाम का गुण है। कार्य की पर्याय होती है, ऐसा एक कर्ता नाम का गुण है। उस पर्याय में भले कार्य की अपूर्णता हो, परन्तु कार्य नाम का गुण है, वह तो पूर्ण है। आहा..हा..! साधकदशा में सम्यग्दर्शन आदि पर्याय न्यून है। तथापि वह कार्यशक्ति जो है, वह पूर्ण है। आहा..हा..! वह कर्ताशक्ति एक आत्मा में है, वह भी पूर्ण शक्ति है। असंख्य प्रदेश में व्यापक और पूर्ण है।

आत्मा में साधनशक्ति है। वह साधनपना भले अल्प प्रगट हुआ, तथापि साधनशक्ति है, वह तो पूर्ण है। आहा..हा..! ऐसे कार्य, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान। जिसमें से प्रगट हो, ऐसी वह शक्ति है, वह भी वहाँ पूर्ण है। पर्याय में भले अपूर्ण हो परन्तु वस्तु में है, वह तो पूर्ण है। आहा..हा..!

एक सम्प्रदानशक्ति है। अपना अपने को दान दे, ऐसी एक शक्ति है। वह शक्ति भी पूर्ण है। अधिकरण नाम की शक्ति है कि जो सब गुणों का आधार है। वह अधिकरणगुण है, वह सब गुणों में एक अधिकरण नाम का रूप है। आहा..हा..! अनन्त धर्मत्व (शक्ति) है न? आहा..हा..! उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का भी एक गुण है। पर्याय में उत्पाद-व्यय भले थोड़ा हो परन्तु उसकी शक्ति में उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का गुण है, वह तो पूर्ण है।

मुमुक्षु : उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का गुण और तत्गुणी, दोनों में अन्तर क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो तत् अर्थात् स्वयं ज्ञानस्वरूप है, ऐसे तत्। वह तो विरोध शक्ति बाद में तत् अतत् आती है।

मुमुक्षु : सत्, सत् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्, सत् ? वह तो दूसरा बोल है। वह तो सदृश-असदृश ऐसा एकरूप परिणाम-ऐसी एक शक्ति है। सैंतालीस में आती है। आहा..हा.. ! यह तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव इतना। वह तो अस्तित्व सदृश-असदृश, ऐसे गुणरूप परिणमन होना, ऐसा गुण अन्दर है। धीर का काम है, भाई ! यह कहीं (बातों से पूरा हो, ऐसा नहीं है।) यह गुण अन्दर पूर्ण है। प्रभुत्व, ऐसा सर्वदर्शी, सर्वज्ञशक्ति; शक्ति अर्थात् उसके सामर्थ्य का स्वभाव, वह पूर्ण है। अन्दर एक विभुत्वशक्ति पूर्ण है, सर्व गुण में व्यापक, ऐसी एक शक्ति भी पूर्ण है। आहा..हा.. ! और अनन्त गुण में भी विभुत्वशक्ति का रूप है, वह भी व्यापकरूप से हो, ऐसा भी उसमें पूर्ण गुण है। आहा..हा.. !

स्वच्छत्वशक्ति भी पूर्ण है। स्वच्छता अल्प प्रगटी हो, तथापि स्वच्छत्वशक्ति तो पूर्ण है। आहा..हा.. ! स्वच्छत्वशक्ति अस्वच्छत्वरूप से परिणमी हो, पर्याय, परन्तु स्वच्छत्वशक्ति है-गुण है, वह पूर्ण है। स्वसंवेदन प्रकाश नाम का गुण है, वेदन में भले अल्प वेदन हो। यहाँ तो दृष्टि कहाँ है ? पूर्ण पर दृष्टि है। दृष्टि भले स्वयं क्षयोपशम की हो या उपशम की हो या क्षायिक की हो परन्तु उस दृष्टि का विषय जो है, उसने जो पकड़ा है, वह चीज़ पूर्ण है। आहा..हा.. ! ऐसी बात।

मुमुक्षु : प्रमाण दृष्टि से पूर्ण है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण ? प्रमाण दृष्टि नहीं। प्रमेय-दूसरे में दूसरे को प्रमेयरूप से होना और दूसरे के प्रमेय का प्रमाणरूप से होना, वह शक्ति भी पूर्ण है। प्रमेय। परिणम्यपरिणामकत्व (शक्ति) है न ? भाई ! आहा..हा.. ! दूसरे ज्ञान में प्रमेयरूप से होना और अपने ज्ञान में सबको प्रमेयरूप से जानना। आहा..हा.. ! वह शक्ति भी पूर्ण है। ऐसे अनन्त गुणों का पूर्णरूप, वह द्रव्य है। आहा..हा.. ! अब ऐसा (समझने के लिये) निवृत्त कब हो ? अरे ! अन्तर्मुहूर्त में (क्या) ? एक क्षण में। आहा..हा.. ! गुलाँट जहाँ खाता है, वहाँ एक समय में विषयान्तर ज्ञान हो जाता है। आहा.. !

अकार्यकारण नाम का गुण है, वह भी पूर्ण है। राग के कारणरूप न होना और राग के कार्यरूप पर्याय में न होना। आहा..हा.. ! यह व्यवहार राग है, इसलिए यहाँ निश्चय प्रगट होता है, ऐसा न होना, (उस शक्ति का कार्य है)। आहा..हा.. ! गजब बात है, भाई ! यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, अरे ! प्रभु ! भाई ! अभी शुभयोग ही है, शुभयोग वह सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र। अरे रे ! प्रभु, प्रभु ! प्रभु ! आत्मा को क्या किया ? भाई ! यह शुभ गुण / पर्याय है, वह चारित्रगुण की विपरीत पर्याय है, परन्तु उस समय भी चारित्रगुण है, वह तो अन्दर पूर्ण है। ज्ञानी की दृष्टि, आहा..हा.. ! पूर्ण गुणस्वरूप द्रव्य पर दृष्टि है। गुण पर दृष्टि नहीं। आहा..हा.. ! ऐसी बात है, बापू ! क्या हो ? अरे ! भगवान का विरह पड़ा और ये ऐसी बातें रह गयी। आहा..हा.. ! वस्तु तो रह गयी है ऐसी की ऐसी। भले भगवान न रहो, यह भगवान तो ऐसा का ऐसा यहाँ रहा है, कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा, ऐसा कहकर बुलाया है न ? (समयसार) ७२ गाथा में। आहा..हा.. ! यह तो वर्तमान क्या ? तीनों काल में ऐसा का ऐसा है। आहा..हा.. ! उसे भगवान का विरह है, इसलिए भगवान कम है, (ऐसा नहीं है)। आहा..हा.. ! दृष्टि में तो भगवान का विरह है ही नहीं। आहा..हा.. ! ऐसी बातें कठिन पड़ती है, भाई ! क्या हो ? अभी लोग क्रियाकाण्ड में ऐसे चढ़ गये, इसलिए इस बात को एकान्त करके उड़ा देते हैं। अरे प्रभु ! भाई ! यह मूल की बात है, बापू ! आहा..हा.. ! और यह ज्ञानादि की पर्याय भले जाननेवाली है वह अपूर्ण है परन्तु उसका-दृष्टि का विषय जो है, वह तो पूर्ण है। आहा..हा.. ! चाहे तो उपशम समकित हो, भले क्षायिक न हो परन्तु उसका विषय है, वह तो पूर्ण है। भले अन्तर्मुहूर्त रहे, फिर क्षयोपशम हो जाये, उस समय क्षयोपशम का स्वरूप है, उसका विषय तो पूर्ण है। आहा..हा.. ! उसमें से क्षायिक हो, तथापि उस क्षायिक के समय भी जैसा उपशमरूप से पूर्ण था, क्षयोपशम का था, वैसा क्षायिक में भी वस्तु तो पूर्ण ऐसी की ऐसी है। आहा..हा.. !

ऐसे अनन्त गुण हैं। असंकोच विकास, अकार्यकारण-आता है न ? असंकोच विकास आता है। अकार्यकारण, त्यागउपादानशून्यत्व। भगवान आत्मा में राग का त्याग और स्वरूप का ग्रहण; पर का त्याग और पर के ग्रहण से रहित पूर्ण स्वरूप है। आहा..हा.. ! पर का-संयोग का त्याग किया; इसलिए वहाँ आगे पूर्णता में पूर्ण विशेष हुआ, और पर का जरा त्याग नहीं, इसलिए वहाँ त्यागउपादानशक्ति में अपूर्णता रही, ऐसा नहीं है। आहा..हा.. ! त्यागउपादानशून्यत्वशक्ति। विरुद्ध शक्ति। अगुरुलघुशक्ति है। वस्तु में अगुरुलघुशक्ति है।

पर्याय में षट्गुण हानिवृद्धि होती है। वह दूसरी बात है। आहा..हा..! भगवान आत्मा अनन्त पूर्ण गुण में एक अगुरुलघु नाम का पूर्ण गुण है। उसमें भी न्यूनाधिक नहीं हुआ है। आहा..हा..! अक्षर के अनन्तवें भाग में ज्ञान की पर्याय निगोद में रही परन्तु त्यागउपादानशक्ति में कुछ घट-बढ़ नहीं हुई है, वह तो पूर्ण ऐसी की ऐसी है। आहा..हा..!

उदय का त्याग किया और क्षायिक पर्याय प्रगट हुई परन्तु फिर भी उदय का त्याग नहीं था, तब भी वस्तु तो पूर्ण ही है और उदय का त्याग हुआ और क्षायिक पर्याय हुई, तथापि उस काल में वस्तु तो पूर्ण ही है। आहा..हा..! ऐसा है। कठिन पड़े, भाई! मार्ग तो यह है, भाई! दृष्टि का विषय वह अनन्त गुण की पूर्णता का द्रव्य है। गोविन्दरामजी! ऐसा है, भाई! मानो, न मानो, जगत स्वतन्त्र है। आहा..हा..! ऐसे अनन्त गुण हैं। विरुद्धशक्ति, वह भी पूर्ण है। आहा..हा..! तत्‌रूप से है और अतत्‌रूप से-पररूप से नहीं है। यह एक-एक शक्ति विरुद्ध है। इस विरुद्ध के फिर दो प्रकार किये - एक तत् और अतत्, वह पूर्ण है, प्रभु! आहा..हा..!

अरे! कहते हैं कि तूने जो भोग भोगे या राग किया, उसे तू याद करता है, उसकी अपेक्षा नाथ को याद कर न! प्रभु! ऐसा गुण से भरा हुआ, उसे। आहा..हा..! हम ऐसे स्त्री के साथ रमे और हमने स्त्री को ऐसे प्रसन्न रखा, उससे हम ऐसे प्रसन्न हुए, प्रभु! इस बात को याद करता है, यह तो मैल है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : द्रव्य तो ऐसा का ऐसा रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा रहता है। परन्तु उसे याद कर न! आहा..हा..! ऐसा स्मरण कर न, उसकी माला फेर। पूर्णानन्द का नाथ, पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायक, ध्रुव शुद्ध परमस्वभावभाव अखण्ड एकरूप अनन्त गुण का पूर्णरूप, वह एकरूप, उसे याद कर न! प्रभु की माला गिनता है (जपता है), परन्तु इस प्रभु की गिन न (जप न) उसमें तो विकल्प है। आहा..हा..! विकल्प से तो तुझे नुकसान है, प्रभु!

यह अनन्त शक्ति का सागर है। आहा..हा..! एकशक्ति भी पूर्ण है, अनेकशक्ति भी पूर्ण है। यह क्या कहते हैं? आहा..हा..! एकशक्ति भी पूर्ण और अनेकशक्ति भी पूर्ण? हाँ! ऐसा अनन्त-अनन्त चैतन्य के रत्नाकर से भरपूर भगवान पूर्ण है, वह दृष्टि का विषय है। आहा..हा..! यह दृष्टि किये बिना जो कुछ किया जाये—दया, दान और व्रत, वह सब निरर्थक संसार खाते है। धर्म के लिये निरर्थक, भटकने के लिये सार्थक। आहा..हा..!

भाव, अभाव, भावअभाव। भावशक्ति पूर्ण है कि जिसमें से एक पर्याय होती ही है वह। वह पूर्ण शक्ति पूर्ण है। अभावशक्ति भी पूर्ण है। कर्म का अभाव हुआ, इसलिए अभावशक्ति प्रगट हुई, ऐसा नहीं है। इसमें अपने में अभावशक्ति पूर्ण है। उस अभावशक्तिरूप से परिणमी, तब कर्म का अभावरूप से परिणमा, वह स्वयं से परिणमा है। वह कर्म का अभाव हुआ, इसलिए अभावरूप से परिणमा, ऐसा नहीं है। आहा..हा..! वह अभावशक्ति पूर्ण है। वह पर के अभाव के कारण नहीं है। अभावशक्ति है, आहा..हा..!

ऐसी भाव-अभाव, भाव-अभाव (शक्ति है)। वर्तमान पर्याय है, उस भाव के कारण; उसका अभाव हुआ, ऐसी भी एक भाव-अभाव नाम की शक्ति है। आहा..हा..! तुझे उस पर्याय का अभाव करना पड़े और भाव की पर्याय का व्यय करना पड़े, ऐसा नहीं है। वह शक्ति ही ऐसी है। आहा..हा..! यह क्या कहते हैं? भाव नाम का गुण भी परिपूर्ण है। अभाव नाम का गुण भी परिपूर्ण है। भाव-अभाव नाम का गुण भी परिपूर्ण है। अभाव-भाव नाम का पर्याय में जो अभाव था, उसके बदले भाव हुआ, पर्याय में, हों! परन्तु ऐसा अभाव-भाव का गुण आत्मा में है। आहा..हा..! तुझे अभाव करना पड़े और भाव का व्यय करना पड़े, ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहा..हा..! ऐई! ऐसी छह शक्तियाँ हैं न? अभाव-भाव, भाव-अभाव, भाव-भाव, अभाव-अभाव, भाव, क्रिया, कर्म, कर्तृत्व, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति।

अन्दर स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति है। अपना द्रव्य, गुण और निर्मल पर्याय, वह स्व और उसका वह स्वामी, ऐसा एक गुण है। ऐसा अन्दर एक गुण है। आहा..हा..! यह क्या कहा? शुद्धद्रव्य, शुद्धगुण, शुद्धपर्याय यह स्व, इनका स्वामी, परन्तु उसका स्वामी, ऐसा एक गुण है। आहा..हा..! अकेला पर्याय का स्वामी है और गुण का स्वामी है, ऐसा नहीं है। तीनों का स्वामी है, ऐसा एक गुण अन्दर है। अरे! ऐसी गजब बातें, भाई! आहा..हा..! कितनों को तो पहली बार कान में पड़ती होगी। यह भगवान के घर में ऐसा है, बापू! आहा..हा..!

यहाँ यह कहते हैं कि इस चैतन्य के भाव हैं, (ऐसा) ज्ञान विवेक करता है और यह पर है अथवा गुण है, परिपूर्ण यह द्रव्य एकरूप है और पर्याय है शुद्धता की और यह है अशुद्धता की, ऐसा ज्ञान भलीभाँति विवेक करता है। आहा..हा..! दृष्टि में भेद नहीं, उसके विषय में भेद नहीं परन्तु दृष्टि के साथ हुआ (ज्ञान विवेक करता है)। आहा..हा..!

इतना मुझे शुद्ध वेदन है और इतना अशुद्ध वेदन है, यह ज्ञान विवेक करता है। समझ में आया ? आहा..हा.. !

दृष्टि अखण्ड चैतन्य में भेद करने को खड़ी नहीं रहती। आहा..हा.. ! दृष्टि तो त्रिकाली अभेद अखण्डस्वरूप को ही स्वीकार करती है। यह गुण है और गुणी है, ऐसे भेद करने के लिये दृष्टि खड़ी नहीं रहती अर्थात् उसके स्वभाव में नहीं है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं। कहो, अजितभाई ! यह ऐसा है भाई ! आहा..हा.. ! वहाँ नैरोबी में ऐसा कुछ नहीं है। आहा..हा.. ! दृष्टि अखण्ड चैतन्य में गुणभेद और पर्यायभेद आदि का भेद नहीं करती। आहा..हा.. !

दृष्टि ऐसे परिणाम नहीं करती कि 'इतना तो सही,...' इतनी तो निर्मल पर्याय हुई न। **दृष्टि ऐसे परिणाम नहीं करती कि 'इतना तो सही, इतनी कचास तो है'...। ज्ञान सभी प्रकार का विवेक करता है।** दृष्टि को कुछ नहीं है। आहा..हा.. ! दूसरी सब जानकारी हो, न हो, उसके साथ (सम्बन्ध नहीं है)। यह विवेक ज्ञान करता है। आहा.. ! उसे ज्ञान कहते हैं। कहो, यह ३२२। चैतन्यामृत। आहा..हा.. ! ऐसी कोई चीज़ आ गयी है ! आहा..हा.. ! भले अभी लाखों... कितने लाख प्रकाशित हुए हैं ? भाई ! २० लाख। परन्तु यह कोई मूल वस्तु को बतलानेवाली यह चीज़ है। अरे ! एक बार मध्यस्थ व्यक्ति हो, बापू ! आग्रह छोड़कर यदि विचार करे, पढ़े तो उसे पता पड़े कि सत्य तो ऐसा है। आहा..हा.. ! क्या हो ? यह तो सम्यग्दर्शन के भान बिना व्रत, तप, और उपवास करने लगे और त्यागी प्रतिमा धारण कर ली, साधु हुए, वह सब मिथ्यात्वभाव है, भाई ! आहा..हा.. !

मुमुक्षु : वह शुभभाव तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभभाव है, उसे धर्म मानता है, वह मिथ्यात्वभाव है। हम धर्म करते हैं, व्रत पालते हैं, अहिंसाव्रत पालते हैं। तो अहिंसाव्रत तो राग है। सत्य बोलते हैं, वह भी राग है। आहा.. ! हम पंच महाव्रत पालते हैं, पंच महाव्रत भी राग और आस्रव है। आहा..हा.. ! ऐसी बातें हैं, प्रभु !

यह तो सबेरे आया था, क्रम-अक्रम ऐसे व्यवहारिकभावों से भिन्न है, प्रभु ! परन्तु नवतत्त्व के भेदभाव से, नौ की पर्यायें हैं न, ये ? इनसे प्रभु तो भिन्न है, क्योंकि ये पर्यायें उसमें नहीं है। वस्तु है, वह तो त्रिकाली है। आहा..हा.. ! संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय

भी जिससे भिन्न है अथवा उनसे यह भिन्न है। आहा..हा..! ऐसी बात कठिन पड़ती है। लोगों को अभ्यास नहीं और दूसरा अभ्यास चढ़ गया है। बस, यह त्याग करना और अपवास करना और समाधि की और यह किया और वह किया। सब ढोंग चलाते हैं। मरते समय अन्त में लोंच कर लेना, मुनिपना दे दो। कहाँ मुनिपना, अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं। भगवान! यह तो लाभ की बात है, बापू! तेरे अनादर की बात नहीं, नाथ! आहा..हा..! भाई! तुझे लाभ नहीं होता, वहाँ लाभ मानता है, भाई! आहा..हा..! यह परिणाम, भाई! दु:खरूप है और इस परिणाम के फलरूप से अरे रे! भवभ्रमण (होगा)। अर र! आहा..हा..! क्योंकि शुभभाव स्वयं संसार है, उसके फलरूप से भी परिभ्रमणरूपी संसार है, वह जगपंथ है। आहा..हा..! दिगम्बर वाणी तो देखो! श्रीमद् कहते हैं न— दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य... अर्थात् क्या कहना चाहते हैं, वह समझ में आता है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल होता गया। ढीला.. ढीला, ढीली बातें विपरीत करते करते... आहा..हा..! बहुत कठिन बात।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं कहा जरा, परन्तु अब क्या करे? बाद में कहा है। बाद में इन शास्त्र के नाम दिये, वहाँ के उन शास्त्रों का नाम नहीं दिया। इसलिए... परन्तु वे लोग यह नहीं कर सकते। उनके आश्रित ऐसा नहीं निकाल सकते। स्वयं तो काम कर गये हैं, बापू! हों! आहा..हा..! देह छूटने के काल में ऐसा बोलते हैं, भाई मनसुख! उम्र छोटी तैंतीस वर्ष 'माँ को दु:खी मत होने देना। मैं मेरे स्वरूप में जाता हूँ।' आहा..हा..! अक्षर.. अक्षर.. सत्य है, हों! आहा..हा..! मैं मेरे स्वरूप में जहाँ तल मैंने देखा है, वहाँ अब जाता हूँ। आहा..हा..! यह भव छेद करके चले गये। आहा..! वस्तु ऐसी है। भले चारित्र नहीं था परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूपाचरणचारित्र था। आहा..हा..! लोग बाह्य त्याग करके बैठे, वस्त्र बदले, तब त्यागी कहे परन्तु अन्दर मिथ्यात्व का त्याग है, उस त्याग की कीमत उन्हें नहीं है।

मुमुक्षु : उन्हें खबर ही नहीं तो कहाँ से....

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं, उसे खबर नहीं तो क्या हो? अरे रे! श्रुतसागर जैसे साधु ऐसा कहे कि अभी तो शुभभाव ही है। शुद्धभाव, शुद्ध उपयोग तो श्रेणी में होता है। अरे रे! प्रभु! भाई! यह क्या करते हैं? भाई! आहा..! परमात्मा का विरह पड़ा और प्रभु तो

विराजता है अन्दर पूरा। आहा..हा..! वहाँ तुझे जाना रुचता नहीं और इस शुभभाव में अटककर संयम और समकित मानना है। आहा..हा..!

आहा..हा..! **दृष्टि ऐसे परिणाम नहीं करती कि 'इतना तो सही, इतनी कचास तो है'। ज्ञान सभी प्रकार का विवेक करता है।** आहा..हा..! ज्ञान तो पर्याय-पर्याय का, राग के अंश का गुणभेद का सब विवेक करता है। एक समय की पर्याय ज्ञान में भी इतनी ताकत है। आहा..हा..!

जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो, उसे राग नहीं पुसाता। वह परिणति में विभाव से दूर भागता है। जैसे एक ओर बर्फ का ढेर हो और दूसरी ओर अग्नि हो तो उन दोनों के बीच खड़ा हुआ मनुष्य अग्नि से दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है, उसी प्रकार जिसने थोड़ा भी सुख का स्वाद चखा हो, जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है, ऐसा ज्ञानी जीव दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है एवं शीतलता की ओर ढलता है॥३२३॥

३२३, **जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो....** आहा..हा..! इस शुभभाव से रहित प्रभु चैतन्य निर्विकल्प शान्ति का सागर है। ऐसी शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. उसका सम्यग्दर्शन होने पर स्वाद चखा है, कहते हैं। आहा..हा..! उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, जिसने अन्तर आनन्द की शान्ति के स्वाद का वेदन किया है, वेदन में आनन्द आया है। आहा..हा..! शुभराग तो आस्रव है, प्रभु! वह तो दुःख है। वह दुःख है, वह संयम और समकित? वह दुःख है, वह निर्जरा का कारण? आहा..हा..! शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. 'उपशम रस बरसे रे प्रभु! तेरे नयन में'। आहा..हा..! भगवान का शरीर मानो उपशमरसवाला हो, उनके वाणी में उपशमरस के ऐसे ढाले ढले होते हैं। आहा..हा..! ऐसा जो भगवान अन्दर उपशमस्वरूप है। शान्त.. शान्त.. शान्त.. शान्त.. अर्थात् अकषाय स्वरूप अर्थात् वीतरागस्वरूप, अर्थात् चारित्र-शान्तिस्वरूप। आहा..हा..! ऐसी जो शान्ति का जिसने स्वाद लिया है। आहा..हा..! उस सम्यग्दर्शन में यह स्वाद होता है। आहा..हा..! वह (अज्ञानी) चाहे जितनी क्रिया करे बारह व्रत की, प्रतिमा की और धारणा, पंच महाव्रत (पाले) उसमें मिथ्यात्व का स्वाद है। आहा..हा..! अरे! बातें क्या करना? ऐसा मार्ग है।

जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो, उसे राग नहीं पुसाता। आहा..हा..! राग आता है, वह उसे सुहाता नहीं है। आहा..हा..! दया, दान, व्रत का विकल्प आवे, वह भी शान्ति के स्वादी को वह राग नहीं सुहाता। आहा..हा..! तथापि आये बिना नहीं रहता। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। **वह परिणति में विभाव से दूर भागता है।** आहा..हा..! भगवान शान्ति का सागर नाथ, उसका जिसे स्वाद आया है, वह राग की विभाव की अग्नि से भागता है। आहा..हा..! यहाँ से वहाँ जाना, यहाँ से वहाँ जाना, उसे शुभराग में उत्साह दिखायी देता है, वह उत्साह नहीं है। आहा..हा..! जिसे शुभराग की भी अशान्ति दिखती है, वह वहाँ से शान्ति में आता है। आहा..हा..!

सम्यग्दृष्टि जीव उसे कहते हैं कि पूरा पूर्णानन्द का नाथ सत्य है, उसकी प्रतीति ज्ञान करके हुई है, उसकी अनन्त शक्तियाँ जो भण्डार में पड़ी है, उनका अंश उसके वेदन में आ गया है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में! अरे भाई! बापू! सम्यक्त्व किसे कहना, भाई! आहा..हा..! यह तो भगवान की वाणी को हम मानते हैं, आचार्यों की वाणी को मानते हैं, वह समकित। अरे! प्रभु! आहा..हा..! वह तो विकल्प है। परद्रव्य को मानना, वह तो विकल्प है, आकुलता है, दुःख है। आहा..हा..! धर्मी जीव को भगवान शान्ति का सागर / पर्वत में आरूढ़ होकर जो स्वाद आया है... आहा..हा..! उसे शुभभाव नहीं सुहाता। **विभाव से दूर भागता है।** आहा..हा..!

जैसे एक ओर बर्फ का ढेर हो और दूसरी ओर अग्नि हो... आहा..हा..! **उन दोनों के बीच खड़ा हुआ मनुष्य...** क्या दृष्टान्त का सिद्धान्त! आहा..हा..! **अग्नि से दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है,...** आहा..हा..! एक ओर बर्फ का पर्वत, एक ओर अग्नि सुलगती हो। दो में खड़ा हो, वह अग्नि से भागकर बर्फ की ओर जाता है। आहा..हा..! **उसी प्रकार जिसने थोड़ा भी सुख का स्वाद चखा हो,...** आहा..हा..! सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ प्रभु का व्यक्तरूप से आंशिक आनन्द चखा है, उस आनन्द के ढेर की ओर जाता है। उसे शुभभाव आवे, वह अग्नि जैसा है। अरर! है?

अग्नि से दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है,... आहा..हा..! **उसी प्रकार जिसने थोड़ा भी सुख का स्वाद चखा हो,...** अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु, उसका जिसका सम्यग्दर्शन हुआ है, उसे आनन्द का स्वाद आया। आहा..हा..! सर्वगुणांश, वह समकित। आहा..हा..! देव-गुरु-धर्म को मानना, नवतत्त्व के भेद को मानना, वह समकित।

वह वस्तु नहीं। ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है। यह तो वीतराग के मार्ग की बात है। यह सोनगढ़ के घर की है ? आहा..हा.. !

मुमुक्षु : प्रकाशित तो आपने यहाँ की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाशित की है, वह तो बहिन के वचन हैं, परन्तु है तो वीतराग की वाणी है। आहा..हा.. ! प्रकाशित हो, वह तो चाहे जहाँ प्रकाशित हो। वाणी चाहे किस भगवान की निकले, श्मशान में हो और निकले या घर में निकले। वाणी तो भगवान की है। आहा..हा.. ! क्या कहा ?

एक ओर बर्फ का ढेर -पर्वत है और एक ओर अग्नि है, बीच में खड़ा है। वह अग्नि से हटकर इस ओर ढलना चाहता है। इसी प्रकार जिसने चैतन्य आनन्द का नाथ पूर्ण शान्ति का सागर, उसका जिसे थोड़ा भी स्वाद समकित में आया है, उसे शुभभाव आवे, (वह) अग्नि समान है। आहा..हा.. ! भाई ने कहा था न ? न्यालभाई ! कि शुभभाव भट्टी है। वहाँ दीपचन्दजी भड़क गये। ऐई ! पाटनीजी ! दीपचन्दजी, तुम्हारे गाँव में यह सब फेरफार हुआ। कलकत्ता में नहीं। वहाँ नहीं। दिल्ली में है, यह बात सच्ची है। दिल्ली में वे ज्ञानचन्दजी और.. अरे भगवान ! क्या किया प्रभु तूने ! वे ऐसा कहने लगे। यहाँ परिचय रहा नहीं और वह पढ़ा उसमें से स्वच्छन्द हो गया, दृष्टि तो फिर विपरीत ही पहले से। आहा..हा.. ! ऐसा कि दु:ख को वेदन करे, वह तीव्र कषायवाला है, ऐसा कहा। आहा..हा.. ! इन्होंने (सोगानीजी ने) भट्टी कहा, वह तीव्र कषायवाला जीव है, ऐसा कहा। अर र प्रभु !

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा के स्वादी जीव को राग आता है, होता है, वह दु:खरूप लगता है, अग्नि जैसा लगता है, वहाँ से हटकर यहाँ अन्तर में जाना चाहता है। शान्ति का सागर बर्फ पड़ा है, बड़ा प्रभु। धर्मी जीव, जिसे शान्ति का अंश भी स्वाद आया, वह शान्ति की ओर ढलने जाता है। (राग) अग्नि और दु:खरूप लगकर वहाँ से हटना चाहता है, ऐसा है। आहा..हा.. !

भूमिकानुसार राग तो आवे परन्तु उस राग को अग्नि समान जानता है। आहा..हा.. ! उसे दु:खरूप लगता है, इसलिए वहाँ से हटकर... दो के बीच खड़ा है, ऐसा कहा न ? एक ओर बर्फ का पर्वत तथा एक ओर अग्नि, दो के बीच खड़ा है। ऐसा साधक जीव। एक ओर ज्ञानानन्द के स्वाद के ढेर को देखा है तथा एक ओर राग की अग्नि भी वहाँ अन्दर

होती है, दो में बीच में खड़ा है। आहा..हा..! राग आता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, ऐसे परिणाम तो आते हैं परन्तु है वह अग्नि समान कषाय, प्रभु! आहा..हा..! वहाँ से दो में बीच में खड़ा है न? भेद डाला है न! आहा..हा..! वह इस ओर से हटकर शान्ति की ओर ढलना चाहता है, वहाँ अटकना-रहना नहीं चाहता। आहा..हा..! ऐसा स्वरूप है, भाई! उसे भट्टी कहा तो भड़क गये और फिर हमें लिखा। पत्र आते थे। तुम सीखो उनके पास से, यह दुःख की भट्टी है। अरे! प्रभु! क्या करता है तू? यहाँ तो मोक्ष अधिकार में तो पहले से कहते हैं कि जो शुभभाव आता है, वह जहर समान है। मुनि को भी जो पंच महाव्रत के विकल्प उठते हैं, शाम-सबेरे प्रतिक्रमण का विकल्प उठे, वह जहर, राग है, जहर है। आहा..हा..! यह बात कैसे जँचे? वहाँ से वे हटना चाहते हैं।

उसी प्रकार जिसने थोड़ा भी सुख का स्वाद चखा हो,... अतीन्द्रिय सुख का स्वाद। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसका जहाँ आगे भान होकर सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का नमूना आया है। समकिती चौथे गुणस्थान में। आहा..हा..! पाँचवें में विशेष है, छठवें में विशेष है, सातवें में विशेष है। आहा..हा..! **जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है, ऐसा ज्ञानी...** ऐसा धर्मी। आहा..हा..! **जीव, दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है...** राग वह दाह है। छहढाला में आता है 'राग आग दाह दहै सदा' आहा..हा..! धर्मी को भी राग आता है, वह आग समान, दाह समान। आहा..हा..! 'तातै समामृत सेईये'। 'राग आग दाह दहै सदा'। वह शुभभाव / राग भी अग्नि दाह दहै सदा। अर र! अब इसे यहाँ संयम और समकित मानना। अर र! बापू! आहा..हा..! यह 'राग आग दाह दहै सदा, तातै समामृत...' समता अन्दर में जाना। यह वीतरागस्वरूप भगवान शान्तस्वरूप है, उसमें राग से हटकर वहाँ जाना। आहा..हा..! बाहर की अग्नि और बर्फ तो जँचता है, परन्तु यह (कैसे जँचे)? शान्ति का सागर पर्वत भगवान अकषाय स्वभाव की शान्ति चारित्रस्वरूप जिनबिम्ब, वीतरागस्वरूपी शान्ति का बिम्ब प्रभु, उसका जिसे एक स्वाद भी सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थान में अंश भी आया है, उसे राग दाह समान / अग्नि समान दिखता है। आहा..हा..! कमजोरी के कारण आता है परन्तु वहाँ सुहाता नहीं, वहाँ रहना रुचता नहीं। आहा..हा..! अरे! ऐसी बातें! यहाँ तो थोड़ा कुछ व्रत लिये और प्रत्याख्यान किया और.... हो गया, हो गया, त्यागी हो गया और बाहर का संथारा किया और समाधिमरण हो गया। धूल भी नहीं, सुन न, भाई! आहा..हा..! कठिन काम, बापू! यह तो हित की बातें हैं, प्रभु! अनादर की बातें नहीं। आहा..हा..!

जिसे वीतरागी का अंश का स्वाद आया है। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन पर्याय, वह वीतरागी पर्याय है; स्वरूपाचरण पर्याय, वह वीतरागी पर्याय है; स्वरूप का ज्ञान, वह वीतरागी ज्ञान है। आहा..हा..! वीतरागी ज्ञान, वीतरागी दर्शन, वीतरागी स्वरूपाचरण में शान्ति का स्वाद है, शान्ति का वेदन है। वह शान्ति का पर्वत है, उसमें से आता है। आहा..हा..! इसलिए राग का भाव आता है, उसमें से बीच में खड़ा है तो हटना चाहता है। आहा..हा..! यह करूँ और इसमें से मुझे कुछ लाभ होगा, ऐसा सम्यग्दृष्टि नहीं मानता। आहा..हा..! ऐसा कठिन काम। ऐ.. गोविन्दरामजी! यह सब परीक्षा लेने जाते हो न? आहा..हा..!

लोग तो ऐसा ही कहते हैं, हों! यह लोग तो निश्चयाभासी हैं, निश्चय को मानते हैं और व्यवहार को मानते नहीं। परन्तु व्यवहार है, वह दु:खरूप है। जितना क्रियाकाण्ड का विकल्प है, पंच महाव्रत आदि, व्रतादि, वह सब राग दु:खरूप है। प्रभु! तुझे खबर नहीं। उस आनन्द के नाथ में यह (विकल्प) वस्तु नहीं है। यह विकृत होकर खड़ी हुई दशा है। आहा..हा..! उसमें से **राग से दूर भागता है एवं शीतलता की ओर ढलता है।** शीतल.. शीतल... शान्त.. शान्त.. शान्त.. शान्त.. आहा..हा..! अकषाय स्वभाव शान्त है, वहाँ धर्मी शान्ति के पर्वत की ओर ढलता है। राग की आग से हटकर जाना चाहता है। आहा..हा..! यह पूरा हुआ। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भक्ति का उल्लास आये बिना रह नहीं सकता

भाई! देव-गुरु-धर्म को तो तेरी भक्ति की आवश्यकता नहीं है किन्तु जिज्ञासु जीवों को साधकदशा में अशुभराग से बचने के लिए सत् के प्रति बहुमान उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है कि 'यद्यपि ज्ञानी, भक्ति नहीं चाहते, फिर भी वैसा किये बिना मुमुक्षु जीवों का कल्याण नहीं हो सकता। सन्तों के हृदय में निवास करनेवाला यह गुप्त रहस्य यहाँ खोलकर रख दिया गया है।' सत् के जिज्ञासु को सत् के निमित्तरूप सत्पुरुष की भक्ति का उल्लास आये बिना रह नहीं सकता।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, आतम के हित पन्थ लाग!, पृष्ठ-४६